यजुर्वेद द्वितीय खण्ड की

भूमिका

यजुर्वेद आलोक भाष्य के प्रथम खण्ड की भूमिका में हमने कुछ आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला था, जिन से यजुर्वेद का बाह्य परिचय भली प्रकार विदित हो सकता है। शाखा भेद के विस्तार को प्रथम खण्ड की भूमिका में दर्शा दिया था। यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय को आलोचना पूर्वक दर्शाने के लिये भूमिका के पृष्ठों में विशेष यत्न न करके हम पाठकों से सविनय निवेदन करेंगे कि वे विषयसूची से प्रतिपाद्य विषय को जानने का यत्न करें। अथर्ववेद के समान यजुर्वेद में प्रत्येक सूक्त या अध्याय के विषयों को शीर्षकों द्वारा नहीं दर्शाया गया है, प्रत्युत विषय सूची में अध्यायों के साथ ही कण्डिका या मन्त्र का अंक देते हुए मन्त्र का विषय संक्षेप में दर्शा दिया गया है, इससे उत्तम और सरल उपाय यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय को विशुद्ध रीति से दिखाने का दूसरा हमारी मति में नहीं आया।

भाष्य के पाठकों में से बहुत से पाठक इस बात के लिये उत्सुक हैं कि यजुर्वेद के मन्त्रों से किये जाने वाले यज्ञों और महायज्ञों के प्रकरणों को भूमिका में खोल कर स्पष्ट किया जावे। ऐसे महोदयों का विचार बहुत ही महत्व का है, परन्तु यह कार्य बड़े श्रम और काल की अपेक्षा करता है। इसके अतिरिक्त ऐसे विषय को विस्तृत और स्पष्ट रूप से दर्शाने के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों ने जितना प्रयास किया है उस सबको प्रथम प्रकट करना और फिर उन पर आलोचना और उन कर्म काण्डों के रहस्यों का विवेचन करना भूमिका के इनेगिने पृष्ठों में कभी सीमित नहीं हो सकता। इस लिये उनका विवरण भविष्य के किसी विस्तृत ग्रन्थ के लिये रख कर यहां उनके

सम्बन्ध में मौन ही रहना ठीक है। दूसरे वेद संहिताओं के आलोक भाष्य के प्रकाशन के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों के भाषा भाष्य और आलोचनों को भी प्रकाशित करने का विचार है। "यदि आर्य साहित्य मण्डल" की स्थिति और हमारा मनोरथ दोनों की संगति दृढ़ रही तो यह भी कार्य सुचारु रूप से होकर यजुर्वेद के कर्मकाण्ड और यज्ञों का विवेचन जनता को अच्छी प्रकार जान लेने का सुअवसर प्राप्त होगा।

क्योंकि प्रस्तुत भाष्य में कर्मकाण्डपरक अर्थों को सर्वथा नहीं किया गया इस लिये भूमिका में यजुर्वेद के उवट, महीधर आदि के कर्मकाण्ड परक अर्थों को रख कर उनकी आलोचना या खण्डन मण्डन करना सर्वथा अनुपयुक्त है। जो भी कर्मकाण्ड ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है, जिसको आधार लेकर भाष्यकारों की विचारमय व्याख्या प्रकट हुई है उसमें भी नाना प्रकार के भेद हैं, उन कर्म काण्डों की व्याख्याओं में भी भेद हैं, एक ही कर्मकाण्ड को लेकर मन्त्र के भाष्यकारों में भेद है, उन सब पर इस भूमिका में विचार करना असंगत प्रतीत होता है। जिस शैली को भाष्य में रखा गया है उसका दिग्दर्शन प्रथम खण्ड की भूमिका में पर्याप्त रूप में करा दिया गया है। उसको पाठक वहां ही देखने का श्रम करें।

परमेश्वर के पूर्ण अनुग्रह से यजुर्वेद का हिन्दी भाषा भाष्य पूर्ण हो गया। इसके पूर्व सामवेद और अथर्ववेद इन दोनों के भी भाष्य प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रयत्न को पार पहुंचाने में "आर्य साहित्य मण्डल" के संचालकों को धन्यवाद है और साथ ही आर्य जनता को भी धन्यवाद है, जिसकी गुणग्राहिता ने इस प्रयत्न को सफल किया है। इसके अनन्तर केवल ऋग्वेद का ही भाष्य सम्पूर्ण करना शेष है। जगदीश्वर के अनुग्रह से उसकी पूर्ति हो जाना भी कठिन नहीं है।

सहृदय पाठकों से निवेदन है कि वे भाष्य की त्रुटियों को बताने की सहानुभावना अवश्य मित्रभाव से करते रहें। शुद्धाशुद्धि पत्र में, दृष्टि दोष

तथा प्रेस के जगत्प्रसिद्ध भूतों की स्वाभाविक लीला से जो २ जिस २ तरह की त्रुटियां रह गई हैं, उनका यथा शक्ति संशोधन कर दिया गया है। पाठक अपनी २ पुस्तकों को उसके अनुसार अवश्य संशोधन कर लें, जिससे पढ़ने के समय वे त्रुटियां सत्यार्थ समझने में बाधक न हों। इसके अतिरिक्त त्रुटि करना मानुष धर्म है और त्रुटियां दूर करने का मार्ग दर्शाना देवधर्म है, वाचकों से इसी देव धर्म की आशा है।

अजमेर
वैशाख, कृष्ण ८,
१९८८ वि०

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा
मीमांसातीर्थ, विद्यालंकार



शुद्धाशुद्ध पत्र



पृ०	पं०	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
८	१७	(संवत्)	(मंवित्)
२१	४	ज्येष्ट जिस	ज्येष्टमास जिस
२१	२२	द्वारा और सेवित हैं	द्वारा सेवित और उनका आश्रय है।
५५	२०	(भुज्यः सखा)	(युज्य' मखा)
६०	८	लक्ष्मग	लक्षण
६०	२३	अन्न प्रज्ञा	अन्न प्रज्ञा
११०	१२	संघ कृत्वा	संघं कृत्वा
११८	२८	वेरी आदि	बेरी आदि।
१२५	१३	'अपो प्रधा०	'अपो अद्या०
१४४	९	प्रताप के।	प्रताप को
१७६	१७	श्लेपा विशेष	(श्लिष्ट विशेषणों
१९१	४	हेगृं	गेहृ
२०४	२०	जुग्नाए	जुंग्नाए
३२७	१९,२०,२१	सुर्पालिका	सुपिलीका
२५४	६	मनुष्यों में जीवन	मनुष्यों में पूर्ण जीवन
३२७	२४	प्रक्षन्	प्रंक्षन्

पृ०	पं०	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३६५	१९	चटख का २	चटख २ कर
३६७	१६	सुचा	सुचा
	१९	करू करा	करू । करा
३७१	८	भक्ता	भोक्ता
३७४	७	पदाथ से)	पदार्थ से (
३७८	५ से २० तक १६ पक्तियें		३७५ पृष्ठ में ५ वीं पक्ति से आगे पढ़नी चाहियें ।
३७८	१०	राजा से स्त्री का	राजा से और स्त्री का
४००	२३	(सहस्त्रिणीभि) अजारों	(सहस्त्रिणीभि) हजारों
४८१,८३,८५	माथे पर	अष्टाविंशोऽध्याय	एकोनत्रिंशोऽध्याय
५१६	९	(नत्वा)	(स्पृत्वा)
५६०	१४	(इध्म)	(इध्म)
५६८	८	रूप प्रकट	रूप को प्रकट
५७९	२४	(युत यामा)	(युतयामा)

टिप्पणी—इन अशुद्धियों के अतिरिक्त भी अशुद्धिया रह जानी सम्भव हैं जो सशोधक की आख से रह गयी हों, वाचकजन इनको देखकर अपनी पुस्तकों को शुद्ध करके पढें । प्राय प्रेस की छपाई में इकार, उकार, एकार और रेफ की मात्रायें टूट जाती हैं या नहीं उभरतीं, या छपते २ टाइप निकल जाता है, वह ठीक न बैठाया जाय, गलत बैठा दिया जाय इत्यादि नाना कारणों से प्राय त्रुटियां हो जाती हैं । ग्रन्थकार ।

विषय सूची

अष्टादशोऽध्यायः (पृ० १–५१)

यज्ञ से अग्नि आदि दिव्य तत्व और उनके ज्ञाता विद्वानों की प्राप्ति, यज्ञ से न्यायाधीश आदि पदाधिकारियों की प्राप्ति। यज्ञ से पृथिवी, अन्तरिक्ष सूर्य, नक्षत्र, काल आदि पदार्थों के ज्ञान और उनके ज्ञाताओं की प्राप्ति (१९) यज्ञ से सूर्य के समान तेजस्वी नाना पदाधिकारियों की प्राप्ति। उसमें अंशु, उपांशु, अदाभ्य, अधिपति, ऐन्द्रवायव आदि का विवरण। (२०) आग्रयण आदि राज्यांगों की प्राप्ति, (२१) यज्ञ से स्रुक् चमसादि यज्ञ साधन के पात्रों की प्राप्ति और उनकी राष्ट्र और देह में व्याख्या (२२) यज्ञ से अग्नि, घर्म, अर्क, प्राण, अश्वमेध आदि की प्राप्ति। उनकी व्याख्या। (२३) यज्ञ से व्रत, ऋतु, तप, सवत्सर आदि की प्राप्ति। (२४) एक, तीन, पांच आदि एकान्तर क्रम से सेना व्यूह और संख्या वृद्धि का नियम। (२५) यज्ञ से ४। ८। १२। क्रम से ४८ तक के व्यूह। (२३) यज्ञ से भिन्न २ अवस्था और बल वाले पशुओं की प्राप्ति (२६) यज्ञ सेना और नाना पशुओं की प्राप्ति। (२८) संग्राम, उत्तम सन्तान, ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य इनकी उत्तम रीति से शिक्षा और प्राप्ति। तेजस्वी पुरुषों के आदर, मुग्धों अज्ञानियों, को उत्तम ज्ञानोपदेश, प्रजापालक पुरुषों का आदर और उत्तम शिक्षा का आदेश। सूर्य के १२ नामों के अनुसार राजा के १२ नाम। (२९) यज्ञ से, आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ब्रह्मा, स्व, पृष्ठ, स्तोम, यजु, ऋक्, साम, बृहत्, रथन्तर आदि की प्राप्ति। इनकी व्याख्या। (३१) राष्ट्र में विद्वान् तेजस्वी पुरुषों का होना और उनका राष्ट्र को समृद्ध करना, (३२) ऐश्वर्य का विस्तार और राष्ट्र की रक्षा। (३३) ऐश्वर्य के साथ दानशीलता, पराक्रम और बल की वृद्धि। (३४–३६) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये राजा से प्रार्थना। (३७) सम्राज्य से राजा का अभिषेक (३८–३९) अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, यज्ञ, मन इनकी तुलना से प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य। उसके भिन्न २ गुणों से ६ नाम। 'गन्धर्व' नाम का रहस्य। (४४) सब वर्गों का आश्रय राजा, (४५) राजा के समुद, मारुत और अवस्यू नामों का रहस्य। पक्षान्तर

में परमेश्वर की तुलना। (४६–४८) राजा और विद्वान् शासक के कर्त्तव्य। राष्ट्र के तेज और स्नेह की वृद्धि। (४९) राजा और पक्षान्तर में परमेश्वर से ज्ञान और जीवन रक्षा की याचना। (५०) राजा के सूर्य के समान कर्त्तव्य। पक्षान्तर में भौतिक पदार्थों के सदुपयोग का आदेश। (५१) उन्नति के लिये अग्रणी नायक की नियुक्ति। पक्षान्तर में परमेश्वरोपासना। और भौतिकाग्नि का उपयोग। (५२) नायक के अधीन सेना के दो पक्ष। सभापति के आगे तत्व निर्णय में पक्ष प्रतिपक्ष, और अध्यात्म में आत्मा, परमात्मा का वर्णन। (५३) राजा की चन्द्र और बाज, से तुलना। पक्षान्तर में परमेश्वर का स्वरूप। हिरण्यपक्ष श्येन का रहस्य। (५४) राजा के कर्त्तव्य और जिम्मेवारी के पद। (५५) प्रजापालक राजा के मेघ के समान कर्त्तव्य। (५६) सर्वाशापूरक राजा और ऐश्वर्य की आकांक्षा। (५७) अग्रणी नायक का प्रजापालन का कर्त्तव्य और उसका आदर (५८) विद्वानों को उत्तम, पूर्व पुरुषों के उपार्जित पद प्राप्त करने का उपदेश। (५९) विद्वानों के समक्ष राजा को राष्ट्र के कोश का समर्पण। अध्यात्म रहस्य। (६०) सर्वोच्च सम्राट और उसके ऊपर विद्वानों का शासन। पक्षान्तर में ईश्वरोपासना। (६२) अग्रणी नायक को सुख प्राप्ति के मार्ग पर ले चलने के साधनों का उपदेश। (६४) लेन देन, तथा प्रजा के उपकारक बड़े २ कार्मों पर राजा का नियन्त्रण। (६५) अन्न, राज्य, बल और पराक्रम की वृद्धि, राज्य का विद्वानों के बल पर संचालन। (६६) सम्राट् कैसा हो। (६७) उसके श्रेष्ठ कर्त्तव्य। (६८) अग्रणी नायक के दो मुख्य कर्त्तव्य। (६९–७०) दुष्टों को दण्ड देने का विधान। (७१) शत्रुओं का प्रबल सैन्य से ताड़न। (७२–७३) वैश्वानर अग्नि का वर्णन, राजा सभापति के कर्त्तव्य। (७४) राजा की रक्षा में प्रजा का ऐश्वर्य सुख भोग। प्रजा का राजा के प्रति आदर। (७६) विद्वान् नायकों का राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। (७५–७७) राजा का प्रजा और उनकी सतानों की रक्षा का कर्त्तव्य।

एकोनविंशोऽध्यायः (पृ० ५२–१२१)

सौत्रामणी। (१) ओषधियों के सदृश समान स्वभाव के शास्य शासक, तथा स्त्री पुरुषों की संगति करके बल की वृद्धि का उपदेश। स्त्री पुरुषों का परिपक्व वीर्य होकर गृहस्थ करने की आज्ञा। सौत्रामणी यज्ञ का रहस्य, सोम और सुराकी व्याख्या। (२) सोम सवन। अभिषेक योग्य पुरुष का लक्षण। (३) राजा का सैन्य बल से सहायवान् होकर शत्रु पर आक्रमण। (४) ज्ञानवान् पुरुष के मनोरथों को पूर्ण करने वाली श्रद्धा, सूर्य दुहिता का रहस्य। (५–६) अभिषिक्त के कर्तव्य। (७) राजा प्रजा के पृथक् अधिकार, सोम सुरा का रहस्य। (८) अभिषिक्त पुरुष का स्वरूप और बल। उसके अभिषेक के प्रयोजन। (९) तेज, वीर्य, बल, ओज मन्यु और सह:, राजा के ये ६ रूप। पक्षान्तर में परमेश्वर से इन छः हों पदार्थों की प्रार्थना। राजा की व्याघ्र, श्येन, सिंह आदि से तुलना और उसकी 'विषूचिका' नाम संस्था का वर्णन। अध्यात्म में अन्तःप्रज्ञा का वर्णन। (११) पुत्र का माता पिता के प्रति कर्तव्य। पितृ ऋण से मुक्ति, राजा का पृथ्वी के प्रति कर्त्तव्य। (१२–३१) राजा का बल सम्पादन। राष्ट्र यज्ञ का विस्तार। (१३) यज्ञ से राज्य की तुलना। शष्प, तोक्म, लाजा और मधु आदि यज्ञ गत पदार्थों के नामों का श्लेष पूर्ण अर्थ। सौत्रामणी का स्वाध्याययज्ञ रूप से दिग् दर्शन। (३२) अभिषिक्त पुरुष का इन्द्रपद। उसकी वृद्धि। (३३) 'सरस्वती' और 'अश्विनौ' की वृद्धि का रहस्य। (३४) देह में शुक्र के समान राजा के ऐश्वर्यवान् पद का सार्वजनिक उपभोग। (३५) सैन्य बल की वृद्धि और उसका उपभोग। (३६) स्वधायी पिता, पितामह, प्रपितामहों का आदर, उन की तृप्ति, और उनका शुद्धि करने का कर्तव्य। पितरों का रहस्य। (३७) पितरों का शुद्धि करने का कर्तव्य। (३८) विद्वान् और राजा का दुष्ट संकट नाशन का कर्तव्य। (३९–४४) सब विद्वानों का पवित्र करने का

कर्त्तव्य । (४५) यम राज्य में पितरों की स्वधा का रहस्य । (४६) समान और एक चित्त वाले जीवों की लक्ष्मी को अपने में प्राप्त करने की इच्छा (४६) मर्त्यों और देवों के दो मार्ग । छान्दोग्य प्रोक्त तीन मार्गों का विवेचन । (४८) देह में सन्तानोत्पादक दश प्राण युक्त वीर्य की प्रार्थना । अग्नि स्वरूप पति । राष्ट्र पक्ष में दशवीर नायकों से युक्त सैन्य और नायक का वर्णन । (४९) अवर, पर और मध्यम पितरों का वर्णन । (५०) आङ्गिरस, नवग्व, अथर्व, और सोम्य, पितरों अर्थात् पालकों का वर्णन, उनका रहस्य । (५१) वसिष्ठ पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । (५२-५४) उनके मुख्य नायक सोम, राजा । (५५-५६) बर्हिषद् पितरों और सुविदत्र पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । पितृ जनों को आदर से बुलाना और उनसे रक्षा की प्रार्थना । (५८) अग्निष्वात्त पितरों का वर्णन । उनके देवयान मार्ग और उनकी स्वधा से तृप्ति का रहस्य । (५९) उनके सर्ववीर रयि का रहस्य । (६०) उनकी असुनीति तनु की कल्पना का रहस्य । अग्निष्वात्त, ऋतुमान् सोमपायी विप्रों का वर्णन । (६२) उक्त पालक जनों का सभ्यता पूर्वक आसनों पर विराजना । (६३) पालक जनों का ऐश्वर्य दान । उसका विविध रहस्य । (६५) उसका पितृ जनों से सम्बन्ध । (६६) उसका पितृ जनों का उत्तम पुष्टि कारक अन्नों का दान । (६७) विद्वानों और ऐश्वर्यवान् का पालक पुरुषों के प्रति कर्त्तव्य । (६८) पूर्व और पर, तथा पृथिवी लोक और प्रजाओं पर अधिष्ठित पालक जनों का वर्णन । (६९) ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानवेत्ता पितरों का वर्णन, (७०) कामनावान् पितरों का वर्णन । (७०) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का शत्रु के प्रति कर्त्तव्य । (७१) अपां फेन से नमुचि के शिर के काटने का रहस्य । (७२) अभिषिक्त राजा का कोप, बल द्वारा विपद्-विजय सम्पत् प्राप्ति । अध्यात्मिक मृत्युंजय और मधु अमृत पान का रहस्य । (७३) हंस के दृष्टान्त से अध्यात्म में ज्ञानी के परमानन्द रस का पान और राजा के ऐश्वर्य के उपभोग का वर्णन । (७४) हंस के दृष्टान्त

से शुचिपद आत्मा और धर्मात्मा राजा का प्राणों और प्रजाओं से रस और ऐश्वर्य प्राप्ति का वर्णन। (७५) अन्न से पौष्टिक रस के समान राजा को सार भूत ऐश्वर्य और अध्यात्म में आनन्द रस की प्राप्ति। (७६) मूत्र, वीर्य तथा गर्भ जरायु के दृष्टान्त से दान और उत्सर्ग के महत्व का वर्णन। (७७) सत्य के बल पर प्रजापालक की सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा का उपदेश। (७८) वेद द्वारा सद् असद् के विवेक का उपदेश। (७९) अत्तार के दृष्टान्त से शुद्ध उपाय से अर्थोपार्जन का उपदेश। (८०) सीसे से शत्रु नाश करने और सूत्र से कपड़ा बुनने के दृष्टान्त से निर्बल राष्ट्र की वृद्धि का उपदेश। (८१) दो अश्वी और सरस्वती तीनों का राष्ट्र रक्षा और पोषण के साधनों का उत्पादन। (८२) उक्त तीनों का अङ्गों से शरीर को वैद्यों के समान चेतनवद् भृत्यों द्वारा सुदृढ़ करना। (८३) बुद्धिमती स्त्री के समान राजसभा का राष्ट्र में ऐश्वर्य और शोभा बढ़ाते रहना। (८४) वीर्य द्वारा सन्ततिजनन के समान राजा की उत्पत्ति। शरीर से मल के समान दुष्ट पुरुषों का राष्ट्र से निर्वासन। (८५) अन्न से बल प्राप्त करने के समान सुरक्षक राजा की बल वृद्धि, उदर के भीतरी अंगों से शासकों की तुलना। (८६–८७) प्लीहा आदि भीतरी अंगों की तुलना। (८८) मुख से राज्य व्यवस्था की तुलना। (८९) राष्ट्र की चक्षु से तुलना। (९०) समृद्ध राष्ट्र की नासिका से तुलना। (९१) राजा और आत्मा की बैल से तथा राष्ट्र की मुख से तुलना। (९२) पूर्ण राष्ट्र की शरीर से तुलना। (९३) योग द्वारा शरीर शोधन और चिकित्सा के समान ही राष्ट्र का शोधन और चिकित्सा। अंगों की सत्ताओं से तुलना। पक्षान्तर में गृहस्थ का वर्णन। (९४) स्त्री के गर्भ में बालक के धारण के समान प्रजा के बीच राजा का धारण। (९५) दूध और मधु के समान अभिषेक द्वारा राजा का दोहन।

विंशोऽध्यायः (१२२–१७२)

(१) राजा, सभापति का स्वरूप और उसका प्रजा के प्रति कर्तव्य।

(२) सर्व श्रेष्ठ पुरुष का सिंहासन पर विराजना और उसको प्रजा पालने के कर्तव्योपदेश। (३) राजा का अभिषेक। और उसके ९ प्रयोजन। (४) सम्राट् का नामकरण और उपाधिवितरण। सम्राट का तेजस्वी रूप सम्राट् और विराट् का आख कान का सा सम्बन्ध। (६–८) पदाधिकारों और अध्यात्म शक्तियों की तुलना। (१०) अंगों में आत्मा के समान राष्ट्र के अंगों में राजा की प्रतिष्ठा। (११) तेतीस विद्वान् देवों की प्रतिष्ठा। (१२) उनके परस्पर सहयोग से वृद्धि। (१३) राजा के शरीर के अंगों की राजा की शक्तियों या अधिकारों से तुलना। (१४–१८) विद्वानों का प्रजाजनों को असत्कर्मों और बन्धनों से छुड़ाना। (१९) आप्त पुरुषों का ओषधिवत् रक्षक और शत्रुनाश होने की प्रार्थना। (२०) आप्त पुरुषों का पापों से छुड़ाने का कर्तव्य। (२१) राजा का सर्वोत्तम पद। (२२) अभिषिक्त राजा का उपसर्पण और ऐश्वर्य धारण। (२३) सम्राट् की वैश्वानर ज्योति सूर्य के समान स्थिति। (२४) प्रजापति के अधीन व्रतोपायन और दीक्षा ग्रहण। गुरु शिष्य सम्बन्ध का विवरण। (२५–२६) ब्रह्म क्षत्र युक्त पुण्य लोक का वर्णन। (२७) सम्राट् को आशीर्वाद। (२८) दान शील उदार राजा का वर्णन। (२९) समृद्ध राजा का आश्रय करना। (३०) विद्वानों का राजा को उपदेश करने का धर्म। (३१) राजा का अभ्युक्षण, दीक्षा। (३२–३३) राजा का सरस्वती (राजसभा) इन्द्र, और सुत्रामा पद पर स्थापन भूताधिपति का पद। (३४) राष्ट्र शरीर के प्रधान शक्तियों के रक्षण कर्त्ता के पद पर नियुक्ति। (३६) शत्रु विजय का आदेश। (३७) नराशंस, तनूनपात् पद, उसके कर्तव्य। (३८) गोत्रभित्, वज्रबाहु राजा का स्वरूप। (३९) सूर्य के समान हरिवान् इन्द्र राजा का स्वरूप। (४०) पति को स्त्रियों के समान प्रजाओं और सेनाओं का अपना नायक वरण। (४१) उषा, नक्त नामक दो संस्थाओं का नायकस्वीकरण। (४२) अग्नि और वायु नाम दो मुख्याधिकारियों का राजा को स्वीकार। (४३) सरस्वती, 'इड़ा, भारती

तीनों देवियों का राजा को वरण। (४४) तेजस्वी पुरुष को सेनापत्य पद। (४५) वट आदि के समान वनस्पति पद। (४६) इन्द्र, सेनापति पद के योग्य पुरुष का लक्षण। (४७) इन्द्र सुत्रामा के कर्तव्य। (५५) अग्नि के समान तेजस्वी पद पर अभिषिक्त नायक के लक्षण। (५६–६०) सरस्वती और अश्वियों के कर्तव्य। (६१–७७) उषा, नक्त, अश्वि, तीन देवियें, सविता, वरुण, इन सबका इन्द्र पद को पुष्ट करना। (७८) अग्रणी नायक का स्वरूप। (७९) उसके कर्तव्य। (८०) राजा की बल वीर्य पुष्टि। (८१) अश्वियों के कर्तव्य। (८२) मेघ के समान राजा के कर्तव्य। (८३) अधिकारियों के कर्तव्य। (८४–८६) विद्वत्सभा के कर्तव्य। (८७–९०) इन्द्र सुत्रामा का आदर।

एकविंशोऽध्यायः (१७३–२२७)

(१) प्रजा की प्रार्थना सुनने का राजा का कर्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का स्मरण। (२) प्रजा की शरण याचना, राजा का अभय दान। (३) प्रजा के परस्पर कलहों का दूर करना राजा का कर्तव्य। (४) उत्तम नायक को प्राप्त करने की प्रार्थना। (५–७) राजसभा और राज्य व्यवस्था की नौका के साथ तुलना, कर्तव्य दृष्टि से उसका उत्तम स्वरूप। (८–९) मित्र और वरुण पदों के कर्तव्य। (१०–११) अश्वों, अश्वारोहियों और ज्ञानवान् पुरुषों के लक्षण। (१२–२२) आप्री देवों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, सोम, बर्हि, द्वार उषासानक्ता, दैव्य होता, इडा आदि तीन देवियें, त्वष्टा, वनस्पति, वरुण। इन पदाधिकारों के कर्तव्य, बल और आवश्यक सदाचार। तपसामर्थ्य का वर्णन। (२३–२८) संवत्सर के ६ ऋतु भेद से यज्ञ प्रजापति और प्रजापालक राजा के ६ स्वरूपों का वर्णन। (२९–४१) अधिकार प्रदान। और नाना दृष्टान्तों से उनके और उनके सहायकों के कर्तव्यों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, नराशंस, बर्हि, द्वार, सरस्वती, उषा, नक्त, दैव्य होता

तीन देवी, त्वष्टा, वनस्पति, अश्विद्वय, इन पदाधिकारियों को अधिकार प्रदान। (४२-४७) अधिकार दान, उनके सहायकों के कर्तव्य। महीधर आदि के किये बकरे की बलिपरक अर्थ का सप्रमाण खण्डन। सरस्वती नाम विद्वत्सभा को अधिकार, उसके सहायकों के कर्तव्य। छाग, मेष, ऋषभ और उनके हवि, मद, तथा उनके पार्श्व, कटि, प्रजनन, आदि अंगों के अवदान करने का रहस्य। (४७-५८) स्विष्टकृत् अग्नि का विवरण। (५८-५८) उक्त अधिकारियों के स्थान, मान, पद और उनका ऐश्वर्य वृद्धि का कर्तव्य। (५९) होता नाम अग्रणी नायक का वरण। (६०) वनस्पति अधिकारी का वरण। (६१) वृत विद्वानों के कर्तव्य।

द्वाविंशोऽध्यायः (पृ० २२८२५५)

(१) राजा का राष्ट्र में स्थान और उसका कर्तव्य। (२) परमेश्वर की व्यापक शक्ति के समान राजा की राज्य-व्यवस्था का वर्णन। (३) परमेश्वर के गुणों का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के गुणों का वर्णन। (४) राजा को और नायक विद्वानों को अधिकार प्रदान, (५) अधिकार पदों के लिये प्रोक्षण अभिषेक और आदर योग्य पुरुषों का वर्णन। (६) आदरणीय नायक पुरुष का नाना अवस्थाओं में भी उसकी ४९ दशाओं में आदर सत्कार और रक्षा करने का उपदेश। (९) गायत्री। (१०-१२) हिरण्यपाणि सविता। आज्ञापक का स्वरूप। (१५-१६) अग्नि अर्थात् विद्वान् दूत का वर्णन, अध्यात्म में ज्ञानी उपासक का वर्णन। (१८) तेजस्वी पुरुष की उत्पत्ति, और उसका पृथ्वी के पालन का कर्तव्य। (१९) अश्व के दृष्टान्त से नायक भोक्ता आत्मा और परमेश्वर के १३ नाम, उनसे सूचित गुण, कर्तव्य और उन गुणों के कारण उसका अभिषेक। (२०) प्रभु के 'क' आदि नाना गुण, कर्मसूचक नाम और उनका आदर। (२१) नायक सखा। (२२) आदर्श राष्ट्र की समृद्धि की कामना। (२३) प्राण आदि शारीरिक शक्तियों की साधना। (२४) प्राची आदि ६

दिशाओं और १२ उपदिशाओं मे राष्ट्र की रक्षा। (२५) नाना प्रकार के जलों के दृष्टान्त से, गुण भेद से नाना गुणों वाली सेनाओं और प्रजाओं का वर्णन। (२६) वात, धूम, अभ्र आदि नाना मेघ की दशाओं की तुलना के साथ २ नायक के नाना कर्मों का वर्णन। (२७) अग्नि आदि पदार्थों की साधना। (२८–३१) नक्षत्र आदि के सुखकारी होने की भावना। (३२–३३) यज्ञ से अन्न, ज्ञान, बल आदि की उत्पत्ति।

त्रयोविंशोऽध्यायः (पृ० २५६–३०१)

(१) हिरण्यगर्भ परमेश्वर का वर्णन, पक्षान्तर में राजा का वर्णन। (२) व्यवस्था में बद्ध राजा की सूर्य और वायु और अन्तरिक्ष से तुलना। राजा का प्रजापति पद। (३) ईश्वर और राजा के महान् ऐश्वर्य का वर्णन। (४) व्यवस्याबद्ध राजा का चन्द्र, अग्नि, नक्षत्रों से तुलित महान् सामर्थ्यों का वर्णन। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (५) दोषरहित तेजस्वी राजा की नियुक्ति, पक्षान्तर में परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में सूर्य का वर्णन। (६) रथ में जुते अश्वों के समान दो नायकों की नियुक्ति। (७) राजा को सन्मार्ग पर लेजाने के लिये उसके स्तोतृ नायक विद्वान् की नियुक्ति। (८) गायत्र, त्रैष्टुभ, और जागत तीन छन्दों से वसु, रुद्र और आदित्यों द्वारा स्तवन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन द्वारा राजा की कीर्ति। तेजस्वी, शक्तिमान् राजा को राष्ट्र भोग की आज्ञा। (९–१२) ब्रह्मोद्य। ब्रह्म और प्रभु राजा की शक्ति विषयक प्रश्नोत्तर। सूर्य, अग्नि, भूमि, द्यौ, अश्व, अवि और रात्रि विषयक प्रश्नोत्तर। (१३) राजा की शक्ति को पुष्ट करने के लिये सेनापति आदि पदाधिकारियों का उत्तम उद्योग। (१४) रथ अश्व के दृष्टान्त से ब्रह्मा नाम विद्वान् के कर्त्तव्य और स्थिति का वर्णन। पक्षान्तर में अध्यात्म विवेचन। (१५–१६) ऐश्वर्यवान् स्वामी और अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। (१७) अग्नि, वायु, सूर्य के दृष्टान्त से विजयाभिलाषी राजा के कर्तव्यों का उपदेश।

अग्नि, वायु, सूर्य तीनों के पशु कहाने का रहस्य। (१८) प्राण आदि शक्तियों का उपयोग, राज्यलक्ष्मी और वसुधा का वीरभोग्य होना। काम्पील्यवासिनी सुभद्रिका और सोने वाले अश्वक का रहस्य। पक्षान्तर में पतिवरा कन्या तथा अध्यात्म में स्पष्ट विवरण (१९) गणपति, परमेश्वर, विद्वान्, राजा और गृहपति का वर्णन, गर्भध परमेश्वर और गर्भध प्रकृति का रहस्य। (२०) राजा प्रजा की चतुर्वर्ग साधना। गृहस्थ का चतुष्पाद् स्वरूप। महीधर के अर्थों की असगति। दुष्टों के प्रति राजा का व्यवहार। गृहस्थ पक्ष में चरकादि वैद्यक शास्त्रोक्त प्रजोत्पत्ति विद्या का मूल निदर्शन। (२२) समृद्ध, शक्तिमती प्रजा के ऊपर बलवान् राजा की स्थापना। दम्पति पक्ष में दोनों स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। (२३) शक्तिशाली राजा का स्वरूप और उसका मुख्य व्रत वाणी पर वश करना। दम्पति पक्ष में शक्तिमान् पुरुष का स्त्री के हृदय का आकर्षक और एक स्त्री व्रत होने का उपदेश। (२४) माता पिता का प्रधान पद और स्नेह से रक्षार्थ ही राष्ट्र की समृद्धि के आधार पर राजा का सैन्य बल का होता है। मन्त्रोक्त मुष्टि, गभ, वृक्ष आदि शब्दों का रहस्य विवेक। गृहस्थ पक्ष में माता पिता का उच्च पद, और ऐश्वर्य या स्त्री के आधार पर पारिवारिक स्नेह की व्यवस्था। (२५) राष्ट्र प्रजाजन की माता राजसभा और पिता राजा दोनों का विस्तृत राज्य पर सुखी रहना और धुरन्धर वेदवित् ब्रह्मा की जिम्मेवारी और वाणी पर वश। (२६-२७) पर्वत पर बोझा ढोने वाले के समान राष्ट्र भार के उठानेवाले की जिम्मेवारी। और वायु वेग से छाज द्वारा अन्न शोधन करने वाले के समान राष्ट्र का कण्टकशोधन। दम्पति पक्ष में गृहस्थ पुरुष के उत्तम कर्तव्य। (२८) गाय के खुरों की उपमा से ब्राह्म और क्षात्र बलों का पृथ्वी पालन में उपयोग। इसी प्रकार गृहपति के कर्तव्य। (२९) न्यायशील पुरुषों को सभा में सत्य निर्णय करने का उपदेश। मन्त्रोक्त 'नारी' पद का रहस्य। (३०) हरिण और खेत तथा स्वामी और दासी के दृष्टान्त से प्रबल राजा की धन

लालसा से प्रजा की समृद्धि के नाश हो जाने की चेतावनी। (३१) हरिण और यव तथा भृत्य और रानी के भोग के दृष्टान्त से दुष्ट राजा के द्वारा उत्तम प्रजा के नाश हो जाने की चेतावनी। (३२) विजयशील राजा की स्थापना। (३३) गायत्री आदि छन्दों के नामों से नाना प्रकार की उत्तम वाणियों से राजा के हृदय की शान्ति। (३४–३५) द्विपदा आदि और महानाम्नी आदि वेदवाणियों से स्वामी का शान्तिकरण। इसी प्रकार गायत्री, द्विपदा महानाम्नी आदि भिन्न २ प्रजाओं का वर्णन। (३७) सेनाओं के शस्त्रों द्वारा विजयी पुरुषों की पालक शक्तियों का शान्ति प्रयोग। इसी प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा उत्तम पतियों की हृदय सुख शान्ति। (३७) उत्तम स्त्रियों के गुण, एवं उत्तम प्रजाओं के अपने स्वामी को प्रसन्न रखने और शान्त रखने का कर्तव्य। (३८) राजा का प्रजा के भोजनादि सुख का प्रबन्ध करना। (३९) प्रजाओं में शान्ति विधायक शासक का लक्षण। (४०) विद्वान् सदस्यों का शान्ति विधान का कर्तव्य। (४१) सर्वत्सर के अंग भूत दिन रात्रि के समान नाना राज्याङ्गों और उनके अध्यक्षों के कर्तव्य। (४२) राष्ट्र के पालक पुरुषों का कार्य, राष्ट्र का शासन और उनका शान्तिकारिणी व्यवस्थाएं बनाना। (४३) सूर्य, वायु, आकाश और नक्षत्रों के समान तेजस्वी, बलवान्, और उदार और दृढ़ स्थिर लोगों से राष्ट्र की न्यूनताएं दूर करना। (४४) सर्वाङ्ग शान्ति। (४५–४८) पुनः प्रश्नोत्तर। सूर्य चन्द्र, अग्नि, भूमि, ब्रह्म, द्यौ, इन्द्र, वाणी के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर। (४९–५०) व्यापक परमेश्वर के तीन चरणों में विश्व की स्थिति, (५१–५२) पुरुष अर्थात् जीव के आश्रय तत्व। (५३–५४) अ० २३। ११। १२। के समान प्रश्न। पिशंगिला, पुरु पिशंगिला, शश, और अहि के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर और उनका रहस्य विवेचन। (५७–५८) जगत् रूप यज्ञ के आश्रय, तथा कारण पदार्थ, संचालक शक्तियों के सम्बन्ध में प्रश्न-उत्तर। (५९–६०) सर्वज्ञ विषयक प्रश्न। (६१–६२) पृथिवी के पर अन्त, भुवन की

नाभि, अश्व के रेतस् और वाक् के परम व्योम सम्बन्धी प्रश्न और उसके उत्तर और रहस्य का स्पष्टी करण। (६३) प्रजापति की उत्पत्ति, पक्षान्तर में राजा और परमेश्वर के प्रजापति नाम होने का कारण। (६४) होता द्वारा प्रजा पालक राजा के अधीन ऐश्वर्य युक्त राज्य का समर्पण। (६५) प्रजापति का अद्वितीय सामर्थ्य और उससे ऐश्वर्य की प्रार्थना।

चतुर्विंशोऽध्यायः (पृ० ३०२३३१)

(१-२) राजा के अधीन राष्ट्र के १६ पर्वङ्गों का वर्णन। (३-१९) अन्यान्य प्रत्यंगों तथा अधीन रहने वाले नाना विभागों के भृत्यों और उनके विशेष पोशाकों और चिन्हों का विवरण। (२४) ऋतु के अनुसार पक्षियों का वर्णन और उनसे राष्ट्र के हिताहित ज्ञान करने का उपदेश। (२१) समुद्र, मेघ, जल, आदि से सम्बद्ध जीवों के ज्ञान का उपदेश। (२१—३९) भिन्न २ गुणों और विशेष हुनरों के लिये भिन्न २ प्रकार के नाना पक्षियों और जानवरों के चरित्रों का अध्ययन और संग्रह।

पञ्चविंशोऽध्यायः (३३२–३७२)

(१) नाना प्रकार के शिल्पों तथा गुणों और रहस्यमय पदार्थों के ज्ञान के लिये शरीर गत अंगों का दृष्टान्त रूप से उल्लेख। (२-३) बाह्य जगत् की शक्तियों की देहगत शक्तियों से तुलना। (४-५) शरीर गत पसुलियों से राष्ट्र के अधिकारियों की तुलना। (६) देह के पीठ के मोहरों से राज्याधिकारियों की तुलना और उनके कर्तव्य विवेचन। उदर में स्थित अंगों से राष्ट्र के अन्य पदार्थों की तुलना। अथवा उनकी शक्तियों से उनके उपयोगों की आलोचना। (८) शरीर के अंगों से अन्य पदार्थों की तुलना और उनके गुणों का विश्लेषण। (९) शरीर की और जगत् की प्रबल शक्तियों की तुलना। अपान और राजा की तुलना। (१०-१३) प्रजापति का वर्णन। परमेश्वर की उपासना (१४-१५) विद्वानों से

प्रार्थना । (१६) उनका आदर सत्कार । (१७) सुखकारी ओषधि, माता पिता, भूमि, सूर्य, विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष और यज्ञ साधनों से सबसे उत्तम सुख की कामना । (१८–१९) ईश्वरोपासना । वायुओं के समान मातृ भूमि के भक्त वीरों का वर्णन । उनके लक्षण और कर्तव्य । (२१) उत्तम वचन का सुनना, उत्तम दर्शन, स्थिर अंगों से सुख पूर्वक जीवन भोग की प्रार्थना । (२२) शत वर्ष के पूर्ण जीवन की कामना । (२३) अदिति के ९ प्रकार । (२४) ऐश्वर्यवान् बलवान् विद्वान् पुरुष के सामर्थ्यों का वर्णन । (२५) राजा की दी वृत्ति को मुख्य रूप से मानना । अधीन वृत्तिग्राहियों के कर्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर और विद्वान दोनों की स्तुति । (२६–२७) प्रधान वीर पुरुषों के कर्तव्य । पूषा के विश्वदेव्य भाग, छाग और उसका अश्व के साथ आगे चलने का रहस्य । (२८) यज्ञ के होतादि कार्य कर्त्ताओं के समान राष्ट्र के प्रधान कार्य कर्त्ताओं का कर्तव्य । (२९) राज्य के राज सहायकों के सहयोग की आकांक्षा । (३०) उत्तम कार्यकर्त्ताओं की कार्य में नियुक्ति । (३१) उनकी प्रधान शक्ति और अधिकार योग्य वेतन पर नियुक्ति । अश्व की रशना, और रज्जु का रहस्य । (३२) राष्ट्र के सब कार्यों को विद्वानों के हाथ में रखने का उपदेश । अश्व के मांस को मक्षिका के खाने, उसके स्वरु स्वधिति में लगने, शमिता के नखों और हाथों में लगने का रहस्य । (३३) दुष्टों का दमन । (३४) राष्ट्र की उपज का सदुपयोग और संग्रह । पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य की रक्षा का उपदेश । (३५) वैश्यों, क्षत्रियों और विद्वान् परिव्राजकों के सहयोग की आकांक्षा । पक्षान्तर में ब्रह्मचारियों के मत की विवेचना । उनका भिक्षा मत । परिपक्व वाजी का रहस्य । (३६) उत्तम राष्ट्र के शोभा जनक भूषण, अध्यात्म में देह में स्थित आत्मा के विशेष गुण और शक्तियों का वर्णन । (३७) संकटों से रक्षा की चेतावनी और उनके उपाय । (३८–३९) राजा के सब खान पान विहार आदि पर विद्वानों का निरीक्षण (४०) वेद ज्ञान द्वारा

राष्ट्र की बाधाओं को दूर करना। (४१) राष्ट्र के ३४ अंगों को दोष रहित करना। (४२) राष्ट्र के कार्यों का विभाग और उनपर योग्य विद्वान् अध्यक्ष की नियुक्ति। (४३) सेना आदि द्वारा राष्ट्र प्रजा को व्यर्थ न सताने का उपदेश। उत्तम मार्गों, और उत्तम व्यवस्थाओं से राष्ट्र, राज्य और राजा की दीर्घायु। उत्तम पदों पर रथ में अश्व के समान उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। (४५) उत्तम क्षात्र बल की प्राप्ति। (४६) राष्ट्र को दृढ़ बनाने का उद्योग। (४७–४८) राजा को प्रजाप्रिय और तेजस्वी होने का उपदेश।

षड्विंशोऽध्यायः (३७३–३८६)

(१) अग्नि पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आप, वरुण, इनके समान परस्पर राजा प्रजा का प्रेम से उपकारी होकर रहना। ज्ञान संम्पत, और आठवीं भूतसाधनी सम्पा का वर्णन। उत्तम ज्ञान प्राप्ति का उपदेश। (२) सबके लिये कल्याणी वाणी का उपदेश। वृत्ति दाता और विद्वानों का प्रिय और पूर्णकाम हो। (३) बृहस्पति पद पर योग्य पुरुष का रूप। पक्षान्तर में परमेश्वर का वरण। (४–५) सभापति पद पर वाग्मी विद्वान् का वरण, उसके साथ विद्वानों का साहाय्य। (६–७–८) वैश्वानर पद पर योग्य पुरुष का वरण। उसका लक्षण। (९) अग्नि पद पर योग्य पुरुष की स्थापना। (१०) महेन्द्र पद पर योग्य विद्वान् की स्थापना। (११–२६) उत्तम विद्वानों, नायकों और शासकों से भिन्न २ कार्यों की कामना।

सप्तविंशोऽध्यायः (पृ० ३८७–४१०)

(१–७) अग्नि नाम विद्वान नायक के कर्तव्य और लक्षण, (८–९) बृहस्पति पद पर स्थित विद्वान् का वर्णन (१०–२२) अग्नि और पावकी नाम विद्वानों का वर्णन। (२३–२४) वायु नाम सेनापति का वर्णन। (२५–२६) 'क' प्रजापति का वर्णन। (२७–३२) नियुत्वान् वायु,

सेनापति का वर्णन। (३५-४२) इन्द्र नायक का वर्णन। (४३-४४) अग्नि रूप से नायक राजा का वर्णन उससे रक्षा की प्रार्थना। (४५) संवत्सर के पांच रूप और तदनुसार प्रजा पालन के ५ रूप।

अष्टाविंशोऽध्यायः (४११-४४४)

(१-३४) होता द्वारा भिन्न २ अधिकारियों की नियुक्ति और उनके विशेष आवश्यक लक्षण, और अधिकार और शक्तियों का वर्णन। (३५-४५) उनका इन्द्र सेना नायक और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाने का कर्तव्य। (४६) अग्नि होता का वरण।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः (४४५-४८५)

(१) घृत से तीव्र अग्नि या जाठराग्नि के दृष्टान्त से विवेकी विद्वान् का वर्णन। (२) संग्राम आदि के अवसरों पर संघ बना कर काम करने का उपदेश। (३) स्तुति योग्य, वन्दन करने योग्य, प्रसन्नमुख योग्य पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति। (४) राष्ट्र प्रजा का विस्तृत करना और उसको व्यवस्थित रखना। पक्षान्तरमें विद्युत् का वर्णन। (५) गृह के द्वारों से देवियों की तुलना। दोनों पक्षों में श्लिष्ट विशेषण। पक्षान्तर में शत्रु विजयी सेनाओं का वर्णन। (६) देह मे प्राण और उदान के समान मित्र और वरुण का वर्णन। पक्षान्तर में दिन रात्रि और स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों का वर्णन। (७) उपदेशक और अध्यापक और पक्षान्तर में स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्यों का वर्णन। (८) इडा, भारती, सरस्वती आदि संस्थाओं का कर्तव्य। (९) गृहस्थ में, राष्ट्र में और उपासना में क्रम से योग्य पुरुष, शिल्पी, और उपासकों की नियुक्ति। (१०) तेजस्वी सूर्य और आश्रय वृक्ष के दृष्टान्त से, नायक, मुख्य पुरुष का भृत्यों के प्रति कर्तव्य। (११) अग्रणी का कर्तव्य। (१२) उदय होते सूर्य, वाज, और वेगवान् हरिण के समान सेनानायक, का स्तुत्य रूप। (१३) राष्ट्र

के अनुयोक्ता त्रिवेदज्ञ पुरुष का होना, उसका आज्ञापक होना। पश्चान्तर में अध्यात्म देह व्यवस्था का वर्णन। (१४) नायक और आत्मा के यम, आदित्य, और अर्वा तीन नाम। उसके तीन बन्धन। (१५) उसके तीन स्थानों पर तीन २ बन्धन। (१६) उसका सर्वोत्कृष्ट रूप। (१७) व्यवस्थाबद्ध नायक की अश्व से तुलना। उत्तम मार्गों से मुख्य व्यक्ति को जाने का आदेश। अध्यात्म में उन्नति मार्ग का अनुसरण। (१८) विजिगीषु का उत्तम रूप, ओषधियों के ग्रास का रहस्य। अध्यात्म में ओषधिमय जीवनप्रद भोजन का उपदेश। (१९) नायक के प्रति सबको सख्य भाव से रहने की आज्ञा। (२०) मुख्य अध्यक्ष का महान् सामर्थ्य, उसके हिरण्यशृंग और अयःपाद होने का रहस्य। (२१) वीरबाहु चुस्त शूर वीरों को दल बद्ध रूपसे बना कर युद्ध करने का आदेश। अध्यात्म मे योगियों का वर्णन। (२२) बलवान् शरीर और मन होने और जंगलों में सेना दलों की स्थापना। (२३) शत्रु उच्छेदक नायक का वर्णन। 'अज' का रहस्य। उत्तम पद पर स्थित पुरुष को माता पिता के आदर का उपदेश। अध्यात्म में मोक्ष प्राप्त पुरुष को प्रकृति परमेश्वर का दर्शन। (२५) नायक को विद्वानों को सगठन करने का आदेश। दूत का कर्तव्य। (२६) तनूनपात् नामक विद्वान् के कर्तव्य। ज्ञान और उपास्य और ग्राह्य ज्ञानों को उत्तम भाषा में प्रकट करने का उपदेश। (२७) उत्तम प्रशंसनीय नायक, का महान् सामर्थ्य कि उसके आश्रय में अन्य विद्वान् रहें। (२८) दानशील संगठन के केन्द्रस्थ व्यक्ति के कर्तव्य। (२९) प्रथम संस्थापक का कर्तव्य। आसन के समान विस्तृत होकर अन्यों का आश्रय होना। (३०) द्वारों के दृष्टान्त से गृह देवियों के कर्तव्यों का वर्णन। पश्चान्तर में सेनाओं के कर्तव्य। 'अयन' शब्द का समुचित अर्थ। (३१) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (३२) मुख्य विद्वानों या स्त्री पुरुषों का कर्तव्य। ज्ञानोपदेश। (३३) भारती आदि तीन संस्थाओं के कर्तव्य। (३४) आकाश या सूर्य और पृथिवी के समान राजप्रजा

वर्गों को नाना ऐश्वर्यों से सुशोभित करने का कर्तव्य । (३५) अन्नानुसार भोजनों की व्यवस्था । (३६) यज्ञाग्नि की ज्वाला से हव्य के विस्तार के समान राजा के सत्य, न्यायवाणी पर समस्त प्रजाओं का सुख भोग । (३७) तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशक विद्वानों को तेजस्वी ज्ञान दाता होने का आदेश । (३८) कवच, शस्त्रधर की मेघ से तुलना । (३९) धनुर्बल से विजय का उपदेश । (४०) प्रिय पत्नी के समान धनुष की डोरी की शक्ति । (४१) उसका शत्रुनाशकारी कार्य । (४२) पुत्र पिता की तूणीर से तुलना । (४३) घोड़ों की रासों का वर्णन । अध्यात्म रहस्य विवेक । (४४) वीरों का वर्णन । (४५) रथ का वर्णन । (४६) शक्तिमान् पालक वीर पुरुषों का वर्णन । (४७) विद्वान् ब्राह्मणों के लक्षण । (४८) तीव्र वाणों से सुख की आशा । उनका वर्णन । (४९) शरीर के कठोर होने का उपदेश । (५०) कशा का वर्णन । (५१) हाथबन्द कवच और कुशल वीरका श्लेष से वर्णन । (५२) वनस्पति, धनुर्दण्ड और नायक का वर्णन । (५३) नाना दृष्टान्तों से सार भाग ग्राह करने का उपदेश । (५४–५७) दुन्दुभि और वीर पुरुष का श्लिष्ट वर्णन । (५८–५९) भिन्न २ अधिकारियों के अधीन नियुक्त भिन्न २ भृत्यों के विभेदक चिन्ह और लक्षण । भिन्न २ उपमितियों का कपाल भेद से भेद वर्णन । ८, ११, आदि 'कपालों' का रहस्य ।

त्रिंशोऽध्यायः (४८५–५१५)

(१) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये यज्ञ पति की स्थापना । वाणी के मधुर होने की प्रार्थना । सर्व प्रेरक सर्वोत्पादक प्रभु के तेज का ध्यान धारण और स्थापन । गायत्री । (३) उत्तमों के ग्रहण दुरों के त्याग का उपदेश । (४) अद्भुत ऐश्वर्य के विभाजक परमेश्वर और सर्वशासक राजा की स्तुति । (५–२१) ब्रह्म ज्ञान, क्षात्र बल, मरुद् (वैश्य) विज्ञान आदि नाना

प्राद्य शिल्प पदार्थों की वृद्धि और उनके लिये ब्राह्मण, क्षत्रियादि उन २ पदार्थों के योग्यपुरुषों की राष्ट्र रक्षा के लिये नियुक्ति। त्याज्य कार्यों के लिये उनके कर्त्ताओं को दण्ड का विधान। (२२) अति विचित्र, विकृत पुरुषों की विशेष व्यवस्था।

एकत्रिंशोऽध्यायः (५१६–५३३)

पुरुष सूक्तम्। (१) सहस्रशिर, सहस्र आंखों और सहस्र पावों वाले पुरुष का वर्णन। इसका रहस्य। उसका भूमि को व्याप कर दश अंगुल ऊपर विराजने का रहस्य। (२) पुरुष, भूत, भव्य, अमृत के ईशान और अन्नातिरोही। (३) उसकी महिमा और चार पाद। त्रिपान् पुरुष का उत्क्रमण और मापन। (४) विराट् की उत्पत्ति। (६) यज्ञ प्रजापति से आज्यसम्भरण, पशुओं की उत्पत्ति। (७) यज्ञ परमेश्वर से समस्त वेदों की उत्पत्ति। उससे अश्वों और गवादि पशुओं की उत्पत्ति। (९) उस पुरुष का सर्वोपरि अभिषेक और विद्वानों द्वारा पूजा। (१०–११) पुरुष प्रजापति की विविध अंग कल्पना और वर्ण विषयक प्रश्न और उत्तर। (१२) चन्द्र सूर्य वायु अग्नि की कल्पना। (१३) अन्तरिक्ष, द्यौ, भूमि दिशा और लोकों की कल्पनायें। (१४) संवत्सर यज्ञ का स्वरूप। (१५) उसकी सात परिधियें और सात समिधाएं। यज्ञपुरुष के बन्धन का रहस्य। (१६) यज्ञपुरुष से यज्ञकाण्ड का यजन। साध्य विद्वानों की परम सुख प्राप्ति। (१७) मानुष जीव सर्ग। (१८) आदित्य वर्ण पुरुष का वर्णन। (१९) समस्त भुवनों का आश्रय प्रजापति। (२०) ब्राह्मी रुक्। (२१) देवों का वश कर्त्ता विद्वान् ब्राह्मण। (२२) प्रजापति की दो पत्नी लक्ष्मी, और श्री। इनका रहस्य। समस्त अध्याय की राजपक्ष में योजना।

द्वात्रिंशोऽध्यायः (५३४–५४६)

(१) परमेश्वर के अग्नि आदित्य, वायु चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप,

प्रजापति आदि नाना नाम। (२) उससे समस्त संसार की उत्पत्ति। (३) उसका कोई परिमाण नहीं। (४) उसका सर्वतोमुख वर्णन। उसका त्रिज्योति षोडषी स्वरूप। (६) सबका धारक प्रभु। (७) वह सबका सञ्चालक और सूर्यादि का प्रकाशक। (८) वह सर्वाश्रय, सर्व व्यापक, सर्वत्र ओत प्रोत है। (९) उस परम प्रभु का ज्ञाता सबके पिता का पिता है। (१०) वह सबका बन्धु, विधाता, सर्वज्ञ सर्व सुख प्रद अमृत है। (११) वह व्यापक ही प्रकृति में भी व्यापक है। (१२) तन्मय जगत्। (१३) अद्भुत सदसस्पति। (१४–१५) उससे मेधा बुद्धि की प्रार्थना। (१६) ब्रह्म, क्षत्र दोनों के लिये ऐश्वर्य की प्रार्थना। समस्त मन्त्रों की राजपक्ष में योजना।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः (५४७–६०६)

(१–२) प्रजापालक विद्वान् अग्नियों का वर्णन। (३—४) विद्वान् मित्रों और श्रेष्ठों का आदर करने का उपदेश। सूर्य चन्द्र या अग्नि सूर्य के समान दो शक्तियों का संसारपालन। (६) विद्वान् की शिशु से तुलना। (७) ३३३९ देवों का रहस्य। (८) मूर्धन्य अग्रणी और परमेश्वर का वर्णन। (९) अग्रणी नायक का दुष्ट संहार करने का कर्त्तव्य। (१०) वायु सहित सूर्य के उत्थान के दृष्टान्त से राजा की ऐश्वर्य प्राप्ति। (११) वीर्य सेचन से पुत्रोत्पत्ति के समान जल सेचन से अन्नादि और राज सामर्थ्य से बल की उत्पत्ति का वर्णन। (१२) सौभाग्य वृद्धि के लिये उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करने, दम्पति सम्बन्ध को सुदृढ़ करने और शत्रुओं के तेजों को जीतने का आदेश। (१३) तेजस्वी पुरुष का सूर्य और विद्युत् के समान वरण। (१४) पशुनाशकों के दण्डकर्त्ता जितेन्द्रियों के आदर करने का उपदेश। (१५) बहुश्रुत पुरुष को प्रजा के व्यवहारों को सुनने का आदेश। (१६) अग्रणी नायक सबको सुखकर और दयाशील हो। (१७) मुख्य पुरुष के उत्तम शासन में प्रजा निरपराध रहें और

वह प्रजा का अच्छा रक्षक रहे। (१८) जीवन वर्धक जलों के समान विद्वान जन प्रमुख पुरुष की वृद्धि करें। (१९) गौओं, रश्मियों, सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री पुरुषों और राजा प्रजा के कर्तव्य। पक्षान्तर में उत्तम वचनों और आभूषणों से सजाने का उपदेश। (२१) मेघ के समान उदार पुरुष को मुख्य पद पर स्थापन करने का उपदेश। (२२) शासक का आदर्श सूर्य। (२३) सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना। (२३) सूर्यवत् उत्साही नायक। (२४) नायक सेनापति को शत्रु नाश के नाना प्रकार के उपदेश। (२५–२७) सहस्रों पुरुष के कर्तव्य। (२८) राजा की स्तुति प्रजाओं को समृद्ध बनाने में है। पक्षान्तर में आचार्य का वर्णन। (२६) बलवान् का सहयोग। (३०–३२) मुख्य पदाधिकारियों का राष्ट्र को समृद्धिमान् बनाना। (३४) सभा, सग्रामों में उत्तम उपदेष्टा और आदेष्टा। (३५) सब के वशकर्त्ता का सूर्यवत् उदय। (३५) उसका स्वरूप, उसका महान् सामर्थ्य। (३८) सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। उसके शुक्र, कृष्ण दोनों प्रकार के रूपों का रहस्य। (३९–४०) महान् परमेश्वर। (४१) परमेश्वर के आश्रय पर कमाये धन के समान कर्म फल का भोग। (०२) विद्वानों का कार्य निन्दनीय कार्यों से बचना। पक्षान्तर में भौतिक तत्वों से उत्तम देह रचना। (४३) विजिगीषु नायक के कर्तव्य। (४४) वायु और सूर्य के दृष्टान्त से आशुक् नाम अध्यक्ष के कार्य। (४५) विद्युत् आदि तत्वों का सदुपयोग। पक्षान्तर में राष्ट्र के अध्यक्षों के कर्तव्य। (४६) वरुण और मित्र दोनों के कर्तव्य। (४७) व्यापक अधिकारवान् पुरुष की अध्यक्षता। (४८) सब अध्यक्षों का राष्ट्र को प्रेम करना। (४९) रक्षा के लिये सबका आह्वान। (५०) उनका रक्षण कर्तव्य। (५०–५१) प्रजा का विद्वानों की शरण आना और रक्षा की याचना करना। (५२) विद्वानों को उत्तम आसन। (५३) परमेश्वर का विद्वानों के प्रति अपना स्वरूप प्रकाश। राजा का विद्वानों को ऐश्वर्य दान। (५५–५९) वायु, इन्द्र, वायु, अग्नि

आदि के कर्तव्य। (६०–६८) विजयी पुरुषों के लक्षण। इन्द्र का स्वरूप। (६९) बड़े राजा और परमेश्वर की स्तुति। अन्य अधिकारियों के कर्तव्य।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(१–६) शिव संकल्पसूक्त। (७) पालक अन्न। (८—९) अनुमति नाम पुरुष और संस्था। (१०) सिनीवाली का रहस्य। (११) पञ्चनदी और सरस्वती का रहस्य। (१२) अंगिरा ऋषि, राजा। (१३) अग्रणी से रक्षा की प्रार्थना। (१४) राजा पृथ्वी और पतिपत्नी के कर्तव्य। (१५) पृथ्वी के केन्द्र में राजा की स्थिति। (१६) उत्तम विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन। (१७–३१) विद्वानों और नायक राजा के कर्तव्य। (३२–३३) रात्रि, उषा, राजशक्ति और स्त्री। (३४–३९) प्रातः उपासना। (४०) उषा के समान स्त्रियों का वर्णन। (४१, ४२) पूषा राजा और परमेश्वर। (४३—४४) विष्णु राजा, और परमेश्वर। (४५) वरुण, परमेश्वर और राजा। (४६) अधिराट् का निर्माण। (४७) उसके अधीन अधिपों के कर्तव्य। (४८—४९) विद्वानों के कर्तव्य। (५०—५१) सुवर्ण और उत्तम सैन्य बल का वर्णन। पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य का वर्णन। (५४) विद्वान् अध्यक्ष। (५५) सप्त प्राण, सप्त अधिकारी। (५६—५८) ब्रह्मणस्पति, राजा, वेदवित्।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(१, २) राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर की व्यवस्था। किरणों द्वारा जीवों की लोकलोकान्तर में गति। (३) वायु का पवित्रकारक गुण। (४) प्रजाओं को आदेश। (५) उत्पादक पिता और सविता के कर्म। (६) प्रजापति के कर्म। (७) प्रजाओं की रक्षा। (८, ९) शान्ति की प्रार्थना। (१०, ११) पाप नाश। (१२) उत्तम आप्त जन। (१३) अग्रणी पुरन्धर। (१४–१८) अग्रणी रक्षक के कर्तव्य। (१९) क्रव्याद् अग्नि का रहस्य।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(१—१७) शान्ति करण । (१८) मित्रदृष्टि । (१९) दीर्घ जीवन । (२२) अभय । (२३) शतवर्ष आयु की प्रार्थना ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महावीर सम्भरण । (१—८) मुख्य शिरोमणि नायक की उत्पत्ति । (९) अश्व, शकृत् से धूपन का रहस्य । (१२) पृथ्वी निवासिनी प्रजा के कर्तव्य । (१४, १८) तेजस्वी रक्षक पुरुष का स्वरूप । (१९) वरण का प्रकार ।

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

(१—५) पृथ्वी स्त्री का समान वर्णन । (६) सार पदार्थ ग्रहण करने का उपदेश । (२७) विद्वान् के उद्देश्य और कर्तव्य ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः (पृ० ७०८-७१८)

(१) प्राण, पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, सूर्य आकाश इनको आहुति की प्राप्ति । (२) दिशा, चन्द्र आदि के समान व्यक्तियों का उत्तम आदर हो । (३) वाणी प्राण आदि का उत्तम उपयोग । (४) मन वाणी की शक्ति का उपयोग करने और समृद्धि की प्रार्थना । (५–७) प्रजापति प्रभु और परमेश्वर के नाना गुण कर्म स्वभावानुसार नाना नाम । (८-६) देवमय राजा । लोम त्वचादि देह धातुओं को स्वच्छ रोग रहित रखने का उपदेश । (११) आयास आदि देह और आत्मा के धर्मों के लिये उत्तम आहार व्यवहार । (१२) तप धर्मादि के लिये उत्तम यत्न करने का उपदेश । (१३) नियन्ता आदर परमेश्वर की उपासना ।

चत्वारिंशोऽध्यायः (पृ० ७१९-७२८)

ईशोपनिषत् । (१) परमेश्वर व्यापक । उसके दिये के भोग करने और लोभ त्यागने का उपदेश । (२) जीवन भर निसंग होकर कर्म करने का आज्ञा । (३) आत्मा के नाशकों के दुर्गति । (४-५) आत्मा का स्वरूप । (६-७) सर्वत्र आत्म दर्शन । (८) आत्मा का स्वरूप । (९-११) सम्भूति और विनाशक दोनों का ज्ञान । उन दोनों की उपासना का फल मृत्यु मरण, और अमृत भोग । (१२—१४) विद्या अविद्या का ज्ञान । उन दोनों की उपासना फल । मृत्यु और तरण । (१५) देह और भौतिक जीवन की वास्तविकता । अन्त समय में 'ओ३म्' प्रभु का स्मरण । (१६)उत्तम मार्ग से चलने की भगवान् से प्रार्थना । सत्य तत्व पर हिरण्मय आवरण । परम आत्म दर्शन । ब्रह्म में लय । मोक्ष प्राप्ति ।

ग्रन्थ समाप्त



यजुर्वेद संहिता

॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

१–२७ देवा ऋषयः ॥ अग्निर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(यज्ञेन) यज्ञ, प्रजापालनरूप सत्कर्म से (मे) मुझ राजा को, या परमेश्वर के अनुग्रह से और प्रजा के पालक प्रभु से मुझ प्रजा को (वाज च) अन्न, वीर्य और (प्रसव च) ऐश्वर्य (प्रयति) प्रयत्न और (प्रसिति) उत्कृष्ट राज्यप्रबन्ध और प्रेम, (धीति च) उत्तम ध्यान या चिन्तन (क्रतु च) उत्तम कर्म और प्रज्ञान, (स्वर च मे) उत्तम स्वर, उत्तम कण्ठध्वनि और (श्लोक च मे) उत्तम वाणी, (श्रव च) उत्तम 'श्रव' अर्थात् गुरूपदेश या वेदमन्त्र (श्रुति च) उत्तम, श्रवणयोग्य वेदमन्त्र (ज्योति') विद्या का प्रकाश और (स्व च) उत्तम सुख ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा, उत्तम राज्य प्रबन्ध, व्यवस्था और राजा प्रजा के सम्मिलित यत्न द्वारा मुझे (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों । (१–२१) शत० ९।३।२।१–१०॥

१—अथातोवसोर्धारामन्त्रा १ २७ ॥ 'श्रावश्च'० इति काण्व० ॥

अध्यात्म में—अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, प्रेम, ध्यान, ज्ञान अथवा अध्ययन और कर्म, स्वर और श्लोक, गुरूपदेश और वेदोपदेश, ज्ञानप्रकाश और सुख ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) आत्मा और परमात्मा या उपासना द्वारा (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों मुझे प्राप्त हों।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

अतिजगती । निषाद ॥

भा०—(मे) मुझे (प्राण च) प्राण, हृदयगत वायु जो शरीर में नाभि से ऊपर गति करता है, (अपान च) अपान, जो नाभि से नीचे के भाग में विचरता है, (व्यान च) व्यान, सर्वशरीर में व्यापक और मुख्य तथा नाभि देश में स्थित है, (असु च) असु, नाग आदि नाम वाला वायु जो वमन आदि वेग के कार्य करता, रोग-परमाणुओं को बल से बाहर फेंकता एवं बल के अन्य कार्यों में सहायक होता है, (चित्त च) चित्त, स्मरण करने वाली शक्ति (आधीत च) बाह्य विषयों का ज्ञान और सब प्रकार से स्थिर, निश्चयकारिणी बुद्धि, (वाक् च) वाणी इन्द्रिय (मन च) मन, संकल्प विकल्प करने या ऊहापोह करने वाली भीतरी शक्ति, (चक्षु च) चक्षु देखने वाली इन्द्रिय, (श्रोत्र च) श्रोत्र, कर्णेन्द्रिय (दक्ष च) ज्ञान, इन्द्रिय का बल और कौशल, (बलं च) कर्म इन्द्रियों का कौशल, बल, पराक्रम, (च च०) उदान, समान, धनञ्जय आदि अन्य वायुएं, धारणा, श्रवण, अहंकार, प्रत्यक्ष प्रमाण, सामयिक ज्ञान आदि पदार्थ भी (यज्ञेन) यज्ञ, आत्मसामर्थ्य, ज्ञानाभ्यास, सत्संग और उपासना से (कल्पन्ताम्) समर्थ होकर मुझे प्राप्त हों।

२—मे गुरु० इति काण्व० ॥

ओजश्च मे सहश्च म ऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थानि च मे परूᳪषि च मे शरीराणि च म ऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

स्वराड् अतिशक्वरी । पञ्चम ॥

भा०—(ओज च) मुझे ओज, शरीर में स्थित तेज, (सह० च) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ शारीरिक बल (आत्मा च) आत्मा, परमात्मा या अपना स्वरूप और अपना सामर्थ्य (तनू च) उत्तम दृढ़ शरीर और अपने सम्बन्धियों के शरीर (शर्म च) गृह और गृहोचित सुखसामग्री (वर्म च) शरीररक्षक कवच, और रक्षासाधन, (अङ्गानि च) देह के अंग और उपाङ्ग (अस्थानि च) छोटी बड़ी समस्त अस्थियें, (परूंषि च मे) अंगुली आदि पोरू और शरीर के पालक मर्मस्थान, (शरीराणि च) शरीर के अन्य अवयव अथवा मेरे अन्य सम्बन्धियों के शरीर और सूक्ष्म देह के अवयव (आयु च मे) पूर्णायु और जीवनोपयोगी साधन, (जरा च) आर वृद्धावस्था और यौवन आदि भी (यज्ञेन) सत् कर्मानुष्ठान और परमेश्वर का कृपा से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों ।

ज्यैष्ठ्यं च म ऽआधिपत्यं च म मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

निचृदत्यष्टिः । गान्धार ॥

भा०—(मे) मुझे (ज्यैष्ठ्य च) ज्येष्ठता, बड़ाई, (आधिपत्य च) अधिपति का पद, (मन्यु च) मन्यु मानस काय ज्ञान और आत्मसम्मान (भाम च) क्रोध, शत्रुओं और दुष्टों पर असहनशीलता, (अम च) न्यायोचित गृह आदि पदार्थ अथवा अपरिमित पदार्थ, (अम्भ च) जल, के

समान शीतलता और समुद्र के समान गम्भीरता (जेमा च) विजय शीलता, (महिमा च) महत्व, (वरिमा च) श्रेष्ठता, अधिक सम्पत्ति शालिता, (प्रथिमा च) विस्तृत गृह, क्षेत्र और राज्य आदि, (वर्षिमा च) ज्ञान, अनुभव, आयु, और पद की वृद्धि, (द्राघिमा च) दीर्घता, अर्थसंततिपरम्परा (वृद्धं च) बढ़ा हुआ बल और धन, (वृद्धि च) विद्या आदि गुणों की उन्नति, बढ़ोतरी, ये समस्त पदार्थ मेरे (यज्ञेन कल्प ताम्) परमेश्वर की कृपा और सत्कर्माचरण रूप यज्ञ से बढ़ें और मुझे प्राप्त हों।

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(सत्य, च) यथार्थ सत्य भाषण, (श्रद्धा च) सत्य धारण, (जगत् च) जगत्, जंगम सम्पत्ति, (धन च) सुवर्णादि धन, (विश्व च) समस्त स्थावर पदार्थ, (क्रीडा च) क्रीड़ा, विनोद के साधन विहार, (मोद च) आनन्द विनोद से प्राप्त हर्ष, (जात च) उत्तम पुत्र पौत्रादि, अथवा उत्पन्न कृषि सस्यादि (जनिष्यमाण च मे) आगे होने वाले समस्त ऐश्वर्य, (सूक्त च) वेद मन्त्रगण, या उत्तम सुभाषित, (सुकृत च) पुण्याचरण, ये और इनके साथ की अन्यान्य सम्पदाएं भी (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, धर्मानुष्ठान और ईश्वर की कृपा से और प्रजा पालन व्यवहार या राज्यव्यवस्था द्वारा प्राप्त हों।

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

भा०— (ऋतं च) ऋत यज्ञ और यथार्थ सत्य ज्ञान, (अमृतं च) अमृत, मोक्ष और यज्ञशेष, (अयक्ष्म च) यक्ष्म तपेदिक आदि रोगों से रहित, शरीर की स्वस्थता (अनामयत् च) पीड़ाकारी रोगों का अभाव (जीवातु च) जीवनप्रद अन्न और औषधि आदि, (दीर्घायुत्वं च) दीर्घ आयु, (अनमित्रं च) शत्रु का न होना, (अभयं च) अभय, निर्भयता, (सुखं च) सुख, (शयनं च) सुखपूर्वक निद्रा (सूषा च) उत्तम उषा-काल, (सुदिनं च) उत्तम दिन, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, राष्ट्र पालन, सुकृत, धर्माचरण और ईश्वरोपासन से प्राप्त हों।

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०— (यन्ता च) नियमकर्त्ता, या अश्वादि का नियन्ता, या राष्ट्र को नियम में रखने वाला, और (धर्त्ता च) धारण पोषण करने वाला पुरुष (क्षेमं च) विद्यमान राष्ट्र आदि सम्पदा का संरक्षण, (धृतिः च) धैर्य, आपत्तियों में भी चित्त की स्थिरता, (विश्वं च) समस्त अनुकूल पदार्थ (महः च) यश, आदर, (संवत् च) उत्तम दृढ़ प्रतिज्ञा, या वेदशास्त्रादि का उत्तम ज्ञान (ज्ञात्रम्) ज्ञान साधन और उनसे उत्पन्न उत्कृष्ट विज्ञानसामर्थ्य, (सूः च) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामर्थ्य और (प्रसूः) पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य, (सीरं च) कृषि के साधन हल आदि और उनसे अन्न आदि की प्राप्ति, (लयः च) कृषि आदि की बाधाओं का विनाश ये सब (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ, धर्मानुष्ठान और प्रजापालन, राष्ट्र व्यवस्था से प्राप्त हों और बढ़ें।

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च

मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(शं च) कल्याण और (मयः च) सुख, ऐहिक और पारमार्थिक, (प्रियं च) प्रीति के पैदा करने वाला प्रिय पदार्थ और (अनुकामः च) धर्मानुकूल कामना, (कामः च) उत्तम स्त्री, पुत्र, धन आदि काम्य एवं भोग्य विषयों की अभिलाषा (सौमनसः च) उत्तम मन की स्थिति, शुभचित्तता, (भगः च) अष्टविध ऐश्वर्य (द्रविणं च) सुवर्णादि द्रव्य, (भद्रं च) सुखस्पर्शी पदार्थ, (श्रेयः) कल्याणकारी मुक्ति या सुख (वसीयः च) अति अधिक उत्तम धन धान्य समृद्धि (यशः च) और यश, कीर्ति ये समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) राजा प्रजा के परस्पर संग तथा धर्मानुष्ठान और प्रजापालन आदि सत्कर्म से प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त हों ।

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(ऊर्क् च) परम रसवाला अन्न, (सूनृता च) उत्तम सत्य ज्ञान वाली वाणी, (पयः च) पुष्टिकारक दूध (रसः च) सारवान् रस, (घृतं च) घी, (मधु च) मधु आदि मधुर पदार्थ, (सग्धिः च) समान रूप से एक जैसा देह के अनुकूल, अथवा बन्धु बान्धवों के साथ मिलकर आहार करना (सपीतिः च) सब के साथ मिलकर दुग्धादि का पान करना (कृषिः च) कृषि खेती बाड़ी (वृष्टिः च) और कृषि के बढ़ानेवाली वृष्टि, (जैत्रं च) विजय करने का स्वभाव और सामर्थ्य,

(औद्भिद च) पृथिवी को फोड़ कर उत्पन्न होने वाले तरु, लता गुल्म आदि पदार्थों की सम्पत्ति ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ, प्रजापालन व्यवहार, परमेश्वर की उपासना, आत्मसाधना आदि से (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों और बढ़ें।

र॒यिश्च॑ मे॒ राय॑श्च मे पु॒ष्टं च॑ मे॒ पुष्टि॑श्च मे वि॒भु च॑ मे प्र॒भु च॑ मे पू॒र्णं च॑ मे पू॒र्णत॑रं च मे॒ कुय॑वं च मेऽक्षि॑तं च॒ मेऽन्नं॑ च॒ मेऽक्षु॑च्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

निचृद् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(रयि च) विद्या और लक्ष्मी, (राय च) उत्तम ऐश्वर्य, लौकिक मणि मुक्ता आदि पदार्थ (पुष्ट च) शरीर का हृष्ट पुष्ट होना और ऐश्वर्य की वृद्धि, (पुष्टि च) पुष्टि होना, (विभु च) विविध पदार्थों की प्राप्ति, (प्रभु च) सब पर प्रभुता (पूर्ण च) पूर्णता, धन पुत्र आदि सब से अधिक भरे पूरे रहना, (पूर्णतर च) और भी अधिक ऐश्वर्य का बढ़ना (कुयव च) कुत्सित एवं आदि धान्य, क्षुद्र जाति का धान्य, (अक्षित च) क्षयरहित अन्न शालि आदि धान्य (अन्न च) गेहूं आदि अन्न, (क्षुत् च) भूख का अच्छा लगना और (अक्षुत् च) भोजन द्वारा भूख का न रहना, उसका अन्न द्वारा मिट जाना, ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ परमेश्वरोपासना, आत्मसाधना और राजा प्रजा के परस्पर संग से प्राप्त हों।

वि॒त्तं च॑ मे॒ वेद्यं॑ च मे भू॒तं च॑ मे भवि॒ष्यच्च॑ मे सु॒गं च॑ मे सुप॒थ्यं॑ च म ऋ॒द्धं च॑ म॒ ऋद्धि॑श्च मे क्लृ॒प्तं च॑ मे॒ क्लृप्ति॑श्च मे म॒तिश्च॑ मे सुम॒तिश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(वित्त च) वित्त, पूर्वप्राप्त धन, या सुविचारित तत्त्व,

(धेय च) भविष्य में प्राप्त करने योग्य द्रव्य, अथवा विचार करने योग्य ब्रह्म तत्व आदि (भूतम् च) भूतकाल और (भविष्यत् च) भविष्यत् काल (सुग च) उत्तम जाने योग्य मार्ग और सुन्दर प्रदेश, (सुपथ्य च) उत्तम मार्गों का होना, (ऋद्ध च) समृद्ध होना, (ऋद्धि) सम्पत्ति, (क्लृप्त च) कार्य करने में समर्थ होना (क्लृप्ति च) सामर्थ्य (मति च) मनन और (सुमति च) शोभन उत्तम मति, मननशक्ति ये सब (यज्ञेन) पूर्वोक्त यज्ञ और आत्मसाधना से (मे) मुझे प्राप्त हों और ये सब भी शक्तिशाली हों ।

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

भुरिगति शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(व्रीहय च) धान्य, (यवा च) जौ, (माषा च) उड़द, माष, (तिला च) तिल, (मुद्गा च) मूग, (खल्वा च) चन, (प्रियङ्गव च) प्रियङ्गु नामक क्षुद्र धान, (अणव च) छोटा चावल, (श्यामाका च) सावा चावल, (नीवारा च) नीवार नाम का बिना खेती से उपजने वाला धान, (गोधूमा च) गोहू और (मसूरा च) मसूर, ये समस्त धान्य की जातियें (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) पूर्वोक्त यज्ञ, राष्ट्रपालन और कृषि से प्राप्त हों ।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

०'त्रपु च मे श्यामं च मे लोहं च मे यज्ञेन०' इति काण्व० ।

भा०—(अश्मा च) सब प्रकार के पाषाण, (मृत्तिका च) सब प्रकार की मिट्टियें, (गिरय च) समस्त पर्वत, (सिकता च) समस्त बालुकामय देश, (वनस्पतय च) समस्त वनस्पतियां, बड़े २ वृक्षों से घिरे जंगल (हिरण्य च) समस्त सुवर्ण, (अय च) लोहा, (श्याम च) श्यामलोह, (लोह च) लाल लोह, (सीस च) सीसा, और (त्रपु च) त्रपु टीन आदि ये सब धातुएं भी (यज्ञेन कल्पन्ताम्) राष्ट्र पालन के अधिकार से मुझे प्राप्त हों, मेरे अधिकार में हों।

अग्निश्च मु ऽआपश्च मे वीरुधश्च मु ऽओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पुशर्व आरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे भूतञ्च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

भा०—(अग्नि च) अग्नि, सब प्रकार की अग्नियें, (आप च) समस्त जल, जलाशय, नदी आदि, (विरुध) लता गुल्म आदि, (ओषधय च) ओषधियें, (कृष्टपच्या च) वे अनाज जो खेती से प्राप्त होते हैं और (अकृष्टपच्या च) और वे अन्नादि पदार्थ जो विना हल जोते ही भूमि से प्राप्त होते हैं, (ग्राम्या पशव) गांव में रहने वाले गौ आदि पशु और (आरण्या च पशव) जंगल में रहने वाले हरिण आदि पशु गण और (वित्तम् च) इनसे प्राप्त समस्त धन धान्य और (वित्ति च) और आगे होने वाली प्राप्ति, (भूति च) समस्त ऐश्वर्य, (भूत च) भूत, नानाविध प्राणिसमूह, ये समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) प्रजापालनरूप कर्तव्य अर्थात् राज्य पदाधिकार द्वारा (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों और बढ़ें।

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मु एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

१५—'०अर्थश्चमेधामश्चमे' इति काण्व० ।

भा०— वसु च) समस्त वास योग्य धन या गृहादि, (वसतिः च) वासस्थान, ग्राम आदि (कर्म च) समस्त कर्म, यज्ञ, कूप तड़ाग खोदना, व्यापार आदि, (शक्तिः च) कर्म करने की शक्ति, अधिकार (अर्थ च) समस्त पदार्थ संग्रह धन और योग्य अधिकार, (एम· च) प्राप्तव्य पदार्थ या यत्न, (इ या च) इष्ट पदार्थ प्राप्त करने का साधन, (गति च) गमन सामर्थ्य और क्रिया इत्यादि समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) राज्यलाभ के साथ ही प्राप्त हों और उनकी वृद्धि हो।

अग्निश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे सवि॒ता च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ सर॑स्वती च म॒ इन्द्र॑श्च मे पू॒षा च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ बृह॒स्पति॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

मि॒त्रश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ वरु॑णश्च म॒ इन्द्र॑श्च मे धा॒ता च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ इन्द्र॑श्च मे म॒रुत॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ विश्वे॑ च मे दे॒वा इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पृ॒थि॒वी च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ऽन्तरि॑क्षं च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ समा॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ नक्ष॑त्राणि च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ दिश॑श्च मे॒ इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(अग्निः च) सूर्य और आग्नेय तत्व (इन्द्र च) उनका ज्ञाता इन्द्र, (सोम च इन्द्र च) सोम, जल तत्व और इन्द्र उनकी विद्या के रहस्यों का जानने वाला, (सविता च इन्द्र च) सविता सूर्य या ऐश्वर्यवान् और इन्द्र, सूर्य तत्व का विज्ञाता (सरस्वती च) सरस्वती, वेदवाणी और (इन्द्र· च) उसका ज्ञाता, आचार्य, विद्वान् (पूषा च) सबका पोषण करने वाला अन्न और पशु तथा (इन्द्र च) उनका ज्ञाता विद्वान् और अधिपति इन्द्र है। (बृहस्पति· च) बृहस्पति, बृहती

वेद वाणी का पालक विद्वान् ब्राह्मण और (इन्द्र च) उसके ऐश्वर्यों का भी स्वामी, इन्द्र, ये सब यज्ञेन) यज्ञ परस्पर संगति प्रजा पालन और आत्म भावना से मेरे (कल्पन्ताम्) राज्य व्यवहार में समर्थ एवं शक्तिशाली हों।

(मित्र च) मित्र न्यायाधीश और (इन्द्र च) उसके ऊपर अधिष्ठित राजा, सभापति, (वरुण च) दुष्टों का वारण करने वाला अधिकारी, 'वरुण', (इन्द्र च) उसपर भी अधिष्ठित शत्रुनाशक इन्द्र, (धाता च) राष्ट्र का पोषक 'धाता' और (इन्द्र च) उसपर भी शासक ऐश्वर्यवान् अन्नपति, इन्द्र, (त्वष्टा च) शिल्पों का कर्ता पुरुष 'त्वष्टा' और (इन्द्र च) उनका अधिपति व्यवहार कुशल 'इन्द्र', (मरुत च) वायु के समान बलवान् योद्धा लोग 'मरुत् गण' और उनपर अधिपति (इन्द्र च) इन्द्र सेनापति (विश्वे च देवाः) और समस्त विद्वान् पुरुष और (इन्द्र च) उनका स्वामी इन्द्र य सब भी अधिकारीगण और उनका शासक अधिपति मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे राष्ट्र में परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित राज्य प्रबन्ध से अधिक पुष्ट और समर्थ हों।

(पृथिवी च इन्द्र च) पृथिवी और उसका अधिपति अग्नि के समान तेजस्वी इन्द्र, (अन्तरिक्ष च इन्द्र च) अन्तरिक्ष और उसका अधिपति वायु के समान बलशाली इन्द्र, (द्यौः च इन्द्र च) द्यौ, आकाश, उस विस्तृत राजसभा में सूर्य के समान तेजस्वी अधिकारी इन्द्र। (समा च इन्द्र च) वर्ष और उनका शासक सूर्य के समान तेजस्वी 'इन्द्र' (नक्षत्राणि च) नक्षत्र और उनके बीच में (इन्द्र च) चन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र', (दिश च इन्द्र च) दिशाएं और उनके बीच में विराजने वाले आकाश के समान व्यापक बलवान् राजा इन्द्र', ये सब (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे यज्ञ, उत्तम राज्यप्रबन्ध से अधिक समर्थ हों।

अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, पूषा, बृहस्पति, मित्र, वरुण धाता,

त्वष्टा, मरुत्, विश्वेदेव ये राष्ट्र के भिन्न २ विभागों के पदाधिकारी हैं। ये विभाग स्वतन्त्र होकर भी इनमें से प्रत्येक के साथ मुख्य अधिकारी या राजा का समान रूप से शासन है। इसलिये प्रत्येक के साथ 'इन्द्र' का सम्बन्ध रखा है। पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यौ, सभा, नक्षत्र और दिशा ये भी गुणवाद से राजा के ही भिन्न २ अधिकार क्षेत्र हैं। तदनुसार ये भी अधिकार हैं, उनको भी 'इन्द्र' नाम मुख्य राजा के अधीन रहकर सगठित होना चाहिये। तभी ये अधिक दृढ़ होते हैं।

अध्यात्म में—अग्नि जाठराग्नि, सोम वीर्य, सविता चक्षु, सरस्वती वाणी, पूषा उदर और बृहस्पति मन है। मित्र प्राण, वरुण उदान धाता मन, त्वष्टा आत्मा, मरुद्गण धनञ्जय आदि या इन्द्रियगण हैं, पृथ्वी चरण, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्यौ शिर, सभा पूर्ण आयु के वर्ष, नक्षत्र लोम, दिशाएं श्रोत्र, ये सब इन्द्र नाम मुख्य आत्मा के साथ सम्बद्ध हैं। इन सब में इन्द्र की शक्ति है वह यज्ञ से और भी दृढ़ और समर्थ हों।

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॑ मेऽदा॑भ्यश्च मेऽधि॑पतिश्च मऽउपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ मऽऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ मऽआश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१६॥

त्रिवृदत्यष्टि । गान्धार ॥

भा०—(अंशु च) अंशु, सूर्य और उसके समान तेजस्वी अधिकारी पुरुष, (रश्मि च) रश्मि, सूर्य की किरण के समान उपभोग्य पदार्थों का संग्रहकारी पुरुष, (अदाभ्य च) विनाशरहित 'अदाभ्य' नामक राज्य विभाग, (अधिपति) अधिपति, अधिष्ठाता पुरुष 'निग्राह्य' नामक राज्य विभाग (उपांशु च) उपांशु नामक राज्यांग, (अन्तर्याम च) अन्तर्याम, (ऐन्द्रवायव च) इन्द्र और वायु का सम्मिलित पद (मैत्रावरुण च) मित्र और सम्मिलित पदाधिकारी (आश्विन च) आश्विन नामक अधिकारी, (प्रतिप्रस्थान च) शत्रु के प्रति चढ़ाई करने वाला अधिकारी, (शुक्र च

मन्थी च) शुक्र और मन्थी सब राज्याधिकारी और राज्यांग (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ, राष्ट्रव्यवस्था के द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों 'अंशु' का वर्णन देखो अ० ७ । १ ॥ अ० ७ । २ । २ ॥

अन्तर्याम—अ० ७ । ४ ॥ ऐन्द्रवायव । अ० ७ । ८ ॥ मैत्रावरुण । अ० ७ । ६ ॥ ७ । २३ ॥ आश्विन । अ० ७ । ११ ॥ शुक्र । अ० ७।१२॥ मन्थी अ० ७ । १६ ॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

भा०—(आग्रयण च) आग्रयण (वैश्वदेव च) वैश्वदेव, (ध्रुव च) ध्रुव, (वैश्वानर च) वैश्वानर और (इन्द्राग्न च) इन्द्र अग्नि का पद, (महा वैश्वदेव च) महावैश्वदेव, (मरुत्वतीया च) मरुत्वतीय, (निष्केवल्य च) निष्केवल्य, मोक्षोपदेश (सावित्र च) सावित्र (सारस्वत च) सारस्वत, (पात्नीवत च) पात्नीवत और (हारियोजन च) हारियोजन ये समस्त राज्यांग और अधिकार (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) परस्पर की संगठित व्यवस्था से अधिक बलवान् हों ।

आग्रयण, अ० ७ । १९-२० ॥ वैश्वदेव, अ० ७ । २१ २२ ॥ ध्रुव, अ० ७ । २४ २५ ॥ वैश्वानर, अ० ७ । ३३ ३४ ॥ ऐन्द्राग्न, अ०७।३२ ॥ मारुत्वतीय, अ० ७ । ३५-३८ ॥ महावैश्वदेव, अ० ७ । ३९ ४० ॥ सावित्र, अ० ८ । ७ ॥ पात्नीवत, अ० ८ । ९-१० ॥ हारियोजन, अ० ८।११,

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म ऽआधवनीयश्च मे

वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

भा०—(स्रुच च) स्रुच् स्रुव, जुहू आदि, (चमसा च) चमस आदि यज्ञ पात्र, (वायव्यानि च) वायव्य आदि पात्र, (द्रोणकलशः च) द्रोणकलश सोमधारण के लिये कलश । (ग्रावाणः च) शिला, सिल बट्टा आदि सोम या अन्न कूटने के पाषाण, (अधिषवणे च) कुटे हुए सोम या अन्न रखने के फलक (पूतभृत् च आधवनीय च) पूतभृत् और आधवनीय नामक सोम या अन्न रखने के दो पात्र (वेदि च) वेदि, (बर्हि च) बर्हि, आसन या दर्भ (अवभृथ च) यज्ञान्त स्नान, (स्वगाकार.) स्वय गान करने योग्य शयुवाक नामक स्वस्तिवाचनकर्ता, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ द्वारा सिद्ध एवं उत्तम फल देने मे समर्थ हों ।

राष्ट्रपक्ष मे—(१) 'स्रुच' गौर्वै स्रुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥ इमे वै लोका स्रुच । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥ योषा वै स्रुक् वृषा स्रुव । श० १ । ३ । १ ॥ गवादि पशु, समस्त लोक, बाहुए, वीर पुरुष, स्त्रिया और पुरुषगण ये सब, 'स्रुच्' कहाते है ।

(२) 'चमसाः'—१३ पात्र, 'राज्याङ्ग' नाना विभाग । देखो अ० ७ ॥ ३ ॥ 'वायव्यानि'—कति पात्राणि यज्ञं वहन्ति इति त्रयोदशेति ब्रूयात् । प्रजापतिः प्राणापानाभ्यामेवोपांशवन्तर्यामौ निरमिमीत । व्यानादुपांशुसवनम् । वाच ऐन्द्रवायव दक्षक्रतुभ्या मैत्रावरुणं श्रोत्राद्वाश्विनम् । चक्षुष शुक्रामन्थिनौ, आत्मन आग्रयणम् । अङ्गेभ्य उक्थ्य । आयुषो ध्रुवम् । प्रतिष्ठाया ऋतुपात्र । अथवा यजु० अ० ७ । २७, २८ ॥

अर्थात् यज्ञ मे आग्रयण आदि ग्रह । राज्य मे आग्रयण आदि राज्याङ्ग,

---

२१—०'स्वग शाकारश्चमेऽवभृथश्चमे०' इति माध्य०' ।

घोर देह में प्राणु, त्वक्, दस अतु श्रोत्र, चक्षु, आत्मा, अन्य अङ्ग, आयु और प्रतिष्ठा ये 'चमस' कहाते हैं। संवत्सररूप प्रजापति के १२ मास चमस हैं।

यज्ञपात्रों में—'द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पं चाग्निहोत्रहवणी च । स्फ्य च कपालानि च । शम्या च कृष्णाजिनं च । उलूखलमुसले । दृषदुपले । तद् दश ।' शूर्प आदि दश पात्र हैं । शरीर में दश प्राण के समान हैं ।

(३) 'वायव्यानि'—शरीर में प्राणादि के समान राष्ट्र में अन्यान्य विभाग यजु अ० ७ । २७, २८ ॥ अथवा सोम के छानने के पात्र और दशा पवित्र आदि । 'सम्भ्रियमाणो वायु पूयमान' इत्यादि यजु० ८।५६ ॥

(४) 'द्रोणकलश'—यज्ञ में सोमकलश । और राष्ट्र के पक्ष में राष्ट्र या स्वयं राजा । देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥ प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः । श० ४ । ३ । ७ । ६ ॥ यज्ञो वै द्रोणकलशः । श० ४ । ५ । ८ । ५ ॥ राष्ट्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ६ । १ ॥ प्राणो वै द्रोणकलशः । तां० ६ । ६ । ३३ ॥

(५) 'ग्रावाण'—प्राणा वै ग्रावाणः । श० १४ । २ । २ । ३३ । पशवो वै ग्रावाणः । तां० ६ । ६ । ३३ ॥ विड् वै ग्रावाणः । श० ३ । ६ । ३ । ३ ॥ विद्वांसो वै ग्रावाणः । श० ३ । ६ । ३ । १४ ॥ शरीर में प्राणगण, राज्य में पशु प्रजागण और विद्वान् लोग 'ग्रावा' हैं ।

(६) 'अधिषवणे'—साम को उत्पादक शिलाफलकों के समान परस्पर मिलकर राज्य के उत्पादक राजा और प्रजा। पुत्र के उत्पादक माता और पिता ।

(७) पूतभृत् वैश्वदेवो वै पूतभृत् । श० । ७ । ४ । १ । १२ ॥

(८) वेदिः पृथ्वी ।

(९) अवभृथ—वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा । श० १२।६।२।४ ॥

समुद्रो वा अवभृथः । वै० २ । ६ । ५ । २ ॥ राष्ट्र का उत्तम पालन-कर्ता अवभृथ है । देखो यजु० अ० ७ । २६ ॥ समुद्र के समान पृथ्वी को घेर कर उसका पालक पोषक । 'सप्त सिन्धुरवभृथायोद्यतः ।'

(१०) 'स्वगाकारः'—संवत्सर स्वगाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ राष्ट्र के समस्त ऐश्वर्य को सूर्य के समान दौरा लगाकर अपनानेवाला राजा।

अ॒ग्निश्च॑ मे घ॒र्मश्च॑ मे॒ऽर्कश्च॑ मे॒ सूर्य॑श्च मे प्रा॒णश्च॑ मेऽश्वमे॒धश्च॑ मे पृथि॒वी च॒ मेऽदि॑तिश्च मे॒ दिति॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ मे॒ऽङ्गुल॑यः॒ शक्व॑रयो दिश॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

भा०—(अग्नि च) अग्नि अग्रणी और ज्ञानी नेता पुरुष और अग्निष्टोम यज्ञ, (घर्म च) तेज, प्रताप घर्म नामक प्रवर्ग्य इष्टि, (अर्क च) अर्चना योग्य सामग्री, अर्चनीय पुरुष और याग, (सूर्य च) प्राण, (अश्वमेध च) अश्वमेध यज्ञ और राष्ट्र (पृथिवी च) पृथिवी, (अदिति च) अखण्ड राजनीति (दिति च) विभक्त भूमि अथवा शत्रु को खण्ड २ करनेवाली शक्ति (द्यौः च) द्यौ, धर्म की प्रकाशक राजसभा, (अङ्गुलयः) अङ्गुलियों के समान पर-राष्ट्र को पकड़ने और वश करने वाली अग्रगामिनी सेनाएं, अथवा राष्ट्र के अङ्ग, (शक्वरयः) शक्तिशाली सेनाएं, (दिश च) दिशाएं, और उनमें रहने वाली प्रजाएं, ये सब (मे) मेरी (यज्ञेन) परस्पर मेल और यज्ञ, राष्ट्रपालन द्वारा (कल्पन्ताम्) और अधिक उन्नत और समर्थ हों। शत० ६ । ३ । ३ । १ ॥

व्र॒तञ्च॑ म ऋ॒तव॑श्च मे॒ तप॑श्च मे संवत्स॒रश्च॑ मेऽहोरा॒त्रे ऊ॑र्वष्ठी॒वे बृ॑हद्रथन्त॒रे च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(व्रत च) सत्य, अहिंसा आदि यम नियम का पालन,

२३—०'संवत्सरश्च मे तपश्च मे' इति काण्व० ॥

(ऋतवः च) वसन्त आदि ऋतु, (तपः च) ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, स्वाध्याय आदि तपस्या, (संवत्सरः च) १२ मासों से परिमित वर्ष, (अहोरात्रे च) दिन और रात, (उरु अष्ठीवे च) जघाएं और गौ तथा उनके समान प्रबल वैश्य वर्ग, (बृहत् रथन्तरे च) बृहत् साम तथा विशाल साम-बल और रथन्तर साम अर्थात् ब्राह्मण गण ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ, परस्पर मेल, एवं राष्ट्र पालन द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों।

[1] एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽ[2]एकविꣳशतिश्च मऽएकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मऽएकत्रिꣳशच्च मऽएकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

(१) प्रकृतिः । (२) विराट् प्रकृतिः । गान्धारः ।

भा०—(एका च) एक (तिस्रः च तिस्रः च) तीन और तीन, (पञ्च च पञ्च च) पांच और पांच, (सप्त च सप्त च) सात और सात, (नव च नव च) नौ और नौ, (एकादश च एकादश च) ग्यारह और ग्यारह, (त्रयोदश च त्रयोदश च) तेरह और तेरह, (पञ्चदश च पञ्चदश च) पन्द्रह और पन्द्रह, (सप्तदश च सप्तदश च) सत्रह, और सत्रह (नवदश च नवदश च) उन्नीस और उन्नीस, (एकविंशतिः च एकविंशतिः च) इक्कीस और इक्कीस, (त्रयोविंशतिः च त्रयोविंशतिः च) तेईस और तेईस, (पञ्चविंशतिः च पञ्चविंशतिः च) पच्चीस और पच्चीस, (सप्तविंशतिः

च सप्तविंशति च) सत्ताइस और सत्ताईस (नवविंशति च नवविंशति च) उनतीस और उनतीस, (एकत्रिंशत् च एकत्रिंशत् च) इकतीस और इकतीस और (त्रय त्रिंशत् च) तैंतीस इस क्रम से (मे) मेरी सेनाएं व्यूह बना कर (यज्ञेन) परस्पर के मेल द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों।

१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, २६, ३१, ३३ ये अयुग्म स्तोम या अयुग्म राशियें कहाती हैं। इन इन सख्या में सेनाओं और सैनिक सघों को चला कर उत्तम राष्ट्र रूप स्वर्ग को विद्वान् लोग प्राप्त होते हैं। व्यूह में ओर छोर के छोड़ने से दो २ की क्रमशः वृद्धि और न्यूनता होनी सम्भव है।

१		१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११
१ २ ३		१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६
१ २ ३ ४ ५	अथवा	१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७		१ २ ३ ४ ५
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६		१ २ ३
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११		१

इसी प्रकार दो दो के जोड़ने से सख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि और दो २ के घटाने से सख्या की न्यूनता करनी चाहिये। व्यूहों में भी एक २, तीन तीन, पाच पाच सात सात की पंक्ति बना कर चलने का भी उपदेश है।

अथवा यजुर्वेद अ० १४ म० २८ से ३१ तक १, ३, ५, ७ आदि क्रम से बढ़ता राज्य शक्तियों का वर्णन है वे सब राज्य की भिन्न २ शक्तियां मेरी परस्पर सग लाभ द्वारा अधिक बलवान् बनें। इनका विवरण देखो यजुर्वेद अ० १४। म० २८-३१-तक।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतु॑

विँꣳशतिश्च मे चतुर्विँꣳशतिश्च मेऽष्टाविँꣳशतिश्च मेऽष्टाविँꣳशतिश्च मे द्वात्रिँꣳशच्च मे द्वात्रिँꣳशच्च मे षट्त्रिँꣳशच्च मे षट्त्रिँꣳशच्च मे चत्वारिँꣳशच्च मे चत्वारिँꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिँꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिँꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिँꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

भा०—(चतस्र. च) चार, (अष्टौ च अष्टौ च) आठ और आठ, (द्वादश च द्वादश च) बारह और बारह, (षोडश च षोडश च) सोलह और सोलह, (विंशति. च विंशति च) बीस और बीस, (चतुर्विंशति. च चतुर्विंशति च) चौबीस और चौबीस, (अष्टाविंशति च अष्टाविंशति. च) अट्ठाईस और अट्ठाईस, (द्वात्रिंशत् च द्वात्रिंशत् च बत्तीस और बत्तीस, (षट्त्रिंशत् च षट्त्रिंशत् च) छत्तीस और छत्तीस, (चत्वारिंशत् च चत्वारिंशत् च) चालीस और चालीस, (चतुश्चत्वारिंशत् च चतुश्चत्वारिंशत च) चवालीस और चवालीस, (अष्टाचत्वारिंशत् च अष्टाचत्वारिंशत् च) अड़तालीस और अड़तालीस के सेनाङ्गों के व्यूह (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे यज्ञ परस्पर मेल, संयोग द्वारा अधिक बलवान् हों।

१ + १=२, १ + २=३, ३ + २=५, ४ + ३=७ इत्यादि। ३ + ६=९, ४ + ७=१२, ७ + ६=१३, ६ + ११=२०, ११ + १३=२४

इस प्रकार अयुग्म संख्याओं के योग से युग्म संख्याओं की निष्पत्ति होती है।

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे उक्षा च मे वशा च मे ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

(२६) माडी उष्णिक् । पञ्चमः । (२७) भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(त्र्यविश्च त्र्यवी च) तीन छमाही वाले बैल और गाय, (दित्यवाट् च दित्यौही च) दो वर्ष के बैल और गाय, (पञ्चाविः च पञ्चावी च) पांच छमाही अढ़ाई वर्ष के बैल और गाय, (त्रिवत्सः च त्रिवत्सा च) तीन वर्ष के बैल और गाय, (तुर्यवाट् च तुर्यौही च) चार वर्ष के बैल और गाय (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) उक्त पशु, प्रजापालन द्वारा मुझे प्राप्त हों और वे हृष्ट पुष्ट हों।

(पष्ठवाट् च पष्ठौही च) पीठ से बोझा उठाने वाले बैल, हाथी, गधा, घोड़ा आदि नर और मादा जन्तु, (उक्षा च वशा च) वीर्य सेचन में समर्थ बैल और वीर्य धारण में समर्थ गौएं। इसी प्रकार 'वशा' वन्ध्या गौ, और खस्सी किये हुए बैल, (ऋषभः च) बलवान् बैल, (वेहत् च) गर्भ-घातिनी गौ, (अनड्वान् च) शकट में लगनेवाला बैल और (धेनुः च) दुधार गौ, ये सब प्रकार के पशु (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ या राष्ट्र पालन द्वारा (कल्पन्ताम्) खूब संख्या में प्राप्त हों।

¹ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा।² इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥ २८ ॥

(१) निचृदृष्टी शाक्करी । पञ्चमः　(२) ब्राह्मी बृहती । ऋषभः ॥

भा०—(वाजाय स्वाहा) वाज अर्थात् संग्राम की उत्तम शिक्षा हो। अन्न प्राप्ति कराने वाले मेघ के समान प्रजा में अन्न की प्राप्ति वृद्धि, कराने वाले शासक की उत्तम कीर्ति हो। (प्रसवाय) ऐश्वर्य और अन्नोत्पादन के लिये स्वाहा उत्तम पुरुषार्थ, सत् शिक्षा हो। प्रसव अर्थात् वैराग्य

के समान प्रचण्ड सूर्य से युक्त मास के समान अधिक तेजस्वी पुरुष को (स्वाहा) उत्तम यश और मानपद प्राप्त हो। (अपिजाय) उत्तम बुद्धि और ज्ञान में प्रसिद्ध होने के लिये (स्वाहा) उत्तम शिक्षा हो। (अपिजाय) ज्येष्ठ जिस प्रकार जल की अभिलाषा अधिक उत्पन्न करता है उसी प्रकार ज्ञान में लोगों की प्रवृत्ति कराने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। (क्रतवे स्वाहा) उत्तम विज्ञान और कर्म की उत्तम शिक्षा और अभ्यास हो। योगादि से युक्त आषाढ़ मास के समान उत्तम कर्म और ज्ञान में प्रवृत्त कराने वाले पुरुष को उत्तम आदर और यश हो। (वसवे स्वाहा) वसु, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उत्तम धन प्राप्त करने की शिक्षा हो। वसु अर्थात् श्रावण के समान प्राणियों को अन्न धन देकर बसाने वाले पुरुष या राजा का उत्तम आदर और यश हो। (अहर्पतये स्वाहा) दिनों के पालक, कालवित् पुरुष बनने की उत्तम शिक्षा हो। अथवा 'अह पति' दिन के स्वामी सूर्य के समान तापकारी भाद्रपद के समान शत्रुओं को संताप देने वाले पुरुष अथवा दिन के पति सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का उत्तम आदर और यश हो। (अन्हे मुग्धाय स्वाहा) मेघ या कुहरे से आवृत दिन के समान अज्ञान मोह से घिरे ज्ञानी पुरुष को भी (स्वाहा) उत्तम वैराग्य की शिक्षा हो। मेघ से आवृत दिन के समान, मेघावृत आश्विन मास के समान रजोविलास में अचेत हुए पुरुष के लिये (सु-आहा) उत्तम शिक्षा हो। (मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा) मोह में प्राप्त होकर विनष्ट होने वाले पुरुष को भी उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। कार्त्तिक मास के समान शीघ्र नाशवान् पदार्थों वा आचरणों में लिप्त पुरुष को उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। (विनंशिने आन्त्यायनाय स्वाहा) विविध प्रकार से विनाश को प्राप्त होने वाले या राष्ट्र को विनाश करने पर तुले हुए 'आन्त्यायन' अर्थात् अन्तिम, चरम, नीचतम कोटि तक पहुंचे हुए राजा को भी (स्वाहा) उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। मार्गशीर्ष मास के समान शीत हिम द्वारा सबके विनाशक और सबके अन्त में स्वयं शेष रहजाने वाले

सर्वसंहारक पुरुष का उत्तम यश हो। (आन्त्याय भौवनाय स्वाहा) सबसे अन्त में होने वाले, सर्वोच्च, परम भुवनों में व्यापक लोकपति को सब भुवनों के पालन के ज्ञान का उपदेश हो। भौवन अर्थात् जाठराग्नि को दीपन करके पुष्टिकारी प्राणियों के पोषक पौष के समान प्रजाओं को पुष्ट करने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। (भुवनस्य पतये स्वाहा) भुवन समस्त प्राणियों के पालक को उत्तम शिक्षा हो। माघ के समान सबके पालक पुरुष का उत्तम आदर हो। (अधिपतये स्वाहा) सब के अधिपति को भी इसके पद के योग्य शिक्षा हो। इसी प्रकार फाल्गुन मास के समान अन्नादि द्वारा सुख कर पुरुष को उत्तम आदर मान प्राप्त हो। (प्रजापतये स्वाहा) प्रजा के पालक पुरुष को राज धर्म की उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। द्वादश मासों के ऊपर संवत्सर रूप से विराजमान संवत्सर के समान समस्त प्रजाओं को अपने उक्त बारहों रूपों में प्रजा के पालक राजा को उत्तम मान, यश प्राप्त हो।

इन शब्दों पर विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ९। मं० २०॥ सूर्य के जिस प्रकार १२ मास हैं और वे सूर्य के १२ रूप हैं उसी प्रकार संवत्सर तेजस्वी राजा के १२ रूप, तदनुसार उसके १२ नाम हैं।

(अमुष्याय हिंसिने) और (अधिंसिने आन्त्यायनाय) ये दो महीधरसम्मत पदसंड हैं जो अ० ९। २० में आये पदों के ऊपर उसके अपने ही किये व्याख्यान से विरुद्ध हैं इसलिये असंगत हैं।

(इयं ते राट्) हे राजन्! यह तेरी राजशक्ति या राज्य है। तू (मित्राय) अपने मित्र राजाओं को भी (यन्ता असि) अपने वश में करने वाला है, इससे तू (यमनः) 'यमन', सर्वनियामक है। (ऊर्जे त्वा) परम अन्नादि पोषक पदार्थों की रक्षा के लिये (वृष्ट्यै त्वा) प्रजा पर सुखों की वर्षा के लिये और (प्रजानां आधिपत्याय) प्रजाओं पर आधिपत्य या राज करने के लिये (त्वा) तुझे स्थापित करता हूं।

[1] आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता॑ᳫं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳫं स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । [2] स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवा ऽअगन्मामृता ऽअभूम प्रजापतेः प्रजा ऽअभूम वेट् स्वाहा ॥२६॥

(१) स्वराड् विकृतिः । पंचम । (२) ब्राह्मी उष्णिक् ऋषभः ॥

भा०—(आयुः) आयु, दीर्घ जीवन, (चक्षु) आंख, दर्शनशक्ति (श्रोत्र) कान, श्रवणशक्ति, (वाग्) वाणी, भाषणशक्ति, (मन॰) मन, मननशक्ति, (आत्मा) आत्मा, देह में व्यापक धारणशक्ति, (ब्रह्मा) चारों वेदों का विद्वान् अथवा देह में अन्त करण चतुष्टय, (ज्योतिः) प्रकाश, स्वयंप्रकाश परमात्मा और विद्याप्रकाश, (स्व.) परम सुख, आनन्दमय मोक्ष, (पृष्ठं) ज्ञान करने की इच्छा, पालनशक्ति, सर्वाश्रयता अथवा सर्वोपरि मोक्ष, (यज्ञ.) उपास्य देव और उपासनादि धर्माचरण, (स्तोम च) स्तुति के मन्त्र अथर्ववेद (यजु च) यजुर्वेद (ऋक् च) ऋग्वेद, (साम च) सामवेद (बृहत् च रथन्तरं च) बृहत् और रथन्तर नामक साम विशेष ये समस्त ज्ञान (यज्ञेन) योग-साधन, सत्सग, धर्मानुष्ठान, देवोपासना आदि से (कल्पताम्) सिद्ध और फलप्रद हों। हम (देवा) देव, विजयी, ज्ञानवान् होकर (स्व) परम मोक्ष एवं सुखमय राज्य को (अगन्म) प्राप्त हों । हम (अमृता) अमृत, मोक्ष सुख को प्राप्त एवं दीर्घायु (अभूम) हों (प्रजापते प्रजा. अभूम) प्रजा के पालक परमेश्वर और उत्तम राजा की प्रजा बन कर रहें । (वेट्) उत्तम सत्कर्मानुष्ठान द्वारा

२६ —०मात्मायज्ञेन कल्पता पृष्ठं यज्ञेन कल्पता ब्रह्म यज्ञेन कल्पता यज्ञो यज्ञेन कल्पता ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता॰ स्वर्यज्ञेन कल्पताम् । इति काण्व० ॥

(स्वाहा) उत्तम यश और मान आदर को प्राप्त करें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ६। २१। २२॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ३० ॥

व्याख्या देखो अ० १। म० २॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ३१ ॥

तापसो धानाक ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०— (अद्य) आज (विश्वे मरुतः) समस्त विद्वानगण, प्रजाजन और सैनिक पुरुष (आ गमन्तु) इस राष्ट्र में मुझे प्राप्त हों, मेरे समीप आवें। (विश्वे) और सभी अन्न (ऊती) अपनी रक्षा और सामर्थ्य सहित आवें। (विश्वे अग्नयः) समस्त ज्ञानी, शत्रुसंतापक एवं अग्रणी नेता पुरुष (समिद्धाः) अग्नियों के समान प्रदीप्त, तेजस्वी होकर (भवन्तु) रहें। (विश्वे देवा) समस्त दानशील और ज्ञानदृष्टा और विजयेच्छु पुरुष (अवसा) अपने ज्ञान और पालन सामर्थ्य से (आगमन्तु) प्राप्त हों। और (विश्वम्) समस्त (द्रविणम्) ऐश्वर्य और (वाजः) अन्न (अस्मे) हमारे उपभोग के लिये (अस्तु) हो।

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥

वाजो, यज्ञ देवता। निचृदार्ध्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(नः) हमारा (वाजः) अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य और पराक्रम (सप्त) सातों (प्रदिशः) प्रदेशों अर्थात् लोकों और (परावतः) दूर दूर

२३—'०धनसाता इहावतु' इति काण्व०।

२४—'सर्वेर सदर सर्वा माता वाज्जनिर्वेयम्' इति काण्व०।

तक फैली (चतस्त्र प्रदिश) चारों दिशाओं को प्राप्त हो (न वाज) हमारा ऐश्वर्य और पराक्रम (धनमार्ता) धन, ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्त करने में (इह) इस राष्ट्र में भी (विश्वे. देवै सह, समस्त विद्वानों, शासकों, और दानशील या विजयी पुरुषों द्वारा (अवतु) हमारी रक्षा करे।

वाजो नो ऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽ ऋतुभि कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽआशा वाजपतिर्जयेयम्॥३३॥

वाजपतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(वाज) अन्नादि ऐश्वर्य और पराक्रम ही (न) हमारी (अद्य) अब (दान) दानशक्ति को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे और बढ़ावे। (वाज) वह अन्नादि ऐश्वर्य और पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वान् और विजयी पुरुषों को (ऋतुभि) ऋतुओं के अनुसार (कल्पयाति) हृष्ट पुष्ट और कार्य करने में अधिक समर्थ बनावे। (वाज) अन्नादि ऐश्वर्य ही (मा) मुझ को (सर्ववीर) समस्त वीर पुरुषों से युक्त, समस्त वीर्यवान् पुत्र और समर्थ प्राणों से युक्त (जजान) करे है। मैं (वाजपति.) उस अन्न और बल का पालक, स्वामी होकर ही (विश्वा आशा जयेयम्) समस्त कामनाओं और दिशाओं का विजय करूं।

वाज पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा ऽआशा वाजपतिर्भवेयम् ॥३४॥

वाजपतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(वाज) ऐश्वर्य और पराक्रम (न) हमारे (पुरस्तात्) आगे, (उत मध्यत) और बीच में भी रहे। (वाज) वह ऐश्वर्य और पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वानों और विजयी पुरुषों और दानशील

३४—'विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्।' इति काण्व० ॥

पुरुषों को (हविषा) अन्नादि समृद्धि से (वर्धयाति) बढ़ाता है। (वाज हि) वह ऐश्वर्य ही (मा सर्ववीरं चकार) मुझे सब वीर सैनिकों, पुत्रों और प्राणों से युक्त करता है। मैं (वाजपतिः) उस ऐश्वर्य का स्वामी होकर (सर्वाः आशाः) सब अभिलाषाओं और दिशाओं पर (भवेयम्) प्रभु हो जाऊं।

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्युद्भिरोषधीभिः।
सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी ! विद्वन् ! राजन् ! मैं (मा) अपने को (पृथिव्याः पयसा) पृथिवी के पुष्टिकारक रस से (सं सृजामि) युक्त करूं। और (मा) अपने को (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा भी (सं सृजामि) युक्त करूं। (स अहं) वह मैं (वाजं) नानाविध अन्न ऐश्वर्य का इस प्रकार (सनेयम्) उत्तम रीति से सेवन करूं।

पयः पृथिव्यां पयः ऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ३६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! सूर्य ! तेजस्विन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! तू (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधीषु) ओषधियों में (दिवि) द्यौलोक, आकाश या सूर्य प्रकाश में और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष वायु या जल में (पयः) पुष्टिकारक रस को (धाः) स्थापित कर। (प्रदिशः) समस्त दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिये (पयस्वतीः) पुष्टिकारक रस से पूर्ण (सन्तु) हों।

विद्वान् लोग भी पृथिवी, ओषधिगण, सूर्य और वायु सब में से पुष्टिकारक रस या सार पदार्थ को ग्रहण करने का यत्न करें। इस प्रकार मैं राजा एवं प्रजाजन समस्त दिशाओं से अन्न आदि रस ग्रहण करें।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

भा० – हे राजन्! (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) शासन और ऐश्वर्य में और (अश्विनोः बाहुभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा दोनों के प्रताप और शीतलता, प्रचण्डता और सौम्य और उग्र रूप (बाहुभ्याम्) शक्तियों से (पूष्णः) पुष्टिकारक अन्न या पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) वशीकरण और आकर्षण करने वाले सामर्थ्यों से (सरस्वत्यै वाचः) सरस्वती, ज्ञानरूप वाणी, या विद्वत्सभा के उपदेश या व्यवस्था बल से (यन्तुः) नियन्ता (अग्नेः) शत्रुसंताप सेनापति या राजा के (यन्त्रेण) नियामक बल से और (साम्राज्येन) साम्राज्य के अधिकार से तुझे (अभिषिंचामि) अभिषिक्त करता हूं। तुझे सर्वविजयी सर्वप्रेरक पद का ऐश्वर्य देता हूं। (अश्विनोः) अर्थात् तुझे सूर्य के समान प्रचण्डता, चन्द्र के समान शीतलता अर्थात् निग्रह और अनुग्रह का सामर्थ्य देता हूं। पूषा अर्थात् अन्न या पृथिवी के समान दानशीलता सरस्वती, वेदवाणी या व्यवस्था सभा का आज्ञा देने का अधिकार और नियामक पुरुष का नियामक बल तुझे सौंपता हूं और साम्राज्य पदपर अभिषिक्त करता हूं।

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

भा०—(ऋताषाट्) ऋत, सत्यव्यवहार का सहन करने वाला, असत्य को न सहनेवाला या ऋत, सत्य ज्ञान के बल पर समस्त पृथिवी का विजय करने वाला, (ऋतधामा) सत्य ज्ञान रूप अविनाशी तेज वाला (अग्निः) सूर्य या अग्नि के समान जो तेजस्वी (गन्धर्वः) गौ, पृथिवी वाणी और इन्द्रियों को अपने वश में करने में समर्थ होता है वह 'अग्नि'

३८—अथातो द्वादश राष्ट्रभृत ॥

नाम से कहे जाने योग्य है। (तस्य) उस सूर्य या अग्नि के (ओषधयः) तेज को धारण करने वाली ओषधियें (मुदः) समस्त संसार को हर्ष, सुख प्रदान करने वाली (अप्सरसः) जल में उतराने वाली या जल से बढ़ने वाली होने से 'अप्सरस्' हैं और समस्त प्राणियों को हर्ष देने से 'मुद्' नाम वाली हैं। उसी प्रकार उस राजा के (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म के मार्ग में आगे बढ़ने वाली प्रजाएं भी (मुदः नाम) सब प्रजाओं को और स्वयं भी मोद करने वाली होने से वे भी 'मुद्' नाम वाली हैं। (सः) वह अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्राह्मण कुलों और (क्षत्र) क्षत्रिय कुलों की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै) उसे (वाट्) राज्य-भार वहन करने वाला पद (सु-आहा) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय। और (ताभ्यः) उसकी उन प्रजा और ज्ञान कर्म में विचरनेवाली विद्वान्, शक्तिशाली योग्य प्रजाओं को भी (सु-आहा) उत्तम आदर और यश हो।

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(सूर्य) सूर्य जिस प्रकार (संहितः) समस्त पृथिवी, जल आदि भूतों में अपने किरणों से व्याप्त होकर उनको परस्पर मिलाने द्वारा और दिन और रात को सन्ध्या द्वारा मिलाने द्वारा, और (विश्व सामा) समस्त विश्व में व्यापक होता है और वह (गन्धर्व) गौ, किरणों को धारण करता और पृथ्वी का भरण पोषण करता है। उसी प्रकार सूर्य के समान विद्वान् राजा भी (संहितः) समस्त विद्वान् योग्य पुरुषों और शासकों और राष्ट्रांगों को परस्पर मिलाने वाला, (विश्वसामा) समस्त

राज्य में सब के प्रति समान भाव से न्यायानुकूल होकर विद्यमान रहता है, वह (गन्धर्व) पृथिवी को धारण करने में समर्थ 'सूर्य' कहाने योग्य है (तस्य) उसकी (अप्सरस) ज्ञान और कर्म में कुशल प्रजाएं जल के परमाणुओं में व्यापक (मरीचय) सूर्य की किरणों के समान स्वयं (मरीचय) अज्ञान या शत्रु बल के नाश करनेवाली सेनाएं (आयुव नाम) परस्पर संगत सुव्यवस्थित होकर रहने और युद्ध में जाने से आयु' नाम से कहाती हैं। (स न इद०) इत्यादि पूर्ववत्।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

चन्द्रमा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। निषाद

भा०—(चन्द्रमा) चन्द्र जिस प्रकार (सुषुम्णः) उत्तम सुखप्रद, अथवा सुखस्वप्न या निद्रा का देने वाला और (सूर्यरश्मि) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला और (गन्धर्व) रश्मियों को धारण करने से 'गन्धर्व' है (तस्य) उसके (नक्षत्राणि) नक्षत्रगण (अप्सरस) स्त्रियों के समान भोग्य, एवं (भेकुरय) भा, दीप्ति करने से 'भेकुरि' कहाती हैं उसी प्रकार (चन्द्रमा) आह्लादकारी राजा भी चन्द्र के समान है। वह (सुषुम्णः) प्रजाओं का उत्तम सुख देने वाला (सूर्य रश्मि) सूर्य के समान तेजस्वी (गन्धर्व) पृथ्वी का रक्षक है। (तस्य) उसके (अप्सरस) ज्ञान, कर्म और प्रजाओं में विचरण करने वाली उत्तम प्रजाएं (नक्षत्राणि) कभी परास्त न होने वाला होने से 'नक्षत्र' कहाती हैं। वे ज्ञान दीप्ति करने वाला होने से 'भकुरि' नाम से कहाती हैं। (स न इद० इत्यादि) पूर्ववत्।

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

वातो देवता । ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—जिस प्रकार (वातः) वायु, (इषिरः) तीव्र वेगवान्, (विश्वव्यचा) और समस्त विश्व में व्यापक एवं (गन्धर्वः) गौ नाम पृथिवी, मध्यम वाणी और विद्युत् को अन्तरिक्ष में धारण पोषण करता है, (तस्य) उसके आश्रय पर (आपः) जल ही (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में गतिमान् होकर मेघ रूप में विचरते हैं। वे अन्न द्वारा विश्व के बलकारक होने से (ऊर्जः नाम) 'ऊर्ज' नाम से कहाते हैं। उसी प्रकार (वातः) वायु के समान प्रबल राजा (इषिरः) अति वेगवान्, सबका प्रेरक और सब के इच्छा योग्य, (विश्वव्यचाः) समस्त राष्ट्र में प्राण के समान व्यापक, सर्वप्रिय पुरुष (गंधर्व) पृथ्वी को धारण पोषण करने में समर्थ है। (तस्य) उसके (आप) आप्त जन ही (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में निष्ठ, ज्ञानी और प्रजा में व्यापक और (ऊर्जः नाम) राष्ट्र में अन्न उत्पन्न करने वाले होने से 'ऊर्ज्' नाम से कहे जाते हैं। (स नः० इत्यादि पूर्ववत् ।

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा ऽअप्सरसः स्तावा नाम ।
स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

यज्ञो देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञ) यज्ञ, प्रजापति (भुज्यु) सबका पालक सबको भोग्य फल का देने वाला, (सुपर्णः) उत्तम पालन सामर्थ्यों से युक्त, (गन्धर्व) वेद वाणी का अपने भीतर धारण करने से 'गंधर्व' है। (तस्य) उसकी (अप्सरस) प्रजाओं या कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त होने वाली (दक्षिणा) कार्य में दक्षता की उत्पादक दक्षिणायें, (स्तावाः) सुपात्र में ही जाकर यज्ञकर्त्ता और यज्ञ दोनों की स्तुति के कारण होने से 'स्तावा' नामक है उसी प्रकार (यज्ञ) राष्ट्र पालक, प्रजापति राजा भी

स्वन (भुज्यु) प्रजा का पालक और राष्ट्र का भोक्ता, (सुपर्ण) आदित्य के समान उत्तम पालन सामर्थ्य और उत्तम रथवाहनों से सम्पन्न, (यज्ञ) सबका सगतिकारक (गन्धर्व) पृथ्वी का धारण पोषक है। (तस्य) उसकी (अप्सरस) ज्ञान और कर्म में व्याप्त (दक्षिणा) राष्ट्र कार्य में बल उत्पन्न करनेवाली प्रजाएं (स्तावा नाम) स्तुति योग्य होने से 'स्तावा' नाम से कहाती हैं। (स० न इद० इत्यादि पूर्ववत्)

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऽऋक्सामान्यप्सरस ऽएष्टयो नाम। स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा

विश्वकर्मा मनो देवता। विराडार्षी जगती। निषाद ॥

भा०—(मन) ज्ञानवान् (विश्वकर्मा) समस्त विश्व का कर्त्ता, (प्रजापति) प्रजा का पालक राजा (विश्वकर्मा) सब राज्य के हितकर कर्मों को करनेहारा (मन) शरीर में मन के समान सब का ज्ञाता, मननशील, (गन्धर्व) पृथ्वी का पोषक है। (तस्य) उसके (ऋक् सामानि अप्सरस एष्टय नाम) ज्ञानानुकूल या स्तुत्य 'साम' शत्रुनाशक उपाय ही सब इष्ट कार्यों की साधक एव प्रजा की प्रेरक आज्ञाएं 'एष्टि' कहाती हैं। (स० न० इत्यादि) पूर्ववत्।

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त ऽउपरि गृहा यस्य वेह।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्ति। पञ्चम ॥

भा०—हे (भुवनस्य पते) समस्त भुवनों, उत्पन्न प्राणियों और लोकों के पालक! स्वामिन्! हे (प्रजापते) प्रजा के पालक! (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपरि) ऊपर, तेरे आश्रय पर (गृहा) गृह गृहस्थ पुरुष (वा) और (यस्य) जिसके ऊपर (इह) इस राष्ट्र और लोक के

अन्य प्राणि भी आश्रित हैं वह तू (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) ब्रह्म, वेद और ईश्वर के जानने वाले और (अस्मै क्षत्राय) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाले इस क्षत्रियवर्ग को (स्वाहा) उत्तम रीति से (महि शर्म) बड़ा सुख और शान्ति (यच्छ) प्रदान कर ।

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिः मध्यमः ॥

भा०—हे (प्रजापते) प्रजा के पालक ! राजन् तू (समुद्र असि) समुद्र के सदृश गम्भीर, सब रत्नैश्वर्यों का आकर, सब ऐश्वर्यों का उत्पादक है। तू (नभस्वान्) आकाश में व्यापक वायु के समान सबका प्राणाधार और वायु के समान तीव्र वेगवान् है । तू (आर्द्रदानु) जलप्रद मेघ के समान आर्द्र भाव से प्रजा पर ऐश्वर्यों का त्याग करने हारा है । तू (शंभूः) जल के समान शान्तिदायक, (मयो भूः) तू परमेश्वर या आत्मा के समान परम आनन्द जनक है । तू (मा) मुझ प्रजाजन को (अभि वाहि) साक्षात् रूप से प्राप्त हो । तू (मारुतः असि) प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा के समान मरुत् अर्थात् वायु के समान शीघ्रगामी शत्रुमारक सैनिकों सेनापतियों का भी स्वामी है । तू (मरुतां गणः) प्राणों के गण के समान स्वयं विद्वानों के समूह का आश्रय, उनके बीच में मुख्य रूप से गणना करने योग्य है । तू (अवस्यूः) अपनी और अपनी प्रजा की रक्षा करने का इच्छुक और (दुवस्वान्) उत्तम आचरण और सेवा या परिचरण करने योग्य है । तू (शंभूः) शान्ति का जनक (मयोभूः) सुखों का उत्पादक होकर (मा अभि वाहि) मुझे साक्षात् प्राप्त हो । (स्वाहा) हमारी यही उत्तम प्रार्थना स्वीकार हो । परमेश्वर के विषय में विनियोग स्पष्ट है ।

यास्ते॑ऽअग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ।
ताभि॑र्नो॒ऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ ४६ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! (या ते) जो तेरी (रुच) अग्नि की दीप्तियों के समान प्रीतियां (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष में रहती हुई (रश्मिभि) किरणों के समान नियमकारिणी व्यवस्थाओं से (दिवम्) आकाश के समान राजसभा को व्यापती हैं (ताभि सर्वाभिः) उन सब प्रीतियों से (अद्य) आज के समान सदा ही (नः) हमें (जनाय रुचे) सर्वसाधारण प्रजाजन के प्रीति का पात्र (कृधि) कर अर्थात् परमेश्वर की जिस प्रकार दीप्तियें सूर्य ने रह कर महान् आकाश के ग्रहादि को प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार जो विद्वान् राजा के प्रति वेदज्ञ विद्वान् के प्रेम हैं उनसे हम अन्य विद्वज्जन राजगण भी सर्वसाधारण के लोकप्रिय हों । शत० ६ । ४ । २ । १४ ॥

या वो॑ देवाः॒ सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑ ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभिः॒ सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥

भा०—हे (देवा) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो ! (वः) तुम्हारी (या.) जो प्रीतियाँ (सूर्ये.) सूर्य के समान तेजस्वी राजा में, (गोषु) गौ आदि पशुओं और (अश्वेषु) अश्वादि युद्धोपयोगी पशुओं में हैं, हे (इन्द्राग्नी बृहस्पते) इन्द्र ! अग्ने ! बृहस्पते ! सेनापते ! राजन् ! वेदज्ञ विद्वन् ! (ताभि· सर्वाभिः) उन सब प्रेमों से (न) हम में (रुच धत्त) प्रेम का स्थापन करो । अर्थात् गवादि पशुओं का पालन करें । हम भी उक्त राजा, सेनापति महामात्य आदि के प्रेमपात्र हों । व्याख्या देखो अ० १३।२२,२३॥

रुचं॑ नो धेहि ब्राह्म॒णेषु॒ रुच॒ꣳराज॑सु नस्कृधि ।
रुचं॒ विश्ये॑षु शू॒द्रेषु॒ मयि॑ धेहि रु॒चा रुच॑म् ॥ ४८ ॥

शुन शेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धार. ॥

भा०—(नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में (रुचा) अपने व्यापक प्रेम

द्वारा (रुचं धेहि) परस्पर प्रेम प्रदान कर। (न राजसु) हमारे राजगणों में (रुच धेहि) प्रेम प्रदान कर। (विश्येषु) प्रजाओं में विद्यमान वैश्यजनों में और (शूद्रेषु) शूद्रों में भी (रुच धेहि) प्रेम प्रदान कर और (मयि) मेरे में भी तू (रुचा) अपने विशाल प्रेम द्वारा (रुच धेहि) प्रेम प्रदान कर। अर्थात् राजा हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब में प्रेम पैदा करे। आपस में घृणा और द्वेष के बीज बोकर न फोड़े रक्खे और (मयि) मेरे निमित्त और प्रजा जनों में प्रेम पैदा करे। अर्थात् प्रत्येक पुरुष के प्रति सबका प्रेम हो। हरएक समझे कि मैं समस्त देश वासियों का प्रिय हूं और समस्त देशवासी अपने देशवासी को अपना प्रिय जाने। उसी प्रकार परमेश्वर भी हम में प्रेम पैदा करे।

तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑।
अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शᳪ॒स॒ मा न॒ आयुः॒ प्रमो॑षीः॥ ४१ ॥

शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद द्वारा (त्वा वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ मैं (त्वा यामि) तुझ से याचना करता हूं या तुझे प्राप्त होता हूं। (यजमान) उपासना करने हारा (हविर्भिः) यज्ञ योग्य हवियों और स्तुतियों से भी (तत्) उसी परम प्रेम का (आशास्ते) कामना करता है कि, हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति किये जाने हारे या बहुतसों को ज्ञान द्वारा उपदेश देने हारे ! तू (अहेडमानः) कभी अनादर न किया जाकर, स्वयं सौम्य भाव से (इह), यहां (बोधि) हमें अपना ज्ञान प्रदान कर। और (न आयु) हमारे जीवन (मा प्र मोषीः) मत अपहरण कर। शत० ४। ४। २। १३॥

राजा के पक्ष में—हे (वरुण) स्वयंवृत, श्रेष्ठ राजन् ! हे (उरुशंस) बहुतों के शिक्षक ! अति ज्ञानवन् ! (ब्रह्मणा) ब्राह्मि सहित या महान् राष्ट्रसह ऐश्वर्य पुरस्कार सहित (त्वा वन्दमानः) तेरी वन्दना, अभिवन्दन

करता हुआ मैं प्रजाजन (हविर्भिः यजमानः) स्तुति-वचनों और उपादेय भेंटों सहित तुम्हें प्राप्त होता हुआ (तत् यामि, तत् आशास्ते), उस परम प्रेम और रक्षा की याचना करता और चाहता हूं कि तू (अहेडमानः) प्रजा के प्रति अनादर और क्रोध न करता हुआ (इह बोधि) यहां अपना कर्त्तव्य समझ और (नः) हम प्रजाओं के (आयुः) जीवनों को (मा प्र मोषीः) अपहरण मत कर, व्यर्थ को प्रजा को पीड़ित मत कर।

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा
स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥ ५० ॥

सूर्योऽग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(स्वः न) सूर्य के समान (घर्मः) तेजस्वी पुरुष शत्रुओं का तापदायक होकर (स्वाहा) उत्तम यश को प्राप्त हो। (स्वः न) सूर्य के समान (अर्कः) अर्चनीय, स्तुत्य पुरुष (स्वाहा) उत्तम पद को प्राप्त हो। (स्वः न ज्योतिः) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से युक्त पुरुष (स्वाहा) उत्तम पद को प्राप्त हो। (स्वः न सूर्यः) सुखमय सूर्य के समान सबका प्रेरक होकर राजा (स्वाहा) उच्च पद और उत्तम यश को प्राप्त हो। शत० ९।४।२।१९–२३॥

अग्निरर्कः असौ आदित्योऽश्वमेधः तौ सृष्टौ नाना इवास्तां तौ देवाः आहुतिभिः समतन्वन्त्समदधुः ॥ शत० ९।४।३।१८॥ असौ वा आदित्यो घर्मः। अमुं तदादित्यं अस्मिन् प्रतिष्ठापयति। शत० ९।४।२।१९॥

अर्थात् अग्रणी नेता में सूर्य के गुणों का प्रतिपादन किया है। उसको सूर्य के समान बतलाया है।

भौतिक पक्ष में—(घर्मः) ताप (अर्कः) अग्नि (शुक्रः) वायु (ज्योतिः) विद्युत् (सूर्यः) सूर्य ये सब (स्वाहा) उत्तम विज्ञानपूर्वक क्रिया और प्रयोगों द्वारा (स्वः) सुखजनक हों। अथवा सूर्य के समान

शत्रुसंतापक, अग्नि के समान तेजस्वी, वायु के समान शुद्ध, विद्युत् के समान दीप्तिमान्, सूर्य के समान प्रवर्तक होकर राजा (स्वः) सबका सुखकारी हो। (स्वाहा) उत्तम यश प्राप्त करे।

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम्।
तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम्॥

अग्निर्देवता। स्वराडार्षी। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(घृतेन) घृत द्वारा जिस प्रकार (अग्निम्) अग्नि को यज्ञ में आधान किया जाता है उसी प्रकार (शवसा) बल पराक्रम के द्वारा (वयसा) व्यापक सामर्थ्य और ज्ञान से (बृहन्तम्) महान् (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में उत्कृष्ट, (सुपर्णम्) उत्तम पालन करने वाले साधनों से सम्पन्न, (अग्निम्) ज्ञानवान् एवं शत्रुओं के संतापक अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी पुरुष को (युनज्मि) राष्ट्र के उच्च पद पर नियुक्त करता हूं। (तेन) उसके द्वारा स्वयं हम लोग (उत्तमम्) उत्तम, सर्वोत्कृष्ट (नाकम्) दुःखों से रहित (स्वः) सुखों से समृद्ध राष्ट्र को (अधिरुहाणाः) बराबर प्राप्त होते हुए, (ब्रध्नस्य) महान्, सर्वाश्रय राष्ट्र के (विष्टपं) भीतर प्रविष्ट लोकों के पालक या पीड़ा ताप आदि दुःखों से रहित स्थान को (गमेम) प्राप्त होवें। शत० ६। ४। ४। ३॥

परमात्मा के पक्ष में—(दिव्यं, सुपर्णं) दिव्य तेजोमय, उत्तम ज्ञानवान्, (वयसा बृहन्तम्) सामर्थ्य से महान् (अग्निम्) ज्ञानमय आत्मा को (घृतेन शवसा) कान्तिमय बल द्वारा (युनज्मि) परमेश्वर के साथ योगाभ्यास द्वारा लगाता हूं। (तेन) हम (नाकम् उत्तमं स्वः रुहाणाः) सुखमय उत्तम स्वर्गमय लोक को प्राप्त होते हुए (ब्रध्नस्य विष्टप)

'तेन त्वेम०' इति काण्व०।

आदित्य के समान तेजोमय परमब्रह्म के क्लेश तापरहित स्वरूप को प्राप्त करें।

भौतिक पक्ष में—मैं शिल्पी (घृतेन शवसा) चिकने पदार्थ भी, तैल रूप बल से इस (अग्निम्) अग्नि विद्युत् को विमान आदि में जोड़ता हूँ जो (सुपर्णम्) उत्तम गमन साधन चक्र और पक्षों से युक्त (वयसा वृहन्तम्) बल में बड़ा है। उससे हम महान् आकाश में गमन करें।

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्या रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः

अग्निर्देवता। विराड् आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष[1] (इमौ) ये दोनों (अजरौ) कभी नाश न होने वाले (पतत्रिणौ) पक्षी के पक्षों के समान युद्ध में आगे बढ़ने वाले सेना के दो पहलू हैं। (याभ्याम्) जिनसे तू (रक्षांसि) विघ्न बाधा करने वाले शत्रुओं को (अपहंसि) मार भगाता है (ताभ्याम्) उन दोनों के बल पर (सुकृताम्) उत्तम आचारवान् पुण्यात्मा पुरुषों के (लोकम्) लोक, स्थान को प्राप्त हों (यत्र) जहां (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न, ज्येष्ठ (ऋषयः) ऋषि ज्ञानद्रष्टा लोग (जग्मुः) प्राप्त होते हैं। शत० ६।४।४।४॥

अथवा—सभा में वाद-विवाद करने वाले दो पक्ष हैं जिनसे (रक्षांसि) बाधक तर्कों का नाश किया जाता है उन द्वारा ही (सुकृताम्) उत्तम विद्वानों के उस (लोकम्) साक्षात् दृष्ट सिद्धान्त तक हम पहुँचें जिसपर (प्रथमजाः) पूर्व उत्पन्न (पुराणाः) पुरातन (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा लोग (जग्मुः) पहुँचे हैं।

अध्यात्म में—ये दो (पक्षौ) स्वीकार करने योग्य, कार्य कारणरूप या आत्मा परमात्मा रूप (अजरौ) अजर अविनाशी (पतत्रिणौ) उच्च

५२—०'पक्षा अजरौ'० इति काण्व०॥

लोक में ले जाने वाले हैं। जिनके बल पर हे (अग्ने) ज्ञानी पुरुष ! तू (रक्षांसि) बाधक पाप दोषों को नष्ट करता है। उन दोनों के बल पर हम भी (सुकृताम् उ लोकं) सत्पुरुषों के द्रष्टव्य आत्मस्वरूप परमानन्द को प्राप्त हों (यत्र) जहां (ऋषयः) वेदार्थ वेत्ता और विद्वान् जन (प्रथमजाः) सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म परमेश्वर में दीक्षित होकर पहुंचते हैं।

इन्दुर्दक्षः श्येन ऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽआ निषत्तो नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥४३॥

इन्दुर्देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(इन्दुः) चन्द्र के समान शीतल स्वभाव, ऐश्वर्यवान्, (श्येनः) बाज के समान पराक्रमी, (दक्ष) बलवान्, प्रज्ञावान्, (शकुनः) शक्तिशाली, (हिरण्यपक्ष) सुवर्ण आदि हित और रमणीय पदार्थों को ग्रहण करने हारा, (ऋतावा) सत्य कर्म और आचरण वाला, धर्मशास्त्र का स्वामी (भुरण्युः) प्रजा का पालक राजा (महान्) महान् होकर (सधस्थे) अपने अनुयायियों सहित एकत्र राज्यासन या सभाभवन में (ध्रुव) ध्रुव, स्थिर होकर (आ निषत्तः) आसन पर विराजता है। हे राजन् ! (ते) तुझे (नम अस्तु) नमस्कार हो। (मा) मुझ प्रजाजन को (मा हिंसी) मत मार। शत० ६ । ४ । ४ । ६ ॥

परमेश्वर के पक्ष में—(इन्दुः) चन्द्र के समान प्रेमार्द्र, (श्येन.) ज्ञानवान्, (ऋतावा) सत्य ज्ञानवान्, (हिरण्यपक्षः) तेजस्वी, (शकुनः) सर्वशक्तिमान् (भुरण्युः) पालक पोषक, महान् (सधस्थे) सदा साथ (ध्रुवः) नित्य अविनाशी होकर विराजमान है। तुझे नमस्कार है। तू मुझे पीड़ित मत कर।

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् ।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥ ४४ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार (दिव. मूर्धा) सूर्य आकाश का और तेजोमय पिण्डों या प्रकाश का (मूर्धा) उत्तमाङ्ग, शिर के समान सर्वोच्च है उसी प्रकार (दिव) ज्ञानवान् पुरुषों की बनी राजसभा के (मूर्धा) मूर्धा शिरोमणि, प्रधान, सर्वोच्च पद पर विराजमान (अग्नि) है । तू (पृथिव्या नाभि) पृथिवी के नाभि के समान समस्त पृथ्वी के राज्य का प्रबन्ध करनेवाला राष्ट्र का मुख्य केन्द्र है । तू (अपाम् ऊर्क्) जलों के उत्कृष्ट रस अन्न के समान (अपाम्) आप्त प्रजा जनों का (ऊर्क्) सर्वोत्तम बलरूप, पराक्रमी, सार रूप है । (ओषधीनाम्) वीर्यवती ओषधियों के बीच में सोम के समान तेजस्विनी क्षात्र सेनाओं में सेनापति है । तू (विश्वायु) वायु के समान समस्त प्रजाओं का जीवनप्रद, (शर्म) गृह के समान शरण और (सप्रथा.) समान रूप से सर्वत्र विख्यात, एवं सर्वत्र महान् है । (पथे) सब के मार्गस्वरूप, सबको उद्देश्य तक पहुंचाने वाले तुझे (नमः) नमस्कार हो । तुझे प्रजा के वश करने का बल अधिकार प्राप्त हो । परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है । शत० ६ । ४ । ४ । १३ ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! सभापते ! तू (विश्वस्य मूर्धन् अधि तिष्ठसि) सूर्य के समान समस्त राष्ट्र के शिरपर अधिष्ठाता रूप से विराजता है । तू (श्रित) समस्त प्रजाओं द्वारा और आश्रय सेवित है। (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (समुद्रे) अन्तरिक्ष के समान व्यापक सर्वोपकारक परमेश्वर में मग्न हो। (अप्सु आयु) प्रजाओं के उपकार के कार्यों में तेरा जीवन

व्यतीत हो । तू (अपः दत्त) ज्ञानों का और उत्तम कर्मों का उपदेश कर । अथवा (अपः दत्त) राष्ट्र में मेघ के समान कृषि आदि के निमित्त जलों का प्रदान कर और (उदधिं भिन्त) जिस प्रकार वायु जल धारण करनेवाले मेघ का भेदन करता है उसी प्रकार तू भी (उदधिम्) जल के धारण करने वाले स्रोतों और नदी-प्रवाहों को काट २ कर राष्ट्र में नहरों के रूप में बहा । (दिवः) सूर्य से या आकाश से (पर्जन्यात्) मेघ से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष गत वायु से और (पृथिव्याः) पृथिवी से तथा (ततः) जहां कहीं भी जल हो वहां से प्रजा को जल प्राप्त करा और (नः) हमें (वृष्ट्या) मेघ के समान समस्त सुखों की वृष्टि से (अव) पालन कर । शत० १ । ४ । ४ । ११ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः ।
तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥ ४६ ॥

गालव ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(यज्ञः इष्टः) जो प्रजापालन रूप यज्ञ एवं प्रजापति, राजा स्वयं (भृगुभिः) परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों और शत्रुओं को भून देने वाले वीरों द्वारा (इष्टः) सम्पादित किया जाता है वह (वसुभिः) वसु नामक विद्वानों, एवं प्रजा को बसाने हारे ऐश्वर्यवान् राजाओं द्वारा (आशीर्दाः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है । हे (द्रविण) ऐश्वर्य ! (तस्य) उस (इष्टस्य) सुसम्पादित (प्रीतस्य) सब के प्रिय इस यज्ञ के द्वारा तू (नः) हमें (आगमेः) आ, प्राप्त हो ।

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टं हविः ।
स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥ ४७ ॥

गालव ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(आहुतः) आहुति द्वारा बढ़ाये गये (अग्निः) अग्नि के

समान तेजस्वी, सत्कार प्राप्त विद्वान्, अग्रणी राजा (इह) अंदर सत्कार प्राप्त करके (नः) हमें (पिपर्तु) पालन करे। और (इह) हमें यथेष्ट (हविः) अन्नादि पदार्थों से (पिपर्तु) पूर्ण करे। (देवेभ्यः) विजिगीषु और ज्ञानप्रद, द्रष्टा विद्वान् पुरुषों के निमित्त (इदम्) यह (नमः) अन्न आदि सत्कार (स्वगा) अपने हितैषी पुरुषों को प्राप्त हों या वह अनायास, बिना मांगे आप से आप उन्हें प्राप्त हो।

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

४८–६४ विश्वकर्मा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यत्) जो कर्त्तव्यकर्म और ज्ञान (आकूतात्) मन की प्रवृत्ति के भी पूर्व आत्मा के भीतर विद्यमान सत्य उत्साह या तरंग विद्यमान होती है उससे (हृदः) हृदय से (मनसः) मनन करनेवाले अन्तःकरण से (वा) और (चक्षुः) आंख आदि बाह्य इन्द्रियों से (सम्भृतम्) सम्यक् प्रकार से प्राप्त हो और सञ्चित हो (तत्) उसके (अनु) अनुकूल ही (सुकृताम्) पुण्य आचारवान् सत् पुरुषों के (लोकम्) दर्शन योग्य परम उस सुखधाम स्थान और स्थिति को (प्र इत) प्राप्त करो (यत्र) जहां (प्रथमजाः) हम में उत्कृष्ट पद को प्राप्त, (पुराणाः) हम से पहले उत्पन्न बुजुर्ग (ऋषयः) वेदार्थ के ज्ञाता और द्रष्टा (जग्मुः) पहुंचे हैं। शत० ९ । २ । ३ । ४९ ॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽअत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥४९॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

४८—अतो अष्टौ वैश्वकर्मणानि।

४९—'सधस्थ' इति उवटाभिमतः।

भा०—हे (सधस्थ) एकत्र विद्वानों के बैठने के स्थान ! सभाभवन एवं सभाभवन में विराजमान विद्वान् राज्य-शासक जनो ! (जातवेदा) ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले समृद्ध पुरुष (यम्) जिस (शेवधिम्) धन कोश को (आवहात्) राष्ट्र में या व्यापारादि प्राप्त करके राजकोष में जमा कराते हैं (एतम्) उसको (ते) तेरे अधीन (परिददामि) प्रदान करता हूं। (यज्ञपति.) यज्ञ रूप राष्ट्रव्यवस्था का पालन करने वाला राजा (वः अनु आगन्ता) आप लोगों के अनुकूल ही चलेगा। (अत्र) यहां, अब (तम्) उसको ही (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट विविध राष्ट्र कार्यों के रक्षक पद पर स्थित हुआ (जानीत स्म) जानो। शत० ६।२।१।४६॥

अध्यात्म में—हे जिज्ञासुओ ! (यं शेवधिं) जिस ज्ञान के खज़ाने को (जातवेदाः) परमेश्वर या वेदार्थवित् विद्वान् धारण करता है वह मैं (ते परिददामि) तुम जिज्ञासु जन को प्रदान करता हूं। (यज्ञपति.) उपास्यदेव की उपासना का पालक, विद्व पुरुष (व.) तुमको (परमे व्योमन्) परमात्मा के विषय में (अनु आगन्ता) जिस अनुकूल उचित धर्मज्ञान का उपदेश करे (तं जानीत स्म) उसका ज्ञान करो।

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् विजिगीषु, राजा, लोगो ! आप लोग (एत) इस अभिषिक्त सम्राट् को ही (परमे व्योमन्) परम सर्वोच्च रक्षक पद पर (जानाथ) जानो। हे (सधस्था) साथ ही एक सभा-भवन में विराजने वाले राजसभासद् पुरुषो ! (अस्य) इस (रूपम्) सबके प्रति प्रिय लगने वाले स्वरूप, अधिकार और कर्तव्य को (विद)

६० — ०'कृणवाथा०' इति काण्व० ।

जानो और उसको जनाओ। (यद्) जब भी (देवयानैः) विद्वानों और राजाओं द्वारा गमन करने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आगन्छात्) वह प्राप्त हो, तब (इष्टापूर्ते) अपने इष्ट, यज्ञ, दान आदि परोपकार के कार्य और आपूर्त' कूप तड़ाग आदि प्रजा के हितकारी कार्यों को (अस्मै) इसके निमित्त (आवि कृणवाथ) प्रकट करो। शत० ६। २। १। ४७॥

परमात्मा के पक्ष में—(एनं परमे व्योमन् जानाथ) हे विद्वानो ! इस परमेश्वर को परम स्थान में जानो। इसके रूप का साक्षात् करो। (देवयानैः) योगाभ्यास आदि देवयान मार्गों से वह तुम्हें साक्षात् हो, (अस्मै) परमेश्वर के प्रसन्न करने के लिये श्रद्धा से श्रौत स्मार्त कार्यों को प्रकट रूप से करो।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳫसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ६१
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे॥ ६२॥

भा०—६१,६२ दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० १५।५४,५५॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे॥ ६३॥

यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(प्रस्तरेण) प्रस्तर, (परिधिना) परिधि, (स्रुचा) स्रुक्, (वेद्या) वेदि, (बर्हिषा) बर्हि, कुश (ऋचा) ऋग् मन्त्र, इन पदार्थों से जैसे यज्ञ का क्रियाकाण्ड सम्पादित किया जाता है उसी प्रकार (प्रस्तरेण) प्रस्तर, उत्तम रीति से राष्ट्र को विस्तार करने में कुशल, व्यवस्थापक क्षत्रिय, या क्षात्र बल, (परिधिना) परिधि अर्थात् राष्ट्र को सब ओर से धारण करने और रक्षा करने वाले वीर पुरुष, (स्रुचा) स्रुक् अर्थात् विद्वान्

स्त्री-जन, गवादि पशु, वाणी अथवा प्रजाजन या तेजस्विनी सेना, (वेदि) वेदि, पृथिवी (स्रुचा) वाणी, ज्ञानमय व्यवस्था और धर्मशास्त्र, (बर्हिः) और प्रजाजन इन पदार्थों से (इमं) इस (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत यज्ञ को (स्वः गन्तवे) सुख प्राप्त करने के लिये (देवेषु) विद्वान् विजयी, भूपति लोगों के आश्रय पर (नय) चला। शत० ९।२।३।१४॥

(१) 'प्रस्तर'—यजमानो वै प्रस्तरः। श० २।३।४।३।१६॥ क्षत्रं वै प्रस्तरः। श० १।३।४।२०॥

(२) परिधिः'—दिशः परिधयः। ऐ० २।८॥ इमे लोकाः परिधयः। श० ३।८।१८।४॥ गुप्तये वा अभितः परिधयो भवन्ति। श० १।३।४।२८॥

(३) 'स्रुक्'—वाग् वै स्रुक्। श० ६।३।१।८॥ योषा हि स्रुक् श० १।४।१।४॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७।४।१।३६॥ इमे वै लोकाः स्रुच। तै० ३।३।१।२॥

(४) 'वेदिः'—पृथिवी वेदिः। ऐ० ५।२८॥

(५) 'स्रुक्'—वाग् इति स्रुक्। तै० ३।४।२३।४॥

(६) 'बर्हिः'—प्रजा वै 'बर्हिः। कौ० ५।६॥ क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः।' श० १।३।४।१०॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

ऋषी देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(यत्) जो (दत्तम्) दिया जाय, (यत्) जो (परादानं) दूसरों से लिया जाय (यत् पूर्तं) जो प्रजा के उपकार के लिये भी कूप, तड़ाग आदि बनवाये जावें, (याः च) और जो भी (दक्षिणाः) कर्म और परिश्रम के बदले रूप वेतन पुरस्कार आदि दिये जावें (तत्) उन सब को (वैश्वकर्मणः) विश्वकर्मा, राज्य के समस्त उत्तम कर्मों के प्रवर्तक राजा

पद पर विराजमान (अग्निः) विद्वान् नेता ही (देवेषु) विद्वान् द्रष्टा पुरुषों के आधार पर (न) हम में (इ.) सुख की वृद्धि के लिये (दधत्) स्थापित या नियत करे । शत० ९ । ५ । १ । ४६ ॥

अर्थात् लेन देन का व्यवहार मकान, कूए बागीचे आदि और वेतन आदि सब राजकीय व्यवस्था में रहें उनका देना लेना, स्वामित्व आदि सरकारी कागज़ों और स्टाम्पों पर विद्वान् शासकों के अधीन स्थिर रूप से हों, जिससे प्रजा सुखी हों ।

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

भा०—(यत्र) जिस राज्य में से (मधोः) मधु के समान मधुर अन्न और जल की (घृतस्य च) और घी, दूध की (याः) जो (धाराः) धाराएं होती हैं वे कभी भी (अनपेताः) जुदी न हों । इसी प्रकार (मधोः) शत्रु या दुष्ट पुरुषों के पीड़न, (घृतस्य च) घृत, तेज, पराक्रम की (धारा) राज्य को धारण करनेवाली शक्तियां (यत्र) जिस राष्ट्र से कभी (अनपेता) जुदा न हों (तत्) ऐसे (स्वः) सुखकारी राज्य को । वैश्वकर्मणः अग्निः) राष्ट्र के सब उत्तम कर्मों के करनेवाला प्रजापति अग्रणी, विद्वान् शासक (नः देवेषु) हमारे विद्वानों के आधार पर (दधत्) स्थापित करे । शत० ९ । ५ । १ । ४७ ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । अग्निर्देवता ।

भा०—मैं सम्राट् (जन्मना) जन्म अर्थात् स्वयं अपने प्रकट हुए स्वरूप से एवं स्वभाव से ही (अग्निः अस्मि) अग्नि के समान तीव्र, दुष्टों का संतापजनक और (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ पर अधिकारी रूप से विद्यमान, एवं ऐश्वर्यवान् और समस्त पदार्थों को जानने हारा

(अस्मि) होऊं। (घृतम्) जिस प्रकार अग्नि में घी पड़ने से वह प्रकट होकर प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (घृतम्) तेज ही (मे) मेरा (चक्षुः) चक्षु के समान स्वरूप को प्रकट रूप से दिखाने वाला हो। (अमृतम्) अन्न आदि हवि जिस प्रकार अग्नि के मुख में दिया जाता है उसी प्रकार (मे आसन्) मेरे मुख में, मेरे मुख्य पद के निमित्त (अमृतम्) अखण्ड अविनाशी, ऐश्वर्य या अमृत, अन्नादि भोग्य पदार्थ हो। मैं (अर्कः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिधातु) प्रज्ञा, शक्ति, उत्साह तीनों से राष्ट्र को धारण करने में समर्थ, (रजसः विमानः) लोकों का विविध रूपों से परिमाण और आदर करने वाला, (अजस्रः) शत्रुओं से न पराजित होने वाला (घर्मः) सूर्य के समान अति तेजस्वी, (हविः) राष्ट्र को अपने वश में लेने में समर्थ (नाम) सबको नमानेवाला (अस्मि) होकर रहूं।

ऋचो नामास्मि यजूꣳषि नामास्मि सामानि नामास्मि।
ये ऽअग्नयः पाञ्चजन्या ऽअस्यां पृथिव्यामधि।
तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ ६७ ॥

पूर्वोक्ते ऋषिदेवते। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—(ऋचः नाम अस्मि) ऋचाएं मैं हूं। (यजूंषि नाम अस्मि) यजुर्गण मैं हूं। (सामानि नाम अस्मि) सामगण मैं हूं। अर्थात् राष्ट्र की समस्त आज्ञाएं मेरे अधीन हों, वे मेरी प्रतिनिधि हों। राष्ट्र के समस्त 'यजु' परस्पर संगत राष्ट्र-कर्म मेरे अधीन हों। 'साम' अर्थात् उनमें सौहार्द, परस्पर समता और एकता के सब स्वरूप मेरे अधीन हों। शत० ९।५।१।२१॥

हे राजन्! (ये) जो (अस्यां पृथिव्याम् अधि) इस पृथिवी पर (पाञ्चजन्याः) पांचों प्रजा जनों के हितकारी (अग्नयः) ज्ञानवान् तेजस्वी नेता पुरुष हैं (तेषाम्) उन सब में (त्वम् उत्तमः) तू सब में श्रेष्ठ है। तू (नः) हमारे (जीवातवे) दीर्घ जीवन के लिये (प्र सुव) उत्तम रीति से राष्ट्र का संचालन कर।

(१) 'यजूंषि'—यज्ञो ह वै नाम तद् यद् यजु । श० ४।६। ७। १३॥ एष हि यन् एव इद सर्वं जनयति । यन्तम् इद अनु प्रजायते तस्माद् 'यजु । एतमनुजवते तस्मात् यजु । श० १० । ३ । ५ । २ ॥ मनो यजूंषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥ पितरो विश यजूंषि वेद । श० १३।४।३।६ ॥ राष्ट्र स्वय यजु है । उसके समस्त अग 'यजु' हैं, राजा स्वय नियमानुकूल राज्य बनाता है । उसके नियमपूर्वक चलते हुए उसके अनुसार यह राज्य बनता है । अत व शासक 'यजु' हैं । राष्ट्र के पालक 'पिता' हैं उनके कर्त्तव्यों का बोधक वेद 'यजु' है ।

'सामानि'—तद् यत् समन्तितस्मात् साम । जै० उ० ३।१।२३।६।७ ॥ साम्राज्य वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ । धर्म इन्द्रो राजा "देवा विश सामानि वेद श० "॥

परमेश्वर पक्ष मे—(अग्निरस्मि जातवेदा) वेदों का उत्पादक मैं स्वभाव से अग्नि, ज्ञानवान् हू । (घृत मे चक्षु) तेज, सूर्य मेरा चक्षु है । (अमृतम् मे आसन्) अमृत अविनाशी मोक्षानन्द मेरा मुख मुख्य स्वरूप है । (अर्क) मै अर्चनीय, (त्रिधातु) सत्व रज तम तीनों का धारक, (रजस विमान) लोकों का निर्माता, (अजस्र) अविनाशी (घर्म) तेजस्वी, (हवि नाम) सर्वव्यापक अन्नरूप हू । मै (ऋच नाम०) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हू । तीनों वेद मेरे ही रूप हैं । हे परमेश्वर ! (स पाञ्चजन्या अग्नय०) जो पांचों उत्पन्न भूतों में प्रवर्तक बडे बडे विशाल प्रकृति में हैं उन सब में तू सब से श्रेष्ठ है तू हम जीवों के दीर्घ जीवन के लिये उत्तम उपाय कर ।

वाजहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥ ६८ ॥

६८—७४ इन्द्रा विश्वामित्रश्च ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् । गायत्री षड्ज ॥

भा०—(वार्त्रहत्याय) वर्तमान शत्रु का हनन करने में समर्थ और (वृत्रतायाय) सेनाओं के विजय करने वाले (शवसे) बल, सेनाबल के शासन करने के लिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! (त्वा) तुझे हम (आवर्तयामसि) नियुक्त करते हैं । अग्रणी नेता पद पर स्थापित करते हैं । शत० ६ । ५ । २ । ४ ॥

सहदानुम्पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६६ ॥
इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषी । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत प्रजाजनों से सत्कार को प्राप्त करने हारे ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! शत्रुओं विदारक सेनापते ! (सहदानुम्) अपने बल से प्रजाजनों का खण्डन या नाश करने वाले या अपने सहचारी का नाश करने वाले, (क्षियन्तम्) समीप बसे, (कुणारुम्) कुत्सित वचन बोलने वाले दुष्ट पुरुष को तू (अहस्तम्) बे हाथ का, निहत्था, नि.शस्त्र करके (संपिणक्) अच्छी प्रकार कुचल डाल । जिससे वह समीप के लोगों को हानि न पहुंचा सके । और (वृत्रं) घेरनेवाले, (पियारुम्) अग्रणी अथवा हिंसाकारी (अभिवर्धमानम्) सब ओर बढ़नेवाले दुष्ट पुरुष को (अपादम्) बे पाँव का लंगड़ा करके (तवसा) अपने बल से (जघन्थ) विनष्ट कर । जिससे वह राष्ट्र में बढ़ कर प्रजाओं का नाश न करे ।

वि न॑ इन्द्र मृधो॑ जहि नीचा य॑च्छ पृतन्यतः ।
यो ऽअस्माँ२ऽ अ॑भिदास॒त्यध॑रं गमया तमः ॥ ७० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८ । ४४ ॥ शत० ६,।५ । २ । ५ ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रूंस्ताढि वि मृधो नुदस्व
नृमेधः. प्राणे भारद्वाज ऋषय ऋषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—जिस प्रकार (कुचर) ऊचे, नीचे, खाई, वन, पर्वत, आदि सभी स्थानों पर विचरने वाला (भीम मृग न) भयानक पशु, सिंह बड़े जन्तुओं का नाश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) शत्रुओं के विनाशक इन्द्र ! तू भी (भीम) अति भयानक (मृग) शत्रुओं को खोज लेने वाला, (कुचर) गढ, नगर, वन, पर्वत, आदि सर्वत्र विचरने में समर्थ (गिरिष्ठा) पर्वतों मे निवास करने हारा होकर भी (परावत) दूर २ के देशों तक (आ जगन्थ) पहुचता है और (सृकम्) शत्रु के शरीरों में घुस जाने वाले (पविम्) पाप के शोधक वज्र को (सशाय) खूब तीक्ष्ण करके (तिग्मम्) खूब तीक्ष्णता से (परस्या) शत्रु सेना के बीच मे विद्यमान (शत्रून्) शत्रुओं को (वि ताढि) विविध प्रकारों से विनाश कर और (मृध) सग्रामकारी सेनाओं को (वि नुदस्व) पीछे भगा, तितर बितर कर । शत० ६ । ५ । २ । ५ ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥

इन्द्र ऋषि । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों में अधिक प्रतिष्ठित, (अग्नि) अग्नि या सूर्य के समान तेजस्वी (परावत) दूर देश से भी (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ प्र यातु) आवे और (न) हमारी (सु-स्तुती) उत्तम स्तुतियों को (उप) श्रवण करे । शत० ६।५।२।६॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥

इन्द्रकुत्सौ ऋषी । वैश्वानरो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(दिवि) द्यौलोक, महान् आकाश में (पृष्ट) प्राण, बल सेचन करने में समर्थ, सूर्य के समान तेजस्वी और (पृथिव्या पृष्ट) पृथिवी में मेघ रूप से जल सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान और (पृष्ट)

रस वीर्य सेचन करने में समर्थ (विश्वा ओषधी) समस्त ओषधियों में प्रविष्ट अग्नि के समान जो (अग्नि) अग्रणी नेता (दिवि) राजविद्वत्सभा मे (पृथिव्या) पृथिवीवासी प्रजा में और (विश्वा ओषधी) समस्त तेजस्विनी सेनाओं में (आ विवेश) राजा रूपमें विद्यमान है वह (वैश्वानर) समस्त विश्व राष्ट्र का नेता (सहसा) अपने शत्रु पराजय करने वाले बल से (पृष्ट) सर्वत्र ज्ञात, एवं बलवान् सर्वोत्तम (अग्नि) अग्रणी पुरुष (स) वह (न) हमें (दिवा) दिन और (नक्तम्) रात को भी (रिष) हिंसक लोगों से (पातु) बचावे । शत० ६ । ४ । २ । १ ॥

'पृष्ट'—पृषु वृषु सेचने । भ्वादि । पृष्ट पृष्ट वृषभश्चेति यावत् । कर्त्तरि क्त ।

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७४॥

इन्द्रभरद्वाजऋषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! सेनापते ! (तव ऊती) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (तम् कामम्) उस २ अभिलाषा को (अश्याम) यथेच्छ भोग करें । हे (रयिव) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हम (सुवीरम्) उत्तम वीरों और वीर पुत्रों से युक्त (रयिम्) राष्ट्र समृद्धि का (अश्याम) भोग करें । (अभि वाजयन्त) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए (वाजम्) विजय से प्राप्त ऐश्वर्य का हम (अश्याम) भोग करें । (अभि वाजयन्त) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए (वाजम्) विजय से प्राप्त ऐश्वर्य का हम (अश्याम) उपभोग करें, हे (अजर) अविनाशिन् ! (ते) तेरे (अजर) अविनाशी (द्युम्नम्) यशस्य ऐश्वर्य का हम (अश्याम) भोग करें । शत० ६ । ४ । २ । ७ ॥

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ७५ ॥

ऊर्ध्वसद्मा ते वा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी नेतः ! विद्वन् ! (ते) तेरे (काम्यम्) अभिलषित पदार्थ को (अद्य) आज (वयम्) हम (उत्तानहस्ताः) उत्तान हाथों से (नमसा) नमस्कारपूर्वक (उपसद्य) तेरे समीप पहुंच कर (यशिम) प्रदान करते हैं। और (देवान्) विजिगीषु वीर राजगण को आदर से प्राप्त होता, फिर (मन्मना) मननशील (यजिष्ठेन) अति आदर, प्रेम से युक्त (मनसा) मनसे (विप्र) मेधावी, ज्ञानवान् होकर तू (यक्षि) प्राप्त होता है। शत० ६। ५। २। ६॥

भामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

भा०—(भामच्छत्) सूर्य के समान तेज को धारण करनेवाला और समस्त स्थानों पर वश करने वाला, (अग्निः) अग्रणी नेता (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा, (देव) विज्ञान द्रष्टा, (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान् (बृहस्पति) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् महामात्य और (सचेतसः) प्रज्ञावान् शुभ चित्त वाले, (विश्वे देवाः) समस्त दानशील विद्वान् पुरुष सब लोग (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिये (नः) हमारे (यज्ञं प्रावन्तु) यज्ञ राष्ट्र और प्रजापालक की रक्षा करें। शत० १०।१।३।८॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३ । ५२ ॥ हे (यविष्ठ) सब से अधिक बलिष्ठ सभापते ! राजन् ! तू (दाशुषः) दानशील (नॄन्) प्रजाजनों को (पाहि) पालन कर। उनके (गिरः) वाणियों को (शृणुधि) श्रवण कर। (उत) और (त्मना) स्वयं (तोकम्) उनके पुत्रादि अपत्यों की (रक्ष) रक्षा कर। शत० १०। १। ३। ११॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ अथैकोनविंशोऽध्यायः ॥

म० १९—२१ सौत्रामणी ॥ तत्र प्रजापतिरश्विनौ सरस्वती च ऋषयः ॥

॥ ओ३म् ॥ स्वाद्वीं त्वां स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन । मधुमतीम्मधुमता सृजामि सꣳसोमेन । सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

सुरा सोमश्च देवते । निचृत् शक्वरी । धैवत ॥

भा०—(स्वाद्वीं स्वादुना) जिस प्रकार उत्तम स्वादयुक्त ओषधि को स्वादु उत्तम रस से मिलाया जाता है । और (तीव्रां तीव्रेण) तीव्र प्रभाव करनेवाली ओषधि को तीव्र रस से मिलाया जाता है और (अमृताम्) अमृत, दीर्घ जीवन देनेवाली ओषधि को (अमृतेन) अमृतमय, दीर्घ जीवन प्रद रस से मिलाया जाता है । उसी प्रकार (स्वाद्वीम्) उत्तम मधुर रस देने वाली (तीव्राम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाली, (अमृताम्) अमृत, सदा जीवनदायिनी और (मधुमतीम्) मधुर अन्नादि समृद्धि से युक्त (ताम्) उस राज्य सम्पत्ति, नारी और प्रजा को भी मैं विद्वान् महामात्र, राजकर्त्ता पुरुष (स्वादुना) मधुर स्वभाव के, (तीव्रेण) तीक्ष्ण स्वभाव के (अमृतेन) अमृत, शत्रु को प्रहार करके मारने और स्वयं न मरने वाले स्वयं चिरजीवी, (मधुमता) और मधुर गुणों से युक्त (सोमेन) सोम, स्वामी, आज्ञापक पति और राजा के साथ (सं सृजामि) संयुक्त करता हूं । हे पुरुष ! अधिपते ! राजन् ! तू (सोमः असि) सोम, प्रेरक, ऐश्वर्यवान् अभिषेक करने योग्य है । (अश्विभ्यां) सूर्य जिस प्रकार दिन और रात्रि या द्यौ और पृथिवी के लिये तपता है और मुख्य ओषध जिस प्रकार प्राण और अपान के हित के लिये पकाया जाता

है उसी प्रकार तू भी (अश्विभ्या) माता पिता और राष्ट्र के नर नारी दोनों या प्रजा और राजा, राष्ट्र और राज पद दोनों के लिये (पच्यस्व) परिपक्व हो। हे पुरुष! तू दम्पति भाव के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्य वाला हो। या हे वीर्यवन्! (सरस्वत्यै पच्यस्व) सरस्वती, वेदवाणी और ज्ञानमाज्ञा के लिये उसे शत्रु, मित्र, उदासीन, एवं राष्ट्र और सब पर अच्छी प्रकार चलाने के लिये (पच्यस्व) अपने को परिपक्व कर। गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष! तू (सरस्वत्यै) प्रेमयुक्त स्त्री के हित के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्यवान् हो। (सुत्राम्णे) उत्तम रीति से प्रजा के पालन करनेवाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक (इन्द्राय) इन्द्र, राजा पद के लिये (पच्यस्व) अपने को परिपक्व कर, तैयार कर, अपने बल, वीर्य को दृढ़ कर। सगति देखो अथर्व० १६। ३१। १४॥ शत० १२।७।३।४॥

(१) 'सौत्रामणी'—स यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स सौत्रामण्या यजेत। पाप्मानमेव तद् द्विषन्तं भ्रातृव्यं हत्वा इन्द्रियं वीर्यमस्य वृङ्क्ते। तस्य शीर्ष्णं छिन्नात् लोहितमिश्रः सोमोऽप्रतिष्ठत्। तस्मादबीभत्सन्त। त एतदन्धसो विपानमपश्यन् सोमो राजा अमृतं सुत इति। तेन एनं स्वदयित्वा आत्मन् अधत्त। शत० १२। ७। ३। ४॥

जो शत्रु वाला राजा हो वह सौत्रामणी यज्ञ करता है। शत्रुरूप द्वेषी पापा को मार कर वह उसके ऐश्वर्य वीर्य को हर लेता है। उसके शिर कटने पर रुधिर से मिला 'सोम' अर्थात् राजपद, ऐश्वर्य रहता है। उसको देख लोग ग्लानि करते हैं। तब विद्वान् 'सोमपान' अर्थात् राष्ट्र के पालन के ज्ञान का दर्शन करते हैं कि सोम स्वयं राजा है। 'सुत' अभिषिक्त सोम राजा अमृत के समान है। उस राजपद में उस राजा को अधिक आनन्ददायक बना कर वह अपने में धारण करता है।

(२) सोमो वै पय अन्नं सुरा। क्षत्रं वै पयो विट् सुरा पूत्वा पयः पुनाति। विश एव तत्क्षत्रं जनयति। विशो हि क्षत्रं जायते।

सोम दूध के समान है। अन्न और अन्न का विकार सुरा है। क्षत्र-बल दूध है। प्रजा सुरा है। सुरा को छान कर दूध छाना जाता है। अर्थात् प्रजा के बीच में से क्षत्र बल पैदा किया जाता है। क्षत्र-बल प्रजा में से ही पैदा होता है।

(३) प्रजापतेर्वा एतदन्धसी यत् सोमश्च सुरा च। श० ५ । १।२।१०॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १ । ३ । ३ । ४ ॥ यशो हि सुरा। श० १२ । ७ । ३ । १४ ॥ प्रजापालक प्रजापति के दो [illegible] भोग्य ऐश्वर्य हैं सोम और सुरा। राजपद और प्रजागण। पुरुष सोम है। स्त्री सुरा है। यश, ऐश्वर्य सुरा है।

(४) 'सोम'—स्वा वै मे एषा इति तस्मात् सोमो नाम। श० ३ । ६ । ४ । २२ ॥ राजा वै सोमः। श० १४ । १ । ३ । १२ ॥ सोमो राजा राजपतिः। तै० २ । ५ । ७।३ ॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।३।३।४॥ यह मेरी अपनी ही सम्पत्ति है ऐसा समझनेवाला स्वामी 'सोम' है। राजा सोम है। सोम राजाओं का भी स्वामी है। पुरुष सोम है स्त्री सुरा है।

परीतो षिञ्चता सुतᳪ सोमो य उत्तमᳯ हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

[illegible]

भा०—(यः) जो (सोमः) ऐश्वर्यवान् (उत्तमं हविः) उत्तम [illegible] [illegible] धन सम्पत्ति ज्ञान और बल को (दधन्वान्) धारण करता है और (नर्यः) जो पुरुषों का हितकारी होने से (अप्सु अन्तरा) [illegible] के बीच में (सुषाव) अभिषिक्त किया जाता है [illegible] अभिषिक्त [illegible] को (अद्रिभिः) [illegible] [illegible] (इतः) [illegible] (परि सिञ्चत) सब प्रकार से [illegible] । उसका [illegible] करो, उसके [illegible] करो।
[illegible]

सोमरस के पक्ष में—जो उत्तम (हरि) अन्न के ग्राह्य अंश को धारण करता है (नर्य) पुरुष देह को हितकारी है (अप्सु अन्तरा) जलों के बीच शीतल करके (सुषाव) जो आसव रूप से उत्पन्न किया जाता है उनको (परिसिञ्चत) सब प्रकार सेवन करो ।

वायो पूत पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ।
वायो पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

आभूतिऋषिः । सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सोम) सोम, ऐश्वर्यवान् राजा (प्रत्यङ्) पीछे से (वायो) वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रु रूप वृक्ष के शाखा प्रशाखाओं और मूल को भी तोड़ देने में समर्थ सेनापति के (पवित्रेण) कण्टक शोधन करने वाले सेना बल से (पूतः) शुद्ध, पवित्र, शत्रु रहित होकर (अतिद्रुत) अत्यन्त अधिक वेग से आक्रमणकारी हो जाता है वह राजा (इन्द्रस्य)[1] ऐश्वर्यवान् सेनापति या राष्ट्र का भी (युज्य) सदा साथ देने वाला (सखा) मित्र होता है । शत० १२ । ७ । ३ । १० ॥

इसी प्रकार (वायोः पवित्रेण पूतः) प्रचण्ड वायु के समान बलवान् पुरुष के शत्रु रूप कण्टकों से शोधन करने वाले बल से (पूतः) पवित्र या अभिषिक्त या शत्रु रहित होकर (सोम) अभिषिक्त राजा (प्राङ् अतिद्रुत) आगे की तरफ वेग से बढ़ता है वह (इन्द्रस्य युज्य सखा) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रवासी प्रजा जन का सदा का साथी और मित्र हो जाता है।

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥

प्राङ्सोमो० 'प्रत्यङ्सोमो०' इति काण्व० ।

सोमो देवता । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राष्ट्रवासी जन ! (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष की (दुहिता) समस्त ज्ञानरस को दोहन करनेवाली, सर्व कार्यों को पूर्ण करने में समर्थ श्रद्धा, सत्य धारणा ही (ते) तेरे (परिस्रुतम्) सब प्रकार से अभिषिक्त (सोम) ऐश्वर्यवान् राजा को (शश्वता) अनादि नित्य के चले आये, (सना) चिरन्तन, (वारेण) शत्रु के वारण करनेहारे मौल बल, या वरण करने योग्य ऐश्वर्य से (पुनाति) पवित्र, शुद्ध, या शत्रु रहित करती है । शत०,१२।७।३।११ ॥

ओषधि पक्ष में—(सूर्यस्य दुहिता) उषा अपने सदातन, वरणीय प्रकाश से सोम ओषधि को पवित्र करती है । सोम के पक्ष में—सूर्य की पुत्री श्रद्धा बालों के बने कम्बल से परिस्रुत जात सोम को स्वच्छ करती है ।

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेजं इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥

निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(सुरया) सुख पूर्वक रमण करने योग्य ऐश्वर्य, राज्यलक्ष्मी या उत्तम प्रजा द्वारा (सुतः) अभिषिक्त किया और (मदाय) सब की आनन्द प्रसन्नता के लिये (आसुतः) प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र अभिषिक्त हुआ (सोम.) सोम, ऐश्वर्यवान् पुरुष (ब्रह्म) ब्रह्म, ब्राह्मण वर्ग, (क्षत्रं) क्षत्रियगण को (पवते) पवित्र करता है और (तेज) तेज, पराक्रम और (इन्द्रियम्) इन्द्रिय, राजोचित ऐश्वर्य को भी (पवते) उत्पन्न करता है । हे (देव) देव, दानशील राजन् ! तू (शुक्रेण) शुद्धि करनेवाले, अपने तेज से या सुवर्णादि द्रव्य से (देवता) दानशील या विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों को (पिपृग्धि) पूर्ण कर, पालन कर । और (रसेन) रस, पुष्टि

कारक अश से युक्त (अन्न) अन्न (यजमानाय) यजमान दानशील या अपने से संगत प्रजाजन के लिये (धेहि) सुरक्षित रख। शत०१२।७।३।१२॥

सोम-ओषधि पक्ष में—(सुरया सुत आसुत सोम) सवन किया से उत्पादित और सेवित सोम, ओषधियों का रस (तेज इन्द्रियं ब्रह्म क्षत्र च पवते) तेज, इन्द्रियों के सामर्थ्य, ब्रह्मज्ञान और बल को उत्पन्न करता है। अतः हे विद्वन्! देव! (शुक्रेण) तेजो वृद्धि करनेवाले (रसेन) रस से (देवता) प्राणों की शक्ति को बढ़ा। (अन्न यजमानाय धेहि) यजमान, उपासक जन को उत्तम अन्न प्रदान कर।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

भा०—(कुविदङ्ग०……०सुत्राम्णे) इस मन्त्र की व्याख्या देखो। अ० १० । ३३ ॥

(एष ते योनि) हे राजन्! तेरा यह योनि आश्रयस्थान या पद है। (त्वा) तुझको (वीर्याय) वीर्य सम्पादन, अधिकार प्राप्ति और (बलाय) बल वृद्धि के लिये नियुक्त करता हूं। शत० १२ । ७ । ३ । १३ ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

भा०—हे सोम! राजन्! हे राज्यलक्ष्मि! अथवा राष्ट्र-प्रजा! (वां) तुम दोनों के लिये (देवहितम्) विद्वानों द्वारा शास्त्र-

६—पयोनहा।

विहित (नाना) पृथक् २ (सद कृतम्) स्थान बना दिया गया है। दोनों के अधिकार कर्त्तव्य पृथक् २ हैं। तुम दोनों (मा संसृक्षाथाम्) परस्पर संसर्ग मत करो। दोनों अपने २ विभागों को पृथक् २ रक्खो। हे प्रजे ! हे राज्यलक्ष्मि ! (त्वम् शुष्मिणी) तू बलशालिनी (सुरा) मदिरा के समान अति बलकारिणी, एवं 'सुरा' उत्तम ऐश्वर्य वाली या उत्तेजना देने वाली है और (एष सोम) यह सोम' सब राष्ट्र का प्रेरक है। तू (स्वाम् योनिम्) अपने आश्रयस्थान को (आविशन्ती) प्राप्त करती हुई (मा) मुझ राजा को (मा हिंसीः) मत मार। इसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (स्वां योनिम् आविशन् मा मा हिंसी) अपने आश्रय को प्राप्त करके मुझ प्रजाजन का नाश मत कर। शत० १२।७।३।१४॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् ।
एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

पङ्क्ति । पञ्चम ॥

भा०—हे अधिकार पद योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र के नियन्ता राजा के विशेष धर्मों द्वारा बद्ध है। (आश्विन तेज) सूर्य चन्द्र, दिन रात्रि स्त्री पुरुष इन युगलों के समान राजा और प्रजा दोनों का सम्मिलित वीर्य है। (सारस्वतम् वीर्यम्) हे पुरुष ! सरस्वती, वेदवाणी अर्थात् समस्त ज्ञानी विद्वानों का संयुक्त बल है। हे पुरुष ! तू (इन्द्र बलम्) शत्रु नाश करनेवाले इन्द्र, सेनापति का बल, सेनाबल है (एष ते योनि) तेरा यह आश्रय या अधिकारपद है। (त्वा) तुझ योग्य पुरुष को (मोदाय) राष्ट्र के हर्ष के लिये स्थापित करता हूं। (त्वा आनन्दाय) तुझको आनन्द प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता हूं। (त्वा महसे) तुझको बड़े भारी ऐश्वर्य और मान, प्रतिष्ठा, आदर, सत्कार प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता हूं।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

पय सुरा च दवन । शक्वरी पवन ॥

भा०—हे राजन् ! तू (तेज असि) तेज, तीक्ष्ण पराक्रम स्वरूप है । (मयि तेज धेहि) मुझ प्रजाजन मे भी तेज का धारण करा । तू (वीर्यम् असि) वीर्य सब अंगों में स्फूर्ति गति चेष्टा उत्पन्न करनेवाला शरीर मे वीर्य के समान सामर्थ्यवान् है । तू (मयि) मुझ में भी उस (वीर्यम्) वीर्य को (धेहि) धारण करा । (बलम् असि) तू बल अंगों में दृढ़ता उत्पन्न करनेवाला बलवान् है । (मयि) मुझ प्रजा जन मे भी (बल धेहि) उस बल, दृढ़ता को धारण करा । (ओज असि) शरीर में जिस प्रकार ओज, अष्टम धातु, कान्ति उत्पन्न करनेवाला, मुख्य प्राण का उत्तम सामर्थ्य है उसी प्रकार के (ओज) प्राण के उत्कृष्ट सामर्थ्य को (मयि धेहि) मुझ मे धारण करा । (मन्यु असि) तू शत्रु या विपरीत बाधक पदार्थ को न सहन करनेवाला क्रोध रूप है उसी प्रकार के (मन्यु) शत्रुओं को स्तम्भन करने मे समर्थ मन्यु को (मयि धेहि) मुझ मे भी धारण करा । (सह असि) हे राजन् ! तू शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ शक्ति है । तू (सह मयि धेहि) मुझ में भी शत्रु पराभव करने की शक्ति प्रदान कर । इसकी समानि देखो अथर्ववेद का० १९ । सू० ३१ । म० ११ ॥

परमात्मा [illegible] शरीर म [illegible] स्वरूप, वीर्यस्वरूप, बल स्वरूप [illegible] स्वरूप, म [illegible] स्वरूप है अत हे परमेश्वर गुरु उपासक [illegible] मन्यु और सह का प्रदान करें ।

या व्याघ्रं [illegible] ॥
श्येनं पतत्रिणं [illegible] ॥ १० ॥

हैमवर्चिर्ऋषिः । आर्ष्युष्णिक् । धैवत. ॥ विसूचिका स्तुतिः ॥

भा०—(या) जो (विसूचिका) विविध पदार्थों को सूचना देने वाली (व्याघ्रम्) व्याघ्र के समान शूरवीर, और (वृकं च) भेड़ियों के समान शत्रु पर साहस से जा पकड़नेवाले अथवा व्याघ्र जिस प्रकार अपने आहार को सूंघ कर ही पता लगा लेता है उसी प्रकार सूक्ष्म २ लक्षण देखकर जो शत्रु का पता लगाले और वृक जिस प्रकार भेड़ आदि को बल पूर्वक हर लेता है उसी प्रकार जो शत्रु के राज्य को हर ले (उभौ) उन दोनों को जो (विसूचिका) विविध पदार्थों की सूचना करनेवाली संस्था (रक्षति) उनको शत्रु के फंदे में पकड़ने से बचाती है इसी प्रकार जो विविध प्रकार की सूचना देनेवाली संस्था (श्येनम्) बाज के समान सहसा अपने शत्रु पर (पतत्रिणम्) सेना के दोनों पक्षों (४।३।१।१४) के साथ वेग से जा टूटने वाले विजयी को और (सिंहम्) सिंह के समान पराक्रमी शूरवीर पुरुष की (पाति) रक्षा करती है, उसको सब प्रकार से शत्रु की चालें बतलाकर उसको शत्रु के हाथों पकड़ने से बचाती है। (सा) वह (इमं) इस नये प्रतिदिन राजा को भी शत्रु की ओर से होने वाले (अंहस) शत्रु वध आदि क्रूर कर्म से (पातु) बचावे। व्याघ्र, वृक, बाज़ पक्षी, और सिंह ये जीव दूर से ही अपने आहार आदि के विषय में जान लेते हैं उनकी जान लेने की ग्राह्य शक्ति 'विसूचिका' है। इसी प्रकार सेनापति, राजा, पराक्रमी पुरुषों को भी अपने अधीन गुप्त, समाचार देनेवाली, जासूस संस्था को नियुक्त करना चाहिये जो शत्रु की सब चालों का पता दे। वही संस्था 'विसूचिका' कहाती है। इसका वर्णन अर्थ शास्त्र 'गुप्त प्रणिधिसंस्था' रूप में किया गया है। शत० १२। ७। ३। २१ ॥

अध्यात्म में—विविध ज्ञानों को देनेवाले चन्न प्रज्ञा विविध पदार्थों के ज्ञाता 'व्याघ्र', कर्म फलों के आदाता 'वृक', तीव्रस्व ज्ञानी श्येन, पक्षी

हस आत्मा, दोषों के नाशक 'सिंह' रूप आत्मा की रक्षा करती है वही उसको पाप से बचावे।

यदा॑ पि॒पेष॑ मा॒तर॑ पु॒त्रः प्रमु॑दितो॒ धय॑न्। ए॒तत्तद॑ग्ने अनृ॒णो भ॑वा॒म्यह॑तौ पि॒तरौ॒ मया॑। स॒म्पृच॑ स्थ॒ सं मा॑ भ॒द्रेण॑ पृङ्क्त वि॒पृच॑ स्थ॒ वि मा॑ पा॒प्मना॑ पृङ्क्त ॥ ११ ॥

अग्निर्वेवता । शक्वरी । धैवत ॥

भा०—(यत्) जब (पुत्र) पुत्र (प्रमुदित) अत्यन्त हर्षित होकर (धयन्) स्तन्य पान करता हुआ (मातर) अपनी माता को (आ पिपेष) गाढ़ आलिंगन करता या चिपटता है। (तत्) तब (एतत्) इस प्रकार से ही हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवान्, विद्वन् ! मैं (अनृण) माता पिताओं के ऋण से मुक्त (भवामि) हो जाता हूं और समझता हूं कि (मया) मुझ पुत्र ने गृहस्थ होकर जो माता पिता के ऋण को चुका दिया इसमें (मया) मैंने (पितरौ) माता पिता को (अहतौ) पीड़ित न रखकर सुखी कर दिया। अर्थात् पुत्र रहित होना माता पिता को दुःखित रखना है। हे प्रेमी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सपृच स्थ) मुझ से सत्सग करनेवाले हो, आप लोग (मा) मुझे (भद्रेण) सुखप्रद कल्याण कार्य से (स पृङ्क्त) संयुक्त करो। हे विवेकी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विपृच स्थ) विविध विषयों का ज्ञान करके और विवेक करनेवाले हो आप लोग (मा) मुझे (पाप्मना) पाप से (वि पृङ्क्त) विमुक्त रखो। शत० १२। ७। ३। २१-२२॥

राजा पक्ष में—(यद्) जब (पुत्र) पुरुषों को त्राण करने में समर्थ पुरुष वीर राजा (प्रमुदित) अति हर्षित होकर (धयन्) माता या गाय के बछड़े के समान पृथ्वी के पुत्र के समान ही उसका पुत्र होकर उसके अन्नादि का पान करता हुआ (मातर आपिपेष) माता के तुल्य

सब प्राणियों के उत्पादक पृथ्वी को मैं पैरों आदि से या सेना बल से लताड़ता भी हूं तो भी हे (अग्ने) परमेश्वर या विद्वन् ! राजन् ! (अहम्) (अनृणोभवामि) मैं ऋण मुक्त ही होता हूं (नयः) मेरे [illegible] (पितरौ) माता पिता के समान पालक पुरुष सदा ([illegible]) न हों कष्ट न पावें ! हे (सम्पृचः) हे संपर्क करनेवाले पुरुषो ! [illegible] सदा मुझे (भद्रेण सम्पृचः) कल्याण फल से युक्त करो और हे (विपृचः) पाप से पृथक् रखनेवाले पुरुषो ! तुम लोग (मा पाप्मना विपृङ्क्त) मुझे पाप मार्ग से पृथक् रखो ।

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

१२–२२ सोम सम्प्र । [illegible] । [illegible] ॥

भा०—(भिषजा) रोगों की चिकित्सा करने में कुशल (अश्विनौ) आयुर्वेद के विज्ञान में पारंगत औषधवित् और शल्य चिकित्सक दोनों और (सरस्वती) सरस्वती, वेदवाणी, या विद्वत्सभा जो (वाचा) वाणी के उपदेश द्वारा (भिषक्) अज्ञान दोषों को दूर करने में कुशल, और (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्राय) इन्द्र के निमित्त (इन्द्रियाणि) राजोचित ऐश्वर्यों और सामर्थ्यों को (दधतः) धारण करते हुए (भेषजम्) रोग निर्बलता को दूर करनेवाले (यज्ञम्) परस्पर संगति करनेवाले प्रजा पालन व्यवहार का यज्ञ के समान ही (अतन्वत) उपदेश करते हैं ।

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

१२—१३ [illegible] अनुष्टुभ । [illegible] । [illegible] । [illegible] ॥

भा०—१ (शष्पाणि) शष्प अर्थात् नये उगे धान्य, (दीक्षायै रूपम्) दीक्षा अर्थात् दीक्षणीयेष्टि के रूप हैं। यज्ञ में जिस प्रकार दीक्षणीयेष्टि है उसी प्रकार 'माननगा न' नव हरे धान्य हैं। उत्तम रीति से पालन करनेवाले सुन्दर ना, गना प्रजापालना वृत्ति में (शष्पाणि) शत्रुओं को हनन करने के लिए उन से राष्ट्र का दीक्षा का रूप है।

'शष्पाणि'—शष्प हन्यते इति गन्धरूपम्। बालतरा कान्तिसत्त्यो वा इति दया० उणा० ॥ रूप हिंसायां भ्वादि ॥ हिंसार्थस्य शसतेः स्तुत्यर्थस्य शंसेर्वा रूपम्।

२ (तोक्मानि प्रायणीयस्य रूपम्) तोक्म अर्थात् नये जौ यज्ञ में 'प्रायणीय' इष्टि के रूप हैं। राज्य पालन पक्ष में—(तोक्मानि) शत्रु के हनन करने या प्रजा के प्रसन्न करने के कार्य ही 'प्रायणीय' अर्थात् उत्कृष्ट पद का प्राप्ति का स्वरूप है।

तोक्मानि'—तोक तुचो। निरु० १०। १। ७ ॥ तोक्म, तुजे स्तुचे, तयते तुद्यतेर्वा मनिनि ककारोन्त देश। तुज हिंसायाम्। भ्वादि। च प्रसादे। भ्वादि।

३. (लाजा सोमस्य क्रयस्य रूपम्) लाजाएं सोम के क्रय के रूप हैं। अर्थात् (लाजा) प्रफुल्लित ब्राहि या प्रसन्न प्रजाएं या समृद्ध विभूतियें हा सोम रूप राजा के राजपद के वतन के स्वरूप हैं, 'लाजा' दीप्त्यर्थस्य राजते। लत्व छान्दसम्। आदित्यानां वा एतद्रूप यल्लाजा। तै० ३। ८।

४ (मधु सोमांशव) मधु यज्ञ में सोम के अंशों के समान हैं। राजा के पक्ष में—(मधु) दुष्टों के धमन, या पीड़न करनेवाला सैनिक बल या प्रजा के तृप्तिकारक या हर्षकर, बलकारी अन्न, सोम नाम राजा के अंशु अर्थात् राष्ट्र में व्यापक बल के समान है।

१४। ४ ॥ नक्षत्राणां वा एतद्रूपं यल्लाजा। तै० १।३।२।१।८॥

एतद् वै रूपशान् सोमरूपं यन्मधु । श० १२ । ८ । २ । १२ ॥ अमृतेयां मधु । देवप० ।

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥ १४ ॥

भा०—५. (मासरम् आतिथ्यरूपं) मासर अर्थात् धान और सांवा चावल के भातों का और पूर्व कहे शष्प, तोक्म, लाज आदि पदार्थों का मिश्रित पदार्थ 'मासर' कहाता है । यह आतिथ्य इष्टि का रूप है । इसी प्रकार राष्ट्र पक्ष में-(मासर आतिथ्यरूपम्) राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं को जो प्रतिमास वेतनादि रूप में दिया जाता है वह 'मासर' कहाता है । प्रतिमास का वेतन देना यज्ञ में 'आतिथ्य' इष्टि के समान है ।

'मासर'-मास मास दीयते धीयते यत् तत् मासरम् ।

६. (नग्नहु महावीरस्य) नग्नहु, महावीर अर्थात् यज्ञ में घर्मेष्टि का रूप है । राष्ट्र पक्ष में-नग्न अर्थात् अकिंचन पुरुषों को अन्न वस्त्रादि प्रदान करना ही 'महावीर' बड़े वीर्यवान् त्यागी पुरुष का रूप है । यः नग्नान् जुहोत्याददाति इति नग्नहु । इति दया० ।

७ (उपसदाम्) उपसद् इष्टियों का (एतत् रूपम्) यह रूप है जो '(तिस्र. रात्रीः) तीन रातों तक (सुरा=सुता) सुरा, अन्नरस, सवन किया जाता है । राष्ट्र पक्ष में-(एतत्) यह (उपसदाम्) समीप विराजनेवाले अधिकारी पुरुषों और समस्त राष्ट्रगत अधिकारों का ही (रूपम्) उज्ज्वल स्वरूप है जो (तिस्र.) तीन (रात्रीः) रातों तक, तीन दिनों तक (सुरा) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी का (सुता) राजा के निमित्त अभिषेक किया जाता है । अर्थात् इन तीन दिनों में ही समस्त राज्य अधिकार राजा को सौंपे जाते हैं । अथवा (तिस्रः रात्रीः) तीन प्रकार की

राजपालक शक्तियों से (सुरा सुता) अभिषेक क्रिया का सम्पादन किया जाता है, यही उपसत्र अर्थात् समस्त अधिकारों का उत्तम स्वरूप है।

'उपसद'—वज्रा वा उपसद । श० १०।२।५।२॥ जितयो वै नामैता यदुपसद । ऐ० १।२४॥ इषु वा एते देवा समस्कुर्वत यदुपसदस्तस्य अग्निरनीकमासीत्, सोम शल्य, विष्णुस्तेजन वरुण पर्णानि। ऐ०।१।२४॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्यं परिस्रुत्परिषिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥ १५ ॥

८ (परिस्रुत् परिषिच्यते) जो परिस्रुत् का परिषेक किया जाता है। वह (क्रीतस्य सोमस्य रूपम्) क्रीते हुए सोम का रूप है। अर्थात् राष्ट्रपक्ष में—(परिस्रुत) सब देशों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से जो अभिषेक किया जाता है वही राज्यलक्ष्मी द्वारा क्रीत गये तदधीन हुए, या उससे प्राप्त सोम अर्थात् सर्वाज्ञापक राजा का उत्तम रूप है। देखो शाडषिग्रहप्रकरण शत० ४।१।२।१६॥

९ (अश्विभ्याम्) अश्वियों, स्त्री पुरुषों और (सरस्वत्या) सरस्वती, वेद के विद्वानों की बनी सभा द्वारा (इन्द्राय) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा के हित के लिये (भेषजम्) सब कष्टों का निवारण करनेवाला (ऐन्द्र) इन्द्र का पद (दुग्धम्) सब प्रकार से पूर्ण किया जाता है।

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।
अन्तरऽउत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥ १६ ॥

१० (आसन्दी) आसन्दी यह पृथिवी ही (राजासन्द्यै रूपम्) राजा के बैठने के लिये आसन पीढ़ी का रूप है।

'आसन्दी'—इयं पृथिवी या आसन्दी अस्या हि इदं सर्वमासन्नम्। श० ६।७।१।१२॥

११ (सुराधानी कुम्भी वेद्यै रूपम्) सुरा अर्थात् राज्यलक्ष्मी को धारण

करने वाली (कुम्भी) घट के समान गोलाकार पात्र (वेदि) वेदी, पृथ्वी का ही उत्तम रूप है ।

१२ (अन्तर उत्तरवेद्या रूपम्) अन्तर लोक अर्थात् अन्तरिक्ष उत्तर वेदी का रूप है ।

१३. (कारोतर भिषक्) कारोतर अर्थात् 'छनना' के समान सार और असार पदार्थों का विवेचन करनेवाला विवेकी पुरुष ही वरुण (भिषक्) रोग और पीड़ाओं को दूर करने में समर्थ है । अतः छनना भिषक् का प्रतिनिधि है ।

वेद्या वेदि॑ः समा॑प्यते ब॒र्हिषा॑ ब॒र्हिरि॑न्द्रि॒यम् ।
यूपे॑न॒ यूप॑ऽआप्यते॒ प्रणी॑तोऽअ॒ग्निर॒ग्निना॑ ॥ १७ ॥

१४. (वेद्या वेदि समाप्यते) यज्ञ के वेदी से (वेदि) यह समस्त पदार्थ के प्राप्त करानेवाली भूमि (सम् आप्यते) समान रूप से ली जाती है।

१५ (बर्हिषा) यज्ञवेदी में बिछे कुश से (बर्हि इन्द्रियम्) महान् इन्द्र, राजा का ऐश्वर्य (समाप्यते) तुलना किया जाता है ।

१६ (यूपेन यूप) यज्ञ के 'यूप' नामक स्तम्भ से (यूप) सूर्य, यज्ञ, यज्ञ या स्तम्भ राजा ही (आप्यते) ग्रहण किया जाता है ।

१७ (अग्निना अग्नि) यज्ञ में प्रदीप्त अग्नि से (अग्नि) अग्रणी अग्नि के समान तेजस्वी राजा की तुलना किया जाता है ।

ह॒वि॒र्धानं॒ यद॒श्विनाग्नी॑ध्रं॒ यत्सर॑स्वती ।
इन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सद॑स्कृ॒तं प॑त्नी॒शालं॒ गार्ह॑पत्यः ॥ १८ ॥

१८ राष्ट्र के (अश्विनौ) स्त्री पुरुष गण (हविर्धानम्) अन्नों के रखने वाले यज्ञ में प्राप्त हविष्य पदार्थों के रखने वाले शकट के समान है ।

१९ (यत् सरस्वती) जो सरस्वती, विज्ञान का उपदेश करने का कार्य है वह यज्ञ में (आग्नीध्रम्) अग्नीध् नामक ऋत्विक् के स्थान या आसन के समान है ।

२० (इन्द्राय) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (ऐन्द्रं) जो इन्द्रोचित ऐश्वर्य (कृतम्) किया जाता है वह यज्ञ में (ऐन्द्रं सद) ऐन्द्र सदस् के समान है।

२१. इसी प्रकार—(ऐन्द्र पत्नीशालम्) पालन करने वाली राजा की राजसभा का भवन यज्ञ में पत्नीशाला के समान है।

२२ (ऐन्द्र गार्हपत्य) राजा का राज्य में गृहपति के समान रहना ही (गार्हपत्य) यज्ञ में 'गार्हपत्य' अग्नि स्थापन के समान है।

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुती ॥ १९ ॥

२३ (प्रैषेभि) उत्तम आज्ञा कर्मों द्वारा (प्रैषान्) भृत्यों को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अथवा (यज्ञस्य प्रैषै) यज्ञ के 'प्रैष' कर्मों से (प्रैषान्) राष्ट्र के कार्यों में प्रेरित भृत्यों के प्रति की गयी आज्ञाओं की तुलना की जाती है।

२४ (यज्ञस्य आप्रीभि) यज्ञ की 'आप्री' ऋचाओं से राष्ट्र की (आप्री) सब को प्रसन्न रखने वाली वेतनादान, पारितोषिक आदि क्रियाओं की तुलना की जाती है।

२५. (प्रयाजेभि [प्रयाजान्]) यज्ञ के प्रयाजों द्वारा राष्ट्र के प्रयाज अर्थात् उत्तम २ अधिकार स्थानों से बड़े २ दानों की तुलना की जाती है।

२६ ([अनुयाजेभि] अनुयाजान्) यज्ञ के 'अनुयाजों' द्वारा राष्ट्र के अनुयान अर्थात् अनुकूल या तदधीन पुरुषों के प्रति अधिकार ऐश्वर्य प्रदान के कार्यों की तुलना की जाती है।

२७ (वषट्कारेभि [वषट्कारान्]) यज्ञ के वषट्कार अर्थात् स्वाहाकारों से राष्ट्र के वषट्कारों अर्थात् योग्य पुरुषों के प्रति अधिकार दानों से तुलना की जाती है।

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींष्या ।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

२८ (पशुभिः पशून् आप्नोति) यज्ञगत पशुओं द्वारा राष्ट्र के पशुओं की तुलना है।

२९ (पुरोडाशैः हवींषि) यज्ञ के पुरोडाशों से राष्ट्र के अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों की तुलना है।

३० (छन्दोभिः [छन्दांसि]) यज्ञ में मन्त्ररूप छन्दों से राष्ट्र में नाना अधिकार और व्यवस्थाओं की तुलना है।

३१ ([सामिधेनीभिः] सामिधेनीः) यज्ञ में समिधा आधान की ऋचाओं द्वारा सामिधेनी अर्थात् राष्ट्र में सेना के विशेष अधिकार और सेनाबलों की तुलना है।

३२ (याज्याभिः [याज्याः]) यज्ञ की याज्या ऋचाओं से राष्ट्र की याज्या अर्थात् भूमि, अन्न और धन के दानों की तुलना है।

यज्ञो वै सामिधेन्य । कौ० ३ । २, ३ ॥

३३ ([वषट्कारैः] वषट्कारान्) यज्ञ के वषट्कारों से राष्ट्र में योग्य पुरुषों को योग्य अधिकार दानों की तुलना है।

'याज्या'—इयं पृथिवी याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥ अन्नं वै याज्या । कौ० १४ । ३ ॥ शान्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मी । ऐ० २ । ४० ॥

धाना करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपं हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥ २१ ॥

भा०—यज्ञ में (धानाः) भुने धान, खील, (करम्भः) भात की लप्सी, (सक्तवः) सत्तु, (परीवापः) हविष्य, (पयः) दूध (दधि) दही, (आमिक्षा) गरम दूध में मट्ठा डालने से फटे दूध के स्थूल भाग आमिक्षा और (वाजिनम्) जल भाग 'वाजिन' और (मधु)

मधुर मधु ये सब पदार्थ (सामस्य) सामरूप (हविष) अन्न हवि का (रूपम्) रूप है । उसी प्रकार राष्ट्र में भी (धाना) धारण पोषण करने वाली गौएं (करम्भ) राज्य के कार्य करने वाले कर्मचारीगण, (सक्तव) समूह या संघ में एकत्र प्रजागण (परीवाप) पृथ्वी पर सर्वत्र अन्नादि बीजों का आवपन और शत्रुकानाशन, (पय) पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह, (दधि) धारण पोषण के उपाय (आमिक्षा) राजा और प्रजा के अधिकारियों का सम्मिलित गण, (वाजिनम्) पशु समृद्धि और (मधु) अन्न समृद्धि ये सब (हविष) ग्रहण करने योग्य (सोमस्य) राष्ट्र और राजा का (रूप) उज्ज्वल रूप हैं ।

धानानां॑ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
सक्तूनाꣳ रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

भा०—(धानाना रूप कुवलम्) धाना, लाजाओं का रूप 'कुवल' अर्थात् कोमल 'बेर' का फल है । अर्थात् जिस प्रकार कोमल बेर को बकरी आदि पशु अनायास गुठला सहित खा जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के पोषणकारी गौ आदि पशु भी अनायास दूसरों के वश हो जाते हैं । (गोधूमा परीवापस्य रूपम्) गोधूम, गेहूँ परिवाप का उत्तम रूप है । अर्थात् गेहूँ अन्न कृषि का उत्तम फल है ।

(सक्तूना रूप बदरम्) सक्तुओं का 'बदर' उत्तम रूप है । अर्थात् राष्ट्र में संघ बनाकर रहना शत्रु के लिये 'बेर' के समान होना है अर्थात् जैसे बेर काटे खाकर प्राप्त होता है उसी प्रकार संघ में रहने से शत्रु को बड़ा कष्ट होता है ।

(उपवाका करम्भस्य रूपम्) करम्भ दही में मिले सत्तू का रूप उपवाक अर्थात् 'यव' है । करम्भ अर्थात् कार्य से युक्त प्रजागण (उप-

वाका =उपवाश) शत्रु के समीप आने पर उसके दूर करने में समर्थ होते हैं।

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि ।
सोमस्य रूपं वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

भा०—(पयसः रूपं यद्यवाः) जो पयस् अर्थात् दूध के रूप हैं। अर्थात् दूध जिस प्रकार शरीर को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार यव धान्य राष्ट्र की प्रजा को पुष्ट करता है। और जिस प्रकार (यव) पुष्टिकारक धान्य शरीर का पोषक है उसी प्रकार (यवाः) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ सैनिक पारजन राष्ट्र को पुष्ट करते हैं।

(दध्नः रूपं कर्कन्धूनि) दधि का रूप 'कर्कन्धू' अर्थात् पके बेरी के फल के समान है। दही जिस प्रकार वीर्य उत्पन्न करती है इसी प्रकार पके बेर भी बल उत्पन्न करते और स्वाद में खट्टे होते हैं। (दध्नः) राष्ट्र में धारण समर्थ बलका स्वरूप (कर्कन्धूनि) कांटेदार बेरी की झाड़ियों के समान है। वे जिस प्रकार बाड़ के रूप में रहकर पशुओं से कोमल खेतों को खाये जाने से बचाते हैं उसी प्रकार कांटों के समान पीड़ाकारी हिंसाजनक शस्त्रों को धारण करने वाले वीर सैनिकदल राज्य के (दधि) धारण कारी बलका स्वरूप है।

'कर्कन्धु'—कर्कं कण्टकं दधाति इति कर्कन्धुः । इति दया० उवा० । अथवा कर्कान् कण्टकरूपान् शत्रून् धुन्वते इति कर्कन्धूनि सेनावसानि ।

(सोमस्य रूपं वाजिनम्) सोम का रूप 'वाजिन' है। सोम का रूप 'वाजिन' के समान है। 'सोम' अर्थात् राजा का रूप 'वाजिन' वान अर्थात् वाज और बल और संग्राम बल का स्वामी होता है। (सौम्यस्य रूपम् आमिक्षा) सोम राजा के राजत्व का रूप 'आमिक्षा' है। 'आमिक्षा' अर्थात् प्रजा पर सब गुणों का वर्षण करना अथवा सब ओर से राष्ट्र के गुण्य पर पर

अभिषेक क्रिया होना अथवा सब ओर से दुष्ट पुरुषों का नाश करना है।

'आमिक्षा'—समन्तात् मेषति हिनस्ति इत्यामिक्षा। दया० उणा०। मेहति सिञ्चति वा सा आमिक्षा।

आ श्रावयेति स्तोत्रिया प्रत्याश्रावोऽअनुरूप।
यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहा. ॥ २४ ॥

भा०—('आश्रावय' इति स्तोत्रिया) 'आश्रावय' इस प्रकार कहना यज्ञ में स्तोत्रिय अर्थात् प्रथम तीन ऋचा के पाठ के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—(स्तोत्रिया) विद्वान्, सत्यासत्य विद्याओं के योग्य विद्यार्थीगण (आश्रावय) सब प्रकार की विद्याओं को 'हे गुरो श्रवण कराओ' (इति) इस प्रकार विनय से प्रार्थना करें।

(प्रत्याश्रावो अनुरूप) यज्ञ में प्रत्याश्राव 'अस्तु श्रौषट्' इस प्रकार कहना अनुरूप अर्थात् अन्त की तीन ऋचाओं के पाठ करने के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—(प्रत्याश्राव) विद्यार्थियों के प्रति विद्याओं का उपदेश करना (अनुरूप) उनके योग्यता के अनुरूप होना चाहिये।

(यज इति धाय्यारूपम्) 'यज' इस प्रकार कहना 'धाय्या' नाम ऋचा के पठन के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—(यज इति) 'प्रदान कर' इस प्रकार आदर से कहना (धाय्या रूपम्) धारण या ग्रहण करने योग्य पदार्थ का उत्तम रूप है। अर्थात् दानरूप में लेने के लिये दाता को (यज) प्रदान कर (इति) ऐसा कहे।

(प्रगाथा· ये यजामहा) 'ये यजामहे' इत्यादि शब्द प्रगाथा ऋचाओं का पाठ करने के समान हैं।

राष्ट्रपक्ष में—(ये) जो हम लोग (यजामहा) यज्ञ दान आदि

करते हैं इस प्रकार श्रेष्ठाचारवान् हैं वे (शस्त्राः) उत्तमरूप से स्तुति करने योग्य हैं।

अर्द्धऽऋचैरुक्थानांꣳ रूपं पदैराप्नोति निविदः।
प्रणवैः शस्त्राणांꣳ रूपं पयसा सोमऽआप्यते ॥ २५ ॥

भा०—(अर्ध ऋचैः उक्थानां रूपं आप्नोति) अर्ध ऋचाओं द्वारा उक्थ नाम स्तोत्रों का रूप प्राप्त करता है।

राष्ट्रपक्ष में—समृद्ध स्तुतिवचनों से (उक्थानाम्) विशेष स्तुतियों का स्वरूप प्राप्त होता है।

(पदैः निविदः आप्नोति) पदों द्वारा 'निविद्' नाम ऋचाओं का ग्रहण करता है।

राष्ट्रपक्ष में—(पदैः) अधिकारों या अधिकार सूचक पद के द्वारा (निविदः) निखिल पदार्थों को प्राप्त करनेवाले ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त करता है।

(प्रणवैः शस्त्राणां रूपम् आप्नोति) यज्ञ में प्रणव अर्थात् ओंकारों द्वारा शस्त्रों अर्थात् स्तुतियुक्त मन्त्रों का स्वरूप प्राप्त करता है।

राष्ट्रपक्ष में—(प्रणवैः) उत्कृष्ट नवयुवकों द्वारा (शस्त्राणां) शस्त्रधारी पुरुषों का उत्तम स्वरूप प्राप्त करता है।

(पयसा सोमः आप्यते) 'पयस्' अर्थात् दूध से यज्ञ में सोम-लता के रस का रूप प्राप्त किया जाता है।

राष्ट्रपक्ष में—पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थ से ही (सोमः) समस्त राज्य का सार या राजा का पद प्राप्त किया जाता है।

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम्।
वैश्वदेवꣳ सरस्वत्या तृतीयमाप्तꣳ सवनम् ॥ २६ ॥

भा०—(अश्विभ्यां) अश्वियों से (प्रातःसवनम् आप्तम्) प्रातःसवन की तुलना की जाती है।

(इन्द्रेण) इन्द्र ग्रह से (ऐन्द्र माध्यंदिनम्) इन्द्र देवताक माध्यंदि सवन की तुलना का है ।

(सरस्वत्या ; सरस्वता द्वारा (तृतीयम्) तीसरा (वैश्वदेव सवनम् आप्तम्) विश्वेदेव सम्बन्धी सवन का तुलना का गई है ।

राष्ट्रपक्ष में—'अश्वि' नामक पदाधिकारियों का स्थापन राष्ट्र के प्रात सवन प्रात कालिक आह्निक कृत्य के समान है । इन्द्र पदाधिकारी का स्थापन माध्यंदिन सवन अर्थात् मध्याह्नकाल के कृत्य के समान है। सरस्वती, वेदवाणी का प्रसार (वैश्वदेव समस्त प्रजाओं के हितकारी सायमसवन के समान है । अर्थात प्रात समय जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र के दो वीर रक्षक राजा और अमात्य है । मध्याह्न में जिस प्रकार प्रखर सूर्य है उसी प्रकार राष्ट्र के बीच प्रचण्ड सेनापति है । सायकाल रात्रि के समय जिस प्रकार सब दीप्तिमान नक्षत्र हैं उसी प्रकार ज्ञान से उज्ज्वल समस्त विद्वान्‌गण हैं ।

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभि स्थालीराप्नोति ॥ २७ ॥

भा०—(वायव्यै वायव्यानि आप्नोति) साम और सौत्रामणी दोनों यज्ञों में वायव्य नामक पात्रों से वायव्यों की तुलना करे ।

(सतेन द्रोणकलशम् आप्नोति) बत के बने पात्र से सोमयाग के द्रोणकलश की तुलना होती है।

(सुते कुम्भीभ्या अम्भृणौ) सोम सवन होजाने पर दो कुम्भियों से अम्भृण नाम पात्रों की तुलना होती है।

(स्थालीभि स्थाली आप्नोति ; स्थाली पात्रों से स्थालीपात्रों की तुलना होती है।

राष्ट्रपक्ष में—वायु के समान तीव्र वेगवान् सैनिकों द्वारा उनके योग्य वेग के कार्यों को प्राप्त करता है।

(सनेन) सम्भाग करने हारे व्यवहार से (दोघकलशम्) राष्ट्र को प्राप्त करता है।

(सुत) राज्याभिषेक होजाने पर जलाधार और धान्याधार दोनों प्रकार के (कुम्भीभ्याम्) घणों से (अम्भृणौ) प्रजाका पालन पोषण करता है।

(स्थालीभि) स्थापन क्रियाओं से राष्ट्र के व्यवस्थापक शक्तियों को प्राप्त करता है।

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुती ।
छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥ २८ ॥

भा०—(यजुर्भि [यजुंषि] आप्यन्ते) यजुओं से यजुओं की तुलना की जाती है (ग्रहा ग्रहै) ग्रहों से ग्रहों का, (स्तोमा [स्तोमैः]) स्तोमों से स्तोमों की और ([विष्टुतिभि] च विष्टुती) विविध स्तुतियों से विविध स्तुतियों की, और (छन्दोभि छन्दांसि) छन्दों से छन्दों की (उक्थशस्त्रै उक्थशस्त्राणि) उक्थ शस्त्रों से उक्थ शस्त्रों की, (साम्ना साम, अवभृथेन अवभृथ) साम गायन से साम गान की और अवभृथ से अवभृथ स्नान की तुलना की जाती है।

राष्ट्रपक्ष में—जैसे यज्ञ में यजुर्मन्त्र है उसी प्रकार राष्ट्र में (यजु) व्यवस्थाकारक आज्ञाएं और नियम है। यज्ञ में जैसे 'ग्रह' होते हैं वैसे राष्ट्र में (ग्रहा) भूमि प्रदान, अधिकार विभाग है। जैसे यज्ञ में 'स्तोम' है उसी प्रकार राष्ट्र में, स्तुति योग्य अधिकार पद है। जैसे यज्ञ में 'विष्टुति' नाम व्यवाय है उसी प्रकार राष्ट्र में आदर योग्य पुरुषों की विशेष स्तुतियां हैं।

जैसे यज्ञ में छन्द है वैसे राष्ट्र में यथारुचि अधिकार कार्य

विभाग है। जैसे यज्ञ में 'उक्थशस्त्र' है वैसे राष्ट्र में वार्यानुसार शस्त्र धारण हैं। जैसे यज्ञ में साम हैं राष्ट्र में सामादि उपाय हैं। जैसे यज्ञ में 'अवभृथस्थान' है वैसे राष्ट्र में अधीनों के भरण पोषण का कर्त्तव्य है।

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सःस्थाम् ॥ २९ ॥

भा०—(इडाभिः इडाम्) इडाओं से इडाओं को (भक्षैः भक्षान् आप्नोति) भक्षों से भक्षों को (सूक्तवाकेन सूक्तवाकम्) सूक्तवाक से सूक्तवाक को (आशार्भिः आशिषः) आशावादों से आशीर्वादों को (शंयुना शंयुम्) शंयु से शंयु को (पत्नीसंयाजान् पत्नीसंयाजैः) पत्नी संयाजों से पत्नीसंयाजों को (समिष्टयजुषा समिष्टयजुः) समिष्ट यजु से समिष्ट यजु को और (संस्थया संस्थाम्) संस्था से संस्था को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अर्थात् सामयाग के इडादि विभागों से सौत्रामणी के इडादि विभागों की तुलना करता है।

राष्ट्र में—जैसे यज्ञ में 'इडा' है उसी प्रकार राष्ट्र में इडा अन्न समृद्धियां और पृथिवियें हैं। यज्ञ में जैसे सामभक्ष हैं उसी प्रकार इधर नाना भोग्य फल हैं। यज्ञ में 'सूक्तवाक' है राष्ट्र में उत्तम वचन प्रयोग हैं। यज्ञ में आशार्वाद राष्ट्र में आशीर्वादों के समान हैं, यज्ञ में 'शंयु' अर्थात् शांति वाचन है, राष्ट्र कार्यों में भी शांतिकर्म हैं। यज्ञ में पत्नीसंयाज है राष्ट्र में पालनशक्ति से समस्त प्रजाओं को सुखप्रदान रूप कर्म हैं। यज्ञ में 'समिष्ट यजु' है राष्ट्र में समस्त विद्वानों और शासकों का परस्पर सुसंगत कर उनको योग्य वेतन आदि देना 'समिष्टयजु' है। यज्ञ में 'संस्था' है। राष्ट्र में राजसभा आदि 'संस्था' या व्यवस्था है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

भा०—(व्रतेन) सत्यभाषण, ब्रह्मचर्यादि नियम पालन से (दीक्षाम् आप्नोति) पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है। (दीक्षया) दीक्षा से (दक्षिणाम् आप्नोति) दक्षिणा, प्रतिष्ठा और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है। (दक्षिणा) प्रतिष्ठा से या शक्ति से (श्रद्धाम्) श्रद्धा सत्य धारण करने की इच्छा को प्राप्त होता है। (श्रद्धया सत्यम् आप्यते) श्रद्धा से सत्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद् देवैर्ब्रह्मणा कृतम्।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

भा०—(देवैः) विद्वान् पुरुषों और (ब्रह्मणा) चारों वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ कर्म का और राष्ट्र प्रजापालन रूप यज्ञ का और अध्ययनाध्यापन यज्ञ का भी (एतावद् रूपम्) इतना पूर्ण क्रिया और इष्टियों सहित उपाङ्ग, एवं उत्तम स्वरूप (यद्) जो (कृतम्) वर्णन किया है (तत्) वह सब (सौत्रामणी यज्ञे सुते) सौत्रामणी नाम यज्ञ में अभिषवन करने पर भी (तत् एतत् सर्वम्) वह सब यज्ञ का स्वरूप (आप्नोति) प्राप्त होता है।

(सौत्रामणी यज्ञे सुते) 'सुत्रामा' उत्तम रीति से त्राण पालन करने वाले राजा के राष्ट्र पालन के निमित्त अभिषेक करने में भी यज्ञ का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है। इसी प्रकार स्वाध्याय यज्ञ में सौत्रामणी यज्ञ अर्थात् यज्ञोपवीत आदि सूत्र त्रिक क्रिया में मति, ग्रन्थि आदि रूप से धारण किये जाने वह गुरु द्वारा किये शिष्योपनयन, वेदारम्भ, अध्ययन अध्यापन आदि कार्य भी सौत्रामणी यज्ञ है। उसमें शिष्य रूप सोम ज्ञान रूप अमृत या सुरा का पान करता है।

सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि धियन्ते यस्मिन् इति सौत्रामणी। इति दयानन्द ॥

सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥
अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—(महिषा) महान् पूजनीय पुरुष (सुरावन्तं) राज्यलक्ष्मी से युक्त (बर्हिषदम्) आकाश में सूर्य के समान वृद्धिकर, पूजनीय आसन और प्रजागण के ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान, (सुवीरम्) उत्तम प्राणों से युक्त, आत्मा के समान उत्तम वीर पुरुषों से युक्त (यज्ञम्) सब के पूजनीय, सबको सुव्यवस्थित सुसंगत करने में कुशल, प्रजापति राजा को (नमोभिः) नमस्कार युक्त आदर वचनों और शत्रुओं को नमाने में समर्थ शस्त्र बलों, वीर्यों से (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं। और हम (देवतासु) विद्वान् पुरुषों के समूहों में, विद्वत्सभाओं में और (दिवि) राजसभा में (सोमं) सब के प्रेरक और (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा को (दिवि) आकाश में सूर्य के समान सर्वप्रकाशक, सर्वोपरि मार्गदर्शक के रूप में (दधाना) धारण करते हुए (स्वर्काः) उत्तम अर्चना योग्य ज्ञान और अन्नादि पदार्थों सहित (यजमाना) उसकी सत्संगति लाभ कर और परस्पर सम्मिलित होकर हम (मदेम) स्वयं आनन्द लाभ करें। और उस राजा को भी (मदेम) तृप्त, प्रसन्न सन्तुष्ट करें। शत० १२।८।१।१॥

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥
सरस्वत्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! (सुरया सुतस्य) उत्तम रूप से दान देने योग्य या उपभोग या रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी से अभिषिक्त हुए (सोमस्य) सब के प्रेरक (ते) तुझ राजा का (यः) जो (रसः) रस, बल,

३३—'०मश्विना इन्द्र' इति काण्व० ।

(ओषधिषु) रोग निवारक ओषधियों, रसवती, रसन समुद्राहक वीर्य को धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं में (सम्भृत) एकत्र संगृहीत है (तेन) उस (मदेन) हर्षकारी बल से (यजमान) दानशील प्रजाजन को, (सरस्वतीम्) ज्ञानवती विद्वत्सभा को और (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों को दो मुख्य अधिकारी राजा रानी या और राजा मन्त्री दोनों को और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक सेनापति और (अग्निम्) ज्ञानवान् आचार्य एवं अग्रणी पुरुष को (जिन्व) तृप्त कर। अर्थात् प्रजाओं के धन से राजा वैश्यों को, विद्वानों को, प्रजा के स्त्री पुरुषों और सेनापति आदि को पालन करे। शत० १२।८।१।४॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय।
इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३४॥

अश्विसरस्वत्यौ ऋषी। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री और पुरुष अथवा सूर्य और चन्द्र के समान तापकारी और सौम्यस्वभाव के सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष नाम दो अधिकारी और (सरस्वती) वेद वाणी के विद्वानों की सभा (नमुचे) कर आदि न देने वाले या दुर्भिक्षकालिक मेघ के समान प्रजा के निमित्त कुछ भी सुख और राष्ट्र भोग का प्रदान न करने वाले (आसुरात्) असुर, दुष्ट स्वभाव के राजा से (अधि) अधिक बलवान् (यम्) जिस बलवान् पुरुष को (असुनोत्) अभिषिक्त करती है, राज्यपद पर बैठाती है (तम्) उस (इमम्) इस अन्य (शुक्रम्) बलवान् तेजस्वी, (मधुमन्तम्) मधुर पृथ्वी और मधुदीपनकारी बल से युक्त, (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् या दुखी प्रजा के प्रति दयार्द्र (सोमम्) सबको सन्मार्ग में प्रेरणा करने में समर्थ पुरुष को, (राजानम्) राजा रूप से (इह) इस राष्ट्र में (भक्षयामि) ऐश्वर्य के भोग का अधिकार

प्रदान करता हू । अथवा उस राजा क दान का सुख समस्त प्रजाजन का भाग कराता हू अथवा म प्रजाजन उस पुरुष का राजा (भक्षयामि) भाग करता हू उसका स्वीकार करता हू । शत० १२ । ८ । १ । ३ ॥

यह राजा का भाग करना एसा हा समझना चाहिय जैसे ग्रहों का राशि भाग अथवा किसा क स्वास्थ्य का पान करना व्यवहार में प्रचलित है ।

यदत्र रिप्तꣳ रसिन सतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभि ।
अहतदस्य मनसा शिवन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र में (रसिन) बलवान् (सुतस्य) अभिषिक्त राजा क (यत्) जिस (रिप्तम्) क्रूर कम का (इन्द्र) शत्रु नाशक सनापति न (शचीभि) अपना शक्तिवाला सनाओं द्वारा (अपिबत्) स्वय ग्रहण किया है (अहम्) में प्रजाजन एव राष्ट्र क शासक वग सब (तत्) उसको (शिवन मनसा) कल्याणमय शुभ चित्त से (अस्य) इस राष्ट्र क (राजान सोमम्) सवशासक, ऐश्वयवान् राज्य क रूप में (भक्षयामि) भाग करता हू । अथवा—जो राष्ट्र का भाग प्रथम विजय के समय सेनापति के अधीन था जो पहले ऐश्वर्योंय सेना पर व्यय हो रहा था अब उसको विजय और अभिषेक के अनन्तर राजा का भोगने क लिये प्रदान करता हू । शत० १२ । ८ । १ । ५ ॥

पितृभ्य स्वधायिभ्य स्वधा नम । पितामहेभ्य स्वधायिभ्य स्वधा नम । प्रपितामहेभ्य स्वधायिभ्य स्वधा नम । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितर । पितर शुन्धध्वम् ॥ ३६ ॥

पितरो देवता । निचृदाष्टि त्रिष्टुप । मध्यम ।

भा०—(स्वधायिभ्यः) स्वधा, अन्न, जल या शरीर के पोषण योग्य वेतन स्वीकार करनेवाले (पितृभ्यः) राष्ट्र और प्रजा के पालक पुरुषों का (स्वधा नमः) अन्न जल एवं योग्य वेतन द्वारा आदर सत्कार और अधिकार दान किया जाय। इसी प्रकार (पितामहेभ्यः) उन पालकों के भी पालकों को और (प्रपितामहेभ्यः) उनसे भी ऊँचे पद पर विराजमान उनके भी पालक, शासक उन पुरुषों का जो (स्वधायिभ्यः) अन्न, वेतनादि को ग्रहण करनेवाले हैं (स्वधा नमः) अन्नादि वेतनों द्वारा सत्कार किया जाय। राष्ट्र के शासकों में क्रम से तीन श्रेणियां हों। जो क्रम से एक दूसरे के ऊपर उत्तरोत्तर अपना अधिकार रक्खें।

(पितरः) पालक पुरुष (अक्षन्) यह स्वीकार करें। (पितरः अमीमदन्त) पालक लोग तृप्त सन्तुष्ट होकर रहें। (पितरः अतीतृपन्त) पालक जन प्रसन्न होकर रहें। हे (पितरः) पालकपुरुषो ! (शुन्धध्वम्) हम प्रजाजन को शुद्ध आचरण वाला शत्रु रहित करें, एवं राजा का अभिषेक करें। शत० १२ । ८ । १ । ८ ॥

पुनन्तुं मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः । पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥

३७–४४ पवमान सूक्तम् । [illegible] । [illegible] ॥

भा०—(सोम्यासः) सौम्य, राज्य कार्य में स्थित सोम राजा के समान शान्त और तेजस्वी (पितरः) पालक गुरु, आचार्य, विज्ञान ऋषि आदि पूज्य पुरुष (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। निन्दा योग्य, असत् आचार से हटाकर सदाचार, शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करावें। (पितामहाः मा पुनन्तु) पिता के पिता के समान पालकों के भी पालक, गुरुओं के गुरु, शासकों के भी शासक पुरुष मुझे पवित्र आचार

व्यवहारवाला करें। (पितामहा पुनन्तु) उनके पूज्य लोग भी तुझे पवित्राचारवान् बनावें। वे (पवित्रेण) पवित्र (शतायुषा) सौ वर्ष के पूर्ण दीर्घ जीवनवाले आहार आदि से मुझे पवित्र करें। (पुनन्तु पिता०, पुनन्तु प्रपिता०, पवित्रेण शतायुषा) इति पूर्ववत्। जिससे मैं (विश्वम्) समस्त, सम्पूर्ण (आयुः) जीवन का (व्यश्नवै) भोग करूं। (३७–४५) शत० १२। ८। ६–१८॥

पुत्रायुषमाविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्॥ रघुवंश० १। ६२॥

अग्न॒ऽ आयू॑ᳪषि पवस॒ऽआ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः।
आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म्॥ ३८॥

[illegible]ऋषिः। अग्निर्देवता। [illegible] [illegible]॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! राजन्! पितः! पितामह! प्रपितामह! तू (नः आयूंषि) दीर्घ जीवन और उसके प्रदान करनेवाले अन्न घृत आदि पदार्थ और प्राणायाम आदि साधनों को (पवसे) प्रदान कर (ऊर्जम्) परम उत्तम अन्नरस और पराक्रम (इषम्) इच्छानुरूप फल और अन्नादि ऐश्वर्य भी हमें (आसुव) प्रदान कर। और (आरे) समीप और दूर के (दुच्छुनाम्) दुष्ट, पागल कुत्तों के समान प्रजाओं को व्यर्थ काटने और डराने, धमकाने वाले शठ पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित कर,

पुन॑न्तु मा देवज॒नाः पु॒नन्तु॒ मन॑सा॒ धियः॑।
पुन॑न्तु॒ विश्वा॑ भू॒तानि॒ जात॑वेदः पुनी॒हि मा॥ ३९॥

वैखानस ऋषिः। देवजना धियो भूतानि च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(मा) मुझको (देवजनाः) विद्वान्, दानशील, ज्ञानद्रष्टा, प्रकाशमान्, गुरु, सूर्य आदि जन (पुनन्तु) पवित्र करें। (मनसा धियः) मन, विज्ञान से युक्त, सोच विचार कर किये गये कर्म भी मुझे पवित्र करें। (विश्वा) समस्त (भूतानि) प्राणीगण और पृथिवी, अप्, तेज, वायु

आकाशादि पदार्थ और हे (जातवेदः) विद्वान् और परमेश्वर वे ! सब (मा पुनन्तु) मुझ राजा और प्रजाजन को पवित्र करें ।

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥ रनु ॥ ४० ॥

ब्रह्म अग्निर्वा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देव) देव ! परमेश्वर, आचार्य एवं विद्वन् ! हे (दीद्यत्) दीप्यमान ! तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवान् ! (मा) मुझको (शुक्रेण) शुद्ध, दीप्तिमय, (पवित्रेण) अपने पवित्र ज्ञान स्वरूप और आचार के उपदेश से (पुनीहि) पवित्र कर । और (क्रत्वा) अपने ज्ञान और उत्तम कर्म से (अनु) तदनुसार किये (क्रतून्) हमारे कर्मों और ज्ञानों को भी पवित्र कर ।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (अर्चिषि) पूजनीय शुद्ध तेज के (अन्तरा) बीच में (पवित्रं) पवित्र, शुद्ध (ब्रह्म) ब्रह्म, वेद ज्ञान (विततम्) विस्तृत है (तेन मा पुनातु) तू उससे मुझे पवित्र कर ।

विद्वान् के पक्ष में—हे अग्ने ज्ञानवन् (ते अर्चिषि अन्तरा) तेरी ज्वाला के समान तेजस्वी मुख या जिह्वा पर जो (पवित्रं ब्रह्म विततम्) पवित्र ब्रह्म या वेदमन्त्र व्याख्यानादि विद्यमान है उसके उपदेश द्वारा तू मुझे पवित्र कर ।

राजा के पक्ष में—तेरे शुद्ध, पापशोधक ज्वाला, या तेज में जो पवित्र, पावन (ब्रह्म) ब्राह्मणगण विद्यमान है वह मुझ प्रजाजन को ज्ञान, सदाचार, उपदेश द्वारा पवित्र करें ।

पवमानः सो ऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(य) जो (अद्य) आज, नित्य ही (विचर्षणिः) सब का सूर्य के समान द्रष्टा, (पवमान) वायु और प्राण के समान सब का पवित्र कर्त्ता एवं व्यापक (पोता) अग्नि के समान शोधक परमेश्वर, विद्वान् एवं राजा है (स) वह (नः) हमें (पवित्रेण) पवित्र ज्ञान और कर्म से (मा) मुझ राजा और प्रजा को पवित्र करे ।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! हे (सवितः) सबके उत्पादक ! आप (पवित्रेण) पवित्र, शुद्ध ज्ञान कर्म और (सवेन च) ऐश्वर्य, एवं राज्याभिषेक (उभाभ्यां) दोनों से (मा) मुझ अभिषेक योग्य राजा और प्रजाजन को भी (विश्वतः पुनीहि) सब प्रकार से पवित्र कर ।

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयछ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

विश्वेदेवा देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(देवी) समस्त उत्तम कार्यों का प्रकाश करने वाली, (वैश्वदेवी) समस्त शासकों और विद्वानों की महासभा (पुनती) समस्त राज्य को पवित्र करती हुई, सत्यासत्य धर्माधर्म का चालन या सूप के समान विवेक करती हुई, (आगात्) प्राप्त हुई है । (यस्याम्) जिसमें (बह्व्यः) बहुत सी (इमाः) ये (वीतपृष्ठाः) कमनीय स्वरूप वाले, ज्ञान प्राप्त किये, (तन्वः) शरीर अर्थात् शरीरधारी जन विद्यमान हैं ।

(तथा) उनमें (मघवत्सु) उत्तम आनन्दोत्सवों के अवसरों पर (मदन्त) प्रसन्न और हर्षित होते हुए (वयं) हम सब (रयीणां पतयः) ऐश्वर्यों के पालक, स्वामी (स्याम) हों। विशेष २ अवसरों पर समस्त प्रजाजनों के प्रतिनिधि, बड़े २ आदमी अधिकारी आदि का महासभा हो। उसमें वे अपनी उन्नति के विषय पर विचार करें।

इसी प्रकार (वैश्वदेवी) समस्त स्त्रियों में अधिक विद्यासम्पन्न विदुषी आचार्याणी प्राप्त हो। (यस्याः) जिसके अधीन (बह्वीः) बहुत सी (पीतपृष्ठाः) अन्न दान में कुशल विद्वान्, विदुषी कन्याएं हों। उनके द्वारा हम प्रजाजन (मघवत्सु) गृहस्थ के कार्यों में भी शान्ति सुख प्राप्त करें और ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑।
तेषां॑ लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥ ४५ ॥

पितरो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—(यमराज्ये) नियन्ता राजा के राज्य में (ये) जो (समानाः) समान मान वाले, (समनसः) समान चित्त वाले, (पितरः) राष्ट्र के पालक, अधिकारी जन हैं (तेषां) उनको (लोकः) रहने का निवास-स्थान और (स्वधा) शरीरपोषक योग्य अन्न आदि, वेतनादि (नमः) सत्कार प्राप्त हो जिससे (यज्ञः) यज्ञ, प्रजा पालन योग्य व्यापार और प्रजापालन, परस्पर सुसंगत राज्यव्यवस्था (देवेषु) विद्वानों, शासकों और उन अधीन माण्डलिकों के बीच (कल्पताम्) और भी दृढ़ और उत्तम रूप से हो। शत० १२ । ८ । १ । १९ ॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः।
तेषा॒ᳬ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳬ समाः॑ ॥ ४६ ॥

[illegible] । अनुष्टुप् । [illegible] ।

भा०—(जीवेषु) जीवित मनुष्यों में से (ये) जो (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीवित सम्बन्धी लोग (समानाः) मेरे समान मान वाले और (समनसः) मेरे समान ज्ञान और चित्तवाले प्रेमी जन हैं (तेषां) उनकी (श्रीः) समस्त शोभा, लक्ष्मी, सम्पत्ति (अस्मिन् लोके) इस लोक में (शतं समाः) सौ बरस तक, पूर्ण आयु भर (मयि कल्पताम्) मेरे में, मेरे अधीन, मेरे निमित्त सदा बढ़ती और बना रहे। शत० १२।८।१।२०॥

द्वे सृती ऽअशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ४७ ॥

[illegible] । स्वराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(अहम्) मैं (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के लिये, उनके जीवन व्यतीत करने के (द्वे सृती) दो मार्ग (अशृणवम्) श्रवण करता हूं। (पितॄणाम्) एक पितरों का पितृयाण मार्ग (उत) और दूसरा (देवानाम्) देव, विद्वान् मुमुक्षुओं का (यत्) जो भी (पितरं मातरं च अन्तरा) पिता और माता के बीच, दोनों के संसर्ग में उत्पन्न (इदं) यह (विश्वम्) समस्त (एजत्) चर, जीवित संसार है वह (ताभ्याम्) उन दो मार्गों से ही (सम्-एति) सुखपूर्वक उत्तम रीति से प्रयाण करता है। जीवन व्यतीत कर रहा है। शत० १२।८।१।२१॥

अथवा—(अहम्) मैं जीवों के दो उत्तम मार्ग सुनता हूं। (देवानाम् उत पितॄणाम्) एक देवों का देवयान और दूसरा पितरों का पितृयाण मार्ग। (उत) और शेष तीसरा (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा जीवों का मार्ग है। उन दोनों से यह जीव संसार (सम् एति) सम्यक् पद या लोक को प्राप्त होता है जो भी पिता माता के बीच या आकाश और भूमि के बीच उत्पन्न है।

छान्दोग्य में तीन मार्ग जैसे—(१) तद्य इत्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये

श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवयान पन्था ॥ (२) अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तम् इत्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति (३) अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन । तानीमानि क्षुद्राण्य सकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीय स्थान तेनासौ लोको न सम्पूर्यते ।

राष्ट्रपक्ष में—समस्त राष्ट्रवासी प्रजाजन के जीवन यापन के दो ही मार्ग हैं । एक पालक शासक रूप से राजा की सरकारी सेवा में लगने का, दूसरा (मर्त्यानाम्) साधारण प्रजा का अपने माता पिता के पेशे में लगे रहने का ।

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरᳬ सर्वगणᳬ स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां
बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

अग्निर्देवता । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(इदं) यह (मे) मेरा (हविः) दान करने और गर्भ में स्त्री द्वारा स्वीकार करने योग्य (प्रजननं) उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य (दशवीरम्) दश पुत्र उत्पन्न करनेवाला अथवा दश प्राणयुक्त (सर्वगणम्) सर्व अङ्गों में व्यापक, अथवा सब उत्तम गुणों और अङ्गों से पूर्ण सर्वाङ्ग सुन्दर होकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो । वह (आत्मसनि) अपने देह में बल धारण करनेवाला (प्रजासनि) प्रजा देनेवाला, (पशुसनि) पशुओं और इन्द्रियगण का बल दाता, (लोकसनि) लोक, आत्मा को बल देनेवाला और (अभयसनि) अभय देनेहारा हो । (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी सामर्थ्य और, पति (मे) मेरी (बहुलां प्रजां) बहुतसी प्रजाओं को (करोतु) उत्पन्न करे । और (अस्मासु) हम में (अन्नं) अन्न, (पयः) पुष्टिकारक दुग्ध आदि पदार्थ और (रेतः) वीर्य को भी (धत्त) धारण कराओ । शत० १२ । ८ । १ । २२

राष्ट्रपक्ष में—(इद हवि.) यह आदान योग्य कर (प्रजननं) उत्तम फलजनक हो। यह (दशवीरम्) शरीर में दश प्राणों के समान दशवीर नेताओं से युक्त (सर्वगणम्) समस्त प्रजाजन को (स्वस्तये करोति) सुख कल्याणयुक्त करे । वह (हवि) कर द्वारा प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य (आत्मसनि) राजा के भोग योग्य, (प्रजासनि पशुसनि लोकसनि अभयसनि) प्रजा, पशु, अन्य लोक आश्रय का देनेवाला या उनको पुष्ट करने वाला हो। (अग्नि) अग्रणी वीर नेता सेनापति मेरी प्रजाओं की वृद्धि करे और राष्ट्र में अन्न (पय) दूध आदि पशु सम्पत्ति और (रेत.) वीर्य, बल की वृद्धि करे ।

उदीरतामवर ऽउत्परास ऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ऽईयुरवृका ऽऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४९॥

४९–६१—शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(अवरे) निकृष्ट, तृतीय श्रेणी के (परास) उत्कृष्ट श्रेणी के और (मध्यमा.) बीच की श्रेणी के (सोम्यास) राजा के अधीन रहनेवाले राष्ट्र के हितकारी अधिष्ठाता रूप, (पितर) राज्य के पालक अधिकारी जन, (उद् ३ ईरताम्) उन्नति को प्राप्त हों और राष्ट्र की उन्नति करें, उसे उठावें। (ये) जो (ऋतज्ञा॰) सत्य व्यवहारों के जाननेहारे एव ऋत, सत्य व्यवस्था नियमों के विज्ञ और स्वयं (अवृका) वृक, भेड़िये या चोरों के समान प्रजा के घातक और राजकार्य में धन के चोर न होकर (असुम्) अपने प्राण को (ईयु) धारण करते हैं। अर्थात् ईमानदारी से जीवन व्यतीत करते हैं (ते) वे (पितर॰) पालक जन (नः) हमारी संग्रामों में (अवन्तु) रक्षा करें ।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा ऽअथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयᳬ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

भा०—(न) हमारे (पितर) पालन करनेवाले पिता के समान पूजनीय, (आंगिरस) अग्नि और अंगारों के समान तेजस्वी, दुष्टों के सतापक, (नवग्वा) नवीन या स्तुति योग्य, उत्तम २ वाणियों, ज्ञानों का उपदेश करने और स्वयं प्राप्त करनेवाले (अथर्वाण) अहिंसक, शत्रु से कभी परास्त न होने वाले, (भृगव) दुष्ट पुरुषों को भूननेवाले, एवं स्वयं परिपक्व ज्ञानी, तेजस्वी (सोम्यास) सौम्य, गुणवान्, एवं सोम अर्थात् राष्ट्र, ऐश्वर्य के हितकारी हैं। (तेषां) उन (यज्ञियानां) यज्ञ, राष्ट्र व्यवस्था के करनेहारे पुरुषों की (सुमतौ) शुभ मति और (भद्रे सौमनसे) कल्याणकारी, सुप्रसन्न शुभ चित्तता में (वयम्) हम सदा (स्याम) रहा करें।

ये न॒: पूर्वे॑ पि॒तर॑: सो॒म्यासो॑ऽनूहि॒रे सो॑मपी॒थं वसि॑ष्ठाः ।
तेभि॑र्य॒मः स॑ᳪँररा॒णो ह॒वीᳪँष्यु॒शन्नु॒शद्भि॑: प्रतिका॒मम॑त्तु ॥ ५१ ॥

भा०—(ये) जो (न) हमारे (पूर्वे) पूर्व के या पूर्ण सामर्थ्य वाले (पितर) पालक पिता, गुरु, आचार्य आदि पूज्य पुरुष (वसिष्ठा) अति अधिक ऐश्वर्यवान्, (सोम्यास) सोम, राज्यैश्वर्य के हितकारी होकर (सोमपीथ) राज्य, ऐश्वर्य या राजपद के पालन एवं भोग को (अनु ऊहिरे) उचित रीति से अनुकूल रहकर वहन करते हैं राजा की आज्ञा और नियमानुसार राज्य कार्यों के भार उठाते हैं (यम) नियन्ता, राजा पुत्र के समान (उशद्भि) नाना कामनाएं करनेहारे (तेभि) उनके साथ स्वयं भी (उशन्) कामनावान् या कान्तिमान् तेजस्वी होकर (हवींषि संरराण) अन्न आदि भोग्य पदार्थों या वस्तुओं को दान करता एवं स्वयं रमण करता हुआ (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना योग्य भोग को (अनु) भोग करे।

त्वᳪँ सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वᳪँ रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।

तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ५२ ॥

भा०—हे (सोम) सर्व आज्ञापक अभिषेकयुक्त, राजन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (प्रचिकितः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् है। अत (मनीषा) अपनी बुद्धि से (त्वं) तू (रजिष्ठम्) अति सरल (पन्थाम्) मार्ग पर (नेषि) ले चल। (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम शासन नीति में हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! चन्द्र के समान, दयार्द्र एवं शीतलस्वभाव ! (धीराः) बुद्धिमान्, धैर्यवान् (पितरः) प्रजापालक जन, पुत्र के शासन में पिताओं के समान (देवेषु) राजाओं और ज्ञानवान् विद्वानों के बीच (रत्नम्) रमण करने योग्य श्रेष्ठ पद एवं राष्ट्र को (अभजन्त) प्राप्त करें।

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः। वन्वन्नवातः परिधीँरऽअपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! हे (पवमान) वायु के या सूर्य के समान शुद्ध करनेहारे ! (हि) क्योंकि (त्वया) तेरे द्वारा ही (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के या विद्याओं में पूर्ण, (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पालक पुरुष भी (कर्माणि) समस्त कार्य (चक्रुः) करते हैं। तू स्वयं (अवातः) किसी से पीड़ित और कम्पित न होकर, (वन्वन्) राष्ट्र का भोग करता हुआ, सेनाओं को उचित स्थानों पर संविभक्त करता हुआ (परिधीन्) चारों तरफ स्थित शत्रुओं को (अप ऊर्णु) दूर हटा देता। और (वीरेभिः अश्वेभिः) वीर अश्वारोहियों द्वारा (नः) हमारे लिये (मघवा) परम ऐश्वर्यवान् होकर (भव) रह।

त्वꣳसोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवीऽआ ततन्थ। तस्मै त ऽइन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥

भा०—हे (सोम) सोम ! राजन् ! (त्वं) तू (पितृभिः) राष्ट्-

पालक शासकों एवं राजसभा के सभासद् पुरुषों से (संविदान) सहमति करता हुआ (अनु) तदनुसार (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान राजशक्ति और प्रजागण को (आततन्थ) विस्तृत कर। हे (इन्दो) चन्द्र के समान प्रिय ! (ते तस्मै) उस तुझे हम (हविषा) स्वीकार करने और प्रदान करने योग्य उत्तम आदर एवं पुरस्कार द्वारा (विधेम) साक्षात् करें, तेरी आज्ञा पालन करें। और (वयं) हम (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों।

बर्हिषदः पितरऽ ऊत्युर्वागिमा वो हुव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योरुरपो दधात ॥ ५५ ॥

भा०—हे (बर्हिषद) प्रजाओं के ऊपर शासकरूप से विराजमान एवं उत्तम आसनों और पदों पर स्थित (पितर) पालक जनो ! (व) आप लोगों के लिए (इमा हव्या) इन अन्नादि भोग्य पदार्थों को हम (चकृम) उत्पन्न करते हैं। आप लोग (ऊत्या) अपने रक्षा के निमित्त (जुषध्वम्) उनको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। (ते) वे आप लोग (शन्तमेन) अति अधिक शान्तिदायक, सुखकारी (अवसा) रक्षण सामर्थ्य से (आगत) आओ। (नः) हमें (शं) शान्ति, सुख (योः) और कष्टों का निवारण कर (अरप) पाप और दुःख से रहित, सदाचार और सुख (दधात) प्रदान करो।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽअवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्तऽइहागमिष्ठाः ॥५६॥

भा०—(अहम्) मैं (सुविदत्रान्) उत्तम, विविध शुभ ज्ञानों के देने और जानने वाले (पितॄन्) पिता के समान पूजनीय, गुरु आदि पालक पुरुषों को (आ अवित्सि) प्राप्त करूं। और (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के

(नपातं च) अविनाशी, सामर्थ्य और (विक्रमणं च) विविध व्यापक सृष्टि क्रम को भी (आ अविसि) जानूं। और (ये) जो (बर्हिषदः) महान् ब्रह्म में ही स्थित ब्रह्मिष्ठ पुरुष (स्वधया) आत्म धारणा शक्ति से (सुतस्य) स्वयं निष्पादित। साक्षात् किये, (पित्वः) पान योग्य, परमानन्द रसस्वरूप आत्मा का या ब्रह्म का (भजन्ते) भजन, सेवन करते हैं (ते इह) वे इस राष्ट्र या गृह में (आ अगमिष्ठाः) आवें।

राजा के पक्ष में—मैं प्रजाजन (सुविदत्रान्) उत्तम रीति से नाना प्रकार के पदार्थों के दाता, एवं पालक पुरुषों को प्राप्त करूं और जानूं और (विष्णोः) व्यापक सामर्थ्यवान् राजा के (नपातं) अखण्ड तेज और (विक्रमणं) पराक्रम को भी प्राप्त करूं। (ये) जो (स्वधया) अपने वेतन के द्वारा ही (बर्हिषदः) उच्च आसन या प्रजाओं पर अधिकारी रूप से विराजते हैं और (सुतस्य पित्वः) उत्पादित अन्नादि पदार्थों का भोग करते अथवा अभिषिक्त परिपालक राजा की सेवा करते हैं (ते इह) वे इस राष्ट्र में (आ अगमिष्ठाः) आवें।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त ऽआ गमन्तु त ऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

भा०—(सोम्यासः) सोम राष्ट्र, ऐश्वर्य एवं राजा के हित कर, उसके चाहने वाले (पितरः) पालक जन (बर्हिष्येषु) प्रजाओं के संगृहीत उत्तम उत्तम पदार्थों अथवा आसनों के योग्य (प्रियेषु) प्रिय, अतिमनोहर (निधिषु) धन कोशों के आधार पर उनके भोग करने के लिये (उपहूताः) निमन्त्रित किये जाते हैं। (ते) वे (आगमन्तु) आवें, (ते) वे (इह) इस राष्ट्र में आकर (श्रुवन्तु) हमारे वचन सुनें। (ते अधि ब्रुवन्तु) वे अधिष्ठाता होकर आज्ञा और उपदेश दें। (ते) वे (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

भा०—(नः) हमारे (सोम्यासः) राष्ट्र समृद्धि और ऐश्वर्य के इच्छुक (अग्निष्वात्ताः) अग्नि, अग्रणी रूप में स्वात्त, स्वीकृत, अथवा अग्रणी, ज्ञानी, विद्वान् आचार्य आदि पदों का भाग करने वाले, अथवा अग्नि के समान तेजस्वी राजा द्वारा स्वीकृत या उत्तम पदों पर प्राप्त होकर (पितरः) पालक जन (देवयानैः) देवों, विद्वानों से चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से, (आ यन्तु) आवें। (ते) वे भी (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में, ज्ञान मार्ग एवं प्रजा पालन के कार्य में (स्वधया) अन्नादि पदार्थों द्वारा (मदन्तः) तृप्त, सन्तुष्ट होकर (अधि ब्रुवन्तु) शासक होकर आज्ञा करें और (अस्मान्) हमें (अवन्तु) दुष्ट पुरुषों के आघात से बचावें।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥ ५९ ॥

भा०—हे (अग्निष्वात्ताः पितरः) पूर्वोक्त अग्निष्वात्त, अग्रणी रूप से राजा द्वारा स्वीकृत एवं पालक पुरुषो ! आप लोग (इह आगच्छत) यहां आओ। और (सुप्रणीतयः) उत्तम सुखदायक मार्ग में ले जाने एवं उत्तम न्याय और राजनीति के चलाने में कुशल होकर (सदः सदः सदत) अपने २ पृथक् घरों और एवं राजसभाओं में विराजमान होओ। और (प्रयतानि) नियमपूर्वक नियत (हवींषि) स्वीकार योग्य अन्नादि पदार्थों को (अत्त) भोग करो। (अथ) और (बर्हिषि) विशाल राष्ट्र एवं प्रजा पर (सर्ववीरम् रयिम्) समस्त वीरों के उत्पादक ऐश्वर्य को (दधातन) धारण करो।

येऽअग्निष्वात्ता येऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

भा०—(य) जो (अग्निष्वात्ता) अग्रणी आदि पदों पर स्थित अथवा राजा से स्वीकृत हैं और (य) (अनग्निष्वात्ता) जो अग्रणी मुख्य पदों पर नहीं स्थित हैं अथवा जिनको राजा का ओर से नहीं चुना गया है प्रत्युत जो प्रजा द्वारा चुने गये हैं या ज्ञाननिष्ठ आदर योग्य हैं और जो (मध्ये दिवः) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा के बीच (स्वधया) अपनी धारण शक्ति सामर्थ्य से (मादयन्ते) आनन्द प्रसन्न रहते और अन्यों को ज्ञान से तृप्त करते हैं । (तेभ्यः) उनके लिये भी (स्वराट्) स्वयं सबों पर विराजमान सूर्य के समान तेजस्वी बड़ा राजा (यथावशं) यथाशक्ति (असुनीतिम्) प्राण धारण कराने वाली (तन्वं) शरीरवृत्ति को (कल्पयाति) लगादे ।

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य ऽआशुः । ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥

भा०—(य) जो (नाराशंसे) उत्तम पुरुषों के प्रशंसा के समय उत्तम आदर सत्कार व्यवहार में (सोमपीथम्) राजैश्वर्य के पालन करने के पदाधिकार को (आशुः) प्राप्त करते हैं उन (अग्नि ष्वात्तान्) अग्रणी तेजस्वी पद को प्राप्त या सेनानायकों द्वारा स्वीकृत (ऋतुमतः) ज्ञान बल के स्वामी पुरुषों को (हवामहे) आदर से बुलावें । (ते) वे (विप्रासः) मेधावी विद्वान् पुरुष (नः) हमें (सुहवाः) उत्तम समृद्धि के देने वाले (भवन्तु) हों । और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बनें ।

ऋतुमन्तः —या एव विभूतयः ऋतवस्ते । तै० १ । २ । १ । १ ॥ ऋतव उपसदः श० १० । २ । ४ । तदन्या ऋतवोऽभवन् । तै० ३ । १२ । ६ । ४ ॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरः यथा मनुष्यस्य । ऐ० १ । ३ ॥ ऋतव एते यदृतव्या । ऋतवो ऋतव्या, विश इमा इतरा

हृष्काः ॥ श० । ७ । १ । १ । ७२ ॥ विभूतियें उपसद् अर्थात् उप-सभाएं, या मोर्चे, राजाओं के सम्बन्धी जन, राजसभा के सदस्य और क्षत्रिय पदाधिकारी ये सब 'ऋतु' कहाते हैं ।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६२॥
६२—७१ पितरो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(जानु) गोड़े को (आच्य) सकोच कर (दक्षिणतः) दायें तरफ (निषद्य) बैठ कर (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ, सब राष्ट्र को सुसंगत करने वाले प्रजा पालक राजा को लक्ष्य करके (विश्वे) आप लोग सब (अभिगृणीत) अपना २ वक्तव्य प्रकट करो । हे (पितरः) प्रजा के पालक पुरुषो ! (केनचित्) किसी भी प्रकार से (नः) हमें (मा हिंसिष्ट) मत मारो । (यद्) जब हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता = पुरुषतायाम्) पुरुषार्थ करते हुए अथवा पुरुष अर्थात् सामान्य मनुष्य होने से (आगः) अपराध या त्रुटि भी (कराम) करें ।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक पिता लोगो ! आप लोग (अरुणीनाम्) गौर वर्ण, एवं गौओं के समान प्रिय, मनोहर मातृजनों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त) दानशील त्यागी पुरुष को ऐश्वर्य प्रदान करो । हे (पितरः) पालक पिता जनो ! (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (तस्य वस्वः) उस २ धन को प्रदान करो । (ते) वे आप लोग (इह) इस गृहाश्रम में रह कर (ऊर्जं) बल पराक्रम के गुण (दधात) धारण करो ।

राजपक्ष में—(अरुणीनाम्) लाल ऊन के गद्दियों के (उपस्थे) ऊपर

पर या भूमियों पर अधिकारि रूप से (आसनाम) बैठे हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (रयिं धत्त) ऐश्वर्य भूमि आदि अधिकार प्रदान करो। (पितर पुत्रेभ्य) पुत्रों को जिस प्रकार पिता लोग अपनी २ जायदाद देते हैं उसी प्रकार आप लोग (तस्य वस्व) उस २ नाना प्रकार के धन को प्रजाओं को (प्रयच्छत) प्रदान करो। (ते) वे आप लोग (इह) इस राष्ट्र में या इस राजा में इसके अधीन रह कर इसके निमित्त (ऊर्जं) बल पराक्रम को (धत्त) धारण करो।

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम्।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥

त्रिष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी नेत ! राजन् ! हे (कव्यवाहन) विद्वान्, कवि पुरुषों के देने योग्य ऐश्वर्य के धारक ! अथवा स्तुत्य गुणों को धारण करने हारे ! (त्वं) तू (यम्) जिस (रयिम्) ऐश्वर्य को, (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (श्रवाय्यम्) अन्यों को सुनाने योग्य, प्रशंसनीय (देवत्रा) देव, विद्वानों को (युजम्) देने योग्य (चित्) ही (मन्यसे) मानता है (तत्) उसको (नः) हमें (पनय) प्रदान कर।

यो ऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य ऽआ ॥ ६५ ॥

अनुष्टुप्। गान्धारः। अग्निर्देवता ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) ज्ञानवान् विद्याओं के प्रकाश से प्रकाशमान् (कव्यवाहनः) विद्वान् मेधावी पुरुषों के योग्य ज्ञानवचनों को धारण करने हारा विद्वान् (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाले, (पितॄन्) पालक पुरुषों को (यक्षत्) पूजा सत्कार करता है। और (हव्यानि)

ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का (देवेभ्य) ज्ञानवान् पुरुषों और (पितृभ्य) पालक पुरुषों के लिये (प्रा प्रवोचत्) प्रवचन द्वारा सर्वत्र प्रदान या उपदेश करता है, वह (आ) सर्वत्र विख्यात होता है ।

त्वम॑ग्नऽईडि॒तः क॑व्यवाह॒नावा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वी । प्रादाः॑ पि॒तृभ्यः॑ स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ॥ ६६ ॥

अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवान् ! हे (कव्यवाहन) विद्वानों के वर्णन योग्य कर्मों और सामर्थ्यों को धारण करने वाले ! (त्वम्) तू (ईडितः) स्तुति को प्राप्त होकर (हव्यानि) अन्नादि पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वा) उत्तम सुगन्ध युक्त, अग्नि के समान सुखजनक करके (अवाट्) ग्रहण कर और (पितृभ्यः) पालक जनों को भी (प्रादाः) प्रदान कर । (ते) वे लोग (स्वधया) अपने देह के पोषणकारी अन्न और वेतन के रूप में उसको (अक्षन्) भोग करें और (त्वं) तू हे (देव) देव ! राजन् ! (प्रयता) उत्तम रीति से साधित अग्नि आदि के समान उन (हवींषि) प्रदत्त कर आदि भोग्य पदार्थों को (अद्धि) भोग कर ।

ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ२ऽउ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म । त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञꣳ सुकृ॑तं जुषस्व ॥ ६७ ॥

भा०—(ये च पितरः) जो पालक जन, शासक (इह) यहां विद्यमान हैं (ये च) और जो (न इह) यहां नहीं हैं, (यान् च विद्म) जिनको हम जानते हैं और (यान् उ च न प्रविद्म) जिनको हम नहीं भी जानते हैं, हे (जातवेद) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! (ये) (यति) जितने भी हों (त्वं) तू उनको (वेत्थ) जान और (स्वधाभिः)

६६—त्वमग्न ईडितः [illegible]

योग्य अन्न आदि देहपोषक सामग्रियों से (सुकृतम्) उत्तम रूप से सम्पादित (यज्ञम्) प्रजापालनरूप 'यज्ञ' को (जुषस्व) सेवन करो। उनको राष्ट्र-कार्य में प्रेम उत्पन्न करो। उनसे राष्ट्र की सेवा करो।

इदं पितृभ्यो नमो॑ ऽअस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ यऽ उप॑रास॒ ऽईयुः॑ ।
ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नꣳ सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु ॥६८॥

भा०—(अद्य) आज विशेष नियत दिन में (ये पूर्वास) जो पूर्व के, हमारे पहले के और हमसे पूर्व ही कार्य में नियुक्त हैं और (ये) जो (उपरास) अपने कार्य को अबाध समाप्त करके (ईयुः) चले गये हैं उन (पितृभ्यः) पालक पुरुषों के निमित्त (इदं नमः) यह नमस्कार, आदर भाव एवं अन्न आदि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो। और (ये) जो (पार्थिवे रजसि) पृथिवी लोक में (आ निषत्ता) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान हैं (ये वा) और जो (नूनम्) निश्चय से (सु-वृजनासु) उत्तम बल और उत्तम आचार वाला (विक्षु) प्रजाओं पर (आनिषत्ता) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान हैं उनको भी (इदं नमः अस्तु) यह अन्नादि वेतन प्राप्त हो।

अधा॒ यथा॑ नः पि॒तरः॒ परा॑सः प्र॒त्नासो॑ऽ अग्न ऋ॒तमा॑शुषा॒णाः ।
शुचीद॑य॒न्दीधि॑तिमुक्थ॒शासः॒ क्षामा॑ भि॒न्दन्तो॑ अरु॒णीरप॑ व्रन् ॥६९॥

पितरो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (अध) और (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (परासः) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त (प्रत्नासः) पूर्व के (पितरः) गुरु जन (शुचि) शुद्ध पवित्र (ऋतम्) सत्य, परम ज्ञान को (आशुषाणाः) प्राप्त होते हुए और (उक्थशासः) ज्ञानोपदेश करते हुए (क्षामा) विनाशकारिणी नीच प्रवृत्तियों को या

भूमियों को (भिन्दन्तः) भेदते हुए (दीधितिम्) ज्ञान रश्मि या आदित्य स्वरूप परमेश्वर को (अप मन्) प्राप्त होते हैं। अथवा—(अप) सहवर्ती (अरुणीः) प्रकाशमय उषाकाल की भूमियों को (मन्) प्राप्त होते अथवा अन्धकार भूमियों को दूर करते हुए प्रकाशमय लोकों को प्राप्त करते हैं।

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥

पितरो देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् 'पुत्र के समान प्रिय राजन्' हम लोग (उशन्तः) कामना करते हुए (त्वा) तुझको (निधीमहि) राज्यासन पर स्थापित करते हैं। और (उशन्तः) कामनावान् होकर ही (सम् इधीमहि) सब मिल कर तुझे अग्नि के समान नित्य प्रदीप्त करते, तुझे अधिक तेजस्वी करते हैं। तू (उशन्) स्वयं भी यश और धर्म की कामना करता हुआ (उशतः) कामना वाले (पितॄन्) राष्ट्र के पालक हम लोगों को (हविषे अत्तवे) अन्न, कर आदि प्राप्त पदार्थों के प्राप्त करने और भोग करने के लिए (आ वह) प्राप्त करा या हमें प्राप्त कर लेने की आज्ञा दे।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ७१ ॥

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् 'शत्रुविदारक' और सेनापते 'राजन्' (यद्) जब तू (विश्वा) समस्त (स्पृधः) संग्राम में प्रतिस्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को (अजय) विजय करता है तब (अपां फेनेन) जिस प्रकार सूर्य, वायु या विद्युत् जलों के वेग की वृद्धि करके (नमुचेः) मेघ न छूटने वाले मेघ के (शिरः) प्रधान भाग को करते हैं। (उद् अवर्तयः)

छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार राजा भी (श्रपां) प्रजा और आस पुरुषों के (फेनन) बल की वृद्धि करके उनसे (नमुचे) आग्रह और संग्राम भूमि को न छोड़ने वाले शत्रु के (शिर) शिर, सेना के मुख्य भाग को (उत् अवर्त्तय) काट डालता है।

'उत् अवर्त्तय'—उत् पूर्वो वृति धातु छेदनऽर्थे वर्त्तते इति उवट । 'फेन'—स्फायते वर्धते इति फेन । दया० उवा० ।

सोमो राजामृतꣳ सुतऽऋजीषेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रिय विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

अश्विनरस्वतीन्द्रा ऋषयः । प्रहा सोमो राजा च देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(सोम) सर्वप्रेरक (राजा) राजा, सब से ऊपर विराजमान पुरुष भी (सुत) राज पद पर अभिषिक्त होकर (अमृतम्) अमृत, अखण्ड राज्याधिकार को प्राप्त करता है और (ऋजीषण) सरल, धर्मानुकूल आचरण से, अथवा संगृहीत प्रभूत धनकोष और सेनाबल द्वारा (मृत्युम्) प्रजा और राजा पर आने वाले मृत्यु अर्थात् प्राण संकट को (अजहात्) दूर करता है। (ऋतेन) सत्य वेदज्ञान से (सत्यम्) सच्चे (विपानम्) विविध प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ (इन्द्रियम्) राजोचित ऐश्वर्य और (अन्धस) अन्न के (शुक्र) शुद्ध, सारभूत वीर्य और (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् सेनापति के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (इदम्) इस प्रत्यक्ष (पयः) पुष्टिकारक अन्न, (अमृतम्) दीर्घ जीवन या उत्तम जल और (मधु) मधुर पदार्थ, सभी उत्तम पदार्थ को प्राप्त करता है।

अध्यात्म में—(सोम राजा) प्रकाशवान् ज्ञानी पुरुष (सुत) योग आदि द्वारा ज्ञानसम्पन्न शुद्ध बुद्ध होकर (अमृत) अमृत हो जाता

है और (मृत्युम् अजहात्) मृत्यु को पार कर जाता है। (सत्यम्) यज्ञ से जिस प्रकार वीर्य को प्राप्त करता है उसी प्रकार (ऋतेन) सत्य के बल पर (सत्यम् इन्द्रिय) सच्चे आत्मिक बल को और (इन्द्रस्य) अपने ऐश्वर्यवान् आत्मा के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यमय स्वरूप को (इदम्) साक्षात् (पय.) दूध के समान स्वच्छ (अमृतम्) अमृत के समान अविनाशी (मधु) मधु के समान मधुर आनन्दमय रूप को प्राप्त करता है।

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु ॥७३॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(क्रुङ्) हंस जिस प्रकार (अद्भ्यः) जलों के बीच में से (क्षीरम्) दूध को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार (आङ्गिरसः) ज्ञानवान् आत्मा, अङ्गों में रस या सार, अग्निरूप में व्यापक (क्रुङ्) अति सूक्ष्म, आत्मा या ज्ञानी, योगी, परमहंस (धिया) अपनी योगधारणावती बुद्धि से (अद्भ्यः) प्राणों के बीच में से (क्षीरम्) परम उपभोग्य परमानन्द रस को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान करता है। (ऋतेन सत्यम् इत्यादि) पूर्ववत् ॥

इसी प्रकार राजा के पक्ष में—(क्रुङ्) हंस के समान अति सूक्ष्म या व्यापक, कुटिल दुर्बोध, गहन, नीतिमान् (आङ्गिरस) शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में व्यापक, सर्वदर्शक एवं आङ्गिरस वेद का ज्ञाता, विद्वान् राजा (धिया) अपने धारण शासन करने वाली राजनीति से (अद्भ्यः) आप्त प्रजाओं में से ही (क्षीरम्) भोग योग्य सार पदार्थ को (वि अपिबत्) विविध रूपों में ग्रहण करता, प्राप्त करता है।

सोमंमद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हृ॑सः शुंचिषत्। ऋतेनं सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस॒ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

सोमो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(हस) हंस जिस प्रकार (अद्भ्य) जलों के बीच मे से (सोमम) परम साररूप अश को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार (शुचिषत्) शुद्ध ब्रह्म में विद्यमान योगी (हस) अपने समस्त सांसारिक दुःखों का नाश करने में समर्थ होकर (छन्दसा) स्वच्छन्द अपने आत्म सामर्थ्य से या प्राण के बल से यथेच्छ (अद्भ्य) प्राणों के बीच मे से या प्राप्त ज्ञानों और कर्मों में से ही (सोमम्) परम ब्रह्मानन्द रसों का (वि अपिबत्) विविध प्रकारों से पान करता है। और उसी प्रकार राष्ट्र में राजा (शुचिषत्) शुचि, निष्पाप, निश्छल, शुद्ध निष्कपट, धर्माध्यक्ष के आसन पर विराजमान राजा भी (हस) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों के हनन करने के अधिकार को प्राप्त करके (छन्दसा) प्रजा के आच्छादन या रक्षण बल से (अद्भ्य) आप्त प्रजाओं के बीच म से (सोमम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वि अपिबत्) विविध उपायों से प्राप्त करता है । (ऋतेन सत्यम् इत्यादि) पूर्ववत् ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस॒ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

भा०—(प्रजापति) प्रजा का पालक राजा (परिस्रुत) परिपक्व (अन्नात्) अन्न से प्राप्त (रसम्) रस के समान प्राप्त (क्षत्र)

शत्रुबल, (पय) पुष्टिकार अन्न और (सोमम्) ऐश्वर्य को (ब्रह्मणा) ब्रह्मवेद और वेदज्ञ विद्वान् के साथ मिलकर (वि अपिबत्) विविध प्रकार से पान करने में समर्थ होता है । (ऋतेन० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

अध्यात्म में—(प्रजापति) आत्मा (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से परिपक्व अन्न से रस के समान (परिस्रुत) परिस्रवण करने वाले आत्मा में प्रवाहित होने वाले ज्ञान का (पयम्) रसकारी, पुष्टिकर, अध्यात्म ऐश्वर्य का पान करता है ।

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृतऽउल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—जो (इन्द्रियं) इन्द्रिय (मूत्रं जहाति) मूत्रोत्सर्ग करता है परन्तु (योनिम्) की योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ वही (इन्द्रियम्) पुरुष का उपस्थ इन्द्रिय जिस प्रकार (रेत) वीर्य को (विजहाति) विशेष रूप से उत्सर्ग करता है । उसी प्रकार (इन्द्रियम्) राजा या इन्द्र का बल, सेना बल भी जो अन्यत्र रूप. (मूत्रं) छोड़ देने योग्य, त्यागने योग्य पदार्थों का दान करता है अथवा जो छोड़ने या फेंकने योग्य अस्त्रों को शत्रु पर फेंकता है ... राजा का ऐश्वर्य बल (योनिम्) अपने आश्रयभूत राष्ट्र में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेत) वीर्य अर्थात् उत्पादन सामर्थ्य को (वि जहाति) विविध उपायों से और विविध मार्गों से छोड़ता या फैला देता है । और जिस प्रकार (गर्भः जरायुणावृत) गर्भ जरायुओं से बद्ध होकर भी (जन्मना) जन्म लेकर (उल्व)

उस 'उल्व' अर्थात् जेर को (जहाति) छोड़ देता है। उसी प्रकार राजा भी (गर्भ) राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ होकर (जरायुणा) शत्रुनाशक बल से आवृत होकर अपने (जन्मना) राज्याभिषेक द्वारा या विशेष प्रादुर्भाव के द्वारा (उल्व) सघ में एकत्र हुए अधिक सेना के भाग को (जहाति) परित्याग कर देता है। (ऋतेन सत्यम्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥

प्रजापतिर्देवता। अतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक परमेश्वर, राजा और न्यायकर्त्ता, (ऋतेन) सत्य ज्ञान के बल से (सत्यानृत रूपे) सत्य और अनृत, सच और झूठ दोनों के स्वरूपों को पृथक् २ विवेचना द्वारा (दृष्ट्वा) देखकर (वि आ अकरोत्) पृथक् २ उपदेश करता है। वह (अनृते) असत्य, सत्यज्ञान से रहित पदार्थ में (अश्रद्धाम्) अश्रद्धा अप्रेम, या अग्राह्य बुद्धि को (अदधात्) धारण करता और कराता है और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम् अदधात्) श्रद्धा अर्थात् सत्य करके मानने की बुद्धि को धारण कराता है। उसी प्रकार प्रजापालक राजा भी सत्य और असत्य को (ऋतेन) वेद के द्वारा निर्णय करा कर प्रकट करे और असत्य मन्तव्यों को अग्राह्य ठहरावे और सत्य में प्रेम, विश्वास और ग्राह्यता या मान्यता बुद्धि उत्पन्न करे। (ऋतेन) सत्य वेद द्वारा प्राप्त (सत्यम्) सत्य पदार्थ (इन्द्रियम्) आत्मा का हितकारी (विपानम्) विविध प्रकार से रक्षा करनेवाला, (शुक्रम्) आत्मा की शुद्धि करनेवाला, (अन्धसः इन्द्रस्य) अन्धकार के निवर्त्तक ऐश्वर्यवान् आत्मा और परमेश्वर प्रभु का (इन्द्रियम्)

परम ऐश्वर्य है जो (इदम्) साक्षात् (पयः) पुष्टिकारी दूध के समान सुखप्रद पुष्टिवर्धक, (अमृतम्) जल के समान जीवनप्रद, मृत्यु के भय को हरनेवाला और मधु के समान मधुर एवं ज्ञानरूप से मनन करने योग्य है इसी प्रकार (ऋतेन) व्यवस्था ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त (सत्य) सत्यनिर्णय या सज्जनों का हितकारी (इन्द्रियम्) चक्षु के समान मार्गदर्शक, मन के समान निर्णयकारी, (विपानं) प्रजा का विशेष पालक (शुक्रम्) शुद्ध, (अन्धसः इन्द्रस्य) अज्ञाननाशक राजा का (इन्द्रियम्) विशेष ऐश्वर्य के समान शोभाकर है, जो (इदम्) साक्षात् (पयः) सबको तृप्तिकारक, (अमृतम्) अमर, अविनाशी और (मधु) दुष्टों को दमनकारी है ।

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । [illegible] विराट् । धैवतः ।

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (वेदेन) परम ज्ञान, ईश्वर से प्रकाशित सत्य ज्ञान, वेद के द्वारा (सुतासुतौ) सुत', इन्द्रियग्राह्य एवं विद्वानों द्वारा उपदिष्ट और 'असुत' इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य एवं विद्वानों द्वारा न उपदेश किये गये दोनों प्रकार के पदार्थों का (वि अपिबत्) विशेष रूप से ज्ञान ग्रहण करे । (ऋतेन० इत्यादि) पूर्ववत् ।

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७९ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । [illegible] । [illegible] ॥

भा०—(परिस्रुतः) सब प्रकार से परिष्कृत (प्रजापतिः) प्रजा पालक राजा (शुक्रेण) शुद्ध कान्तिमान् प्रताप से (शुक्रम्) शुद्ध वीर्य

गये (रस) सारवान् पदार्थ को (दृष्ट्वा) पर्यालोचन करके (पय) पुष्टिकारक (सोमम्) ऐश्वर्य को (वि अपिबत्) विविध उपायों से ग्रहण करता है। अथवा-(परिस्रुत रसम्) परिपक्व अन्न के रस के समान उत्तम या भपके द्वारा प्राप्त सार पदार्थ के समान (शुक्रम) शुद्ध, कान्तिमान् अन्न, सुवर्ण आदि पदार्थ को भी (प्रजापति) राजा (शुक्रेण) शुद्ध निष्पाप उपाय से (दृष्ट्वा) देखभाल कर (पय सोमम्) पुष्टिप्रद दूध के समान ऐश्वर्य को ओषधि के समान स्वच्छ करके (वि अपिबत्) पान करे, ग्रहण करे। (ऋतेन सत्यम्० इत्यादि) पूर्ववत्।

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऽऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति।
अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥८०॥

सविता सरस्वती वरुणश्च देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(कवय) क्रान्तदर्शी (मनीषिण) बुद्धिमान विद्वान् पुरुष जिस प्रकार (सीसेन) सीसा के बल पर (तन्त्र) राष्ट्र की (वयन्ति) वृद्धि करते हैं अर्थात् सीसा की गोलियों से दुष्ट शत्रुओं का संहार करके राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिस प्रकार वे (मनसा) मन से, आत्मचिन्तन से (तन्त्रम्) अति विस्तृत शास्त्र सिद्धान्त को (वयन्ति) ऊहापोह द्वारा विस्तृत ज्ञान करते और व्याख्या करते हैं और जिस प्रकार (ऊर्णासूत्रेण) ऊन और अन्य कोमल सूत्रमय पदार्थों के सूत से उसके समान (तन्त्र) विस्तृत पट को (वयन्ति) बुनते हैं उसी प्रकार (अश्विना) राष्ट्र के स्त्री पुरुष (सविता) आज्ञापक सूर्य के समान विद्वान् पुरुष और (सरस्वती) ज्ञानी वक्ता और (वरुण) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनापति ये सब मिलकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (रूप) उज्वल कान्तिमान् रूप को (भिषज्यन्) शरीर के समान पीड़ा और बाधाओं से रहित, निष्कण्टक करते हुए (तन्त्र) राष्ट्र का (वयन्ति) विस्तार करते हैं।

तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सꣳरराणाः । लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माꣳसमभवन्न लाजाः ॥ ८१ ॥

अश्विनौ सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(तिस्र देवता) तीनों विजयशाली देवगण, (शचीभि) अपनी २ शक्तियों से (अस्य) इस राष्ट्र प्रजा पालक राजा को (अमृतम्) अविनाशी, अखण्ड (रूपम्) रूप (सरराणा) अच्छी प्रकार प्रदान करते हुए (दधु) धारण पोषण करते हैं। वे (बहुधा) बहुत प्रकारों के (शष्पै) शस्त्रों अर्थात् शत्रुओं का मारने और पालन करनेवाले साधन सब रूपों से (अस्य लोमानि अदधु) इस राष्ट्रमय प्रजापति के रोमों को निर्माण करते हैं। जैसे शरीर पर या पशु के शरीर पर बाल उसकी रक्षा करते हैं और भेड़ के शरीर के रोमरूप कवि ही उसकी शत्रु से रक्षा करते हैं उसी प्रकार शस्त्रास्त्र भी राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। अतः वही राष्ट्र शरीर के लोम हैं। (न) और (तोक्मभि) शत्रु को व्यथा देनेवाले और मारनेवाले सेनाओं के बल एवं महारथों द्वारा व विद्वान् (अस्य) इस राष्ट्रमय प्रजापति के (त्वक) शरीर पर खाल त्वचा के समान आवरण परकोट की रचना करते हैं। वही २ सैन्य और परकोट आदि राष्ट्र की त्वचा के समान हैं। (न) और (लाजा) शोभाजनक कर्मान्त् विभूतियों का (मांसम्) इसका 'मांस' अर्थात् मनको शुभ लगनेवाले पदार्थ के समान (अभवन्) है। अथवा—यहां राष्ट्र में विद्यमान धन साधन, पुष्ट शरीर के बदले मांस के समान है। राष्ट्र में विभूति समृद्धि ही राष्ट्र के हृष्ट पुष्ट शरीर में मांस के समान है। उस समृद्धि से ही राष्ट्र हृष्ट पुष्ट रहता है, पर दूसरा उसी को देखकर लुभा जाता है और उसका मन हरने से ही समृद्धिया 'मांस' के समान है।

'न'—अध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नकारा सर्वे चकारार्थाः इति महीधर। नकार समुच्चये आ अध्याय परिसमाप्तेरिति उवटः। यजुर्वेदे—'न' निषेधार्थे इति दयानन्द।

स्वाध्याय यज्ञ में—(लिङ्ग देवता) शिष्य गुरु और परीक्षक, परस्पर ज्ञान का आदान प्रदान करते हुए (अस्य अमृत रूप) इनके अमृतरूप को धारण करते हैं। और (रूपे लोमानि दधु) लम्बे २ बालों के सहित लोमों को धारण करते हैं अर्थात् जटिल होकर वन में रहते हैं। (न तोक्मभिः) बालकों से यह यज्ञ नहीं होता। और (अस्य त्वग् मांसम् लाजा न अभवन्) उसके हवि में त्वचा, मांस, खीलें आदि हवि नहीं होतीं।

तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती वयति॒ पेशो॒ अन्त॑रम्। अ॒स्थि म॒ज्जानं॒ मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवां॑ त्व॒चि ॥ =२ ॥

अश्विनौ सरस्वती च देवताः। त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(रुद्रवर्तनी) शरीर में एकादश रुद्रों, प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार कराने वाले (अश्विना) अश्विगण, विद्वान् स्त्री पुरुष एवं गुरु और शिष्य और (सरस्वती) वेदविद्या या विद्वत्-सभा ये तीनों मिलकर (तत्) उस राष्ट्र के (अन्तर) भीतरी (पेशः) सुन्दर रूप को (वयति) बनाते हैं। और (मासरे) परिपक्व ओषधि रसों से जिस प्रकार वैद्य लोग शरीर के (अस्थि मज्जानम्) हड्डी और मज्जा भाग को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार उक्त विद्वान् लोग भी (कारोतरेण) कूर समूहों से और उत्तम शिल्पी, क्रियानिष्ठ पुरुष पुरुषों और (गवां त्वचि) भूमियों के पृष्ठ पर और (मासरैः) मासिक वेतनबद्ध भृत्यों से राष्ट्र के (अस्थि) अस्थि के समान स्थिर कार्यों, आधार स्थानों और (मज्जानम्) मज्जा के समान दृढ़ सन्धियन्त्रों को अथवा वर्ष के दिन

रानों के समान राष्ट्रशरीर के समस्त मुख्य और गौण अङ्ग प्रत्यङ्गों को (दधत॰) धारण करते हैं।

'अस्थि मज्जानम्'—मस च ह वै गतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहानि च रात्रयश्चेत्येतावन्त एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्चेत्यत्र तत्समम् ॥ श॰ प॰ ५ । ५ ॥

सर॑स्वती॒ मन॑सा पेश॒लं वसु॒ नास॑त्याभ्यां वयति दर्श॒तं वपुः॑ ।
रसं॑ परि॒स्रुता॒ न रोहि॑तं न॒ग्नहु॒र्धीर॒स्तस॑रं॒ न वेम॑ ॥ ८३ ॥

सरस्वती देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) विज्ञानवाली, विदुषी स्त्री जिस प्रकार अपना (दर्शतम्) दर्शनीय (वपुः) शरीर बनाती है उसी प्रकार (सरस्वती) विज्ञानवान् विद्वानों की परिषद् भी (नासत्याभ्याम्) असत्य व्यवहारों से रहित, स्त्री पुरुषों से मिलकर राजा के लिये (मनसा) अपने ज्ञान के बल से (पेशलम्) अति सुन्दर, सुवर्ण आदि से समृद्ध (वसु) ऐश्वर्य को (वयति) पट के समान निरन्तर बुनती सी रहती, पैदा ही करती रहती है। और जिस प्रकार वा (परिस्रुता) परिस्रवण किये गये चुआये गये स्नान से, औषधी के पीसे हुए रस से (रोहितं रसं न) लाल रस को पैदा कर देती है उसी प्रकार पूर्वोक्त विद्वत्सभा और (धीरः नग्नहुः) बुद्धिमान्, 'नग्न' अर्थात् विशुद्ध ज्ञान के ग्रहण करने द्वारा समावर्त्ति (परिस्रुता) राष्ट्र के समस्त प्राणों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से ही (रोहितं) 'रोहित', आदित्य के समान तेजस्वी, (रसम्) सारभूत सोम ऐश्वर्य वाले राजा को उसी प्रकार उत्पन्न करते हैं जैसे (तसरं वेम न) तसर और वेमा मिलकर (रोहितं न) लाल पट बुना करते हैं।

अथवा—(सरस्वती) स्त्री और (नग्नहु) सुन्दर पुं॰ को

स्वीकार करने वाला उसका पति दोनों मिलकर (रोहितं) रक्त, काञ्चन वर्ण (नमर वेम न) दु खक्षयकारक पुत्र को जिस प्रकार उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (सरस्वती नग्नहु धीर) विद्वत् सभा और शुद्ध तत्वज्ञानी बुद्धिमान् सभापति दोनों (तसरम्) प्रजा के दु खनाशक (रस) आनन्दप्रद (रोहित) लोहित, काञ्चन ऐश्वर्य से युक्त अथवा आदित्य के समान तेजस्वी और लाल पोशाक पहने राजा को (वयति) उत्पन्न करते हैं।

सरस्वती—प्रशस्त सर विज्ञान यस्या सा । दया० ।

'नग्नहु'—नग्न शुद्ध जुहोति गृह्णाति । अथवा–पतिपक्षे 'न ग्ना' अन्येनानुपगता कन्या, अथवा नग्नशरीरे शुभलक्षणवती कन्या जुहोति गृह्णाति य स ।

'नग्निका श्रेष्ठा यवीयसामुपयच्छेत' इति मानवगृह्यसूत्रम्। 'नग्न शरीरेपि शुभलक्षणवतीमिति' अष्टावक्र ।

'रोहित'—देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य रोहित सूक्त (३ खण्ड)।

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेत ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥८४॥

सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप । धैवत. ॥

भा०—(पयसा) जिस प्रकार पुष्टिकारक अन्न से (अमृत) अमृत, आनन्दप्रद (जनित्रम्) पुत्रोत्पादक, (मूत्रात्) मूत्रेन्द्रिय मे (रेत) वीर्य को (सुरया) सुख मे रमण करने योग्य स्त्री के संग सुरति द्वारा उत्पन्न कर (जनयन्त) प्रजा को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (पयसा) पुष्टिकारक अन्न और बलके आधार पर (सुरया) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी के संग से (मूत्रात्) शत्रु से त्राण करने वाले सैन्य बल स ही (शुक्रम्) शुद्ध, (अमृतम्) अविनश्वर, अखण्ड (जनित्रम्)

और अधिक उत्पादक (रेतः) वीर्य या राज्योचित तेज को (जनयन्त) विद्वान् लोग उत्पन्न करते हैं। (तत्) और सब (अमतिम्) राष्ट्र में से अमति, अज्ञानी या मूर्ख और (दुर्मतिं) दुष्टमति वाले या दुर्गम पुरुषों को (अप बाधमाना) विनष्ट करते हुए (ऊवध्यं वातं) पेट में बैठे अपान वायु और (सब्वं) पचपाखाराक मल को जिस प्रकार दूर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार (ऊवध्यम्) सटका कर मारने योग्य (वातम्) वायु के समान प्रबल (सब्वं) राजा के विपरीत सब या षड्यन्त्र बना कर बैठने वाले शत्रु को (प्सारात्) दूर निकाल देते हैं।

राष्ट्र के कार्यों को शरीर के दृष्टान्त से समझाया है कि इसमें वीर्य और सन्तति जनक शक्ति के समान ही राष्ट्र में राजा का पद है। दुष्ट व्यक्ति मल और अपान वायु के समान हैं।

'सूषत्'—सुष्यते यत् तत् सूषम्। उणादि० ४। १६३ ॥

'सब्वं'—षप समवाये। समवायं षप इत्वा स्थितम् इत्यर्थः। सामवायिकों के वशीकरण का प्रकरण राजनीति के ग्रन्थों से जानना चाहिये।

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान। यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८४ ॥

सविता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(सविता) उत्पादक पुरुष इस प्रकार (पुरोडाशेन) सुसंस्कृत अन्न से (सत्यं) सात्विक बल वीर्य को (जजान) उत्पन्न करता है और जिस प्रकार (सविता) सूर्य (पुरोडाशेन) इत्यादि से (सत्यं जजान) सत्पदार्थों के सत्य स्वरूप को प्रकट करता है उसी प्रकार (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् (सुत्रामा) उत्तम रक्षक (हृदयेन)

सूर्य के समान तेजस्वी राजा (हृदयेन) अपने हृदय से (मर्त्यं), सज्जना के हितकारक राज्य को (जजान) प्रकट करता है।

और जिस प्रकार (वरुण) शरीर में स्थित अपान (यकृत्) यकृत्-कलेजे को (क्लोमान) पिलही या कण्ठ नाड़ी को और (पित्तम्) पित्तखण्ड को और (मतस्ने) गुर्दों को (वायव्यैः) अपने वायु वेगों से (भिषज्यन्) पीड़ाएं दूर करता हुआ भी (न मिनाति) नहीं विनष्ट होने देता उसी प्रकार (वरुण) समस्त प्रजाओं द्वारा वरण किया गया एवं दुष्टों का वारक राजा (वायव्यैः) अपने वायु के समान बलवान् वीर पुरुषों द्वारा (भिषज्यन्) राष्ट्र-शरीर में बैठे रोग को दूर करके उसको स्वस्थ सुखी बनाना चाहता हुआ भी (यकृत्) शरीर में यकृत्=कलेजे के समान राष्ट्र में यथानियम समस्त प्रजाओं को परस्पर सत्कर्म में लगाने वाले, दानशील विद्वान्, धार्मिक पुरुष को (क्लोमान) शरीर में क्लोम, पिलही के समान दुष्ट पुरुषों के नाशक या कण्ठ नाड़ी के समान प्राण-धारक पुरुषों को (मतस्ने) आनन्द से सब को स्नान कराने वाले, शरीर में गुर्दों के समान मलशोधकों के समान 'मत्-स्ने' आनन्द में तृप्तिकारक ज्ञान से हृदय पवित्र करने वाले अध्यापक और उपदेशक, या आनन्द से रहने वाले स्त्री पुरुषों और राष्ट्र के भीतरी घटक और उपकारक वर्गों को (पित्तम्) शरीर में पित्त के समान पालनकारी, पवित्रकारी, गुरुजन को भी (न मिनाति) पीड़ित नहीं करता।

यकृत्। यजनीति यकृत्। यजेर्ऋतन् उणादिप्रत्ययः। इति दया० उणा०।

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः। श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

सविता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०--(श्येनस्य) बाज के समान तीव्र वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में वीर राजा की (स्थाली) राज्य स्थापना की शक्तियां (आन्त्राणि) शरीर में आँतों के समान राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को भीतर ही उपयोग करता है। वे (पात्राणि) पालन करने वाले अधिकारी नायक के पद शरीर में (मधु पिन्वमाना) अन्न को समस्त शरीर में पहुंचा देने वाले (गुदाः) गुदागत स्थूल नाड़ियों के समान स्वयं भी (गुदाः) आनन्द या मधु ऐश्वर्य को (पिन्वमानाः) सर्वत्र पहुंचाने हारे (गुदाः) आनन्द या उत्साह उत्पन्न करने वाले या गति प्रदान करने वाले गण्यात्मक रूप हैं। और (सुदुघा) समस्त उत्तम ऐश्वर्यों को देने वाली यह पृथिवी (धेनुः न) दुधार गौ के समान है। शरीर में स्थित (क्रोडः न) पिलही जिस प्रकार [illegible] विषों को नाश करती है उसी प्रकार (श्येनस्य) बाज के समान शत्रु पर झपटने वाले वीर पुरुष का (पत्रम्) तलवार या विजय रथ है। (नाभि आसन्दी) जिस प्रकार शरीर में नाभि केन्द्र है सब [illegible] वहां लगकर है उसी प्रकार 'आसन्दी' राजा के बैठने की गद्दी [illegible] [illegible] है। जिस प्रकार (उदरं न माता) शरीर में उदर, पेट समस्त [illegible] को लेकर रस ग्रहण करता और अपरस को बाहर निकालता है [illegible] प्रकार राजा की 'माता' उसको उत्पन्न करने वाली अथवा 'माता' ज्ञान करने हारी परिषद् सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय का विवेक करती है। वह ([illegible]) अपनी प्रजाओं और शक्तियों से और राज्य का सञ्चालन क[illegible] है।

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो [illegible]न्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पि[illegible]भ्यः ॥८७॥

भा०—(वनिष्ठुः) शरीर में 'वनिष्ठु' अर्थात् [illegible] में स्थूल [illegible] रहती है या कटि का पृष्ठ भाग जिससे ([illegible]) सब से प्रथम

स्त्री शरीर में (योन्या) योनि के (अन्तः) बीच में स्थित (गर्भ) गर्भ रहता है उसके समान ही राजा भी स्वय (कुम्भ) पृथ्वी को भी पोषण करने में समर्थ और (शचीभि) अपनी शक्तियों से (जनिता) राष्ट्र का उत्पादक होता है । शरीर में जिस प्रकार (प्लाशि) शिश्न भाग (व्यक्त.) प्रकट है जो मूत्रादि बहाने में (शतधार उत्स· इव) शतधार स्रोत के समान है उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में भी (प्लाशि =प्राशि.) उत्तम पदों और ऐश्वर्यो को प्राप्त करने वाला वैश्य भाग है जो (शतधार उत्स इव) सैकड़ों धारा वाले स्रोत या मेघ के समान ऐश्वर्यों को बहाता है । और (कुम्भी) घर की धान और जल से भरी गगरी जिस प्रकार (पितृभ्यः) घर के पालक वृद्धजनों को भी (स्वधा दुहे) अन्न और जल प्रदान करती है (न) उसी प्रकार (कुम्भी) पृथिवीवासिनी प्रजा का पालन करने वाली यह पृथिवी (पितृभ्य·) पालक, शासक पुरुषों को (स्वधाम्) अन्न और स्व अर्थात् देहधारक, वेतन आदिक (दुहे) प्रदान करती है ।

गृहस्थ प्रकरण में—(कुम्भ) कलश के समान वीर्य और आदि से पूर्ण, (वनिष्ठु) भोक्ता, (जनिता) सन्तानोत्पादक (प्लाशि.) समस्त पदार्थों का संग्रहीता, (शतधार) सैकड़ों वाणी वाला, (उत्स.) कूप के समान गंभीर प्रेम का स्रोत होकर पति रहे । और (कुम्भी) इसी प्रकार वीर्यादि से पूर्ण स्त्री भी रहे। दोनों (पितृभ्यां स्वधां दुहे) अपने पालक जनों को अन्न भोजन दें । पुरुष (यस्मिन् अग्रे) जिसमें प्रथम ही वीर्य रूप से सन्तान विद्यमान होती है और स्त्री जिसमें बाद में (योन्या-मन्त गर्भ) योनि के भीतर गर्भ रूप से सन्तान उत्पन्न होती है दोनों ही अपने (पितृभ्यां) पितारों के ऋण रूप (स्वधाम्) उनके अपने अश रूप सन्तति को (दुहे) उत्पन्न करके सफल हों ।

८

मुखं सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥८८॥

भा०—(अस्य) इस राजा का (मुखं) शरीर में मुख के समान और (शिर) शिर के समान (सत्) सदस्, राजसभा है। (आसन्) मुख में जिस प्रकार (जिह्वा) जिह्वा होती है उसी प्रकार (सतेन) विभक्त राजसभा में (पवित्रम्) सदाचारवान् (अश्विना) स्त्री पुरुष और (सरस्वती) पवित्र वेदवाणी, व्यवस्था पुस्तक है। (पायु) शरीर में 'पायु' गुदा भाग जिस प्रकार शरीर में से मल मूत्रादि दूर करके शरीर को शान्ति देता है (न) उसी प्रकार (चप्य) राष्ट्र में दुष्टों को दूर करके प्रजा को सान्त्वना और सुख की आशा दिलाने के योग्य कार्य है। (वाल) शरीर में जिस प्रकार वाल समस्त रोगों को दूर करते हैं और पुच्छादि के बाल जिस प्रकार मशक आदि को दूर करते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस राजा के राष्ट्र के (भिषग्) रोगों के निवारक वैद्यगण हैं। (वस्ति शेप न) जिस प्रकार शरीर में वस्ति अर्थात् मूत्र स्थान और पुरुष-शरीर में 'शेप' अर्थात् प्रजनेन्द्रिय दोनों में एक तो वेग से मूत्र प्रवाहित करके शरीर को शुद्ध करता है दूसरा काम वेग से तप्त होकर भोगभिलाषी होता है उसी प्रकार राष्ट्र में (हरसा) शत्रु को मार भगाने में समर्थ वीर्य से (तरस्वी) अति वेगवान् सेनापत्त दुष्टों को राष्ट्र से बाहर निकालता है और राष्ट्र के निमित्त समस्त सुखों का लाभ भी कराता है।

गृहस्थ पक्ष में—इसी मन्त्र से स्त्री पुरुष के व्यवहार का भी वर्णन किया है।

'सत' इति सत इति ब्राह्मणम्। निरु० ३। ४। २॥ 'चप' चप सान्त्वने। भ्वादिः॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥८९॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(प्रहाभ्या) एक दूसरे को ग्रहण या स्वीकार करनेवाले (अभिभ्या) एक दूसरे को व्याप्त को करके परस्पर का सुख आनन्द भोग करने वाले राजा प्रजा और स्त्री पुरुष दोनों से ही राजा या ऐश्वर्यमय राष्ट्र की (अमृतम्) अमृतमय (चक्षु) शरीर में आख के समान सत् असत् दिखानेवाली चक्षु बनती है। (छागेन) बकरी के दूध से और (शृतेन हविषा) परिपक्व अन्न से जिस प्रकार शरीर में चक्षु के (तेज) तेज, कान्ति की वृद्धि ही होती है उसी प्रकार राष्ट्र के शरीर में (छागेन) पर पक्ष के छेदन करनेवाले तर्क अथवा शत्रु पक्ष के छेदन करनेवाले नीति और सैन्य बल से और (शृतेन हविषा) सपक्व अन्न के भोजन से (तेज) तेज, बल, पराक्रम की वृद्धि होती है। जिस प्रकार (पक्ष्माणि) आख के पलकों के बाल होते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनकी तुलना (गोधूमै) खेत मे उगे गेहू आदि धान्यों से करनी चाहिये। (उतानि) जिस प्रकार आंख के बचाव के लिये भोहों के वाल हैं उनकी तुलना (कुवले) राष्ट्र भूमि में उगे झरबेरीओं के कांटेदार वृक्षों से करना चाहिये। और जिस प्रकार चक्षु को (शुक्रम् असितं न) श्वेत और काला (पेश) दोनों प्रकार के चर्म (वसाते) आख को ढके हुए हैं उसी प्रकार राष्ट्रूप चक्षु को (शुक्रम्) शुद्ध स्वच्छ कान्तिमान् स्वर्ण, रजतादि धातु और (असित) काले वर्ण के लोहे, सीसा आदि धातु दोनों (पेश) बहुमूल्य सुवर्ण आदि पदार्थ अथवा (शुक्रम् असित पेश) श्वेत और काले, उजले और कृष्ण वर्ण के अथवा गृहस्थ और मुमुक्षु लोग (वसाते) बसा रहे हैं, आच्छादित करते हैं।

राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों ने मिलकर मानो राष्ट्र को एक आख का रूप दे दिया है। शस्त्र, बल और अन्न उसका तेज है, गेहू धान उसकी पलकें हैं, बेरी आदि काटेदार वृक्ष भोहें हैं। गोरे और काले या गृहस्थ और

सुवर्ण आदमी का उजली काली धातुएं या चमकदार और बेचमकदार काले उसके सफेद पदार्थ अंतड़ी चमड़े हैं जो उसको ढांपते हैं ।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽअमृतो ग्रहाभ्याम् । सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की 'नासिका' से तुलना करते हैं । (नसि) नाक में जिस प्रकार (अविः मेषः) रक्षक और जीवन का सेचन करनेवाला प्राण है और वह शरीर की (न) भी (अविः) रक्षा करता और (वीर्याय) शरीर में बल उत्पन्न करने के लिये है उसी प्रकार राष्ट्र में (अविः) राष्ट्र का रक्षक पुरुष और (मेषः) उसको सुख समृद्धि से सेचन करने और शत्रुओं के प्रति स्पर्धा करने में समर्थ होकर राष्ट्र के (वीर्याय) वीर्य बल वृद्धि के लिये होता है । और वह नाक (ग्रहाभ्याम्) प्राण ग्रहण करने योग्य प्राण और अपान या उच्छ्वास और निःश्वास दोनों द्वारा प्राण ग्रहण करनेवाले मार्गों से बनी है और यही (प्राणस्य) प्राण का भी (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद (पन्थाः) मार्ग है । उसी प्रकार (ग्रहाभ्याम्) एक दूसरे को स्वीकार करनेवाले दो पुरुषों से ही इस राष्ट्र की रचना है वह (प्राणस्य) मुख्य प्राण या बल का (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद, अविनाशी (पन्थाः) मार्ग बना है । और जैसे (सरस्वती) वाणी शरीर में जिस प्रकार (उपवाकैः) समीप की निकट वस्तुओं से नासिका में (व्यानं) व्यान नामक प्राण के विविध मार्गों को प्रकट करती है उसी प्रकार राष्ट्र में (सरस्वती) विद्वानों से पूर्ण विद्वत्सभा (उपवाकैः) नाना ज्ञान-प्रवचनों से (व्यानं) विविध मार्गों प्रकट करती है । (नस्यानि) जिस प्रकार नाक के रोम हैं वे नाक में धूल वायु का प्रवेश करते हैं और नासिका के हितकारी हैं उसी प्रकार

(बर्हिर्बदरैः) कुश आदि ओषधियें और बेर आदि वन्य फल के वृक्षों से मानो राष्ट्ररूप नाक में लोम के समान (जवान) प्रतीत होते हैं। संक्षेप में राष्ट्र रूप नाक में रक्षक राजा प्राण है श्री पुरुष दो प्राण के मार्ग हैं, विद्वत्सभा द्वारा बनाई नियमाज्ञावचन नाक में स्थित व्यान है और जंगल के ओषधि फलादि वृक्ष नाक के लोम हैं।

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याश्रं श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्। यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात्॥ ९१॥

इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—राष्ट्र की मुख से तुलना करते हैं। (बलाय) बल के कार्य करने के लिये जिस प्रकार (ऋषभः) बड़ा बैल गाड़ी में लगाया जाता है उसी प्रकार (ऋषभः) शरीर में व्यापक, उसे गति देनेवाला आत्मा या मुख्य प्राण ही (बलाय) शरीर में बल उत्पन्न करने और बल के कार्य करने के लिये है। उसी प्रकार राष्ट्र में (ऋषभः) समस्त नरों में श्रेष्ठ पुरुष बलवान् कार्य के लिये नियुक्त किया जाता है। वही (इन्द्रस्य रूपम्) शत्रु नाशक राजा, एवं आत्मा का स्वरूप उत्तम मुख के समान है। कैसे ? (ग्रहाभ्याम् कर्णाभ्याम् तस्य अमृतं श्रोत्रम्) जैसे शब्दों के ग्रहण करनेवाले कानों से उस आत्मा का 'अमृत' अविनाशी, (श्रोत्रम्) श्रोत्र अर्थात् श्रवण शक्ति बनी है उसी प्रकार वेतन आदि स्वीकार करनेवाले कानों के समान प्रिय वचनों को श्रवण करनेवाले श्री पुरुषों से ही उस राष्ट्ररूप मुख का मानो 'श्रोत्र' बना है। और (यवाः बर्हिः न) और ओषधि आदि मानो राष्ट्ररूप मुख पर लगे (भ्रुवि केसराणि) भौंहों के लोमों के समान हैं। (कर्कन्धु) परिपक्व फल मानो (सारघं मधु) मधु मक्खियों का मधु आदि पदार्थ और अन्न (मुखात्) मुख से निकलनेवाले (सारघं मधु) सारवान्, अर्थ संपूर्ण मधुर वचन के समान है।

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम । केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥९२॥

आत्मा देवता । निचृत् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्र की शरीर से तुलना करते हैं (आत्मन्) समस्त देह में और (उपस्थे) गुह्य भाग में (लोम) जितने रोम या बाल हैं वे मानो राष्ट्र में विद्यमान (वृकस्य लोम) भेड़िये के बालों के समान हैं। अर्थात् भेड़िये के स्वरूप या स्वभाव वाले पुरुष शरीर में सामान्य लोम गुह्याङ्ग लोमों के तुल्य हैं। और (व्याघ्रलोम) व्याघ्र के लोम अर्थात् व्याघ्र के समान बड़े जन्तुओं पर भी आक्रमण करनेवाले शौर्य गुण के सम्पन्न पुरुष (मुखे श्मश्रूणि) शरीर में मुख पर लगे मोंछ के बालों के समान हैं। (यशसे) यश के लिये, बड़े साहस के कार्य करने वाले पुरुष देह में (शीर्षन्) सिर पर लगे (केशा न) केशों के समान हैं। लक्ष्मी और शोभामात्र के लिये उद्यम करनेवाले लोग (शिखा) सिर पर चोटी के बालों के समान हैं। (सिंहस्य लोम) सिंह के समान पराक्रम करनेवाले स्वभाव के लोग शरीर में विद्यमान (त्विषिः) तेज या कान्ति के समान और (इन्द्रियाणि) शरीर में लगे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के समान हैं।

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती । इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधाना ॥९३॥

अश्विनौ देवता । निचृत् । धैवतः ॥

भा०—(भिषजा) समस्त रोगों की चिकित्सा करने वाले (अश्विनौ) वैद्य जिस प्रकार (आत्मन्) देह में (अङ्गानि) अंगों को (सम् धाताम्) जोड़ देते हैं और जिस प्रकार (सरस्वती) शरीर में व्यापक प्राण और अपान दोनों (आत्मानम्) आत्मा के साथ (अङ्गैः) अंगों

न्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सम्बद्ध किये रहते हैं (तत्) उसी प्रकार (अश्विना) व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री और पुरुष या मुख्य दो अधिकारी (आत्मन्) आत्मस्वरूप राष्ट्र के राज्य में ही समस्त (अङ्गानि) राज्य के अगों को (सम् अधातम्) भली प्रकार जोड़ते हैं। और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त स्त्री के समान राजसभा (अङ्गै) राज्य के सारे अगों के साथ (आत्मानम्) आत्मा के समान व्यापक शक्तिमान् राजा को (सम अधात्) सयुक्त करता है। पूर्वोक्त दो अश्विगण और सरस्वती तीनों (चन्द्रेण) चन्द्र के बल से (अमृत ज्योति) अमृतमय सुखप्रद ज्योति के समान (चन्द्रेण) आह्लादकारी राजा या राज्य के साथ (अमृतम्) अविनाशी, सुखप्रद अन्नादि समृद्धि और (ज्योति) परम तेज को (दधाना) धारण करते हुए (इन्द्रस्य) शत्रुनाशक राजा के (रूप) स्वरूप को और (आयु) जीवन को (शतमानम्) सैंगुणा अथवा सौ वर्षों के परिमाण वाला कर देते हैं।

अध्यात्म में—(अश्विनौ अङ्गानि आत्मन्) प्राण और अपान दोनों का अभ्यास योग के अगों को समाहित, सुसम्पन्न करता है। (सरस्वती आत्मानम् अङ्गै सम् अधात्) सरस्वती, वेद वाणी का स्वाध्याय आत्मा को योगाङ्गों से युक्त करता है। प्राणायाम और स्वाध्याय दोनों (इन्द्रस्य रूप शतमानम् आयु) जीव की आयु को सौ वर्षों का बना देते हैं। वे (चन्द्रेण) आह्लादजनक वीर्य के साथ या सोमचक्र के साथ (अमृत ज्योति दधाना भवन्ति) अमृत-आत्म-ज्योति या प्रकाश को धारण कराते हैं।

'अगानि'—मन्त्राङ्गानि—सहाया साधनोपाया विभागो देशकालयो · विनिपात प्रतीकारः मन्त्र पञ्चागइष्यते।

सप्ताङ्गानि—स्वाम्यमात्यसुहृत कोश राष्ट्र-दुर्ग-बलानि च।

योग के अष्टांग—यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधयः ॥

गृहस्थ पक्ष में—(अश्विना) स्त्री पुरुष (आत्मान्) अपने आत्मा के भीतर समस्त अंगों को (सम् अधाताम्) सधान करें, धारण करें। (सरस्वती) वाणी, (अंगैः) अपने समस्त अंगों से आत्मा या जीव को युक्त करे। समस्त प्राणगण (धर्मेण) धैर्य के साथ (अमृतं ज्योतिः इषाणाः) अमर आत्मा की ज्योति को धारण करने वाले प्राण ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् आत्मा के (शतमानम् आयुः) सौ वर्ष के दीर्घ जीवन को धारण करते हैं।

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपां रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

सरस्वती देवता । विराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार (सरस्वती) स्त्री (पत्नी) गृहपत्नी होकर (योन्याम् अन्तः) योनिस्थान में (सुकृतम्) उत्तम रीति से स्थापित (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्ति) धारण पोषण करती है, उसी प्रकार (योन्याम् अन्तः) संगत होने या एकत्र होने के स्थान सभाभवन के भीतर (पत्नी) राष्ट्र का पालन करने वाली (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा (अश्विभ्याम्) राजा और प्रजा दोनों के लिये (सुकृतम्) उत्तम रूप से बनाये गये (गर्भम्) राष्ट्र के ग्रहण करने वाले राजा को (बिभर्ति) धारण करती है। और (वरुणः) स्वयं वरण किया पति जिस प्रकार (अपां रसेन) प्राणों के वीर्य से (इन्द्रं जनयत्) जीव, बालक को उत्पन्न करता है। (वरुणः) समस्त प्रजा द्वारा वरण किया गया (राजा) राजा राजपद पर विराजमान होकर (अपां रसेन) आप्त पुरुषों के बल से (साम्ना) और साम उपाय से (अप्सु) प्रजाओं में (श्रियै) लक्ष्मी,

धन समृद्धि की वृद्धि के लिये (इन्दम्) ऐश्वर्य रूप राष्ट्र को (जनयत्) उत्पन्न करता है ।

तेजः पशूनां हुविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पर्यसा सार्घं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुता सुताभ्यामुमृतः सोम् इन्दुः ॥ ९५ ॥

अश्विनौ देवते । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार (पशूना) पशुओं का (दुग्ध) दुहा गया दूध (हविः) खाने योग्य (इन्द्रियावत्) शरीर म बलकारक, (तेज) तेज उत्पन्न करने वाला है। और जिस प्रकार (सारघम् मधु) मधुमक्खियों से प्राप्त किया, फूलों २ से दुहा गया मधु (इन्द्रियावत् तेज) बल और तेज को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार (अश्विभ्याम्) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों या मुख्य अधिकारियों ने और (सरस्वत्या) विद्वत्सभा ने मिलकर (परिस्रुता) सब ओर से स्रवण करने वाले अभिषेक क (पयसा) जल से (सुत असुताभ्याम्) अभिषिक्त राजाओं और अनभिषिक्त प्रजाओं से (अमृत) राष्ट्र के जीवन स्वरूप, अमर (इन्दु) परमैश्वर्यवान् (सोम) सबका आज्ञापक राजा (दुग्ध) मानो दुहकर प्राप्त किया है ।

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार विरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥



अथ विंशोऽध्यायः

प्रजापतिर्ऋषिः ।

॥ ओ३म् ॥ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिꣳसीन्मा मा हिꣳसीः ॥ १ ॥

राजा सभेशो देवता । निचृद् विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन्! तू (क्षत्रस्य) वीर्य, क्षात्रबल और राज्य का (योनि) आश्रयस्थान (असि) है। (क्षत्रस्य) राजकुल, क्षात्र सेना-बल का (नाभिः) नाभि के समान केन्द्र, उनको परस्पर सुसम्बद्ध करने वाला मुख्य पुरुष (असि) है। यह राष्ट्रवासी प्रजाजन (त्वा) तुझे (मा हिंसीत्) न मारे, विनाश न करे। हे राजन्! (मा) मुझ राष्ट्रवासी जन को भी तू (मा हिंसी) मत मार।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पुस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत् पाहि ॥ २ ॥

भुरिग् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(धृतव्रत.) व्रतों, नियमों को धारण करने वाला, (सुक्रतु) उत्तम प्रज्ञावान्, कुशल पुरुष (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा के कष्टों को वारण करनेहारा (पस्त्यासु) न्यायगृहों में या प्रजाओं के बीच, (आ नि-षसाद) साक्षात् विराजमान हो। हे राजन्! तू (मृत्यो) प्रजा को मृत्यु अर्थात् मरने के कारण से (पाहि) बचा। (विद्योत्) विद्युत् के समान अग्नि आदि के घने नाशक अस्त्रों से (पाहि) बचा। अर्थात् राजा प्रजा की अकारण, एवं अकाल मृत्यु से रक्षा करे और शत्रु के आक्रमणों से रक्षा करे।

१—क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि० । इति काण्व० ।

देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि ।
सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामि ।
इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥ ३ ॥

अनिधृति । पङ्क्ति ॥

भा०—अभिषेक का वर्णन करते हैं। हे राजन्! मैं अध्वर्यु, वेदज्ञ पुरुष, राजा और प्रजाजन दोनों का प्रतिनिधि होकर (सवितु) सर्वोत्पादक (देवस्य) सर्वप्रकाशक परमेश्वर के (प्रसवे) महान् ऐश्वर्यमय जगत् में (अश्विनो) विद्या और कर्म दोनों में पारगत विद्वान् और कर्मिष्ठ पुरुषों के (बाहुभ्याम्) शत्रुओं को पीडन करने में समर्थ बाहुओं से और (पूष्ण) पुष्टि करने वाले अन्नादि से सबके पोषक भूमिवासी कृषक वर्ग के हाथों से और (अश्विनो) वैद्यक विद्याओं में निष्णात पुरुषों के (भैषज्येन) चिकित्सा या रोगनिवृत्ति के द्वारा सम्पादित (तेजसे) तेज, पराक्रम की वृद्धि और (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्मवर्चस, वीर्यरक्षा वेदज्ञान की वृद्धि के लिये (अभि षिञ्चामि) तुझे अभिषिक्त करता हूं। और (सरस्वत्यै) प्रशस्त ज्ञान वाली वेदवाणी के द्वारा (भैषज्येन) अविद्यादि दोषों के दूर करने के उपाय से मैं तुझको (वीर्याय) वीर्य, बल की वृद्धि के लिये और (अन्नाद्याय) राष्ट्र के भोग्य अन्नादि पदार्थों के भोगार्थ अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिये (अभि षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं और (इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता सेनापति और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (इन्द्रियेण) बल से (बलाय) बल या सेनाबल की वृद्धि और (श्रियै) राज्यलक्ष्मी की वृद्धि और (यशसे) कीर्त्ति के लिये (अभि षिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूं।

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा ।
सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥
निचृदार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे उत्तम पुरुष ! तू (कः असि) तू कौन है, तू (कतम असि) उपस्थित पुरुषों में से कौन सा है । वह अपना परिचय समस्त पुरुषों को दे । (कस्मै त्वा) किस प्रयोजन के लिये तुझे यहां अभिषेक किया है, इसका भी परिचय दे । (काय) प्रजापालक प्रजापति, राजा पद के लिये (त्वा) मैं तुझे अभिषेक करता हूं । अध्वर्यु राजा को राजपद पर बैठा कर तिलक कर के सम्बोधन करे । हे (सु-श्लोक) उत्तम कीर्ति वाले ! हे (सुमङ्गल) उत्तम मङ्गल कार्यों के करने हारे ! हे (सत्यराजन्) सत्य के प्रकाशक ! और सत्य न्याय से प्रकाशमान या सत्यधर्मों के प्रकाशक राजन् ! या सत्य यथार्थ राजा स्वरूप तुझे मैं अभिषिक्त करता हूं । अथवा—हे राजन् ! (कः असि) तू प्रजापति है । तू (कतम असि) प्रजापालकों में सब से उत्तम है । (कस्मै त्वा) प्रजापति के पद के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूं । (काय त्वा) सुख, या वेद ज्ञान की वृद्धि के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूं । इत्यादि पूर्ववत् ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणोऽअमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥
अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! राज्य में अभिषिक्त (मे) मुझ राजा की (श्रीः) शोभा या ऐश्वर्य (शिरः) मेरे शिर के समान है । (यशः मुखम्) यश मुख के समान है । (त्विषिः) तेज कान्ति, पराक्रम, शौर्य (केशाः च श्मश्रूणि च) शिर के केश और मूछों के समान है । (मे) मुझ राष्ट्र का (प्राणः) प्राण (राजा) राजा का पद या स्वयं राजा (अमृतम्) जीवन

रूप है। (सम्राट्) सम्राट् का पद (चक्षु) आंख के समान साक्षीरूप है। (विराट्) विविध विद्वान् सभासदों से प्रकाशमान् राजसभा (श्रोत्रम्) शरीर में लगे श्रोत्र के समान प्रजा राजा के समस्त व्यवहारों को सावधान होकर श्रवण करने वाला हो।

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदाऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६ ॥

अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—(जिह्वा मे भद्रम्) शरीर में जिस प्रकार जिह्वा है उसी प्रकार (मे) मेरे राष्ट्र में (भद्रम्) समस्त कल्याण के कार्य हैं। (वाक् महः) वाणी विज्ञान है। (मनः मन्युः) मन ज्ञानवान् पुरुष के समान है। (स्वराड् भामः) स्वराड् का पद शरीर में विद्यमान क्रोध के समान है। (मोदाः प्रमोदाः) राष्ट्र में विद्यमान आमोद, प्रमोद (अङ्गुलीः अङ्गानि) हाथ की अंगुलियां और अन्य अंगों के समान हैं। (मे सहः) शत्रु के पराजय करने में समर्थ सैन्यबल (मे मित्रम्) मेरा मित्र है।

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रियं बलम् मे बाहू) इन्द्र सेनापति का समस्त बल मेरे बाहू हैं। (वीर्यं कर्म मे हस्तौ) वीर्याचित कर्म मेरे हाथ हैं। (आत्मा उरः च मम क्षत्रम्) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाला क्षात्रबल मेरा आत्मा और विशेष कर छाती के समान है।

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरूऽअरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥

निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(राष्ट्रं मे पृष्ठीः) राष्ट्र, जनपद मेरी पसुलियों के समान हैं। (विशः) समस्त प्रजाएं (उदरम्) पेट, (अंसौ) कन्धे, (ग्रीवाः

च) गर्दन के मोहरे, (श्रोणी) कटि, (ऊरू) जांघ, (अरत्नी) हाथ के भाग, (जानुनी) गोडे (सर्वतः) ये सब (मे अङ्गानि) मेरे अंगों के समान हैं ।

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः ।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(चित्तं) चित्त (मे नाभिः) मेरी नाभि के समान है । (विज्ञानं) विज्ञान (पायुः) पायु अर्थात् गुदा के समान है । (अपचितिः) पूजासामग्री या प्रजाओं का उत्पन्न होना, (मे भसत्) मेरे शरीर के प्रजननाङ्ग के समान (भगः) प्रजाओं का ऐश्वर्य, दोनों (मे) मेरे (आनन्दनन्दौ) कामभोग द्वारा प्राप्त सुख में सुखी होने वाले (आण्डौ) अण्डकोशों के समान हैं । मैं (जङ्घाभ्यां पद्भ्यां) समृद्ध जंघाओं और पैरों से (धर्मः अस्मि) धारण करने वाला सामर्थ्य धर्म हूं । इस प्रकार मैं (विशि) समस्त प्रजा के स्वरूप में भी (राजा) राजा मानों शरीर धर के (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त है ।

इसी प्रकार—प्रत्येक शरीर में राष्ट्र के समस्त धर्म विद्यमान हैं वे भी कह दिये गये हैं । समाज के भिन्न २ विभागों के कर्तव्य शरीर के भिन्न २ भागों के धर्मों से तुलना द्वारा जानने चाहियें ।

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

विराट् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—राजा की राष्ट्र के भिन्न २ ऐश्वर्यों और अंगों में प्रतिष्ठा । 'मैं' राजा (प्रति क्षत्रे) प्रत्येक क्षत्रियकुल में (प्रति तिष्ठामि) प्रतिष्ठ

को प्राप्त करूं। (राष्ट्रे प्रतितिष्ठामि) प्रत्येक राष्ट्र में प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। (अश्वेषु) अश्वों मे और (गोषु) गौओं में भी (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। (अङ्गेषु) समस्त अङ्गों में प्रतिष्ठित होऊं । (आत्मन् प्रतितिष्ठामि) आत्मा में प्रतिष्ठित होऊं। (प्राणेषु) प्राणों में (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठित होऊं । (पुष्टे प्रति) पुष्ट, पोषणकारी अन्न आदि पदार्थों में प्रतिष्ठित होऊं । (द्यावा पृथिव्योः) आकाश और पृथिवी पर और (यज्ञे) यज्ञ में भी (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं।

त्र॒या दे॒वाऽ एका॑दश त्रयस्त्रि॒ꣳशाः सु॒राध॑सः ।
बृह॒स्पति॑पुरोहिता दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे । दे॒वा दे॒वैर॑वन्तु मा ॥११॥

भा०—(त्रया. एकादश) तीन विशेष शक्तियों के ही अंशांश रूप से विद्यमान ११, ११, और ११ ये (त्रय त्रिंशा) तेतीस (देवा) देव-विद्वान्गण (सुराधस) उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न एवं (बृहस्पति पुरोहिताः) बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान् को अपना महामान्य पुरोहित, अग्रवर्त्ती प्रमुख बनाकर (देवस्य) देव (सवितु) सबके प्रेरक राजा के भी राजा परमेश्वर के (सवे) परमैश्वर्य युक्त शासन या जगत् में रहें। और वे (देवा.) समस्त विद्वान् पुरुष (देवै) अपने दिव्य गुणों और व्यवहारों से (मा अवन्तु) मेरी, मुझ प्रजाजन और राजा की रक्षा करें ।

साधारणतः —पृथ्वी अप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये आठ वसु, दश प्राण और ११ वां जीव, ये ११ रुद्र, १२ मास, १२ आदित्य, विद्युत् और यज्ञ ये सब मेरी रक्षा करें ।

अर्थात्—शत्रु मित्र दोनों के देशों को वश करूं, पशु, गौ अश्वादिमान् होऊं । प्राणों से नीरोग होऊं आत्मप्रतिष्ट अर्थात् मानस दुःख से रहित

होऊं। धनसम्पन्न, इह और पर दोनों लोकों में कीर्त्तिमान्, यशस्वी और प्रभावशाली होऊं।

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

विश्वेदेवा देवताः । प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—(प्रथमा) प्रथम कोटि के विद्वान् या देव, रक्षकजन (द्वितीयैः) द्वितीय कोटि के विद्वानों या रक्षकों के साथ मिल कर हमारे समस्त कामनायोग्य पदार्थों की वृद्धि करें। और (द्वितीयाः) द्वितीय कोटि के विद्वान् (तृतीयैः) तृतीय सर्वोत्तम कोटि के विद्वान् पुरुषों से मिल कर और (तृतीयाः) तीसरे उच्च कोटि के विद्वान (सत्येन) सत्य व्यवहार, वेदानुकूल न्याय और धर्म से युक्त होकर (सत्यं यज्ञेन) सत्य व्यवहार या, यज्ञ, परस्पर आदर और संगति और सत्यवाणी से सम्पन्न होकर, (यज्ञः यजुर्भिः) यज्ञ, यजुर्वेद के मन्त्रों से यज्ञों को साधन विचारों से और प्रजापालन की क्रियाओं से और (यजूंषि सामभिः) यजुर्वेद के मन्त्र सामवेदोक्त गायनों से, (सामानि ऋग्भिः) सामवेद के गायन ऋग्वेद की ऋचाओं से, (ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः) ऋचाएं पुरोनुवाक्या अर्थात् अथर्ववेद के प्रकरणों से (पुरोनुवाक्याः) पुरोनुवाक्याएं (याज्याभिः) याज्याओं से, (याज्याः वषट्कारैः) याज्या ऋचाएं वषट्कारों या स्वाहाकारों से, (वषट्काराः आहुतिभिः) वषट्कार अर्थात् स्वाहाकार आहुतियों से समृद्ध हों। और (आहुतयः) आहुतियें (मे कामान्) मेरी समस्त कामनाओं को (समर्धयन्तु) समृद्ध करें। (भूः स्वाहा) यह समस्त पृथिवी मेरे उत्तम अच्छी प्रकार हो।

(१) 'सत्यं'—तद् यत् सत्यं त्रयी सा विद्या। २ । ७ । २ । १ । १८ ॥ सत्यं वा ऋतम् २ । ७ । ३ । १ । २३ ॥ यो वै धर्मः सत्यं वै तत् । सत्यं वदन्तमाहुः धर्मं वदन्तीति । धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । श० १४ । ४ । २ । २६ ॥ एतत् खलु वै व्रतस्य रूपं यत् सत्यम् । श० १२ । ८ । २५ ॥ एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

(२) 'यज्ञ'—स (साम) तायमानो जायते स यत् जायते तस्माद् यज्ञः । यज्ञो ह वै नाम एतत् यद् यज्ञ । श० ३ । ७ । ४ । २३ ॥ यज्ञो वै विशः । यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥ वाग् यज्ञस्य रूपम् । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

(३) 'यजूंषि'—एष हि यन् एव इदं सर्वं जनयति । एतं यन्तमिदमनुप्रजायते । तस्माद् वायुरेव यजुः । अयमेवाकाशो जूः । यदिदमन्तरिक्षमेतं हि आकाशमनुजायते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं यच्च जूश्च । तस्माद् यजुः । तस्माद् यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥ 'इषे त्वा । ऊर्जे त्वा । वायव स्थ । देवो वः सविता । प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे'। इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो० पू० १ । २९ ॥ मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ । यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् । तै० ३ । १२ । ९ । २ ॥

(४) 'सामानि'—देवाः सोमं साम्ना समानयन् । तत्साम्नः सामत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ७ ॥ स प्रजापतिर्हैव षोडशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । तद् यत्सार्धं समैत् तत्साम्नः सामत्वम् । जै० ३ । १ । ४ । ७ । तद् यत् संयन्ति तस्मात्साम । जै० उ० १ । ३ । ३ । ६ ॥ तद्यदेष सर्वैर्लोकैः समः तस्मात् साम । जै० उ० १ । २२ । ५ ॥ सा च अमश्चेति तत्साम अभवत् । जै० उ० १ । ५ । ३ । २ ॥ साम हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ७ । ५ । ६ ॥ क्षत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ धर्म इन्द्रो राजा । तस्य देवा विशः । सामानि वेदः । श० १३ । ४ । ३ । १४ ॥

९

(५) 'ऋचः'—प्राणा वा ऋक्। कौ० ७।१०॥ वाग् ऋक्। जै० ३।४।२३।४॥ अन्नम् ऋक्। कौ० ७।१०॥ महिमा वा ऋक्। श० ७।५।२।२५॥ एष आहुतयो यदृच। श० १।५।१।४॥

(६) 'पुरोऽनुवाक्या'—प्राण एव पुरोऽनुवाक्या। श० १४।६।१।१२॥ पृथिवीलोकमेव पुरोऽनुवाक्यया जयति। श० १४।६।१।६॥

(७) 'याज्या'—इयं पृथिवी याज्या। श० १।४।२।१६॥ वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव। ऐ० २।४। अन्नं वै याज्या। गो० उ० ३।२२। भक्तिर्वै याज्या पुण्या लक्ष्मी। ऐ० ३।४०॥

(८) 'वषट्कारः'—स वै 'वौषड्' इति करोति। वाग् वै वषट्कारः। वाग् रेतः। रेत एतत् सिञ्चति। षड् इति ऋतवः। ऋतवो वै षड्। ऋतुष्वेवैतद् रेतः सिच्यते। यो धाता स एव वषट्कारः। ऐ० ३।४६॥

(९) 'आहुतय'—तद् यदाजुहोति तस्मादाहुतिर्नाम। श० ११।२।२॥ महिम्नो ह वै ता आहुतय इत्याचक्षते। श० १०।६।१।२।

अर्थात्—प्रथम श्रेणी के पुरुष द्वितीय श्रेणीके पुरुषों के द्वारा बलवान् बनें, द्वितीय कोटि के तृतीय अर्थात् उच्च-कोटि के पुरुषों से समृद्ध हों। उच्च कोटि के लोग सत्य, न्याय और धर्म से बढ़ें। सत्य वाग् यज्ञ से बढ़े। प्रजाजन रूप यज्ञ सत्य व्यवहार को बढ़ावें। यज्ञ यजुओं से बढ़े अर्थात् वाणी, मनके विचार से युक्त हो। और प्रजा का परस्पर संगठन रूप यज्ञ वायु के समान बलवान् और अन्तरिक्ष के समान आवरणकारी रक्षक राजा के बल से बढ़े। यजुर्वेद सामवेद से बढ़े अर्थात् परस्पर एक साथ कार्य करके, सबके समान पोशाक, एक साथ सन्ध्यावन्दनादि के कार्य से युक्त हो। सामवेद ऋक् से बढ़े अर्थात् क्षत्रिय लोग पुष्टिकारी अन्न या वीर्यों की सहायता से बढ़ें। ऋचाएं पुरोऽनुवाक्या से बढ़ें अर्थात् अन्न का बल प्राण या अन्न की वृद्धि पृथिवी की वृद्धि से हो। पुरोऽनुवाक्या याज्या से बढ़े अर्थात् पुरुष

लक्ष्मी त्रत्र सम्पत्ति से बढ़ें। याज्या वषट्कार से बढ़े अर्थात् पुण्य लक्ष्मी वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि से बढ़े। वषट्कार आहुतियों से बढ़ें अर्थात् बल वीर्य परस्पर के संघर्ष और स्थिर सम्पत्तियों के प्रदान कर्तव्य रक्षणों से बढ़ें। शत० १२। ८। ३। ३०॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ् म॒ आन॑ति॒राग॑तिः।
मा॒ꣳसं म॒ उप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ आन॑तिः॥ १३॥

अनुष्टुप्। गान्धार। लोमादयोऽनानास्थिमज्जानो लिंगोक्ता देवता॥

भा०—राजा के शरीर की राष्ट्र से प्राप्त राजा की शक्तियों से तुलना। (प्रयतिः) राष्ट्र में समस्त जनों का प्रयत्न करना, श्रम करना या उत्तम नियमन या शासन व्यवस्था करना (मम) मेरे शरीर के (लोमानि) लोम के समान राष्ट्र की बाह्य या प्रत्यक्ष रक्षा करने वाले साधन हैं। (आनतिः) अपने समस्त शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों को झुकाने वाली शक्ति और (आगतिः) मेरी आज्ञा प्राप्त करते ही मेरे सामने उनका आजाना, उपस्थित हो जाना, ये दोनों शक्तियां (मे त्वक्) मेरी त्वचा के समान मेरे राष्ट्र की रक्षा करने वाली हैं। (उपनतिः) मेरे समीप आने वाले लोगों को आदर से झुकाने वाली शक्ति (मे मांसम्) मेरे शरीर के मांस के समान राष्ट्र शरीर के स्वस्थ और हृष्टपुष्ट होने की समृद्धि के समान है। (वसु अस्थि) मेरा समस्त प्रजाजनों को बसाने वाला सामर्थ्य और ऐश्वर्य मेरे शरीर में विद्यमान अस्थि या हड्डी के समान राष्ट्र-शरीर के दृढ़ मूल आधार के समान है। (मज्जा मे आनतिः) प्रेम से, स्नेह से लोगों को आदर पूर्वक मुग्ध करके मेरे गुणों के समक्ष झुकाने वाला बल (मे) मेरे शरीर में विद्यमान (मज्जा) मज्जा के समान, राष्ट्र-शरीर में सब को आनन्द, सुख, शान्ति देनेवाला एवं सब अंगों के पालन धारण करने वाला है। शत० १२। ८। ३। ३१॥

यद्दे॑वा दे॒वहे॑डनं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम्।

अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ १४ ॥

अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो ! (देवासः) उत्तम गुण और विद्यावान्, एवं विजयशील (वयम्) हम लोग (यत्) जो भी (देवहेडनम्) उत्तम विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों का अनादर और अपराध (चकृम) करें (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् परमेश्वर, आचार्य और प्रतापी राजा (मा) मुझको (तस्मात् विश्वात्) उस सब प्रकार के (एनसः) अपराध और पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे छुड़ावे। शत० १२ । ६ । २ । २ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम् ।

वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ १५ ॥

वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यदि) चाहे (दिवा) दिन के समय (यदि नक्तम्) चाहे रात्रिकाल में (वयम्) हम लोग (एनांसि) अपराध और पाप (चकृम) करें तो भी (वायुः) वायु के समान धारक, अन्तर्यामी परमेश्वर, उसके समान आप्त पुरुष, एवं बलवान् राजा (तस्मात् एनसः) उस अपराध से और (विश्वात् अंहसः) सब प्रकार के पाप से भी (मा मुञ्चतु) मुझे मुक्त करे। शत० १२ । ६ । २ । २ ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ १६ ॥

सूर्यो देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यदि जाग्रत्) यदि जागते और (यदि स्वप्ने) यदि सोने में भी (वयम्) हम (एनांसि) पाप (चकृम) करें तो (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर विद्वान् राजा (मा) मुझको (तस्मात्

१४—(१४-१६) [illegible] । '०देवेन०' इति काण्व० ।

एनस) उस पाप से और (विश्वात् अहस) समस्त प्रकार के पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे। शत० १२।७।२।२॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥

लिंगोक्ता देवता। त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(वयम्) हम (यत्) जो (एनः) पाप (ग्रामे) ग्राम में, (यत् अरण्ये) जो पाप जंगल में, (यत् सभायाम्) जो पाप सभा में, और (यत् इन्द्रिये) जो अपराध चित्त में और चक्षु आदि इन्द्रियों में, परस्त्री दर्शन आदि, (यत् शूद्रे) जो शूद्र या सेवक जन पर, (यद् अर्ये) और जो पाप स्वामी के प्रति, (चकृम) करें और (यत्) जो अपराध हम (एकस्य) एक किसी भी पुरुष के (धर्मणि अधि) धर्म या कर्त्तव्य पालन या व्रत पालन के भङ्ग करने में करें (तस्य) उस अपराध का, हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू (अवयजनम्) नाश करने वाला (असि) हो। शत० १२।६।२।३॥

यदापो ग्रघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥

भा०—(यदाप० इत्यादि) देखो अ० ६।२२ ॥ (अवभृथ० इत्यादि) देखो व्याख्या अ० ३।४८ ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥

भा०—(समुद्र० इत्यादि) व्याख्या देखो अ० ८।२९॥ (सुमित्रिया० इत्यादि) व्याख्या देखो अ० ६।२२॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

आपो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(आपः) अन्नों के स्वच्छ करने वाले, स्नान आदि और जीवन के देने वाले आप्त जन, या सदा आप्त परमेश्वर (मा) मुझको (एनसः) पाप से ऐसे (शुन्धन्तु) शुद्ध करें जैसे (मुमुचानः) मुक्त होने या टूटने वाला फल (द्रुपदात् इव) वृक्ष से अथवा (मुमुचानः द्रुपदादिव) जिस प्रकार छूटने वाला पशु काष्ठ के बने खूंटे से छूट जाता है, और जिस प्रकार (स्विन्नः) पसीने से भरा पुरुष (स्नातः) नहा धोकर (मलात् इव) मल से रहित हो जाता है, और जिस प्रकार (पवित्रेण) छानने के कम्बल या वस्त्र से (पूतम्) छना हुआ (आज्यम्) घी, कीट, मल आदि से स्वच्छ हो जाता है। शत० १२ । ९ । २ । ७ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड् त्रिष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(वयम्) हम (उत्तरम्) इस लोक से उत्कृष्ट और उच्च, (स्वः) सुखमय लोक को और (उत्तमम्) सब से उत्तम, उत्कृष्ट, (ज्योतिः) परम ज्योति स्वरूप, (देवत्रा देवम्) प्रकाशमान पदार्थों में भी सब से अधिक प्रकाशमान, दानशीलों में सब से अधिक दानशील, विजिगीषुओं में सब से अधिक विजिगीषु (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर और राजा को (पश्यन्तः देखते हुए (तमसः) अन्धकार से (परि) दूर (उत् अगन्म) ऊपर उठें। शत० १२ । ९ । २ । ८ ॥

आपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वानग्न

आगंमं तं मा सछंसृज वचसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥

अग्निर्देवता । पंक्ति । पञ्चम ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! पापवारक ! (अद्य) आज मैं (अप) जलों में नियमानुसार स्नान करने के समान आप्त पुरुषों का प्राप्त होकर ज्ञान और कर्मानुष्ठानों को (अनु अचारिषम्) नियमानुकूल यथाविधि आचरण कर चुका हू और (रसेन) ज्ञान के उत्तम रस या बल से हम (सम् असृक्ष्महि) संयुक्त हो जावें। (पयस्वान्) उस शक्तिवर्धक ज्ञान रस से युक्त होकर ही, (आगमम्) तेरी शरण आता हू (त मा) उस मुझको (वर्चसा) तेज, वीर्य और अधिकार से, (प्रजया) प्रजा से और (धनेन च) धन, एश्वर्य से (ससृज) युक्त कर।१२। ६। २। ६॥

लौकिक कर्मकाण्ड में 'यदाप ०' मन्त्र से स्नान करते हैं। 'द्रुपदा०' मन्त्र से वस्त्र बदलते हैं। 'उद्वय०' से जल से बाहर आते हैं, 'अपो अद्या०' मन्त्र से उपास्य अग्नि के पास आते हैं। 'एधासि०' से समिद् लेकर अग्नि का परिचया करते है।

एधाऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समाववर्ति पृथिवी समुषा समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥

समिद् अग्निर्वैश्वानरश्च देवता । स्वराड् अतिशक्वरी । पञ्चम ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे प्रभो ! (त्वम्) तू (एध असि) काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में रख देने से उसका अधिक प्रदीप्त करता है उसी प्रकार तू तेज को बढ़ाने वाला है। हम (एधिषी महि) सदा वृद्धि का प्राप्त हों। तू (समित् असि) काष्ठ के समान लग लगे अग्नि को प्रज्वलित कर देने और प्रकाशित करने वाला है, तू स्वय (तेज असि) तेज स्वरूप है।

(मयि) मुझ में दे (तेजः देहि) तेज प्रदान कर। (पृथिवी) पृथिवी, यह लोक (सम् आवर्तति) अच्छी प्रकार रहे, सुखदायक हो। (उषाः) प्रातःकालीन उषा (सम्) अच्छी प्रकार सुखदायिनी हो, (सूर्यः सम् उ) सूर्य भी हमें सदा सुखदायी हो। (इदं विश्वं जगत्) यह समस्त जगत् (सम् उ) सदा हमें सुखकारी हो। और मैं (वैश्वानर-ज्योतिः) समस्त विश्व के हितकारक जाठर अग्नि, सामान्य अग्नि, विद्युत् और सूर्य को और परमेश्वर सब के ज्योतियों के समान ज्योति को धारण करने वाला, अथवा, सर्व हितकारी ज्योति के समान सर्वोपकारक (भूयासम्) होऊं। मैं (विभून्) बड़े २, विविध (कामान्) कामना योग्य ऐश्वर्यों को (व्यश्नै) प्राप्त करूं। (भूः स्वाहा) समस्त संसार के उत्पादक, सत्तामात्र परमेश्वर को और पृथ्वी को उत्तम न्यायानुकूल धर्माचरण और सत्य ज्ञान द्वारा प्राप्त करूं। शत० १२। १। २। १०॥

अ॒ग्न्या द॑धामि स॒मिध॒मग्ने॑ व्रतपते॒ त्वयि॑।
व्र॒तं च॑ श्र॒द्धां चोपै॑मी॒न्धे त्वा॑ दीक्षि॒तोऽअ॒हम्॥ २४॥

प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (व्रतपते अग्ने) समस्त व्रतों और सत्य कर्मों के पालक अग्ने! तेजस्विन्! (त्वयि) जिस प्रकार अग्नि में काष्ठ या समिधा रक्खी जाती है उसी प्रकार तुझमें (समिधम्) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होजाने में समर्थ अपने आपको मैं तुझ में (आ दधामि) तेरे समक्ष शिष्यरूप से स्थापित करता हूं। और (व्रतं च) व्रत और (श्रद्धां च) सत्य धारणा, दृढ विश्वास बुद्धि को (उप एमि) प्राप्त होता हूं। और (अहम्) मैं (दीक्षितः) दीक्षित होकर (त्वा इन्धे) तुझे भी प्रज्वलित करूं।

गुरु शिष्य के समीप जब जाय श्रद्धा को प्राप्त करके उससे दीक्षा प्राप्त करे और काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में पड़के अग्नि को भी प्रदीप्त

करता है उसी प्रकार शिष्य भी व्रत और विद्या से प्रदीप्त होकर गुरु के यश का कारण हो। इसी प्रकार वीरगण अपने नायक रूप अग्नि में अपने को काष्ठ के समान समर्पित करें और उसी के अधीन कर्म और सत्य विश्वासबुद्धि रख कर उसी का आज्ञा पालन करते हुए उसके तेज और पराक्रम की वृद्धि करें।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ २५॥

अश्वतराश्विर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(यत्र) जहां (ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मणगण और वेद ज्ञान, क्षात्रबल, शौर्य, वीर्य और क्षत्रियगण, दोनों (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार से पुष्ट होकर (सह) एक साथ (चरतः) विचरण करें, विद्यमान हों (तम्) उस दर्शनीय (लोकं) जनसमाज को मैं (पुण्यं) पुण्य, निष्पाप, पवित्र, (प्रज्ञेषं) उत्कृष्ट जानता हूं, (यत्र) जहां (देवाः) विद्वान् गण और विजयशील सैनिकजन (अग्निना) तेजस्वी आचार्य एवं नायक सेनापति या राजा के साथ निवास करते हैं।

वह आत्मा अच्छा है जिसमें वेदज्ञान और बाहुबल दोनों पूर्ण हों जिसमें इन्द्रिय गण आत्मा के साथ सुख से रहें। वह समाज और देश उत्तम है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय हृष्ट पुष्ट रहें और देव अर्थात् विद्वान् गण प्रजागण अपने नायक के साथ रहें। वह परब्रह्म आचार्य कुल भी उत्तम है जिसमें दीक्षित होकर ब्रह्म क्षत्र अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय सभा सदाचारी होकर धर्म का आचरण करें और देव अर्थात् विद्वान् शिष्यगण आचार्य के साथ रहें।

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते॥ २६॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—(यत्र) जहां, जिस लोक में (इन्द्रः च वायुः च) इन्द्र और वायु (सम्यञ्चौ) पूर्ण बलवान् होकर (सह चरतः) एक साथ विचरण करते हैं मैं (त लोकं) उस लोक, स्थान, प्रदेश, आत्मा और समाज को (पुण्यं) पवित्र (प्रज्ञेष) जानता हूं। (यत्र) जहां (सेदिः) अन्नादि के न मिलने के कारण उत्पन्न विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि क्लेश (न विद्यते) नहीं होता।

जिस लोक में इन्द्र अर्थात् जीव और वायु अर्थात् व्यापक परमेश्वर दोनों साथ विचरते हैं, वह पुण्य लोक है। वहां भूख प्यास के कष्ट नहीं, या वहां जन्म मरण के कष्ट नहीं। वह देश जिसमें इन्द्र अर्थात् राजा, वायु अर्थात् सेनापति दोनों बलवान् होकर भी परस्पर (सम्यञ्चौ) सुसंगत होकर प्रेम से रहते हैं वह देश पुण्य है जहां (सेदिः) अन्नादि का अभाव और प्रजाजन का नाश नहीं होता है। वह शरीर पवित्र है जिसमें (इन्द्र) आत्मा और (वायुः) प्राण सुसंगत होकर रहें, जहां (सेदिः) रोगादि क्लेश नहीं रहते।

अ॒ꣳशुना॑ ते अ॒ꣳशुः पृ॑च्यतां॒ परु॑षा॒ परुः॑।
ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः ॥ २७ ॥

वसो देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(ते अंशुना) तेरे व्यापक सामर्थ्य से (अंशुः) राष्ट्र का व्यापक सामर्थ्य और (परुषा परुः) पोरू से पोरू (पृच्यताम्) जुड़ा रहे। (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध या शत्रुनाशक बल और (अच्युतः) कभी न्यून न होने वाला (रसः) रस, परम बल (मदाय) परम आनन्द और सुख प्राप्त करने के लिये (सोमम्) सोम, ऐश्वर्य और राष्ट्र के राजपद को (अवतु) रक्षा करे।

अध्यात्म में—व्यापक परमेश्वर से तेरा आत्मा और प्राण बांध

वाले सामर्थ्य अर्थात् वीर्य से तेरा पोरु २ सदा युक्त रहे। तेरा गन्ध अर्थात् सद्भाव (सोम) परमेश्वर को प्राप्त हो। अच्युत, परमझ रस (वे मदाय) तेरे परम आनन्द के लिये हों।

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च।
सुरायै बभ्रवै मदे किन्त्वो वदति किन्त्व. ॥ २८ ॥

सोम इन्द्रो वा देवता। अनुष्टुप्। गान्धार ॥

भा०—दानशील राजा का वर्णन करते हैं। सभी प्रजाजन (सिञ्चन्ति) राजा को अभिषेक करते हैं, (परि षिञ्चन्ति) वे सब ओर से आये प्रजाजन उसको अभिषेक करते हैं, (उत्सिञ्चन्ति) उसको उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं। और उसको (सुरायै) सुखपूर्वक देने योग्य, या उत्तम रमण करने योग्य, एवं (बभ्रवै) सब के भरण पोषण करने वाली राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति के लिये (पुनन्ति) पवित्र करते हैं, जिससे राजा राज पद को प्राप्त करके पापमय व्यसनों में न फंसे, प्रत्युत, उत्तम धर्मात्मा बना रहे। वह भी (मदे) राज्यलक्ष्मी के प्राप्ति के परम सुख में तृप्त होकर सब को (वदति) कहता है (किंत्व॰ किन्त्व॰) हे प्रजाजन तुझे क्या चाहिये ? तुझे क्या चाहिये ? तुझे क्या कष्ट है, तुझे क्या दुःख है। वह राज्यलक्ष्मी पाकर दरिद्रों को अन्न वस्त्र आदि जो आवश्यक हों दे। दुःखितों का कष्ट निवारण करे, दण्डितों के अपराध क्षमा करे।

राज्याभिषेक के समय सभी लोकों का राजा को स्नान कराना उसको राजपद के लिये पवित्र करने और अनाचार, अधर्म, पाप से मुक्त करने के लिये होता है।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ २९ ॥

विश्वामित्र ऋषि। इन्द्रो देवता। गायत्री षड्ज. ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हम में से (धानावन्तं) धारण पोषण करने वाली नाना गौओं या शक्तियों से युक्त, (करम्भिणम्) क्रियाशील, उपासी पुरुषों से सम्पन्न, (अपूपवन्तम्) इन्द्रियों के सामर्थ्य वाले और (उक्थिनम्) वेद शास्त्र के ज्ञान प्रवचन से युक्त प्रजाजन को (प्रातः) प्रातः सब से प्रथम (जुषस्व) प्राप्त कर।

करोतेरम्भच । करम्भ । उणादि० । अपूपामिन्द्रियम् । श० ।

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

नृमेध पुरुषमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! वायु के समान तीव्र, वेगवान् वीर पुरुषो ! हे शत्रुओं को मारने हारो ! आप लोग (वृत्रहन्तमम्) नगर को रोक लेने वाले शत्रु को मारने वालों में सब से श्रेष्ठ (बृहत्) महान् शक्तिमान् राष्ट्र के उच्च अधिकार वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा को (गायत) उपदेश करो (येन) जिस द्वारा (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान और न्याय व्यवहार की वृद्धि करने वाले (देवाय) देव, दानशील राजा को (जागृवि) सदा जागने वाले, सदा सावधान, (देवं) सर्व विजयकारी, (ज्योतिः) तेज को (अजनयन्) उत्पन्न करते हैं, प्रकट करते हैं।

उपासना विषय में—अज्ञाननाशक (इन्द्राय) परमेश्वर के महान् सामर्थ्य का वर्णन करो, जिससे (ऋतावृधः) सत्यवृद्धि करने वाले लोग परमेश्वर के गुण गायन, प्रकाशस्वरूप ज्योति को साक्षात् करें।

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! विद्वन् ! यज्ञ के समान अहिंसित अखण्ड राज्य के सञ्चालक महामात्य पुरुष ! तू (अद्रिभिः) अजेय शस्त्रधारियों से (सुतम्) अभिषिक्त हुए (सम्राट्) राजा को (पवित्रे) पवित्र, मुख्य, राज सिंहासन पर (आ नय) प्राप्त करा, उसको बैठा। और (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त, परमैश्वर्यवान्, राष्ट्र के (पातवे) पालन करने के लिये (पुनीहि) उसको पवित्र कर। उसके आत्मा, मन और इन्द्रियों को भी पवित्र कर। उसको उमरु परम, उच्च कर्त्तव्यों का उपदेश कर।

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधिश्रिताः । यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

नारायणीय ज्योतिष्मन्य ऋषि । आत्मा परमात्मा च देवते । पंक्ति पञ्चम ।

भा०—राजा के कर्त्तव्यों का उपदेश। हे राजन् ! (यः) जो परमेश्वर (भूतानाम्) समस्त चराचर प्राणियों का (अधिपतिः) सबसे बड़ा पालक, स्वामी है। (यस्मिन् लोकाः) जिसके भीतर जिसके आश्रय पर समस्त लोक, समस्त ब्रह्माण्ड (अधिश्रिताः) आश्रित हैं, स्थान पा रहे हैं, (यः) जो (महान्) सबसे महान् होकर (महतः) बड़े २ आकाशादि महत् परिमाण के पदार्थों और महत् तत्व आदि प्रकृति के विकारों को भी (ईशे) अपने वश कर रहा है (तेन) उस परमेश्वर के परम ऐश्वर्य से (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं (गृह्णामि) राज्य पद के लिये स्वीकार करता हूं। (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं राज्य कार्य का मुख्य प्रवर्त्तक 'अध्वर्यु' (मयि) अपने ही उत्तरदायित्व या सामर्थ्य पर (गृह्णामि) ग्रहण या स्वीकार करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा समस्त भूतों का पति है वैसे तू भी राष्ट्र के समस्त प्राणियों का स्वामी बन। जैसे उसमें समस्त लोक स्थित हैं, वैसे तेरे आश्रय पर समस्त लोक जन हैं। जैसे वह

बड़े आकाशादि पर वश करता है वैसे तू बड़े २ राजाओं पर वश कर। उसी ऐश्वर्य से तुझे राज पद के लिये चुनता हूं।

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे।
एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥

भा०—इसकी व्याख्या देखो अ० १० । २२ ॥

प्राणपा मेऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥

लिङ्गोक्ता देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! परमात्मन् ! राजन् ! हे विद्वन् ! आचार्य ! तू (मे) मुझ शिष्य जन और प्रजाजन के (प्राणपा:) प्राणों का पालक, (अपानपा:) अपानों का पालक (श्रोत्रपा:) श्रोत्रों का पालक, (मे वाच:) मेरी वाणियों का (विश्वभेषज:) सब दोषों को दूर करने वाला और (मनस:) मनको (विलायक:) विविध मार्गों में लगाने हारा है। तू सदा पिता, गुरु, आत्मा के समान आदर करने योग्य है।

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य।
उपहूतऽउपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

यज्ञो लिङ्गोक्ता देवता: । निचृदुष्णिक् छन्द: । ऋषभ: ।

भा०—मैं श्रीर अर्धीनस्थ अधिकारी पुरुष को भी (उपहूत) आदरपूर्वक निमन्त्रित हूं। हे राष्ट्रजन ! मैं (अश्विन कृतस्य) प्रजा के श्री पुरुषों द्वारा कृत निर्मित, (सरस्वतीकृतस्य) विद्वत्सभा द्वारा निर्मित और (सुत्राम्णा) उत्तम, सर्वोत्तम रक्षक राजा द्वारा (कृतस्य) निर्मित (ते) तेरे हितके लिये (उपहूतस्य) आदरपूर्वक प्राप्त अधिकार का मैं (भक्षयामि) उपभोग करूं।

समिद्धऽइन्द्र ऽउषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधान:।

त्रिभिर्द्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरों ववार॥ ३६ ॥
[३६–४७] इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥ आंगिरस ऋषि ।

भा०—(समिद्ध) अति प्रदीप्त, अति तेजस्वी, (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार (उपसाम् अनीके) उषाओं या प्रभात काल के मुख में (पुरोरुचा) अपने आगे चलने वाली अति दीप्ति से (पूर्वकृत्) पूर्व विद्यमान अन्धकार को नाश करता हुआ आगे बढ़ता है इसी प्रकार (समिद्ध) सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्र) शत्रुओं का नाशक इन्द्र, सेनापति (उपसाम्) शत्रु के गढ़ों को जलाने हारे, या शत्रु सेनाओं को अपने आग्नेयास्त्रों से जलाने वाले सैन्यों के, या (उपसाम) स्वयं दाहकारी आयुधों के (अनीके) सेना समूह के, अग्र भाग में (पुरोरुचा) आगे फैलने वाली दीप्ति से या दीप्तिमान् शक्ति से (पूर्वकृत्) पूर्व ही शत्रु पर आक्रमण करने हारा होकर, या पूर्ण बलवान्, शत्रु का नाशक होकर स्वयं (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वज्रबाहु) खड्ग को हाथ में लिये, बलवान्, दण्डधर राजा, (त्रिभिः त्रिंशता देवैः) तेंतीस देवों अर्थात् राष्ट्र के निमित्त विजय करने वाले कुशल पुरुषों के साथ मिलकर (वृत्रं जघान) आवरणकारी शत्रु का नाश करे । और (दुरः) शत्रु दुर्गके द्वारों को (वि ववार) विविध रूप से खोलदे ।

आत्मा के पक्ष में—(इन्द्रः समिद्धः) इन्द्र, आत्मा योगद्वारा तेजस्वी होकर (उपसाम् अनीके) अज्ञानदाहक, ध्यान योग से प्रकट होने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं के प्रारम्भ में स्वयं उग्र दीप्ति से अन्धकार को नाश करके ज्ञानवज्र से युक्त होकर आवरणकारी तम और बन्धनकारी देहबन्धन का नाश करे और द्वारों को खोलदे ।

नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।

३६—इतः सौत्रामणिक हौत्रम् ॥ अतः प्रयाजदेवेन्द्रस्याप्रियः ।

गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

तनूनपाद् देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(नराशंसः) अपने आश्रित जनों से स्तुति के योग्य, (शूरः) शूरवीर, निर्भय, (प्रति मिमानः) राष्ट्र के प्रत्येक कार्य को स्वयं जानता और करता हुआ (तनूनपात्) अग्नि के समान, तेजस्वी, और अग्नि जिस प्रकार शरीर को नहीं गिरने देता उसी प्रकार राष्ट्र का पतन न होने देने वाला और प्राण जिस प्रकार शरीर नष्ट नहीं होने देता उसी प्रकार राष्ट्र का रक्षक होकर विराजमान (यज्ञस्य) राज्यव्यवस्था रूप यज्ञ या प्रजापति राजा को (धाम) धारण सामर्थ्य और प्रताप को। (प्रति) प्रतिस्पर्धा से बनाये रक्खे। वह (गोभिः) गवादि पशुओं से (वपावान्) अति लक्ष्मीवान् एवं (गोभिः वपावान्) भूमियों से कृषि सम्पत्तिमान्, (गोभिः वपावान्) ज्ञान वाणियों से विभूत बुद्धिमान् होकर (मधुना) रस मधु ज्ञान अन्न और बल से (समञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि रमणीय और हितकारी पदार्थों से (चन्द्री) प्रजा को आनन्दकारी, ऐश्वर्यवान् होकर (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (यजति) यज्ञ करता, दान देता, राष्ट्र को सुव्यवस्थित करता है।

ईडितो देवैर्हरिवाँ२ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवैः) देव, विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों द्वारा (ईडितः) स्तुति और आदर, प्राप्त (हरिवान्) उत्तम अश्वों वाला, (अभिष्टिः) सब दिशाओं में आक्रमण करने और गमन करने में समर्थ, (आजुह्वानः) शत्रुओं द्वारा ललकारा गया, या विद्वानों द्वारा आदर से

बुलाया हुआ (हविषा) राष्ट्र से प्राप्त कर रूप ऐश्वर्य से (शर्धमान) शत्रुओं का पराजय करता हुआ, (पुरन्दर) शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाला, (गोत्रभिद्) शत्रुवंशों के उच्छेद करने वाला (वज्रबाहु) खड्ग आदि वीर्य को धारण करने वाला वह राजा (न) हमारे (यज्ञम्) राष्ट्र के पालन कार्य, प्रजापति पद को (जुषाण) प्रेम से स्वीकार करता हुआ हमें (आ यातु) प्राप्त हो।

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्नऽइन्द्रः प्राचीनꣳसीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳस्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३६ ॥

बर्हिष्मान् ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बर्हिः जुषाणः इन्द्रः) अन्तरिक्ष में विराजमान सूर्य जिस प्रकार (पृथिव्याः) पृथिवी के (प्राचीनं) प्राचीन दिशा के प्रदेश में (प्र दिशा) प्रबल तेज से विराजता है और (हरिवान्) किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार (आदित्यैः) अपने किरणों से (अक्तं) प्रकाशित (बर्हिः) महान् ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में (आ सीदत्) विराज जाता है। (हरिवान्) तीव्र वेगवान् अश्व और तीव्र मतिमान् विद्वान्, वीर पुरुषों का स्वामी, (इन्द्र) शत्रुनाशक ऐश्वर्यवान् राजा (प्र दिशा) अपने उत्कृष्ट शासन के बल से (पृथिव्याः) पृथिवी (बर्हिः) महान्, बृहत् राष्ट्र या ऐश्वर्य को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (उरुप्रथाः) अति विस्तृत शक्तिशाली होकर (आदित्यैः) सूर्य के किरणों के समान तेजस्वी, (वसुभिः) बसने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों द्वारा अथवा (आदित्यैः वसुभिः) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों से (सजोषाः) सम्पन्न होकर (अक्तं) प्रकाशित, तेजोमय (स्योनम्) सुखकारी (प्रथमानम्) विख्यात एवं विस्तृत एवं (प्राचीनं) अति उत्कृष्ट राज्य को (आसीदत्) विराजे।

३६—'हविषा०' इति काण्व०।

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताᳪ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥४०॥

ऋ० ७ । २ । ५ ॥

द्वारो इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (कवष्यः) उत्तम स्तुति करने वाली, (जनयः) पुत्रजनन में समर्थ (सुपत्नीः) उत्तम गृहपत्नियां स्त्रियां (धावमानाः) रजोधर्म शुद्ध हुई (वृषाणं) वीर्य सेचन में समर्थ अपने पतियों के पास जाती हैं उसी प्रकार (कवष्यः) उत्तम, हर्ष ध्वनि करने वाली, (दुरः) अति वेगवती (जनयः) उत्तम रूप से सजाई गई, (सुपत्न्यः) उत्तम रीति से नगर का रक्षा करने वाली (द्वारः) द्वारों के समान शत्रुओं का वारण करने वाली (धावमाना) बड़े उत्सुकता से समीप आती हुई सेनाएं (वृषणं) बलवान् (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को (यन्तु) प्राप्त हों और जिस प्रकार (सुवीराः) उत्तम पुत्रवती स्त्रियें (महोभिः) आनन्द उत्सवों से (वीरं प्रथमानाः) अपने वीर पति की प्रशंसा करती हुई विराजती हैं उसी प्रकार (सुवीराः) उत्तम वीर पुरुषों से भरी (देवीः) शोभा वाली, विजयशील (महोभिः) तेजों से (वीरं) वीर्यवान् राजा की (प्रथमाना) शक्ति और यश को विस्तृत करती हुई (द्वारः) शत्रुओं का वारण करने वाली द्वारों के समान सुदृढ़ सेनाएं (विश्रयन्ताम्) विविध रूप से विविध देशों और दिशाओं में खड़ी हों ।

अथवा—जिस प्रकार पत्नियां पति के स्वागत के लिये (दुरः यन्तु) द्वार पर आ जाती हैं उसी प्रकार (जनयः) प्रजाएं राजा के स्वागत के लिये (दुरः यन्तु) द्वार पर आवें । उसी प्रकार (सुवीराः देवीः द्वारः विश्रयन्ताम्) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त उत्तम प्रजाएं द्वारों पर खड़ी हों ।

सप्तम में ' द्वार ' शब्द स्त्रीलिङ्ग होने से उनकी विशेषता स्त्रियों के रूप का गई है । वस्तुतः ऐसे वीर राजा के स्वागत और नगर की रक्षा के लिये बहुत से द्वार तथा रक्षक नियत किये जाय ।

उपासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

ऋ० २ । ३ । ६ ॥

उपासानक्तौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—जिस प्रकार (उपासानक्ता) उषा अर्थात् प्रभातवेला, और नक्त-रात्रिवेला दोनों (इन्द्रम्) सूर्य को (पेशसा) उत्तम रुचिकारक तेज से (सवयन्ती) आवरण करती हुई (यजत) सगत होती है उसी प्रकार (बृहती) बड़ी भारी दो सेनाएं या प्रजा और सेना की पङ्क्तियें (पयस्वती) पुष्टिकारक तेज पराक्रम और अन्न को धारण करने वाली, (सुदुघे) उत्तम शक्ति और ऐश्वर्य से राजा को पूर्ण करने वाली होकर (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर राजा को (तन्तुम्) पट के तन्तुओं के समान स्वयं (ततं) विस्तृत (पेशसा) ऐश्वर्य या उज्ज्वल रूप से (सवयन्ती) मानो बुनती सी हुई उसके विस्तृत रूप को प्रकट करती हुई (सुरुक्मे) सुखप्रद ऐश्वर्य सहित होकर (देवानां) तेजस्वी और विजयी पुरुषों के बीच (देवम्) तेजस्वी विजिगीषु पुरुष को (यजत) प्राप्त होती है ।

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ४२ ॥

दैव्यौ होतारौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(दैव्यौ होतारौ) देवों, विद्वानों में उत्तम प्रतिष्ठा से विद्यमान, (होतारौ) यज्ञ के होताओं के समान राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ अधिकारी वायु और अग्नि, सेनापति और विद्वान् महामात्य दोनों (प्रथमा) सबसे मुख्य (सुवाचा) उत्तम वाणी वाले, (पुरुत्रा मनुषः) बहुतसे मनुष्यों को (मिमानौ) अपने वश करके राज्य का निर्माण करते हुए और (इन्द्रम्) शत्रुनाशक या ऐश्वर्यवान् राजा को (यज्ञस्य) सुव्यवस्थित

४२ —०होतारा इन्द्र० इति काण्व० ।

राज्य में या प्रजापति के पद के (मूर्धन्) मुख्य शिरोभाग पर (मधुना) अपने ज्ञान और बल से (दधानः) स्थापन करते हुए (प्राचीन ज्योतिः) प्राची दिशा में उत्पन्न सूर्य के समान उदित होने हारे तेजस्वी राजा को (हविषा) अन्न बल, ज्ञान और कर द्वारा होता जिस प्रकार हवि से अग्नि को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (वृधन्) बढ़ाते हैं, अधिक शक्तिशाली बनाते हैं।

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥४३॥

ऋ० २।३।८॥

इडा सरस्वती भारत्यश्चिन्द्रश्च देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती विद्वत् सभा या विद्वान् जन ! (इडा) इडा, धर्मसभा और (देवी) विजयशालिनी (भारती) धारण पोषण करने वाली, प्रजापालक सभा, (विश्वतूर्तिः) तीनों समस्त कार्यों का बिना विलम्ब के अति शीघ्रता से करने में समर्थ, (तिस्रः) तीनों (देवीः) दिव्य गुण वाली, पूज्य विद्वत् सदस्यों से बनी सभाएं (हविषा) अन्नादि ऐश्वर्य ज्ञान और बल से (वर्धमाना) बढ़ती हुई (जनयः पत्नीः न) पुत्रोत्पादन करने वाली पत्नियों के समान, (इन्द्रं) अपने ऐश्वर्यशील स्वामी, राजा या राज्य कार्य को (जुषाणाः) प्रसन्न करके (पयसा) पुष्टिकारक वीर्य, सामर्थ्य से (अच्छिन्नं तन्तुम्) अटूट सन्तान के समान विस्तृत राज्य प्रबन्ध को (वर्धयन्ति) बढ़ावें।

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ४४ ॥

त्वष्टा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

४३—ऋ० २।३।८।

भा०—(त्वष्टा) राज के समस्त उत्तम कार्यों को सम्पादन करने में समर्थ तेजस्वी वीर क्षत्रिय (त्रुरो) शत्रुओं की शक्ति को बाधने वाले (इन्द्राय) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राज पद या सेनापति पद के लिये (शुष्मम) शत्रुओं को सुख देने वाला बल वीर्य को (दधत्) धारण करे । और वह (अपाक) जिससे अधिक और प्रशंसनीय, योग्यतम प्राप्त न हो ऐसा, सब से अधिक प्रशंसनीय और (यशसे) यश और कीर्ति के लिये (अदितु) समस्त देश भर में पूजनीय होकर (पुरूणि) बहुतसी प्रजाओं को (दधत्) धारण करे। वही (वृषा) जल सेचन में समर्थ मेघ और वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के समान (भूरिरेता) प्रचुर वीर्यवान्, शक्तिशाली होकर (वृषण) मेघ के समान समस्त सुखों की धाराएं बर्साने वाले राष्ट्र को या सम्पूर्ण बल को (यजत्) प्राप्त करता हुआ (यज्ञस्य) प्रजा पालक राष्ट्र के (मूर्धन्) सर्वोच्च पद पर रह कर (देवान्) विजयशील, विद्वान् पदाधिकारियों को और राज-सभासदों को (सम् अयजतु) युक्त करे।

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति युज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥

वनस्पतिरूप इन्द्रो देवता । निचृत् । धैवतः ॥

भा०—(वनस्पतिः) वन में लगे वृक्षों के समान अगणित असंख्य प्रजाजनों और सेनाजनों का पालक अथवा वनस्पति, महा वृक्ष वट आदि के समान बहुतों को अपने नीचे शीतल छाया और आश्रय का देने वाला राजा स्वयं (पाशैः) सभी बंधनों से (अवसृष्ट) मुक्त सा होकर भी (त्मन्या) अपने ही तेज सामर्थ्य से (सम् अञ्जन्) प्रकाशमान होता हुआ वह (देवः) सूर्य के समान तेजस्वी, अन्यों को प्रकाशप्रद होकर (शमिता न) सब को शान्तिदायक एवं दण्डकर्त्ता हो जाता है । वह (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (जठरं) उदर के समान बड़ा कोश को (हव्यैः)

ग्रहण करने योग्य धन और ऐश्वर्यमय बहुमूल्य रत्नों से (पृणान) पूर्ण करता हुआ (यशः) यशस्वित, सुसंपन्न राष्ट्र को (मधुना घृतेन) मधुर घी से भोजन के समान (मधुना) मधुर (घृतेन) तत्व से (स्वदति) स्वयं भोगता है ।

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥४९॥

भा०—(स्तोकानाम्) स्वल्प शक्ति वाले पुरुषों में से जो (वृषभ) महान् (तुराषाट्) हिंसक, दुष्ट पुरुषों को पराजित करने हारा, (वृषायमाणः) सब प्रजाओं पर मेघ के समान वर्षक और राष्ट्र पर आने वाले संकटों का प्रतिबन्धक होकर (शूर) शूर वीर है वह (इन्द्र) इन्द्र पद के योग्य है । उस (इन्द्रम् प्रति) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र स्वभाव, राजा के (प्रति) प्रति (घृतप्रुषा) स्नेह और तेज को सेचन करने वाले (मनसा) मन या विज्ञान से (मोदमाना) अति प्रसन्न होते हुए (अमृता देवा) जीवित, अधिकारी राज पुरुष (स्वाहा) उत्तम यश या अपने आत्मसमर्पक वचनों द्वारा (मादयन्ताम्) हर्ष अनुभव करें और प्रजा को सुप्रसन्न, सुतृप्त करें ।

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ ५० ॥

ऋ० ४ । २१ । १ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(इन्द्र) शत्रुओं का विदारण करनेवाला, विजयी (शूर) शूरवीर (नः अवसे) हमारी रक्षा करने के लिये (इह) इस राष्ट्र में (उप आयातु) प्राप्त हो । (स्तुतः) उत्तम गुणों से स्तवित वह

५०—(५०—५२) [illegible] ।

(स्वधमाद् अस्तु) समस्त प्रजा और शासन के साथ सु प्रसन्न होकर रहे। (यस्य) जिसके (पूर्वी) पूर्ण सामर्थ्यवाले (तविषी) बल के बड़े २ कार्य और शक्तियां विद्यमान हैं और जो स्वयं (वावृधान) सदा वृद्धिशील है वह (अभिभूति) शत्रु के पराजय करने में अपने समर्थ (क्षत्रम्) क्षात्र बल, वीर्य को (द्यौ न) सूर्य के समान (पुष्यात्) तेजस्वी, प्रचण्ड और पुष्ट करे।

आ नऽइन्द्रो दूरादा नऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८॥
ऋ० ४।२०।१॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(नः) हमारा (इन्द्र) शत्रुओं को फोड़देने में समर्थ ऐश्वर्यवान् राजा (दूरात्) दूर देश से और (आसात्) समीप से भी (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (उग्रः) अति बलवान् होकर (आ यासत्) आवे । और वह (ओजिष्ठेभिः) अति पराक्रमी, वीर पुरुषों के (सङ्गे) संग में (समत्सु) संग्राम के अवसरों पर (पृतन्यून्) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं को (तुर्वणिः) विनाश करने में समर्थ (वज्रबाहुः) वीर्यवान् बाहुओं वाले शस्त्रास्त्र सम्पन्न (नृपतिः) नरों का पालक हो ।

आ नऽइन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ ४६ ॥
ऋ० ४।२०।२॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वज्री) वीर्यवान्, शस्त्र बल से युक्त, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, (विरप्शी) महान्, (इन्द्र) इन्द्र, सेनापति, (अर्वाचीनः) अभिमुख दिशा में आगे की तरफ बढ़नेवाला, सदा उदयशील, होकर (नः)

हमारे (अवसे) रक्षा के लिये और (राधसे च) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (अस्तु) भली प्रकार (आयातु) आगे बढ़े । वह (वाजसाती) संग्राम में या वाज=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ अर्थात् प्रजापति के महान् कार्य को (अनु तिष्ठाति) करे ।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥
ऋ० ४। ४७। ११ ॥

गर्गो ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारण करनेवाले और (त्रातारम्) कष्टों से बचाने वाले पुरुष को (ह्वयामि) बुलाता हूं । (हवे हवे) प्रत्येक संग्राम में मैं (अवितारम्) रक्षा करनेवाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् पुरुष को बुलाता हूं । मैं (सुहवं) उत्तम संग्राम करनेवाले शूरवीर, (इन्द्रम्) इस राष्ट्र के धारणकर्त्ता 'इन्द्र' राजा को बुलाता हूं । मैं (शक्र) शक्तिशाली, (पुरुहूतम्) बहुत प्रजाओं द्वारा स्वीकृत, (इन्द्रम्) शत्रु आदि के रक्षक पुरुष को (ह्वयामि) बुलाता हूं । वह (मघवान्) धनादि समृद्ध (इन्द्र) पृथ्वी का पालक (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याण और सुख (धातु) प्रदान करे ।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽअवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो ऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥
ऋ० ४। ४७। १२ ॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् भुरिक् पंक्तिश्छन्दः वा । धैवतः ॥

भा०—(सुत्रामा) राष्ट्र के उत्तम साधनों से रक्षा करनेवाला, (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, (स्ववान्) अपने नाना सहायकों से युक्त (विश्ववेदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करके (अवोभिः) अपने नाना

प्रकार के रक्षए साधनों से (सुमृडीकः भवतु) प्रजा को सुखकारी हो। वह (द्वेषः) शत्रुता करनेवालों को (वाधताम्) पीडित करे और दण्डित करे और राष्ट्र में (अभयं कृणोतु) समस्त प्रजा को परस्पर भय रहित करे। और हम प्रजाजन (सुवीर्यस्य) उत्तम सामर्थ्य और पराक्रम के (पतयः) स्वामी (स्याम) होकर रहें।

तस्यं वयᳪ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम। स सुत्रामा स्ववाँ२ऽ इन्द्रोऽअस्मेऽआराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ५२ ॥
ऋ० ४। ४७। १२ ॥

इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(वयम् अपि) हम भी (तस्य) उस (यज्ञियस्य) प्रजापति पद के योग्य, राज्य व्यवस्थापन में कुशल पुरुष के (सुमतौ) शुभ उत्तम ज्ञान और (भद्रे) सुखकारी (सौमनसे) उत्तम चित्त के व्यवहार में, उसकी प्रसन्नता में (स्याम) रहें। (सः) वह (सुत्रामा) उत्तम रक्षक (स्ववान्) उत्तम धनैश्वर्य और सहायकों से युक्त, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति (सनुतः) सदा (द्वेषः) द्वेष करनेवाले पुरुषों को (अस्मे) हम से (आरात् चित्) दूर ही (युयोतु) करे।

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ऽ इहि ॥५३॥ ऋ० ३। ४५। १ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! तू (मयूररोमभिः) मोर के पंखों के समान नील वर्ण के लोमों वाले (मन्द्रैः) अति उत्तम (हरिभिः) अश्वों सहित, अथवा (मयूररोमभिः) मोर के परों से सजे (हरिभिः) शत्रुसंहारक सेनानायकों सहित (आयाहि) तू प्राप्त हो। (पाशिनः विं न) फांसा फेंकनेवाले शिकारी लोग जिस प्रकार पक्षी के फांस लेते हैं

उसी प्रकार (त्वा) तुझ को (के चित्) कोई भी (मा नियमन्) न बांध लें। तू (तान्) उन दुष्ट बन्धकों को भी (अतिधन्वा इव) बड़े धनुर्धर के समान (अति) वीरता पूर्वक अतिक्रमण करके, पार करके (आ इहि) हमें प्राप्त हो।

पर्येन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्युर्कैः ।
स नं स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

ऋ० ७।२१।६॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वृषणम्) बड़े बलवान्, (वज्रबाहुम्) वीर्यवान् और शस्त्रों से सुसज्जित बाहु वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (एव इत्) ही (वसिष्ठास:) बड़े २ धनाढ्य राष्ट्रवासी पुरुष (अर्कैः) उत्तम आदर सत्कारों से (अभि अर्चन्ति) सब प्रकार से पूजा सत्कार करें। (सः) वह (स्तुतः) कीर्तिमान् पुरुष, (नः) हमारे (वीरवद्) वीरों से युक्त और (गोमत्) गौ, अश्व आदि पशुओं से समृद्ध राष्ट्र को (धातु) रक्षा करे। हे वीर पुरुषो! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा काल, (स्वस्तिभिः) सुखकारी उपायों से (पात) पालन करो।

समिद्धोऽअग्निरश्विना तुप्तो घुर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमँ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

विदर्भिऋषिः । अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) प्रजा के दो मुख्य पुरुषो ! (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा (समिद्ध इव) अपने तेज से अति प्रदीप्त (तप्तः) पराक्रम से शत्रु संतापी, (घर्मः) आदित्य के समान (विराट्) विविध

५५—[illegible] ।

ऐश्वर्यों से युक्त होकर (सुत) अभिषिक्त है। (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त वेदवाणी के समान विदुषी, विद्वत्सभा (धेनु) गाय के समान समस्त सार पदार्थों को प्रदान करने वाली (इह) इस राष्ट्र में (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमान्, (इन्द्रियम्) इन्द्र राजा के पद के योग्य (सोमम्) समस्त राज्यैश्वर्य या राज्य को (दुहे) दोहन करती, पूर्ण करती है। उसको पूर्ण बलवान् करती है।

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।
मध्वा रजांसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

भा०—(तनूपा) शरीर की रक्षा करने वाले, (भिषजा) सर्व रोग निवारक वैद्यों के समान राष्ट्र के विस्तृत शरीर के रक्षक, दुष्ट पुरुषों के चिकित्सक, (उभे अश्विना) दोनों अश्व युक्त, सेना के पति, राजा मन्त्री या सत् स्त्री और पुरुष गण और (सरस्वती) वेद वाणी के समान ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा ये सब (मध्वा) मधुर अन्न, ज्ञान और बल से (रजांसि) समस्त लोक और (इन्द्रियम्) राजोचित ऐश्वर्य का, (पथिभिः) नाना सत्-उपायों और मार्गों से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (वहान्) प्राप्त करावें, एकत्र करें।

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत् सभा, (इन्द्राय) दुःखों के नाश करने वाले परम ऐश्वर्य युक्त राजपद के लिये (नराशंसेन) समस्त उत्तम पुरुषों द्वारा गुण स्तवन के सहित (नग्नहुम्) दरिद्रों के पालक, प्रजा के सुखदायक (इन्दुम्) दयालु, आर्द्रस्वभाव, ऐश्वर्यवान् आह्लादक पुरुष को (अधात्) राज्य पद पर स्थापित करे। और (भिषजा अश्विना) रोग निवारक वैद्यों के समान विवेकी विद्वान् स्त्री पुरुष

(सुते) अभिषिक्त राजा के निमित्त या राष्ट्र में (भेषजम्) रोग निवारक ओषधि के समान (मधु) मधुर अन्न और सेना बल को (दधानाम्) धारण करें, स्थापित करें। सेना पोलीस आदि या राष्ट्र में राजा शमन, कारी ओषधि के समान उपद्रवकारी पुरुषों को शान्ति के लिए और अन्नादि पदार्थ भूख शान्ति के लिए हों। वह व्यर्थ प्रजा के पीड़न करने और अन्नादि पदार्थ व्यसनों में फंकने या दुरुपयोग के लिए न हो।

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्।
इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥ ५८ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों के सामर्थ्यों और राजोचित ऐश्वर्यों का और (वीर्यम्) परम शक्ति, अधिकार (आजुह्वाना) प्रदान करती हुई (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती विदुषी स्त्री के समान विद्वत्सभा और (अश्विना) अश्वविद्या से ही अन्न और बल को उत्पन्न करा देने वाले वैद्यों के समान (अश्विनौ) नाना विद्याओं में निष्णात स्त्री और पुरुष या दोनों अधिकारी (इडाभिः) नाना प्रकार के अन्नों से (इषम्) इच्छानुसार (ऊर्जम्) बल पराक्रम को और (रयिम्) ऐश्वर्य को भी (सं सं दधुः) प्रदान करें।

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता।
सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥

भा०—(अश्विना) नाना विद्याओं में कुशल राष्ट्र के दो पुरुष [illegible] और [illegible] के समान [illegible] और [illegible], [illegible] और [illegible] के कर्ता अधिकारीगण, (नमुचेः) न छूटने वाले शत्रु [illegible] [illegible] (परिस्रुता) [illegible] [illegible] द्वारा (सुतम्) [illegible] (शुक्रम्) शुद्ध किये गये (सोमम्) राष्ट्र को प्राप्त कराते हैं। (सरस्वती) विद्वत्सभा भी (तम्) उसको (इन्द्राय) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शासक के (पातवे) भोग के लिये (आभरत्) प्रस्तुत करती है।

'अश्विनौ'—अथ यदेन (अग्निम्) द्वाभ्याम् बाहुभ्यां द्वाभ्याम् प्ररणीभ्या मन्थन्ति द्वौ वा अश्विनौ तदस्याश्विन रूपम् ॥ ऐ० ३ । ४ ॥ मुख्यौ वा अश्विनो यज्ञस्य । श० ४ । १ । ५ । १७ ॥ वसन्तग्रीष्मावेवाश्विनाभ्यामवरुन्धे । श० १२ । २ । २ । ३४ ॥

गृहस्थपक्षमें—स्त्री पुरुष, ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी या गुरु और शिष्य (नमुचे) अत्याज्य, अखण्ड ब्रह्मचर्यकाल से प्राप्त जिस (सोम) वीर्य को सम्पादित करते हैं उसको (सरस्वती) उत्तम स्त्री, (बर्हिषा) सन्तति रूप से (इन्द्राय पातवे) अपने सौभाग्य के भोग के लिये अपने भीतर (आभरत्) धारण करती है। अर्थात् वीर्याधान द्वारा पुरुष को भोग और सन्तति लाभ, दोनों प्राप्त हों।

क॒वृष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्यां॒ न दुरो॒ दिशः॑ ।
इन्द्रो॒ न रोद॑सी॒ ऽउ॒भे दु॒हे कामा॒न्त्सर॑स्वती ॥ ६० ॥

भा०—(इन्द्र) सूर्य जिस प्रकार (अश्विभ्याम्) दिन और रात्रि द्वारा या वायु सूर्य और चन्द्र द्वारा (व्यचस्वती) विस्तृत रूप से व्यापक (दिशः) दिशाओं को पूर्ण करता है, उनमें व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्र) शत्रुओं का नाशक, एवं ऐश्वर्यवान् राजा (अश्विभ्याम्) नाना भोग समृद्धि के भोक्ता स्त्री पुरुषों द्वारा, या व्यापक अधिकार वाले मुख्य अधिकारियों द्वारा (कवष्य) नाना स्तुति समान शत्रुवारण करने वाली वीर प्रजाओं और सेनाओं को वचनों और वाद्य ध्वनियों से गूंजती हुई (दुर) नगर की द्वारों या शत्रुवारक सेनाओं को (दुहे) पूर्ण करता है। द्वारों को शोभा और उत्सवों से और सेनाओं को युद्ध साधनों से युक्त करता है। इसी प्रकार (इन्द्र) सूर्य जिस प्रकार (सरस्वती१) अपनी तीन

व्यापक शक्ति से (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथ्वी को (दुहे) पूर्ण करता है और उनसे दोनों के रसों का दोहन करता है उसी प्रकार (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा द्वारा (उभे) दोनों राजा और प्रजागण तथा स्त्री और पुरुषों के वर्गों को (दुहे) पूर्ण करता और उनसे सारवान् रत्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः ।
संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

भा०—अश्वि नामक राष्ट्र के दो मुख्य कार्यकर्त्ताओं के कर्त्तव्य— (अश्विना) दोनों अधिकारी, (उषासा नक्तम्) उषा दिन और रात्रि काल के समान हैं। उषा अर्थात् दिन जिस प्रकार अपने तेज से पदार्थों को तपाता है उसी प्रकार राजा के यह मुख्य अधिकारी हैं जो दुष्ट पुरुषों को तपावें। दूसरा रात्रि जिस प्रकार शीतल स्वभाव है उसी प्रकार दुःखियों को सान्त्वना देने वाला दूसरा अध्यक्ष है। ये दोनों अधिकारी राष्ट्र के कार्यों में व्यापक होने से 'अश्वि' हैं। उनमें से एक प्रजा के हितकारी नियमों का प्रकाशन करता है दूसरा उनको न पालन करने वालों को दण्ड देता है। ये दोनों (इन्द्रम्) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र को या राष्ट्र के राजा को (इन्द्रियैः) इन्द्र पद के योग्य अधिकारों और बलों से (समञ्जाते) युक्त करते हैं। और स्वयं (संजानाने) परस्पर सहमति करके तत्पश्चात् (सरस्वत्या) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत्सभा द्वारा राजा को (सुपेशसा) उत्तम ऐश्वर्य या रूप से (सम् अञ्जाते) सम्पन्न करते और अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं।

पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥ ६२ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्र और दिन रात्रि के समान, ज्ञान और शान्ति से युक्त मुख्य दो अधिकारी जनो ! आप दोनों (नः) हमारी (दिवा) दिन के समय रक्षा करो और हे (सरस्वति) सरस्वति !

विद्वत्सभे ! तू हमें (नक्तम्) जिस काल में कोई सत्य पदार्थ स्पष्टरूप से प्रकट न हों वहां ज्ञान द्वारा उत्तम रीति से दर्शा कर (पाहि) अनर्थ से बचा। (दैव्या होतारा) दिव्यगुण नगपुरुष सब प्रकार के सुख देनेवाले (भिषजा) शरीर के रोगों को चिकित्सा करनेवाले वैद्यों के समान राष्ट्र शरीर के दोषों को दूर करने वाले आप दोनों (सुते) उत्तम रीति से व्यवस्थित राष्ट्र में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (सचा) एक साथ मिलकर (पातम्) रक्षा करें।

अध्यात्म में—प्राणापानौ वै दैव्यौ होतारौ। ए० ३। ४ ॥ वाक् सरस्वती। इन्द्र आत्मा।

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा।
तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती, (भारती) भारती (इडा) इडा ये (तिस्रः) तीनों और (अश्विना) दोनों सद्वैद्यों के समान उक्त अधिकारी (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (इन्द्राय) इन्द्र, राजा के लिये (तीव्रं) तीव्र (मदम्) आनन्द और हर्ष जनक (सोमम्) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को (सुषुवुः) उत्पन्न करते हैं। अथवा—(इन्द्राय) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के लिये (मदम्) हर्षजनक (तीव्रम्) तीव्र तीक्ष्ण स्वभाव के राजा को उत्पन्न करते हैं।

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳ रूपमधुः सुते ॥ ६४ ॥

भा०—(अश्विनौ) पूर्वोक्त दोनों अश्वि नाम अधिकारियों ने (मधु) मधुर (भेषजम्) समस्त रोगों और दर्पों का शान्त करने वाला उपाय, अन्न, बल और ज्ञान (सुते इन्द्रे) अभिषिक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति में स्थापित किया

६०—१ तृतीयाविभक्तेः ।

और (सरस्वती) विदुषी माता के समान विद्वत्सभा भी (सुते इन्द्रे) अभिषिक्त हुए राजा में (भेषजम्) सर्व रोगों और उपद्रवों को शान्त करने वाले (यशः) यश या वीर्य बल और अधिकार प्रदान करती है। (त्वष्टा) निर्माता, समस्त पदार्थों को घड़ कर बनाने वाला विश्वकर्मा जिस प्रकार (इन्द्रे) विद्युत् के बल पर (श्रियम्) नाना शोभाजनक, बहुमूल्य सम्पत्ति और (रूपम् रूपम्) नाना सुन्दर २ पदार्थ, (मधुः) उत्पादित करता है उसी प्रकार शिल्पकर्मा लोग राजा के आश्रय पर नाना रूप के कार्य करें।

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

भा०—(वनस्पतिः) वृक्ष जिस प्रकार (शशमानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (परिस्रुता) जलादि सेचन करने से (मधु कीलालम् दुहे) मधुर अन्न फल प्रदान करता है उसी प्रकार वनस्पति स्वभाव का (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (शशमानः) उत्तम रीति से वृद्धि को प्राप्त होकर (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (ऋतुथा) अपने बल वीर्य के अनुसार (मधु) मधुर बलकारी (कीलालम्) अन्न और रस के समान नाना भोग्य पदार्थों को (दुहे) उत्पन्न करता है। अथवा—(मधु) शत्रु को कम्पन करने वाला (कीलालम्) बल उत्पन्न करता है। (धेनुः) दुधार गाय के समान (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा भी (अश्विभ्याम्) दो प्रधान विद्वान् मन्त्रि और सभापति के सहाय्य से, (मधु कीलालम्) मधुर दुग्ध के समान मनन करने और धारण करने योग्य ज्ञान को, अथवा—(मधु) आनन्दजनक सुखदायक, (कीलालम्) राज्य के ऐश्वर्य को (दुहे) उत्पन्न करती है।

कीलालम्—[illegible] । [illegible]
[illegible]

कीलयति बध्नाति, खण्डयति खण्ड्यते खण्ड्यते वा तत् कीलालम् प्रबन्ध, शत्रुच्छेदकं बलं, अन्नं वा।

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता।
समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु॥ ६६॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्विगणो! दो मुख्य अधिकारीजनो! आप लोग (सरस्वत्या) सरस्वती नामक विद्वत्समिति के साथ मिलकर (गोभिः) पशुओं से और (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा प्राप्त सब दिशाओं की प्राप्त लक्ष्मी और (मासरेण) प्रति मास देने योग्य वेतन के नियम से (स्वाहा) उत्तम राज्य की नीति से (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में (मधु सुतम्) मधुर सर्वप्रिय अभिषिक्त पुरुष को (सम् अधातम्) स्थापित करो। अथवा—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष में (मधु) मधुर, आनन्द-जनक (सुत) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को (सम् अधातम्) अच्छी प्रकार स्थापन करो।

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे॥ ६७॥

[६७–६६] अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(अश्विनौ) पूर्वोक्त दो अधिकारी जन और (सरस्वती) विद्वत्सभा (धिया) बुद्धिपूर्वक और राष्ट्र के धारण करनेवाली शक्ति से (नमुचेः) कभी न छोड़ने योग्य, सदा वध कर देने योग्य शत्रु से अथवा शत्रु के हाथ कभी न देने योग्य राष्ट्र से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा के लिये (हविः) अन्न समृद्धि या स्वीकार करने योग्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य या इन्द्रपद और (शुक्रम्) शुद्ध तेजोमय (वसु) प्रजा को बसानेवाला राष्ट्र और (मघम्) ऐश्वर्य सम्पत्ति इन पदार्थों को (आ जभ्रिरे) प्राप्त कराते हैं।

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन्।
स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥

भा०—(अश्विना, सरस्वती) दोनों प्रकार के वैद्य और विदुषी माता जिस प्रकार पुत्र को (हविषा) अन्न से (अवर्धयन्) पुष्ट करते हैं (आसुरे नमुचौ) प्राणों में रमण करनेवाले आत्मा के निमित्त (मघ बल बिभेद) अति उत्तम बल प्राप्त कराता है उसी प्रकार (अश्विनौ सरस्वती) उत्तम पदों को प्राप्त होकर अध्यक्ष और विद्वत्सभा तीनों मिलकर (हविषा) अन्नादि पदार्थ और उत्तम उपाय से (यम् इन्द्रम्) जिस शत्रुनाश करनेवाले पुरुष को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (स) वह ही (आसुरे नमुचौ) असुर स्वभाव के नमुचि अर्थात् उसका न करने योग्य, शत्रु के पास (सचा) विद्यमान (मघम्) ऐश्वर्य को (बिभेद) उससे छीन लेता है और (बलम्) उसके बल, सेना बल और मन्त्र बल को (बिभेद) तोड़ डालता है।

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती।
दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञऽइन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

भा०—(पशवः) नाना पशु सम्पत्तियें, अथवा पशुओं में दूरदर्शी पुरुष (सचा उभा अश्विना) परस्पर संयुक्त दोनों मुख्य पदाधिकारी और (सरस्वती) सरस्वती नामक विद्वत्-सभा (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक, राजा और राष्ट्रपति को (दधाना) धारण करते हुए (यज्ञे) प्रजापालनरूप यज्ञ में (हविषा) अन्नादि सामग्री और (इन्द्रियैः) ऐश्वर्यों और सामर्थ्य बलों से (अभि अनूषत) सब प्रकार से बढ़ाते और उसकी प्रशंसा और कीर्ति उत्पन्न करते हैं।

य इन्द्रऽइन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः।

६८—'०मुच' मघु०' इति काण्व० ॥

उत्तम पराक्रमवाला, स्वयं (अश्वैः) अश्व के अवयवों के साथ निरन्तर (श्रियम्) राजलक्ष्मी को और (सुत्रामा) उत्तम रीति से राष्ट्र की रक्षा करनेहारा राजा स्वयं (यशसा) अपने यश से (बल) सेनाबल को (दधानाः) धारण करते हुए (यजन्) यज्ञ सुसंगठित राष्ट्र का (आदान) प्राप्त रहें, यश प्राप्त करें, या भोग करें।

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम्।
हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥ ७३ ॥

[७३–७४] अश्विसरस्वत्यादयो देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(अश्विना) राज्य के दो मुख्य पदाधिकारी, (गोभिः) दुग्धों से जिस प्रकार शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य बढ़ता है और (अश्वेभिः) व्यापक प्राणों से वीर्य और बल बढ़ता है उसी प्रकार (अश्विना) राज्य के दोनों मुख्य पदाधिकारी क्रम से (गोभिः) गौ आदि पशुओं से (इन्द्रियम्) राजा के ऐश्वर्य को बढ़ावें। और (अश्वेभिः) घोड़ों से या पुरुषों से (वीर्यम्) शरीर में वीर्य के समान राष्ट्र में तेज और पराक्रम से युक्त (बलम्) सेना के बल की वृद्धि करें। और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा (यजमानम्) सबके स्वामी, राज्य के व्यवस्थापक, सर्वोपदेष्टा (इन्द्रम्) इन्द्र, राजा को (हविषा) आदान योग्य करके (अवर्धयन्) वृद्धि करें।

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा।
सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

भा०—(ता) वे दोनों (नासत्या) सदा सत्य पर ही वर्तमान, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाले, (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण आदि धातुओं के व्यापार वृत्ति करने वाले, अथवा हितकारी मार्ग में गमन करने वाले (नरा) नेता और (सरस्वती) विद्वत्सभा (हविष्मती) ग्रहण करने

योग्य ज्ञान और श्रवण करने योग्य उपायों से सम्पन्न होकर हे (इन्द्र) राजन् ! (नः) हमारे (कर्मसु) समस्त कार्यों में (अवत) रक्षा करें ।

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

भा०—(ता) वे दोनों (सुकर्मणा) उत्तम राष्ट्र के कर्म करने वाले (भिषजा) उत्तम वैद्य के समान राष्ट्र के दोषों को दूर करने हारे हैं। (सा) वह (सरस्वती) ज्ञानवती विद्वत् सभा (सुदुघा) उत्तम दुग्ध देने वाली गौ के समान ज्ञानरस को दोहन करती है। और (शतक्रतु) सैकड़ों कर्म करने वाले (वृत्रहा) शत्रुओं को मारने वाले, (इन्द्राय) इन्द्र पद, राज्य के लिये (ऐश्वर्यम् दधुः) ऐश्वर्य को धारण करें ।

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

[७६, ७७] अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अश्विना) पूर्वोक्त मुख्य पदाधिकारियो ! (युवं) तुम दोनों एवं हे (सरस्वति) ज्ञानवाली विद्वत्सभे तुम मिलकर ! तीनों (आसुरे) असुर स्वभाव के (नमुचौ) शत्रु के सदा विद्यमान रहते हुए (सुरामम्) उत्तम रीति से रमण करने योग्य, सुन्दर (इन्द्रम्) इन्द्र पद को या ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को (कर्मसु) समस्त कर्मों में (विपिपानाः) विविध उपायों से रक्षा करते हुए (अवतम्) प्राप्त होवे अथवा सदा उसकी रक्षा करता रहे ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३४ ॥

७६—'०नमुचा वासुरे०' इति काण्व० ।
७७—'०नरा अश्वि०' इति काण्व० ।

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८॥

ऋ० १० । ९१ । १४ ॥

[७८, ७९] अरुणो वैतहव्य ऋषिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

भा०—(यस्मिन्) जिसके आश्रय, जिसके निमित्त, और जिसके अधीन (अश्वासः) अश्व के समान वेगवान् घुड़सवार जन (ऋषभासः) श्रेष्ठजन, एवं महावृषभ के समान पराक्रमी (उक्षणः) सेचन समर्थ, युवा पुरुष, (वशाः) इन्द्रियों और स्त्रियों पर वश करने में समर्थ वशी, तपस्वी और तत्त्वज्ञ लोग (मेषाः) शत्रुओं से स्पर्धा पूर्वक युद्ध करने वाले योद्धा लोग (आहुताः) आदरपूर्वक बुला २ कर (अवसृष्टासः) उनके अधीनस्थ अधिकारी बनाये गये हैं उस (कीलालपे) शत्रु छेदन में समर्थ बल की रक्षा करने वाले (सोमपृष्ठाय) राष्ट्र और राजपद का पालन करने पर उसको अपने ऊपर लेने वाले (वेधसे) बुद्धिमान्, महापुरुष (अग्नये) ज्ञानवान् सबके नेता पुरुष के लिये (हृदा) हृदय से (चारुम्) श्रेष्ठ (मतिम्) मान आदर (जनय) करो ।

ईश्वर के पक्ष में—जिस परमेश्वर में (अश्वासः) सर्व वेगवान् सूर्य विद्युत् आदि पदार्थ, (ऋषभासः) मेघ के समान (उक्षणः) मेघ, जल वर्षक, (वशाः) पृथिवी, (मेषाः) सूर्य के मय (अवसृष्टासः) उत्पन्न होते और प्रलय काल में फिर लीन हो जाते हैं । उस (कीलालपे) अन्नवान् रस उत्पन्न संसार के रक्षक धारक बलों के रक्षक (सोमपृष्ठाय) संसार के पालक, (वेधसे) जगत् के विधाता (अग्नये) ज्ञानवान् स्वप्रकाश, परमेश्वर के लिए (हृदा मतिं चारुं जनय) हृदय में उत्तम स्तुति कर। उवट और महीधर दोनों इस मन्त्र का अर्थ किया है—जिस अग्नि में घोड़े, बैल, सांड, बांझ गाय और भेड़ काट २ कर यज्ञ विधि अनुसार २ कर डाल डाल कर झोंक दिये उस अग्नि के लिये उत्तम स्तुति करो।

विद्वान् के पक्ष में—जिस पुरुष के अधीन घोड़े, बैल, साड, बाँक गौएं और मेद भी (आहुता) पकड़ पकड़ कर लाये गये और (अवसृष्टास) सधा लिये जाते, अधीन रहकर नाना कार्यों में नियुक्त करने योग्य बना लिये जाते हैं उस (कीलालपे) उत्तम अन्नाहारी या अन्नरक्षक (सोमपृष्ठाय) सौम्य गुण के पोषक (अग्नये) विद्वान् के लिये हृदय में उत्तम विचार रक्खो। अर्थात् पशुओं के सधाने वाले लोगों को भी तुच्छ दृष्टि से न देखो। म० दया०॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥७६॥
ऋ० १० । ६१ । १४ ॥

अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक ! (ते) तेरे (आस्ये) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले बल के निमित्त (हविः) ग्रहण करने योग्य समस्त राष्ट्र (स्रुचि घृतम् इव) स्रुवे में घृत के समान और (चम्वि) यज्ञपात्र में (सोम इव) सोम के समान, अथवा (चम्वि) सेना के ऊपर (सोम) उसके आज्ञापक के समान, अथवा (चम्वि सोम) पृथ्वी पर राजा के समान (अहावि) प्रदान किया, या धरा जाता है वह तू (अस्मे) हम पर (वाजसनिम्) संग्राम द्वारा प्राप्त होने योग्य अथवा बहुत अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (धेहि) दे और हम पर (प्रशस्त सुवीरम्) उत्तम बढ़िया सुस्वभाव के वीर (यशसं) यशस्वी (बृहन्तम्) बड़े पुरुष को (धेहि) स्थापित कर।

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

[८०—६०] एकादशर्चं सूक्तम् । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् ।

गांधारः ॥

भा०—(अश्विनौ) शरीर में प्राण और अपान दोनों (तेजसा) तेज के साथ (चक्षुः) चक्षु इन्द्रिय को (दधतुः) धारण करते हैं। और (सरस्वती) बल को धारण करने वाली चेतना शक्ति (प्राणेन वीर्यम्) प्राण के द्वारा वीर्य को शरीर में धारण करती है। (इन्द्रः) इन्द्र, मुख्य प्राण (वाचा) वाक्-शक्ति के साथ और (बलेन) बल से (इन्द्राय) जीव के लिये (इन्द्रियम्) इन्द्रियगण को (दधौ) धारण करता है। उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र के दो पुरुष या मुख्य अधिकारी (तेजसा) तेजसे जिस प्रकार चक्षु को धारण करते हैं और जिस प्रकार (प्राणेन वीर्यम्) प्राण से बलवीर्य को धारण करते हैं और (वाचा) वाक्शक्ति से (इन्द्र) जीव (इन्द्रियम्) इन्द्रियगणों को धारण करता है। उसी प्रकार (अश्विनौ) दोनों मुख्य अधिकारी दो चक्षुओं के समान (तेजसा) तेज, पराक्रम से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राज्य के (चक्षुः) चक्षु या निरीक्षण के कार्य को धारण करें और (सरस्वती) विद्वत्सभा, (प्राणेन) प्राण के समान जीवनप्रद अन्न और चेतन आदि आदि पदार्थों द्वारा राष्ट्र के (वीर्यम्) वीर्य, बल और पराक्रम को धारण करे। (इन्द्रः) सभापति (वाचा) ज्ञानमय वाणी, व्यवस्था पुस्तक से और सेनापति (वाचा) अपनी आज्ञाकारिणी वाणी से और (बलेन) सेना बल से (इन्द्राय) ऐश्वर्य सम्पन्न राज्य के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दधुः) धारण करें।

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥ ऋ० २ । ४१ । ७ ॥

[८१—८३] गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यव्यवहार में रहनेवाले, (अश्विना) राष्ट्र के व्यापक शक्ति से युक्त ! हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलानेहारे (वर्ती) व्यापोषित मार्ग से चलनेवाले अधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (गोमत्) गौ

आदि पशुओं से सम्पन्न (अश्वादिवत्) अश्वों और अश्वारोहियों से भरपूर, (नृपाय्यम्) और मनुष्यों की रक्षा करनेवाले राज्य को आप दोनों (सु यातम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो।

न यत्परो नान्तर॑ऽआदुधर्षद्वृषण्वसू।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥ ऋ० २ । ४१ । ८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) जलों के वर्षण करनेवाले मेघ और विद्युत् के समान सुखों का वर्षण करनेवाले होकर प्रजाओं को बसानेवाले आप दोनो अधिकारी सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष जनो ! (यत्) जिससे (परः) बाहर का शत्रु और (अन्तर) राजा के भीतर का शत्रु और (दुःशसः) दुःसाध्य (मर्त्य रिपु) शत्रु पुरुष अथवा बुरी अपकीर्ति फैलानेवाला (रिपुः) पापी मर्त्य) पुरुष (न आदधर्षत्) राष्ट्र का और राजा का अपमान और आघात न कर सके वैसे आप राज्य को वश करो।

ता नु ऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥ ऋ० २ । ४१ । ९ ॥

भा०—हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् एवं विशेष आसन पर प्रतिष्ठित (ता) वे आप दोनों (अश्विना) राष्ट्र पर विशेष अधिकार प्राप्त पुरुषो ! आप लोग (न) हमें (पिशङ्गसंदृशम्) सुवर्ण के समान सुन्दर दीखनेवाले (वरिवोविदम्) धन समृद्धि को प्राप्त करानेवाले (रयिम्) राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (आ वोढम्) धारण करो, उसका सञ्चालन करो।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥ ऋ० १ । ३ । १० ॥

[८४–८६] मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०–(पावका) पवित्र करने वाली (वाजेभिः) ऐश्वर्यों और

८३—०वोढमम० इति काण्व० ६ ॥

बलों से (वाजिनीवती) बलयुक्त पुरुषों से बनी सेनाओं और विद्वान् पुरुषों से बनी उप समितियों से युक्त (धियावसुः) बुद्धि और क्रिया व्यापार द्वारा ऐश्वर्यवती अथवा अपने धारण पालन सामर्थ्य से सबको बसानेवाली होकर (यज्ञं) प्रजा पालक यज्ञ को या प्रजापति राजा को (वष्टु) तेजस्वी बनावे।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥ ऋ० १।३।११ ॥

भा०—(सूनृतानाम्) उत्तम सत्य वाणियों की (चोदयित्री) प्रेरणा देनेवाली, आज्ञा करनेवाली, (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धियों को और बुद्धिमान् पुरुषों को (चेतन्ती) ज्ञानवान् करती हुई, (सरस्वती) सरस्वती वेदवाणी जिस प्रकार (यज्ञं दधे) यज्ञ, परमेश्वर को (दधे) धारण करती उसका ज्ञान धारण करती और उसका प्रतिपादन करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (सूनृतानां) उत्तम सत्य सिद्धान्तों, उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को प्रेरित और प्रचारित करती हुई, (सुमतीनां) राष्ट्र के हित के लिये शुभ मतियों, विचारों को (चेतन्ती) प्रकट करती हुई लोगों को चेताती हुई, (यज्ञं) प्रजापति राजा को और राज्य को भी (दधे) धारण करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥ ऋ० १।३।११ ॥

भा०—(सरस्वती) वेदवाणी (केतुना) अपने महान् ज्ञान से (महः अर्णः) बड़े भारी ज्ञान या ज्ञानसागर को (प्र चेतयति) प्रकट करती है। और (विश्वाः धियः) समस्त बुद्धियों, कर्मों कर्तव्यों को (वि राजति) प्रकाशित करती है। उसी प्रकार विद्वत्सभा (केतुना) विज्ञापक ध्वज से (महः अर्णः) बड़ा ज्ञान प्रकट करती है। राष्ट्र के

(विश्वा धिय) समस्त कर्मों का या समस्त (धिय) बुद्धिया, बुद्धिमान् पुरुषा या धारण सामर्थ्यों का (वि राजति) विविध रूपों में प्रकाशित करती है ।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता ऽइमे त्वायव ।
अण्वीभिस्तना पूतास ॥ ८७ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥
(८७–८९) मधुच्छन्द ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री षड्ज ॥

भा०—हे (चित्रभानो) अद्भुत २ ज्ञानो के प्रकाश करनेवाले ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! (इन्द्र) ज्ञानो के द्रष्टा ! सभापते ! राजन् ! (इमे) ये (सुता) समस्त प्राप्त राष्ट्रगत ऐश्वर्य एव अभिषिक्त या पालक राजगण (त्वायव) तुम्ह को प्राप्त हो रहे हैं और व (अण्वीभि) अपने से छोटी प्रजा के द्वारा (तना) अपने विस्तृत गुण कीर्ति द्वारा (पूतास) अभिषेक द्वारा पवित्र हैं ।

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूत. सुतावत ।
उप ब्रह्माणि वाघत ॥ ८८ ॥ ऋ० १ । ३ । ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (धिया) बुद्धि और उत्तम कर्म द्वारा प्ररित (विप्रजूत) विद्वान् मेधावी पुरुषा से शिक्षित होकर (सुतावत.) ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले (वाघत) विद्वान् पुरुषा को (ब्रह्माणि उप) अन्नों अन्य ऐश्वर्यों, वीर्यों और अधिकारों को प्राप्त करने के लिये (उप आ याहि) प्राप्त हो ।

इन्द्रायाहि तूतुजान ऽउप ब्रह्माणि हरिव ।
सुते दधिष्व नश्चन ॥ ८९ ॥ ऋ० १ । ३ । ५ ॥

भा०—हे (हरिव) ज्ञानी पुरुषो और वीर अश्वारोहियों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) राजन् ! तू (तूतुजान) शिप्रकारी, राष्ट्र के समस्त कार्यों को विद्युत् के समान अति शीघ्रता से करने हारा होकर (ब्रह्माणि) समस्त अधिकारों, वीर्यों और ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त कर । (न)

हमारे (सुते) अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में (धनं) भोग्य ऐश्वर्य और धन समृद्धि को (दधिध्व) धारण कर, जिससे प्रजा भूखी न मरे ।

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां सोम्यं मधु ॥ ९० ॥

ऋ० [illegible] । २ । ६ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अश्विनौ) राष्ट्र के मुख्य दो अधिकारी (सजोषसा) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (सरस्वत्या) सरस्वती, विद्वत्सभा के साथ मिलकर (मधु) उत्तम राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पिबताम्) भोग करें । वे और (सुत्रामा) राष्ट्र का उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ, (इन्द्रः) शत्रुनाशक राजा, (वृत्रहा) शत्रु एवं विघ्नकारी घातक या बाधक कार्यों का नाश करके (सोम्यं) ऐश्वर्य एवं राजपद के योग्य (मधु) मधुर अन्नादि से युक्त राष्ट्र का (जुषन्ताम्) भोग करें, या प्रेम से पालन करें ।

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥

इति पूर्वार्धभागः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभित-श्रीमज्जयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये विंशोऽध्यायः ॥

रसवस्वङ्कचन्द्राब्दे कार्तिकेऽसितपक्षके ।
द्वादश्यां मङ्गले शुद्धं यजुषोऽर्धं समाप्यते ॥



॥ अथैकविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥ ऋ० १।२५।१९ ॥

[१,२] शुनःशेप ऋषिः । वरुणः । गायत्री । षड्जः ।

भा०—हे (वरुण) सब द्वारा वरण करने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ (मे) मेरी, मुझ प्रजाजन की (हवम्) स्तुति, आह्वान, पुकार को (श्रुधि) श्रवण कर और (अद्य च) आज और सदा ही हमें (मृडय) सुखी कर। (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ मैं (त्वाम्) तुझ को अपना रक्षक बनाना (आचके) चाहता हूं। ईश्वर और राजा के पक्ष में समान है।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽआयुः प्र मोषीः ॥२॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १८। म० ४९ ॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो ऽअव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥

ऋ० ४।१।४ ॥

[३,४] वामदेव ऋषिः । त्रिष्टुप् धैवतः । अग्निवरुणौ देवते ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नेतः ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे बीच में (विद्वान्) विद्यावान् है। अतः तू (वरुणस्य देवस्य) समस्त शत्रुओं के वारक एवं सर्वश्रेष्ठ, देव विजयशील राजा के द्वारा (हेडः) प्राप्त अनादर एवं उसके प्रति हमसे हुए अनादर या अवज्ञा के भाव को या उसके कोप को (अव यासिसीष्ठाः) दूर कर। तू ही

१—'०मृळय'० इति काण्व० । २—'देवस्य'० इति काण्व० ।

(यजिष्ठ) सब से अधिक पूजा करने योग्य, (वह्नितमः) समस्त कार्य-भार को वहन करने में सब से उत्तम, नेता होने योग्य और (शोशुचानः) और अग्नि के समान स्वयं शुद्ध और अन्यों को शुद्ध पवित्र करने हारा तथा ज्ञान दीप्ति से प्रकाशमान है। तू गुरु या आचार्य के समान शिक्षक होकर (अस्मत्) हम से (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषभावों को (प्र मुमुग्धि) दूर कर।

स त्वं नो ऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो ऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽएधि ॥४॥

ऋ० ४।१।५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! (सः) वह (त्वं) तू (नः) हमारा (ऊती) रक्षण तथा सामर्थ्य से (अवमः) सब से उत्तम रक्षक (नेदिष्ठ) हमारे अति समीप (भव) हो। और (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात काल के (व्युष्टि) प्रकाशित होने पर (नः) हमें (वरुणम्) सबसे वरण करने योग्य राजा या (अव यक्ष्व) संगत करा। और तू (रराणः) उत्तम भेंट पुरस्कार आदि प्रदान करता हुआ (मृडीकम्) सुखकर राजा को (वीहि) प्राप्त हो अथवा (मृडीकम्) सुखकारी, पद, या भोग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर। (नः) हमें (सुहवः) सुख प्रदान करता (एधि) रह। प्रजा अपने में से भी उत्तम पुरुष चुन कर ऐसा अधिकारी नेता बना कर स्वयं भी राज्य में सुख प्राप्त करें।

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥५॥

अथर्व० ७।६।२॥

मरीचिऋषिः। विष्णुः। पैव० ॥

१—ऋ० ४।१।५। अथर्व० ।

भा०—हम लोग, (महीम्) बड़ी, माननीय, (सुव्रतानाम् मातरम्) उत्तम व्रतों, नियमों, कर्तव्य आचरणों को निर्माण करने वाली एवं सदाचारवान् पुरुषों की माता के समान (ऋतस्य) सत्य व्यवस्था धर्म और न्याय के (पत्नीम्) पालन करने वाली (तुविक्षत्राम्) बहुत से क्षत्र बल से युक्त, (अजरन्तीम्) वह भी नाश न होने वाली सदा नूतन २ सभासदों से बनी, (उरूचीम्) विशाल राष्ट्र के शासक रूप से व्यापक (सुशर्माणम्) उत्तम गृह, सभाभवन में विद्यमान उत्तम सुख देने वाली (सुप्रणीतिम्) उत्तम, सुखकारी नीति, राजनैतिक प्रगतियों वाली (अदितिम्) सदा अखण्ड शासन वाली, महासभा को (हुवेम) हम बनावें और उसको स्वीकार करें।

इसी प्रकार जो उत्तम सदाचारी पुरुषों की माता है, (ऋत) अन्न, यज्ञ और जीवन की मालिक है, जो बहुतसे ऐश्वर्य और वीर्यवान् वीरों से सुरक्षित सदा अजर, विस्तृत सुखप्रद, अखण्ड उत्तम नीतियुक्त उस पृथिवी या राष्ट्र को हम (हुवेम) अपनावें।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसंᳬं सुशर्माणमदितिᳬं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावंᳬं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥ ६॥

अथ० ७। ६। ३॥ ऋ० १०। ६३। १०॥

गयप्लात ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिक्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सुत्रामाणम्) उत्तम रीति रक्षा करने वाली, (पृथिवीम्) अति विस्तृत, (द्याम्) ज्ञान प्रकाश से युक्त, (अनेहसम्) गौ के समान नाश न करने योग्य, अथवा क्रोध रहित। (सुशर्माणम्) उत्तम भवन या शरणप्रद साधनों और सुखसाधनों से युक्त, (सुप्रणीतिम्) उत्तम राजा प्रजा की नीति से युक्त, (सु-अरि त्राम्) उत्तम रीति से शत्रुगण से प्रजा की रक्षा करने वाली, (अस्रवन्तीम्) अपना रहस्य शत्रुओं न देने वाली

छिद्र रहित, (अनागसम्) अपराध रहित निर्दोष धर्मानुकूल, (दैवीम्) विद्वानों की बनी हुई (नावम् [इव]) नाव के समान सकल कष्टों से पार उतारने और सबको सन्मार्ग में चलाने वाली (अदितिम्) दूसरों के उपताप आदि के प्रयोगों से अप्रपीडित, एकमत, फूट से रहित राजसभा का या राज्यव्यवस्था का (स्वस्तये) सुख और कल्याण प्राप्त करने के लिये (आरुहेम) आश्रय लें।

नाव के पक्ष में—(सुत्रामाणम्) दुःखों से बचाने वाली, (पृथिवीम्) विस्तृत, (अनेहसम्) निर्दोष, उपद्रव उत्पन्न न होने वाली, (सुशर्माणम्) उत्तम घर उक्त तथा दुःख से बचाने के साधनों वाली, (सुप्रणीतिम्) उत्तम रचना और चाल वाली अथवा उत्तम संचालक प्रबन्ध वाली, (सु अरित्राम्) उत्तम पतवारों वाली, (अनागसम्) निर्दोष, मृत्यु आदि के भय से रहित, (अस्रवन्तीम्) बिना छिद्र की, जल को भीतर आने न देने वाली, (दैवीं नावं) विद्वानों की बनाई नाव को हम (स्वस्तये) सुख वृद्धि के लिये चढ़ें।

'सुत्रामा' इन्द्र का वर्णन पूर्व अध्याय में सौत्रामणी प्रकरण में आ चुका है। यहां उसी प्रजा पालक राजशक्ति एवं विद्वत्सभा का नौका रूप से स्पष्ट चित्र से वर्णन किया गया है यह मन्त्र पृथिवी और पृथ्वी पर भी लगता है।

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्।
शतारित्राꣳ स्वस्तये ॥ ७ ॥

[illegible]

भा०—(अस्रवन्तीम्) जिसमें छेद द्वारा से किसी भी प्रकार बाहर से जल न आने वाला, जल भीतर न रिसने वाला, (अनागसम्) निर्दोष, प्रजा के हित में किये गये धर्मानुकूल कार्यों का करने वाली, (शतारित्राम्) सैकड़ों

से पार जाने के सैकड़ों उपायों से युक्त (सुनावम्) उत्तम मार्ग से प्रेरित करने वाली नौका के समान राजसभा और धर्मसभा का (आरुहेयम्) मैं राजा भी आश्रय लूं।

नौका के पक्ष में—सब मन्त्र में सब विशेषणों को दर्शा दिया गया है। 'नावम्, सुनावम्'—नो नुदन्ति प्रेरयन्तीति नौः। ग्लानुदिभ्यां डौप्रत्यय उणादि०। २। ६४॥ इति उणा० दया०॥

आ नो॑ मित्रावरुणा घृतैर्गव्यू॑तिमुक्षतम्।
मध्वा रजा॑ᳪसि सुक्रतू॥ ८॥　ऋ० ३।६२।१२॥

विश्वामित्र ऋषि। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(मित्रावरुणौ) हे मित्र ! समस्त लोकों को स्नेह से देखने और मृत्यु से बचाने वाले न्यायाधीश ! और हे वरुण ! सबसे वरण, करने योग्य सब को सङ्कटों से वारक, दुष्ट चोरों के वारण करने हारे अधिकारिन् ! तुम दोनों (गव्यूतिम्) मार्ग को दो दो कोस (घृतैः) जलों से और तेजस्वी पुरुषों से (नः) हमारे हित के लिये (आ उक्षतम्) सेचित करो। जिस प्रकार मित्र और वरुण, वायु और मेघ जलों से सेचन करते हैं उसी प्रकार राजा के दो महकमे प्रति दो कोसों पर (घृतैः) जलस्थानों, जनरक्षक पुलिस के सैनिकों और विद्वान् पुरुषों से प्रजाजन को भरदें। अर्थात् प्रति दो कोश में पुलिस की चोकी जल के प्याऊ और पाठशाला हों। और हे (सुक्रतू) उत्तम कर्मों को करने एवं उत्तम प्रज्ञा वालो ! आप इस प्रकार (मध्वा) मधुर ज्ञान, अन्न और बल सुख ऐश्वर्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (सिञ्चतम्) युक्त करो। अथवा—(घृतैः गवि-ऊतिम् आ उक्षतम्) तेजस्वी पुरुषों से पृथिवी पर, प्रजापालन की नीति को फैलाओ। अथवा पृथिवी पर कृषि को सेचन करो।

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन। आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ६ ॥

ऋ० ७ । ६२ । ५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा, मित्र, सबके स्नेही एवं मरण से त्राणकारिन्! और हे (वरुण) दुष्टों के वारक ! तुम दोनों (नः जीवसे) हम प्रजाजनों के जीवन की रक्षा के लिये (बाहवा) अपने बाहुओं को, शत्रुगण या विपत्तों के बाधन, पीड़न करने वाले साधनों को और बाहुओं के समान वीरों को (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ाओ या तुम दोनों बाहुओं के समान आगे बढ़ो । अर्थात् जिस प्रकार शरीर की रक्षा के लिये बाहुएं आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार प्रजा की रक्षा के लिये राष्ट्र की बाहुएं, क्षत्रिय लोग, आगे बढ़ें । और (घृतेन) मेघ जिस प्रकार जल से पृथिवी को सींचता है, उसी प्रकार आप दोनों अधिकारी (नः) हमारे (गव्यूतिम्) राष्ट्र के प्रति दो कोस की भूमि को (घृतेन) जल के समान आनन्द या तेजस्वी विद्वान् और वीर क्षत्रिय गण से (आ उक्षतम्) सर्वत्र सेचन करो । हे (युवानौ) सदा युवाओ ! अथवा सन्धि और विग्रह, मेल और फूट कराने में कुशल पुरुषो ! आप दोनों (जने) समस्त राष्ट्र जन के बीच (मा) मुझ को राजा, आदर रूप से (आ श्रवयतम्) आदेशित करो । और (मे) मेरे (इमा हवा) इन आज्ञाओं को (श्रुतम्) श्रवण करो ।

राजा, मित्र और वरुण दोनों अधिकारियों को अपने समस्त राष्ट्र में प्रति दो कोस में राजा की चौकी, थाना, डाकखाना, धर्मशाला आदि बनाने की आज्ञा दे, प्रजा की रक्षा के लिये बाहुओं के समान वे प्रजा की रक्षा करें, राजा की आज्ञा उद्घोषित करें, उसकी आज्ञा पर ध्यान दें और पालन करें ।

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकᳬं रक्षांᳬसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १० ॥
वाजे-वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽअमृता ऽऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ९ । १६, १८ ॥

समिद्धो ऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्द ऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ १२ ॥

[१२–२२] स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्नयो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नेता, (समिधा समिद्धः) काष्ठ से प्रज्वलित अग्नि के समान (सम् इधा) उत्तम ज्ञान प्रकाश से (सम् इद्धः) खूब प्रज्वलित और (सु सम् इद्धः) सूर्य के समान अत्यन्त देदीप्यमान, तेजस्वी होकर (वरेण्यः) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष (गायत्री) समस्त जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाली पृथिवी के समान (छन्दः) समस्त जनों का आच्छादन या रक्षा करने वाला पुरुष, (त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय और आत्मा इन तीनों की रक्षा करने वाला, (गौः) विद्वान् पुरुष, ये सब इन्द्र या राजा के ऐश्वर्यमय राज्य में (इन्द्रियं) ऐश्वर्य और ... के बल और (वयः) बल, ज्ञान, दीर्घ आयु को (दधुः) धारण, स्थापन करें ।

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्द ऽइन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

भा०—(तनूनपात्) शरीरों को न गिरने देने वाले प्राण के समान (शुचिव्रतः) शुद्ध धर्माचरण वाला आत्मवान् पुरुष और (तनूपाः) शरीरों अर्थात् पुत्रादि की रक्षा करने वाला (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री और

१०—ऋ० ७ । ३८ । ७ । ११ ऋ० ७ । ३८ । ८ ॥ । सायरा० ।

विद्वान् सभा और (उष्णिहा छन्दः) उष्णिहा छन्द, और (दित्यवाट् गौः) दित्यवाट् २४ वर्ष पूर्ण युवा राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के वाक्य के और (वयः) ज्ञान आयु प्राण वल को (दधुः) धारण करें। अर्थात् (उष्णिहा छन्द) २८ अक्षरों के समान २८ वर्षों तक ज्ञान बल वाय का सम्पादन करने वाला पुरुष और दित्यवाट् गौ अर्थात् २४ वर्ष का वृषभ जिस प्रकार (इन्द्रिय) हृष्ट पुष्ट वाय और बल का धारण करता है उसी प्रकार के लोग राष्ट्र में राजा के पुरुष और बल की वृद्धि करें।

१ उष्णिहा छन्द —उष्णिक् छन्दः उष्णात्। स्निह्यतेर्वा स्यादिति यास्कः। निरु० ७। ४ ॥ आयुर्वा उष्णिक्। ए० १। ५ ॥ चक्षुरुष्णिक्। श० १०। ३। १। १ ॥ प्राणा वा उष्णिक्। श० २। १०। १४ ॥

दित्यवाड् गौ —द्विवर्ष पशुः इति महीधरः। अथवा दित्य गवराणा धान्यं वहति इति दित्यवाट्।

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम्।
अनड्वान् वय इन्द्रियं पङ्क्तिश्छन्दो दधुः ॥ १४ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि द्वारा (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् अग्नि के समान (इन्द्राग्नी) वायु और सूर्यों द्वारा प्रकाशमान (अग्नि) ज्ञानवान् नेता पुरुष और (अनड्वान्) शकट रथ के ढोने वाला (वयः) वय, दिव्य गुणों से युक्त, तेजस्वी (नाम) पूर्व का वायु के समान अन्य सब राजा लोग (पङ्क्तिश्छन्द) पङ्क्ति छन्द, अर्थात् १२ वर्ष तक इन्द्रियों और बल का रक्षक ब्रह्मचारी और (इन्द्रियं) यथा वय का बल पांच इन्द्रियों का सदृश

जिस प्रकार (इन्द्रिय) प्राण बल, और (वय) दीर्घ, जीवन को धारण करते हैं वैसे ही लोग राष्ट्र में ऐश्वर्य बल और दीर्घ जीवन को धारण करें।

अनुष्टुप् छन्द—द्वात्रिंशदक्षरा अनुष्टुप्। कौ० २६। १॥ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप्। ता० ४। ८। ६॥

पञ्चाविर्गौः। सार्धद्विवर्षः। पञ्चमासात्मकः कालोऽवि।

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः।
बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः॥ १५॥

भा०—(पूषण्वान्) पृथिवी का धारण करने वाला (अग्निः) सूर्य जिस प्रकार (सु बर्हिः) उत्तम रीति से आकाश में व्याप्त है वैसे (पूषण्वान्) पुष्टिकारक भूमि और अन्न से युक्त अथवा पोषक जनों से युक्त (अग्नि) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष (सु बर्हि) उत्तम प्रजा से युक्त होता है। (स्तीर्णबर्हि) वह पुरुष यज्ञ में वेदि पर कुशाओं को बिछाने वाले यज्ञकर्त्ता के समान पृथिवी पर अपनी प्रजाओं को फैला देता है। वह (अमर्त्य) अमर हो जाता है। वह सदा मानो प्रजा रूप से जीता रहता है। इसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी राजा (सु बर्हि) उत्तम प्रजा वाला, (पूषण्वान्) पोषक अन्न सम्पत्ति और भूमिया और प्रजाओं के पोषक अधिकारियों से युक्त हो। वह (स्तीर्णबर्हि) शत्रु के नाशकारी क्षात्रबल को फैला कर बैठने वाला (अमर्त्य) फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। (बृहती छन्द) छत्तीस अक्षरों के बृहती छन्द के समान ३६ वर्षों तक के ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष और (त्रिवत्सः गौ) तीन वर्ष के हृष्टपुष्ट बैल के समान युवा पुरुष, ये सब (इन्द्रियम्) ब्रह्मचर्य बल और दीर्घ जीवन को धारण करते हैं। उनके समान प्रजागण भी राष्ट्र में बल वीर्य और दीर्घ जीवन धारण करें।

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १६ ॥

भा०—(देवीः) तेजवाली स्त्रियां, (दुरः) प्रकाश वाले बड़े २ द्वार और (महीः) बड़ी विस्तृत (दिशः) दिशाओं के समान (मही दिशः) पूजनीय, गुरुवासिनी और (ब्रह्मा) चतुर्वेदों का विद्वान् (देवः) ज्ञान का प्रकाशक, (बृहस्पतिः) बड़ी वाणी का पालक, अथवा महान् राष्ट्रपति देव, राजा और (पंक्ति छन्दः) चालीस अक्षरों वाले पंक्ति छन्द के समान ४० वर्ष तक का ब्रह्मचारी पुरुष, और (तुर्यवाड् गौः) चतुर्थ वर्ष का बैल अथवा (तुर्यवाड्) चतुर्थ आश्रम का सेवी परिव्राट् और (गौः) आदित्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ये सब (इन्द्रियं) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन धारण करते हैं, वे ही राष्ट्र में भी ऐश्वर्य तेजबल और दीर्घ जीवन धारण करावें ।

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः ।
त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १७ ॥

भा०—(यह्वी) बड़ी, पूजनीय, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाली, (उषे) उषा और सायं वेलाओं के समान पूज्य, उत्तम ज्ञान प्रकाशक, पाप और अज्ञान का दहन करने में समर्थ उपदेशिका और अध्यापिका, अथवा धर्मसभा और विद्वत्सभा और (विश्वे देवाः) समस्त ज्ञानी और विजयी पुरुष, (अमर्त्याः) दिव्य पदार्थ पृथिवी सूर्य के समान स्थिर रहने वाले, अमर, सुरक्षित एवं नित्य हैं । वे और (त्रिष्टुप् छन्दः) ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् के समान ४४ वर्षों तक के ब्रह्मचर्यवान् पुरुष और (पष्ठवाड् गौः) पीठ से भार उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र का कार्यभार उठाने उदार ऊंचे कद के पुरुष व

सब (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्रिय) बल, वीर्य, ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ जीवन, अन्न और ज्ञान को (दधुः) स्वयं धारण करें और धारण करावें।

> दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा।
> जगती छन्द ऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥ १८ ॥

भा०—(दैव्या) देवों, शरीरस्थ प्राणों में व्यापक, (होतारौ) सब को अपने भीतर ग्रहण करने वाले, (भिषजा) वैद्यों के समान शरीर के समस्त रोग विकारों को दूर करने वाले, (इन्द्रेण सयुजौ) इन्द्र आत्मा के साथ सदा संयुक्त और (युजा) सदा स्वयं साथ रहने वाले प्राण अपान और उनही के समान (दैव्या होतारा) देवों, विद्वानों के हितकारी, (भिषजा) शरीर और मन एवं समाज शरीर के दोषों को भी सद्वैद्य के समान दूर करने वाले (इन्द्रेण) राजा के साथ (सयुजौ) सहयोग रखने वाले, (युजा) सदा परस्पर संयुक्त और (जगती छन्दः) ४८ अक्षर के जगती छन्द के समान ४८ वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालक पति और (अनड्वान् गौः) शकट को उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र के शकट को उठाने वाला वीर बलवान् पुरुष, ये सभी (इन्द्रियम्) धन ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ आयु और ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं और ऐश्वर्यमय राष्ट्र को भी धारण कराते हैं।

> तिस्र ऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः।
> विराट् छन्द ऽइहेन्द्रिय धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ १९ ॥

भा०—(इडा सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती और भारती नामक, (तिस्रः) तीनों समितियें और (मरुतः) वायुओं के समान तीव्र वेग वाली या देश देशान्तर में गमन करने वाली अथवा—शत्रु मारक वीर सेनारूप (विशः) प्रजाएं और (विराट् छन्दः) ४० अक्षरों के विराट्

छन्द के अनुसार ४० वर्षों का अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष और (धेनु गौः) दुधार गौ व सब राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ जीवन को धारण करते हैं व उनको भी धारण करावें।

त्वष्टा तुरीपो ऽअद्भुत ऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना।
द्विपदा छन्द ऽइन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

भा०—(त्वष्टा) शिल्पी, नाना यन्त्र और पदार्थों का रूप बनाने वाला त्वष्टा या कान्तिमती विद्युत् (अद्भुत) आश्चर्यजनक रूप में (तुरीपः) शीघ्रता से स्थानान्तर में जाने में समर्थ है। इसी प्रकार (इन्द्राग्नी) सेनापति प्राण और अपान के बल वाला हो (पुष्टिवर्धना) राष्ट्र की पुष्टि को बढ़ाते हैं। (द्विपदा छन्दः) द्विपदा ऋचा के समान दो पैरों से प्रतिष्ठित होकर चलने वाला मानव सृष्टि और (उक्षा गौः) वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ व सब राष्ट्र में (इन्द्रियम् वयः) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन को (दधुः) धारण करावें।

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम्।
ककुप् छन्द ऽइहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २१ ॥

भा०—(वनस्पतिः) वन का पालक या वट आदि महावृक्ष के समान (शमिता) शान्तिकर, पापों और शत्रुओं का दमन करने वाला (सविता) और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (भगम्) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ और (ककुप् छन्दः) ककुप् २८ वर्णों का छन्द, तदनुसार २८ वर्ष के ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष अथवा ककुप् के समान श्रेष्ठ मुख्य नेता, (वशा) पृथ्वी या राष्ट्र को वश करने वाली शक्ति और (वेहत्) दुष्टों के गर्भस्थों को नाश करने हारी क्षिप्र उपायों से नाश करने वाला राजा की नीति ये सब पृथ्वी में इस राष्ट्र और राजा में

(वय) दीर्घ जीवन, बल, और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को स्वयं धारण करें और (दधुः) धारण करावें।

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत्।
अतिछन्दा ऽइन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—(वरुण) सब से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ राजा, (सुक्षत्र) उत्तम धन ऐश्वर्य और राजबल से युक्त होकर (स्वाहा) उत्तम उपदेश, शिक्षा, सत् रीति नीति से (यज्ञम्) सुसंगत राष्ट्र या प्रजापति के पदको (भेषज) शरीर में से रोग को दूर करने वाली ओषधि के समान राष्ट्र के दोष दूर करने में समर्थ उपाय (करत्) करता है। जिस प्रकार (अतिछन्दा) और अति छन्द के योग्य से कहे जाने वाले छन्द, अति धृति, अत्यष्टि अतिशक्वरी और अतिजगती, ये चारों छन्द अपने विशुद्ध नाम धृति, अष्टि, शक्वरी और जगती इनसे ४, ४ अक्षर अधिक होते हैं उसी प्रकार अन्यों से सामर्थ्य में अधिक पुरुष, (बृहत् ऋषभ गौ) और बड़े विशाल बलीवर्द के समान बहुत अधिक भार उठाने में समर्थ महा पुरुष ये सब (वय) दीर्घ जीवन, बल और (इन्द्रिय) वीर्य, इन्द्रियसामर्थ्य और ऐश्वर्य का स्वयं धारण करते हैं वे ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र में उसके स्वामी राजा में भी इन पदार्थों को धारण करावें।

वसन्तेन ऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

(२३–२८) लिंगोक्ता देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वसवः देवाः) वसु नामक देव, विद्वान् पुरुष, (वसन्तेन ऋतुना त्रिवृता) त्रिवृत् स्तोम और (रथन्तरेण) रथन्तर साम से और तेज, पराक्रम से (इन्द्रे) इन्द्र राजा और राष्ट्र में या निमित्त (हविः वयः दधुः) अन्न और बल, दीर्घजीवन को धारण कराते और स्वयं धारण करते हैं।

ग्रीष्मेण ऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २४ ॥

भा०—(रुद्राः देवाः) रुद्र नामक देव, विद्वान् गण, (ग्रीष्मेण ऋतुना) ग्रीष्म ऋतु से (पञ्चदशे) पञ्चदश नामक स्तोम के आधार पर (बृहता) बृहत् नामक साम से (यशसा) और यश से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में (बलं वयः हविः दधुः) बल, दीर्घायु और अन्नादि ऐश्वर्य धारण करते और कराते हैं ।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

भा०—(आदित्याः) 'आदित्य' नामक विद्वान् गण, (वर्षाभिः ऋतुना) वर्षा ऋतु से (सप्तदशे स्तोमे) सप्तदशस्तोम के आधार पर (वैरूपेण) वैरूप नाम से (विशौजसा) प्रजा और पराक्रम से (इन्द्रे हविः वयः दधुः) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में अन्न और दीर्घ जीवन को धारण कराते और करते हैं ।

शारदेन ऽऋतुना देवा ऽएकविꣳश ऽऋभवं स्तुताः ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २६ ॥

भा०—(शारदेन ऋतुना) शरद् ऋतु से, (देवाः ऋभवः) ऋभु नामक विद्वान् गण, (एकविंशे) एकविंश स्तोम के आधार पर (वैराजेन) वैराज साम से और (श्रिया) लक्ष्मी से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में (श्रियं) शोभा, लक्ष्मी, ऐश्वर्य (हविः) अन्न और (वयः) दीर्घ जीवन को (दधुः) धारण कराते और स्वयं धारण करते हैं ।

हेमन्तेन ऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतं स्तुताः ।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २७ ॥

भा०—(मरुतः देवाः) मरुत् नामक देव, विद्वान् पुरुष, (हेमन्तेन ऋतुना) हेमन्त ऋतु से, (त्रिणवे स्तुताः) त्रिणव नामक स्तोम में स्तुत होकर

सम्पत्तियों के दाते हैं। ये उग्र पराक्रम से ही राज्य और राष्ट्र का बल बढ़ाते हैं।

२. सेना, प्रजापति राजा का दूसरा स्वरूप है, उसका प्रधान सेना ग्रीष्म ऋतु के समान है। सूर्य जिस प्रकार प्रखर होकर भूभागों को तपा कर उनसे जल खींच लेता है उसी प्रकार अपने तेज से बलपूर्वक अधीन किये भूपतियों से राजा करों द्वारा धन ग्रहण करता है। इस कार्य में निपुण पुरुष 'रुद्र' रूप हैं। उनका दलवर नाम मार गण होते हैं। वे भी शरीर में भूख प्यास लगाने वाले तथा प्राणों के समान होने से रुद्र हैं। उनका पञ्चदश स्तोम है। अर्थात् जिस प्रकार शरीर में दश और पांच प्राण हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनके १५ अधिकारियों की स्थिति है। उनका 'दश' अर्थात् दस और स्थाति पद में बृहत् साम के समान महान् है। ये राज्य में बल, धन और दीर्घायु धारण करते हैं।

३. वर्षा ऋतु प्रजापति का तीसरा रूप है। उसका कार्य वर्षा के मेघ के समान प्रजा या पृथिवी से ग्रहण किये धन का प्रजा के हित के लिये पुनः प्रजा पर वर्षा देना है। यह कार्य 'आदित्य' नामक अधिकारियों का है। उनकी स्थिति सूर्य में किरणों के समान है। उनका कार्य 'सप्तदश' स्तोम से किया जाता है अर्थात् दश इन्द्रिय, पांच प्राण और आत्मा, मन इन १० के समान ये राष्ट्र शरीर में व्याप्त रहते हैं और कार्य करते हैं। उनका बल पराक्रम नाना रूप से विविध प्रकारों से प्रकाशित होने से रूप में वैराज साम के समान एवं प्रजा का समस्त ऐश्वर्य प्राप्त होने से ये प्रजा के द्वारा राष्ट्र का सार और बल बना लेते हैं।

४. प्रजापति का चतुर्थ रूप शरद् ऋतु है। शरद् ऋतु वर्षा के मेघों को छिन्न भिन्न कर देती है, आकाश को स्वच्छ करना, जलों को निर्मल करना, अन्न और ओषधियों की वृद्धि करना और प्रजाओं का रक्षण करना है

उसी प्रकार राजा प्रजा के ऊपर ... या ... दुःखों को दूर करता सकटों को हटाना अन्नादि सम्पदाओं का ... मर्ग उत्सवादि से प्रसन्न करता है। इस कार्य में नियुक्त अधिकारी ... हैं। ... समय से प्रकाशित होना ज्ञान विज्ञान कौशल से समस्त प्रजा का सुखी करना सकटों का दूर करना उनका कर्त्तव्य है। ... ऋतु कहाते हैं इस वर्ग में यथाशय वचन् क्रिया वैज्ञानिक आदि हैं। ये एकविंश स्तोम प्रस्तुत या वर्णित है। ... २१ ... स्तोम के समान एवं शरीर में हाथ पावों की दस २ अंगुली एवं २१ वां आत्मा इनके समान नवे २ पदार्थों को प्राप्त करते हैं। और राष्ट्र को उत्तम मार्गों में चलाते और नाना सुख भोग प्रदान करते हैं। विविध एश्वर्यों से प्रकाशित होने से उनकी तुलना वैराज साम के साथ है। वे ... शोभा ... कला कौशल से राज्य और राजा के राजकार्य में भी ऐश्वर्य और शोभा करते और ... एश्वर्य और दीर्घजीवन प्रदान करते हैं।

५ प्रजापति का पांचवां स्वरूप हेमन्त ऋतु है। हेमन्त ऋतु जिस प्रकार अपने तीव्र शीत से समस्त प्राणियों को कष्ट देता ... को असह्य शीतल कर देता है नदियों को सकोचित कर देता है। उसी प्रकार दुष्ट जनों को तीव्र दण्डों से दण्डित करता है उनको सकुचित करता है, प्रजाओं को वश करता है। उसके तीव्र शीतल वायुओं के समान मरुद्गण देव हैं जो दुष्टों का दमन करने वाले वायु के समान वेगवान् सैनिकबल हैं। उनका स्तोम त्रिनव है अर्थात् शरीर में हाथ पाव के २० अंगुलियों पांच प्राण मन और आत्मा के समान राष्ट्र के २७ अंग हैं। यज्ञ में शाक्वर साम के समान उनका भी स्वरूप शक्वर ... शक्तिमती सेनाएं हैं वे सैन्य बल से ही शक्तिमती होने से शक्वरी कहाती है। वे शत्रु को पराजय करने का परम सामर्थ्य सह ... को और ... और राष्ट्र के दीर्घजीवन को उत्पन्न करते हैं।

६. प्रजापति का ६ ठा रूप शिशिर ऋतु है। शिशिर जिस प्रकार सब ऋतु के अन्त में सब रस लेकर करता है और पत्र और सर्व पुष्प गिराने के निमित्त रस उत्पन्न करता है उसी प्रकार प्रजा में सर्वांग मारक, सर्वांग शक्ति, सर्वांग ऐश्वर्य संपादित करने वाला राजा शिशिर के समान है। उसके अधीन कार्यकर्ता 'अमृत देव' हैं। वे प्रजा में [illegible] के समान अमर जीवन प्रदान करते हैं। उनकी स्थिति यज्ञ में प्रतिष्ठित होम के समान है, अर्थात् जिस प्रकार शरीर में पञ्च स्थूल भूत, पंचतन्मात्रा, पञ्च-कर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, चार अन्तःकरण, जीव, शिर, २ हाथ, २ आँखें, १ उदर, २ [illegible], ये अंग हैं। इसी प्रकार वे भी राष्ट्र-शरीर के स्थूल, सूक्ष्म विभागों के घटक, सहायक और अंग हैं। वे राष्ट्र के रूप से ऐश्वर्यवान् होने से 'देवाः' कहाते हैं। वे राष्ट्र में [illegible] के समान ऐश्वर्यवान् हैं। वे राष्ट्र में 'धन' [illegible], [illegible], [illegible] प्राप्त कराते हैं।

सभी गुण और अधिकारी राजा ही के प्रतिनिधि हैं। और राजा ही समस्त ऐश्वर्यवान् आत्मा के समान है। इसलिये गुण भेद से 'वसन्त' आदि रूप भी [illegible] राजा के भिन्न २ विभागों के प्रधान अधिकारियों के ही ये नाम हैं। उनके भिन्न २ कर्तव्य वर्ष में ऋतुओं के अनुसार, ब्रह्माण्ड में सूर्य की किरणों के और [illegible] के अनुसार, [illegible] में [illegible] के अनुसार, शरीर में अंगों के अनुसार जानने चाहिये। इन दृष्टान्तों से स्थूल रूप से, और [illegible] में [illegible] शब्दों और लिंगों से सूक्ष्म रूप से राजा के उन स्वरूपों के और उसके अधिकारियों के कर्त्तव्यों का वर्णन जानना चाहिये। [illegible], [illegible], [illegible] अधिकार आदि शब्द और शब्द [illegible] ही अपने [illegible] अधिकार ऐश्वर्य को प्रदर्शित करते हैं। यही वेद ने उपदेश किया है। इस विषय में विशेष संगतियाँ देखने के लिये देखो। अ० १० । म० १०, १४ ॥ अ० १ । १४ ॥ अ० ११ । २८, १०, ११ ॥

वसन्तादि ऋतुओं के विशेष रहस्य एवं तुलना के लिये देखो अ० १३। म० ४४—५८ ॥ तथा अ० १३। म० २५ ॥ तथा अ० १४। मं० ६, १५, २७, ५७ ॥ वसु आदि के कर्त्तव्यों के विषय में अ० १४। मं० २५ ॥ स्तोमों के स्वरूप देखो अ० १४। २८—३१ ॥

होता यक्षत्सुमिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

(२९—४१) एता द्वादश आप्रिय । अश्विसरस्वतीन्द्राः निगेक्ता देवताः ।
निचृदष्टि । मध्यम. ॥

भा०— (१) (होता समिधा अग्निम् इडस्पदे अश्विनौ, इन्द्रं सरस्वती यक्षत्) यज्ञ में (होता) होता नामक विद्वान् ऋत्विक् जिस प्रकार (समिधा) काष्ठ से (अग्निम्) अग्नि को प्रज्वलित करता है उसी प्रकार (होता) राष्ट्र को पदाधिकारियों के प्रदान करने और उनको सत्कारपूर्वक स्वीकार करने वाला पुरुष (इडस्पद) इस पृथ्वी के प्रधान आसन पर (अश्विनौ) विद्याओं और राष्ट्र मार्गों के अच्छे ज्ञाता, सूर्य और चंद, और शरीर में प्राण और अपान के समान दीपनपाचक प्रधान सचिव रूप दो अधिकारियों को (इंद्रम्) शत्रुनाशकारी, ऐश्वर्यवान्, बलवान् सेनापति को और (सरस्वतीम्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की बनी विद्वत्सभा को (यक्षत्) नियुक्त करे और उचित स्थानों पर संगत करे ।

(२) (अजो धूम्रो न गो, धूमैः कुवलैः भेषजम्) (अज) बकरा बकरी जाति का पशु और गन्धपायन, अजमोद नामक ओषधि जिस प्रकार अपने उग्रगन्ध से नाना रोगों को (भेषजम्) दूर करता है और (धूम्र) तीव्र धूम जिस प्रकार रोगकारी अर्थों को नष्ट करता है और (गोधूमैः) गेहूं के अन्नों से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है और (कुवलैः) बेर

आदि ब्याधियों से जिस प्रकार पौधों को अन्य पशुओं से खाये जाने से बचाया जाता है उसी प्रकार (बलः) शत्रुओं पर भाला बरछा शस्त्रों के फेंकने में कुशल और योद्धा पुरुष (न) और (भूयः) उनको बड़े बल, साहस धीरता, पराक्रम और युद्ध नीति से दंड देने और पुनः हराने वाला पुरुष (गोधूमैः) पृथ्वी के देशों को कम्पाने में समर्थ वीर पुरुषों और सवारों से और (कुवलैः) अति घोर गर्जनकारी अथवा शत्रु की भूमि को घेर लेने वाले सेना दलों सहित (भेषजम्) शत्रु तथा प्रजा-पीड़कों को दूर करने का उचित उपाय प्राप्त होता है ।

(३) (शष्पं मधु न तेज इन्द्रियम्) (शष्पैः) शष्प, नवोद्भूत धान और उसकी जाति के धान्यों में जिस प्रकार (मधु) मधु स्वाद अन्न (न) और (तेजः) तेज, प्राणधन और (इन्द्रियम्) शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार राष्ट्र में (शष्पैः) शत्रु के मारने में समर्थ वीर पुरुषों और घोर घातक अस्त्रों से शस्त्र आदि साधनों से राष्ट्र और राजा (मधु) शत्रुओं को पीड़न में समर्थ (तेजः) पराक्रम और (इन्द्रियम्) इन्द्र, विद्युत् और सूर्य का सा राजोचित ऐश्वर्य और पराक्रम उत्पन्न होता है ।

(४) (पयः सोम परिस्रुता) (परिस्रुता) उत्तम रीति से स्रुत रस से जिस प्रकार (पयः) दुग्ध आदि पुष्टि प्रद अन्न और (सोम) परिस्रवणक्रिया से प्राप्त सोम, ओषधियों का रस जिस प्रकार सौम्य सुख-कारी हो जाता है उसी प्रकार (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (पयः) राष्ट्र के पोषणकारी और (सोम) ऐश्वर्यवान् अभिषिक्त राजा दोनों ही राष्ट्र में बलवान् और तेजस्वी हो जाते हैं ।

(५) (पूर्णं मधु मधुमत्) हे पूर्वोक्त अश्वि, इन्द्र, सरस्वती, सोम आदि पदाधिकारियो एवं विद्वज्जन के सत्संगगण ! आप लोग मनुष्य और उस

की उन्नति और पुष्टि के लिये घी दुग्ध और अन्न ग्रहण करता है उसी प्रकार आप सब लोग (घृत) तेज और (मधु) बल, अन्न और ज्ञान को राष्ट्र की उन्नति और अभ्युदय के लिये (व्यन्तु) प्राप्त करें।

(६) (आज्यस्य होत यज) हे (होत) होता जन ! तू जिस प्रकार यज्ञ में घृत की आहुति देता है उसी प्रकार हे (होत) राष्ट्र के पदों को प्रदान करने हारे विद्वन् ! तू (आज्यस्य) वीर्य, विजयोपयोगी सामर्थ्य और बलको (यज) प्रदान कर या प्राप्त करा।

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पय सोम. परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

अश्व्यादि । षड्ज ।

भा०—(१) (तनूनपात् होता सरस्वतीम् अश्विना इन्द्राय यक्षत्) (तनूनपात्) शरीर के न्यून अश का पुष्ट कर उसको पालन और पूर्ण करने में समर्थ (होता) राष्ट्र क पदाधिकारों का प्रदाता, विद्वान् (सरस्वतीम्) ज्ञानमय वाणी के उपदेष्टा गुरु के समान उत्तम ज्ञानमय विद्वत्सभा का और (अश्विनौ) विद्याओं में पारगत दो मुख्य विद्वान् पुरुषों को (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र की उन्नति के लिये (यक्षत्) नियुक्त करे।

(२) (पथा मधुमता इन्द्राय वीर्यं हरन्) जिस प्रकार (मधुमता) जल वाले, जल से हरे भरे या नदी के मार्ग से जाने वाला सुगमता से और सुख से चला जाता है इसी प्रकार राष्ट्र के सञ्चालकों को (मधुमता) मधुर, उत्तम फलों से युक्त (पथा) नीति मार्ग से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा को (वीर्यं) बल (हरन्) प्राप्त करावें।

(३) (अविः मेष न भेषजम्) शीतकाल में जिस प्रकार शीत निवारण के लिए भेड़ भेषज है अर्थात् ऊन द्वारा उसके उपाय है उसी

प्रकार राष्ट्र पर आने वाले बाधक कारणों का उपाय (मेष न) मेढ़े के समान प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाला, शत्रुजन पर शस्त्रों का और प्रजा पर सुख साधनों का वर्षण करने वाला (वृषि) रक्षक का होना ही (भेषजम्) बाधाओं को दूर करने का उत्तम उपाय है।

(४) (बदरैः उपवाकाभिः तोक्मभिः भेषजम् पयः) जिस प्रकार (बदरैः) बेर जैसी झाड़ियों से बाड़ बना कर उद्यानों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र पर आने वाले शत्रुओं को (बदरैः=बधैः) हिंसाकारी शस्त्रों का प्रहार करने वाले सेना दलों से (पयः) उपाय करे। राष्ट्र का मूर्ख जनता को (उपवाकाभिः) गुरुओं के दीक्षा द्वारा उपदेश क्रियाओं से शिक्षित करे। (तोक्मभिः) व्यवसायी उपायों से राष्ट्र के भीतरी दुष्टों का उपाय करे।

(५) (पयः सोमः परिस्रुता । घृतं मधु व्यन्तु । आज्यस्य होतः यज) इत्यादि पूर्ववत् ॥

होता यक्षन्नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वा-ज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

धृतिः । षड्जः ।

भा०—(१) (होता नराशंसं नग्नहुं पतिं न सुरया पयः) (न) जिस प्रकार (नराशंस) समस्त पुरुषों से प्रशंसनीय (नग्नहुं) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाले (पतिं) पति को (सुरया) उत्तम रमणी के साथ संगत कर दिया जाता है उसी प्रकार (होता) राष्ट्र के पदाधिकारियों का नियोजक विद्वान् पुरुष (सुरया) उत्तम रमणीय, राजलक्ष्मी से (नराशंस) समस्त श्रेष्ठ पुरुषों से प्रस्तुत, स्तुति योग्य, (नग्नहुम्)

दरिद्रों के पोषक, दुष्ट पुरुषों के विनाशक, (पतिम्) पालक, राष्ट्रपति को (यक्षत्) सगत करे ।

(२) (भेषज मेष सरस्वती भिषग्) पति पत्नी के परस्पर विवाहित होजाने पर यदि प्रजोत्पत्ति में कोई बाधक कारण हो तो जिस प्रकार (मेष) वीर्य सेचन करने में वीर्यपुष्टिकर औषध ही (भेषजम्) रोगनाशक होता है और (सरस्वती भिषग्) उत्तम ज्ञानमय वाणी या उसका धारक विद्वान् ही भिषक्, चिकित्सक है । अथवा विवाहित होजाने पर भी परस्पर मिलने में (मेष) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष ही उत्तम प्रजोत्पत्ति का (भेषजम्) उपाय है और (सरस्वती) स्त्री ही (भिषक्= अभि षक्) प्रजोत्पत्ति करने वाली, उससे सगत होती है । उसी प्रकार राष्ट्रपति बनाने में आये बाधक कारणों को दूर करने में (मेष भेषजम्) प्रतिद्वन्द्वी से टक्कर लेने वाले मेढे के समान वीर प्रतिस्पर्द्धी पुरुष ही (भेषजम्) उपाय है । और (सरस्वती) वेदवाणी विद्वत्सभा ही (भिषग्) उस उपाय को बतलाने वाले वैद्य के समान है ।

(३) (रथो न चन्द्री) दम्पति के लिये जिस प्रकार मार्ग पार करने का साधन रथ है उसी प्रकार राष्ट्र लक्ष्मी और राष्ट्रपति को नीति मार्ग पर चलने का उत्तम साधन (चन्द्री) सुवर्ण आदि धन वाला कोशवान् पुरुष ही है ।

(४) (अश्विनो वपा इन्द्रस्य वीर्यम्) जिस प्रकार (अश्विनो) स्त्री पुरुषों की (वीर्यम्) वीर्य ही (वपा) सन्तानोत्पत्ति की शक्ति है, उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र का (वीर्यम्) बल ही (अश्विनो) प्रधान पदपर नियुक्त महामात्यों का (वपा) शत्रु-उच्छेदन करने की शक्ति है ।

(५) (बर्हिः उपवाकाभि ० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षदि॒डेडि॒तऽआ॒जुह्वा॑न॒ꣳ सर॑स्वती॒मिन्द्रं॒ बले॑न व॒र्धय॑न्नृष॒भेण॑

सरस्वतीमिन्द्रियमबिभ्रदिन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोम परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

विराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ।

भा०—(१) (होता सरस्वतीम् भानुमान् इन्द्रं यजत्) पूर्व वर्णित पदाधिकारियों को नियुक्त करने हारा विद्वान् 'होता' (ईडित) स्तुत्य आदर सत्कार प्राप्त करके (सरस्वतीम्) उत्तम विद्वानों से पूर्ण विद्वत् सभा या वेदवाणी की व्यवस्था का (भानुमान्) प्रदर्शन करता हुआ, या स्वीकार करता हुआ (इन्द्रं) धन सम्पदा से (इन्द्राय) सम्पन्न राष्ट्र को (यजत्) संयुक्त करे।

(२) (बलेन इन्द्र वृषभेण गवा इन्द्रिय वर्धयन्) बल से, सेना बल से 'इन्द्र' राजा को (वर्धयन्) अधिक शक्तिशाली करता हुआ, और (वृषभेण) सांड और (गवा) गौ इन जाति के पशुओं से (इन्द्रियम्) इन्द्र अर्थात् राजा के ऐश्वर्य को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ।

(३) (यवैः कर्कन्धुभिः मधु लाजैः न मासरं भेषजं यजत्) (यवैः) जौ आदि धान्यों से (मधु) शत्रु के अन्न और उनके समान रोगनाशक, (यवैः) शत्रुनाशक पुरुषों से राष्ट्र के (मधु) अन्न को उसी प्रकार (कर्कन्धुभिः) कांटेदार वृक्षों से (मधु) बेर के समान मधुर फल एवं हिंसाकारी शस्त्रों के धारक वीर पुरुषों से (मधु) शत्रु के नाशक बल को और (लाजैः न) लाजाओं, खीलों के समान शुभ्रवर्ण से (मासरम्) प्रति-मास किये जाने वाले वेतन को (भेषजम्) उपादान, या और अन्य पदार्थों से (यजत्) सिद्ध करे।

(४) (पयः सोम० इत्यादि) पूर्ववत्।

[illegible]

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषज पयः सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृ'ष्टि । मध्यम ॥

भा०—(होता) उक्त होता नाम पदाधिकारी पुरुषों का नियोक्ता विद्वान् 'होता' नाना प्रकार के दोषों को दूर करने के साधनों और उपायों को (यक्षत्) प्राप्त करे । (१) (बर्हि ऊर्णम्रदा भिषक्) ऊन जिस प्रकार कोमल होकर शरीर का शीत से रक्षा करता है उसी प्रकार (बर्हि) प्रजा भी (ऊर्णम्रदा) कोमल होकर भी राजा और राष्ट्र की कम्बल के समान रक्षाकारी होकर (भिषक्) उसकी त्रुटियों को दूर करती है । (२) (नासत्या अश्विना भिषजा) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे, सदा सत्यधर्मा पूर्वोक्त दो अधिकारी भी वैद्यों के समान राष्ट्र के भीतर विद्यमान असद्व्यवहारों को दूर करते हैं । (अश्वा) वेगवती घोड़ी के समान तीव्र बुद्धि वाली अथवा (अश्वा) हृदयग्राहिणी और (शिशुमती) उत्तम बालकों से युक्त (धेनु) गौ के समान मधुर रस देने वाली विदुषी स्त्री राजा और राष्ट्र के दोषों को (भिषग्) दूर करती है । और (सरस्वती) सरस्वती विदुषी स्त्री और विद्वत्सभा भी (भिषग्) नाना दोषों को दूर करते हैं ये सब भी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और राजा के लिये (भेषजम्) ओषधि रसों के समान नाना उपाय (दुहे) प्रदान करती है । (पय सोम० इत्यादि । पूर्ववत् ।

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश ऽइन्द्रो न रोदसी दुघे । दुह धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता यक्षत्) उक्त होता नामक विद्वान् अग्नि नामक अधिकारी और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को नियुक्त करे। (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा (अश्विनौ) उक्त दोनों राजनीति कुशल अधिकारियों द्वारा (दिशः न) दिशाओं के समान (व्यचस्वतीः) विशाल अवकाशवाला और (व्यचस्वतीः) अति विस्तृत (दुरः) द्वारों और (दुरः) द्वारों के समान (दिशः) अवकाश वाली विस्तृत दिशाओं का और (रोदसी न) सूर्य चन्द्र या वायु और सूर्य द्वारा आकाश और पृथ्वी जिस प्रकार खुली जाती हैं उनके पूर्ण उत्तमोत्तम पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं, उसी प्रकार विद्वान् नेता और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों द्वारा राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों या राजप्रजावर्ग दोनों को (दुघे) दोहता है, उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करता है। (सरस्वती) सरस्वती नाम विद्वत्सभा (इन्द्राय) राजा के लिये (पयः) दूध को (धेनु) दुधार गौ के समान (भेषजं) सर्व रोगहर औषध, (शुक्रं) शरीर में बलकारी, वीर्य और (ज्योतिः) प्रकाश और (इन्द्रियं) ऐश्वर्य उत्पन्न करे। इसी प्रकार (अश्विनौ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान के समान दोनों अधिकारी (इन्द्राय) शरीर के अधिष्ठाता, इन्द्र, आत्मा के समान राष्ट्र के स्वामी के लिये (भेषजं शुक्रं न) सर्व रोगहर औषध और वीर्य के समान पुष्ट और (ज्योतिः) जीवन बल और (इन्द्रियम्) राज्य सामर्थ्य को (दुहे) उत्पन्न करें। (सोम परिस्रुता०) इत्यादि पूर्ववत्।

होता यक्षत् सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना सं जाते सरस्वत्या। त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

भुरिगष्टि॰ । षड्जः ॥

भा०—(होता) होता नामक विद्वान् (यत्तत्) राष्ट्र की सुव्यवस्था के अधिकारियों को योग्यपद पर नियुक्त करे । (सुपेशसा) उत्तम रूप वाले उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न, (उषे) प्रातःसायं की सन्ध्याओं के समान, या सूर्य चन्द्र के समान (अश्विना) अश्वि नामक विद्वान् दोनों अधिकारी (दिवानक्तम्) दिन और रात (सरस्वत्या) सरस्वती नामक विद्वत्सभा से (सम् अञ्जाते) एक मत करके रहते हैं । और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (त्विषिम्) कान्ति या तेज को (भेषजम्) रोगहारी रस के समान स्थापन करते हैं । तब वह (श्येन न) श्येन या बाज जिस प्रकार बड़े वेग से अपने निर्बल पक्षियों पर आक्रमण करता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने (रजसा) कान्ति से या तेजस्वी लोक समूह से निर्बल शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने में समर्थ हो जाता है । तब वह (हृदा) हृदय से या हरणकारी आक्रमण से और (श्रिया) श्री—शोभा और ऐश्वर्य से (न) भी (मासरं) भात के समान या अपने मासिक वेतन के समान अपने अधीन शत्रु को भोग करता है । (पयः सोम० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षुद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः । शूषᳲ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं । पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३६ ॥

निचृदष्टि । मध्यमः ॥

भा०—(होता) पदाधिकारियों का नियोक्ता विद्वान् (दैव्या होतारौ) देवों, प्रजा के विद्वान् दानशील पुरुषों के हितकारी दो (होतारौ) प्रधान वशकारी अधिकारी पुरुषों को और (अश्विना) अधिकार, और राजनीति विद्या में व्यापक, (भिषजा) शरीर के रोगों के चिकित्सकों के समान राष्ट्र दोषों के सुधारक पुरुषों को और (इन्द्रं न) शत्रुहन्ता पुरुष को भी (यक्षत्) नियुक्त करे । (भिषक् भेषजैः न) वैद्य

जिस प्रकार अपने औषधों द्वारा शरीर में बल उत्पन्न करता है उसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम विद्वत्सभा (दिवा नक्तं) दिन रात (जागृवि) जागती हुई, सावधान रह कर, (सोमेन) सोम के बल पुष्टिकारक अ (शुष्म) बल, सामर्थ्य और (इन्द्रिय) इन्द्र, राजा के उचित मान, ऐश्वर्य को भी (दुह) उत्पन्न करती है। (पय सोम०) इत्यादि पूर्ववत्।

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती। वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

ऋषि । पूर्ववत् ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त पदाधिकारियों का नियोजक व्यक्ति 'होता' हो (तिस्रः देवीः) तीन सभाओं को (यक्षत्) व्यवस्थित करे। (त्रिधातवः) शरीर की तीन धारक धातु वात पित्त, कफ जिस प्रकार (भेषजं न) वैद्य से दी गई औषधि को धारण कर लेते हैं उसी प्रकार (अपः) व तीन (अपसः) कर्मों के करने वाले प्रधान सभाओं के प्रधान होकर (इन्द्रे) राजा में (रूपं) रुचि रूप धारण कराती हैं। (अश्विनौ) इनमें भी दो मुख्य अधिकारी अश्वि नामक हैं व दोनों और (इडा) इडा नाम भूमि की प्रबन्धकर्त्री सभा (इन्द्रे) राजा में (हिरण्ययम् दुहे) सुवर्ण आदि धातुमय ऐश्वर्य का धारण करती हैं। भारती और भारती नाम कला कौशल की नियामक सभा भी और (अश्विना) दो अधिकारियों को प्राप्त होकर (इन्द्रे रूपं हिरण्ययम् दुहे) राजा में ऐश्वर्य का प्रदान करती है। (सरस्वती) सरस्वती नाम विद्वत्सभा (वाचा) वाक् या अपनी विद्या, वाणी व्यवस्था और आज्ञा द्वारा (इन्द्राय मह इन्द्रियम् दुहे) राजा के प्रति आदर योग्य बड़े भारी सामर्थ्य का प्रदान करती है। (पय सोम०) इत्यादि पूर्ववत्।

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषज

न सरस्वतीमोजो न जतिरिन्द्रिय वृको न रमसो भिषग् यश सुरया भेषज८ श्रिया न मासर् पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य हातर्यज ॥ ३८ ॥

भुरिक कृति । निषाद ॥

भा०—(होता) उचित पदों पर उचित व्यक्तियों का नियुक्त करने वाला अधिकारी होता (सुरतसम्) उत्तम वीर्यवान् (ऋषभम्) सचने म समर्थ वृषभ के समान उत्तम भूमि में उत्तम बीज वपन करने में समर्थ एवं मेघ के समान उत्तम जलरूप उत्पादक सामर्थ्य से युक्त (नर्यापसम्) लोकोपकारी कर्म करने वाले (त्वष्टारम्) शिल्पी एनओ नीयर और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को और (अश्विनौ) दो मुख्य अधिकारियों का (भिषजम्) सब दोषों को दूर करने वाले वैद्य के समान (सरस्वताम्) उत्तम ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों से युक्त विद्वत्सभा का (यजत्) राष्ट्र में नियुक्त करे । वे सब लोग क्रम से (ओज पराक्रम (न) और (जूति) वेग से चुस्ती से कार्य सचालन (इन्द्रियम्) राजा के उचित ऐश्वर्य और इन्द्रियों के तीव्र सामर्थ्य का उत्पन्न करते हैं । और (वृक न) जिस प्रकार भेड़िया छुपकर अपने से निर्बल जीव को ताकता है और बलबर पर वेग से जा पड़ता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने ओज और शीघ्रकारिता से उसी प्रकार अपने निर्बल शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ होता है । और (रमस भिषग) अति कार्य कुशल वैद्य जिस प्रकार अपनी चुस्ती से (सुरया) उचित ओषधि से या सुरा के योग से (भेषन) रोगहारी ओषधि को देता है और (यश) धन और सुख्याति प्राप्त करता है और मरणासन्न रोगी को भी बचा लेता है उसी प्रकार (सुरया) उत्तम राज्यलक्ष्मी से या उत्तम सुव्यवस्था से राजा राष्ट्र शरीर में उठी अव्यवस्था का उपाय करता है और (यश) यश ऐश्वर्य और ख्याति प्राप्त करता है और (श्रिया) अपने ऐश्वर्य से,

यज्ञे बल में युक्त पुरुष को (स्वाहा) उत्तम वेतन वृत्ति, भूमि एवं
धन, मान द्वारा (यक्षत्) नियुक्त करे । (अग्निम् न) अग्नि
के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष को (भेषजम्) रोग को दूर करने वाले
औषध के समान (स्वाहा) उत्तम आदर से (यक्षत्) नियुक्त करे ।
(सोमम् इन्द्रियम्) सोम राजा पद को भी (इन्द्रियम्) इन्द्र शत्रु
नाशक बलधारी के पुरुष के समान है । (स्वाहा) उत्तम मान आदर
से (यक्षत्) नियुक्त करे । (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता (सुत्रामाणम्) उत्तम
प्रजा के रक्षक (सवितारम्) सब के प्रेरक (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ
सब के वरण योग्य पुरुष को (भिषजां पतिम्) सब रोगों के चिकित्सकों
ज्ञानवान् पुरुषों के भी पालक बनाकर उसको (स्वाहा) उत्तम आदर
करके उचित रीति से (यक्षत्) नियुक्त करे । (श्रियम् पयः न) श्री,
मनोहारी पय के समान, (वनस्पतिं) महावृक्ष के समान सर्वाश्रय तथा
ऐश्वर्यवान् पुरुष को (भेषजम्) उपद्रवों के शान्त करने वाले औषध के
समान जानकर (स्वाहा) आदर से (यक्षत्) रक्खे । (देवाः)
देव, विद्वान् लोग सभी (आज्यपाः) समान के विद्युदादि पदों के
पालक हों । (जुषाणः) आदरपूर्वक नियुक्त (अग्निः) ज्ञानी विद्वान्
सेना ही (भेषजम्) औषध के समान राष्ट्र शरीर के सब अंगों को स्वस्थ,
स्वस्थ रखता है । (यज होतः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेतां हविर्होतर्यज ।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज ।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होत-
र्यज ॥ ४१ ॥

२८ अश्विनौ देव । [illegible] ॥

भा०—(होता) यहाँ पर योग्य अधिकारियों का नियोजक 'होता'
नामक अधिकारी पुरुष (अश्विनौ यक्षत्) अश्वि नामक दो अधिक[illegible]

पुरुषों को नियुक्त करे। वे दोनों (छागस्य) शत्रु और प्रजा के पीड़कों के उच्छेदन करने में समर्थ पुरुष की (वपाया) उच्छेदन करने वाली शक्ति और (मेदस) हिंसन या दण्ड देने के सामर्थ्य को (जुषेताम्) प्राप्त करें। हे (होत) होतः ! तू उन दोनों को (हविः) उचित अन्न, वीर्य और अधिकार (यज) प्रदान कर। इसी प्रकार (होता) होता नामक विद्वान् (सरस्वतीम्) ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा को (यक्षत्) नियुक्त करे। वह (मेषस्य) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान्गण के (वपाया) परस्पर खण्डन मण्डन की शक्ति और (मेदस) परस्पर स्नेह या परपक्ष के खण्डन की शक्ति का (जुषेताम्) सेवन या अभ्यास करें। (होता इन्द्रम् यक्षत्) होता 'इन्द्र' नामक शत्रुनाशक सेनापति को नियुक्त करे। वह (ऋषभस्य) सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च पुरुष के (वपाया) दूसरे की यशःकीर्त्ति के उच्छेदन करने की शक्ति और (मेदस) स्पर्धा में दूसरे के नाशक बल वीर्य को (जुषताम्) प्राप्त करे। (होत) हे होत ! तू इस अधिकारी को (हविः यज) मान, अन्न, वेतन, अधिकार प्रदान कर।

गृहस्थ पक्षमें—(अश्विनौ) स्त्री पुरुषों को होता यज्ञ करावे। परस्पर नियुक्त करे, वे (छागस्य) बकरे की सी उत्पादक शक्ति और परस्पर के स्नेह को करें। (सरस्वती) विदुषी स्त्री, वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के (वपायाः) बीजवपन शक्ति और स्नेह का लाभ करे। इन्द्र ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऋषभस्य) श्रेष्ठ पुरुष के (वपायाः) ज्ञान और ऐश्वर्य और श्रेष्ठ पुरुष के समान शिष्यों और पुत्रों को स्नेह से अपने समान बनाने और देखने की प्रेममयी शक्ति को प्राप्त करे। हे (होत) विद्वन् ! तू उन तीनों स्त्री पुरुष विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री और श्रेष्ठ आचार्य को (हविः यज) अन्न आदि प्रदान कर।

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रᳪ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳪ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(होता) योग्य पुरुषों को योग्य अधिकारों का प्रदाता विद्वान् पुरुष (अश्विनौ सरस्वतीम्) विद्या और राज्य-कार्यों में समर्थ प्रकार कुशल दो पुरुषों को और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को, और (इन्द्र सुत्रामाणम्) उत्तम रीति से राज्य के पालन करनेहारे इन्द्र, राजा को (यक्षत्) आदरपूर्वक योग्य अधिकार प्रदान करे। (इमे सोमाः) ये राज्य ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान्, राज्य पदाधिकारी जन (सुरामाणः) उत्तम राज्यपद्धति को प्राप्त होकर (छागैः) शत्रुनाशक, (मेषैः) विद्या और बल में प्रतिस्पर्धा वाले (ऋषभैः) और प्रजा में प्रतिष्ठित उत्तम पुरुषों द्वारा (सुताः) अभिषिक्त होकर, (शष्पैः) शत्रुओं को हिंसाकारी अस्त्रों, (तोक्मभिः) शत्रु के उखाड़नेहारे महारथों और (लाजैः) विशेष दीप्तिजनक पदार्थों से (महस्वन्तः) बड़े आदरवाले, आदर और अधिकार को प्राप्त, (मदाः) तृप्ति कर उनके चित्तों को संतोष जनक (मासरेण) प्रतिमास दिये जाने वाले वेतन पुरस्कार आदि या अन्न आदि योग्य सामग्री से (परिष्कृताः) अलंकृत (शुक्राः) शुद्ध आचरणवान्, (पयस्वन्तः) पुष्टिकारक अन्न, दुग्ध एवं पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न, अथवा वीर्यवान्, (अमृताः) अमर, अमरणशील दीर्घायु (प्रस्थिताः) उत्तम पद पर स्थित हैं। हे ऐश्वर्यवान्, विद्वान्, सौम्य पुरुषो! (वः) तुम (मधुश्चुतः) अन्न को प्रदान करने वाले (ते) उन सोमों का (अश्विनौ) दोनों

प्रधान पुरुष, (सरस्वती) विद्वन् सभा और (सुत्रामा वृत्रहा) उत्तम पालक, शत्रुनाशक (इन्द्र) इन्द्र राजा, ये सब (जुषन्ताम्) प्रेम और आदर से प्राप्त करें। और (सोम्य मधु) सोम्य=राष्ट्र के हितकारी ऐश्वर्य या ज्ञान को (पिबन्तु) उत्तम रीति से सुनें प्राप्त करें। और (मदन्तु) तृप्त और सन्तुष्ट हों। और (व्यन्तु) उसको ग्रहण करें। हे (होत) विद्वन् होत: तू उनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

[1]होता यक्षदश्विनौ छागस्य [2]हविष आत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करतऽएवाश्विना जुषेतां हविर्होतर्यज ॥ ४२ ॥

(१) याजुषी पङ्क्तिः । पञ्चमः । (२) उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता) पदाधिकारों का प्रदाता (अश्विनौ) व्यापक अधिकारों वाले दो मुख्य अधिकारियों को (यक्षत्) नियुक्त करे। और वे दोनों (छागस्य) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले राष्ट्र के (हविषः) उपादान योग्य अन्न आदि कर को (आ अत्ताम्) प्राप्त करें। (अद्य) अब, नित्य (मध्यतः) राष्ट्र के बीच में से (मेदः) शत्रु के बल को नाश करने वाला सेना बल (उद्भृतम्) प्राप्त किया जाय। उक्त दोनों अधिकारी (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के हाथ में आजाने से पूर्व और (पौरुषेय्याः गृभः पुरा) लोगों के पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करलेने के पूर्व ही (नूनं) निश्चय से (घस्ताम्) वे उसको लेलें। कैसे अन्नों को लें सो बतलाते हैं? दोनों अधिकारी (घासे अज्राणां) खाने में जिनका रस नष्ट न हुआ हो, जिनको भोजन के निमित्त प्राप्त किया जा सके, ऐसे (यवसप्रथमानाम्) यव, गोहूं आदि जाति के अन्नों में भी सब से

उत्तम कोटि के (सुमनस्यमानाम्) उत्तम रीति से सुखी और आनन्द देने वाले, (नमस्क्रियमाणाम्) निरन्तर स्तुति नाम उच्चाधिकारियों द्वारा प्राप्त करने योग्य अथवा उनके निमित्त लेने योग्य, (अधिश्रयणानाम्) सूर्य रूप अग्नि से उत्तम रीति से परिपक्व, अथवा अग्नि और ज्ञानी पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से परीक्षा करके लिये गये (पोषणवर्धनानाम्) आहार व्यवहार द्वारा पुष्टि करने वाले, (पार्थेन) राष्ट्र के पालक पद के योग्य देशों से, (धान्विन) मरु के देशों से, (निनामेन) अति नीचे-स्थान् या विस्तृत या विशेष रूप से व्यवहृत देशों से और (उपागता:) जो देश राजा के विपरीत फिर उठते हैं उन देशों से भी अर्थात् (अतः राष्ट्र) राष्ट्र के प्रत्येक भाग से (अवरुन्धाम्) प्राप्त किये, करों को (अश्विनी) उक्त दोनों 'अश्विनामक' अधिकारीगण (नूनम्) अवश्य ग्रहण करें और (भुञ्जाम्) उनको सेवन करें। अथवा (काल एव गुरेनाम्) उस रूप से ही सेवा करें। हे (होतः) होतः! तू (हविः) अन्न आदि प्राप्त पद को (यज) प्रदान कर।

इसी प्रकार, अश्विनामक व्यापक अधिकार वाले अधिकारी गण (प्राण-दः) तृष्णा = प्रेम न करने वाले (हविष) राष्ट्र से ग्रहण करने योग्य सेना बल का (पाथसाम्) प्राप्त करें। वह सेना बल कहां से प्राप्त करें? (सेद.) वह शत्रुनाशक एवं बलकारी प्रजा का बल भी (मध्यत उद् भृतम्) राष्ट्र के बीच में से उठाया जाय, प्राप्त किया जाय। कब? (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के वश में चले जाने के पहले ही अर्थात्, जब प्रजा में राजा के शत्रुरूप प्रजा के बलवान् दल को राजा के विपरीत बिगाड़ने की इच्छा पहले हो प्रजा के बीच में से बलवान् प्रजा के अंग को शक्ति शालक अधिकारी अपना सेना और साम्राज्य कार्यों में लगावें। और कब? (पुरा पौरुषेय्याः गृभ) व स्त्र अपने विशेष पुरुषों, अधार्मिक अधीन एवं साथ लगे दे निपात, विरोध उत्पादन को उसके अपना स्वत

पुरुषार्थ करके वे कोई अधिकार या बल पकड़लें इससे भी पूर्व उनको राजकार्य में लगा लिया जाय। और वे दोनों अधिकारी (नून घासाम्) अवश्य ही इस अंश को लेही लें, उपेक्षा न करें। राष्ट्र-बल के और सेना के निमित्त जिन प्रजाजनों को लिया जाय वे किस प्रकार के हों ? (घासे) अन्न या राज से भोजन-वृत्ति प्राप्त करलेने पर (अज्राणाम्) शत्रु से कभी पराजित न होनेवाले, अथवा अन्न प्राप्त करने पर या अन्नद्वारा कभी शरीर में जीर्ण न होनेवाले, हृष्ट पुष्ट, (यवस-प्रथमानाम्) शत्रुओं को नाश करने में सबसे श्रेष्ठ, अथवा सबसे उत्तम यव आदि प्राप्त करने वाले, (सुमत्-क्षराणाम्) उत्तम हर्ष आनन्द के सेचन करनेवाले, सदा सुप्रसन्न, स्वामी की सदा प्रसन्नता के उत्पादक, स्वामी के सेवक, (शत रुद्रियाणाम्) सैकड़ों दुष्टों को रुलानेवाले, अथवा वीर सेनापतियों के अधीन, अथवा सेनापति पद के योग्य, (पीवोपवसनानाम्) स्थूल, मजबूत, पक्की पोशाक, कवच आदि पहनने वाले, (पार्श्वतः) पासों से, (श्रोणितः) कमर से, (शितामत) गुह्यांग से और (उत्सादतः) उखड़नेवाले, निर्बल (अङ्गाद् अङ्गात् अवत्तानाम्) प्रत्येक अंग अंग पर सुबद्ध अर्थात् छाती पर कसी पोशाक, कमर में पेटी और गुह्यांग में लंगोट बांधने वाले, 'उत्साद' अर्थात् विनाश योग्य, या ढीले प्रत्येक अंग को पेटी कवच आदि से बांधनेवाले, कसे कसाये वीर पुरुषों को (करतः एव) अवश्य प्राप्त करें। और (अश्विनौ) विद्या और अधिकार वाले जन उनको (जुषेताम्) प्रेम से स्वीकार करें। (होतः) हे होतः ! अधिकार दातः ! तू (हविः यज) उनको अन्न और अधिकार, वृत्ति और पद प्रदान कर।

अध्यात्म मे—होता, प्राणापान का साधक, प्राणापान को वश करनेहारा (अश्विनौ) प्राण और अपान दोनों को वश करे। वे दोनों (छागस्य) अन्न संवर्द्धेता, आत्मा के (हविषः) दान को (आत्ताम्) प्राप्त करें। (मेदः) बल पूर्वक प्राण को (अभ्यतः) अपने

शरीर के बीच में से (उद्भृतम्) उठाया जाय। वे प्राण और अपान, अपने प्राप्त सूक्ष्म अंशों को (द्वेषोभ्यः पुरा, पौरुषेय्याः गृभः पुरा) अप्रीति-जनक, बाधक पदार्थों, रोगों और पुरुष देह पर आनेवाली विपत्तियों के द्वारा उन अंशों के नष्ट होने के पहले ही, (नूनं घस्ताम्) देह के उन अंशों को अवश्य ग्रहण करें, प्राप्त करें। वे पुष्ट अन्न कैसे हों ? (अज्राणाम्) प्रकाश करने में कभी नष्ट न होनेवाले, सदा बलवान्, (यवसप्रथमानाम्) विविध अभिमत, उचित अन्न के ग्रहण और हानि-कारक अन्न के त्याग में श्रेष्ठ, (सुमत्क्षराणाम्) उत्तम हर्षजनक, (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों प्राणों के स्वरूप में प्रकट, (अग्निष्वात्तानाम्) जठराग्नि द्वारा उत्तम रीति से सुसज्जित, (पीवोपवसनानाम्) पुष्टिकारी आवरण में सुरक्षित, (पार्श्वतः) पांसों से, (श्रोणितः) कटि भाग से, (शितामतः) गुदाङ्ग से और (उत्सादतः अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानाम्) शरीर मल आदि के प्रत्येक अंग अंग से उन प्राणों के सूक्ष्म अंशों को (करत एव) वे प्राण और अपान बिना हानि के ही (जुषेताम्) सम्पादन करें। (होतः यज) हे साधक ! तू ! प्राण की अग्नि में और अपान की अग्नि में हवि को प्रदान कर। अर्थात् इसी विधि से प्राणायाम का अभ्यास कर।

इस मन्त्र को उवट और महीधर ने पशु के क्लोम, कलेजा, प्लीहा, गुदा आदि अंगों से मांस काट २ कर अग्नि देवताओं के निमित्त आहुति करने परक अर्थ किया है। सो असमञ्जस है। वस्तुतः इसमें प्राणायाम प्रवर्त्तक करके अधिकारी रोगों का निवृत्त करने और योगाभ्यास के निमित्त प्रतिदिन के अभ्यास में, प्राणायाम द्वारा शरीर को पुष्ट करने के नियमों का उल्लेख किया है।

(१) '[illegible]'—[illegible] । [illegible] इति दया० उवटादि० । [illegible]

उणादिसूत्रम् । १ । १२४ ॥ छो छेदने । दिवादि । छोगुग् ह्रस्वश्च इति कद् प्रत्यये गुगागमोह्रस्वश्च उणादि० १ । १०४ ॥ छ्यति छिनत्ति छगल-द्वाग वर्करो वा इति दया० उणादि० । 'अज'—न जायते इत्यज । अजति गच्छति, व्याप्नोति इत्यज । अथ य स कपाले रसो लिप्त आसीदेष सोऽग्रज । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥ ग्रह्म वा अज श० ७ । ५ । २ । २१ ॥ प्रजापतिं वां एष यदजपभ । श० २ । २ । ३ । २४ ॥

'मेद'—मिद मेद मेधा हिंसनयो । भ्वादि । मेदो वा मेघ । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥ मेधाय अन्नायेत्येतत् । श० ७१ । २ । ३२ ॥ त मेध (देवा) खनन्त इवान्वीपुस्तमन्वविन्दन् ताविमौ व्रीहियवौ । मेधो वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । १२ । १ ॥

'अग्राणा'—यैरजितं स्वेच्छया, यान्यजराणि वा इत्युवट ।

[१]होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य [२]हविषऽआवयद्द्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्य पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तन्न घासेऽअज्राणां यवसप्रथमाना᳘ सुमत्क्षराणा᳘शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वत श्रोणित शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेव᳘ सरस्वती जुषता᳘ हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

(१) याजुषी त्रिष्टुप । धैवत ॥ (२) स्वराड उत्कृति । षड्ज ॥

भा०—(होता) अधिकार प्रदाता अधिकारी (सरस्वतीम्) पूर्वोक्त विद्वत्सभा को (यक्षत्) सयोजित करे । वह (मेषस्य) ज्ञान और बलमें प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान् के (हवि) ग्रहण करने योग्य ज्ञान बल को (आवयत्) प्राप्त करें । (मध्यत मेद उद्भृतम्) विद्वानों के बीच में से मेधा, ज्ञानवती वाणी का बल उत्पन्न होता है । वह भी पूर्वोक्त रीति से ही (पुरा द्वेषोभ्य , पुरा पौरुषेय्या गृभ) शत्रुओं के हाथ में जाने और उनके अपने उद्यमों में लगने से पहले ही (घस्तत् नून) उनको ग्रपराय

प्राप्त करावे। (घस्ते घासे) खसादि भूमि घासे पर कर्म अर्थात् न होवे वाले, सब विद्यादी, (यवसप्रथमानाम्) यव से प्रथम अन्न प्राप्त करने वाले (सुमत्क्षराणाम्) उत्तम प्राण उत्पन्न करने वाले, (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों प्राण रुद्रियों को देने वाले (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निवत् आचार्य द्वारा सुशिक्षित, (पीवोपवसनानाम्) स्थूलता से निवास करने वाले, (पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः उत्सादतः अङ्गादङ्गात् अवत्तानाम्) देह के समस्त भागों से प्राप्त, अथवा पार्श्व, कमर, [illegible], और सब अंग के भागों भागों से [illegible], अर्थात् [illegible] पुरुषों को (करत्) सिद्ध करे। (इन्द्रः एवम् जुषताम्) विद्वान् सभा इस प्रकार राष्ट्र के कार्य को स्वीकार करे। हे (होतः हविः यज) विद्वन् ! तू अधिकार और वेतनादि प्रदान कर।

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

[illegible] ॥ [illegible] ॥

भा०—(होता इन्द्रं यक्षत्) पूर्वोक्त अधिकारवान् पुरुष इन्द्र [illegible] राजा को नियुक्त करे। वह इन्द्र [illegible] (ऋषभस्य) श्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट पुरुष के (हविषः) ग्रहण योग्य [illegible] भूमि को (आवयत्) प्राप्त करे। ([illegible]) पूर्ववत्।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य

हुविषः प्रिया धामा॑नि यत्रेन्द्र॑स्यऽ ऋषुभस्य॑ हुविषं प्रिया धामा॑नि यत्राग्ने प्रिया धामा॑नि यत्र सोम॑स्य प्रिया धामा॑नि यत्रेन्द्र॑स्य सुत्राम्णः प्रिया धामा॑नि यत्र॑ सवितुः प्रिया धामा॑नि यत्र॒ वरु॑णस्य प्रिया धामा॑नि यत्र वन॒स्पते॑ प्रिया पाथा॑ᳬसि यत्र॑ दे॒वाना॑माज्य॒पानां॑ प्रिया धामा॑नि यत्राग्नेर्होतुं प्रिया धामा॑नि तत्रै॒तान् प्र॒स्तु॒त्ये॑वोप॒स्तु॒त्ये॑वोपाव॑स्रक्ष॒द्रभी॑यसऽ इव कृ॒त्वी कर॑द्दे॒वं दे॒वो वन॒स्पति॑र्जु॒षता॑ᳬ हुविर्होत॒र्यज॑ ॥ ४६ ॥

भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः ॥

भा०—(होता) योग्य पदाधिकारों का दाता 'होता' नामक विद्वान्, (वनस्पतिम्) वनस्पति, महावृक्ष के समान अपने आश्रितों के पालक बड़े उच्च पदाधिकारी को (यक्षत्) नियुक्त करे। और जिस प्रकार (पिष्टतमया) अत्यन्त कूट पीस कर बनाये महान २ सूतों से बनी और (रभिष्ठया) और खूब दृढ़ता से बाधने वाली, मज़बूत, (रशनया) रस्सी से पशु को बाधते हैं, उसी प्रकार उस मुख्य प्रजापालक सर्वाश्रय राजा को भी खूब (पिष्टतमया) अधिक पिसी या अति सुविचार और विवेक और तर्कद्वारा निर्धारित और (रभिष्ठया) अति दृढ़ता से बाधने वाली (रशनया) अतिव्यापक राजनियमव्यवस्था से राजा और अधीन पदाधिकारियों को (हि अभि अधित) निश्चय से बाधे। उनको कहा नियुक्त करे ? (यत्र) जिस स्थान पर (अश्विनोः छागस्य) पूर्वोक्त व्यापक, राष्ट्र के अधिकारी मुख्य दो पुरुषों के अधीन दुष्टों के छेदन करने वाले शूर पुरुष को (हविषः) देने योग्य पदाधिकार (प्रियाणि) अति प्रिय, उसके मन के अनुकूल, हितकर, उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले (धामानि) स्थान, या पद हों उनपर। और (यत्र सरस्वत्याः) जहां सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ऊपर (मेषस्य) नियुक्त अतिविद्वान्, ज्ञानी पुरुष के (प्रिया धामानि) मनोनुकूल पद हों,

और जब (इन्द्रस्य ऋषभस्य) ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष सभापति के (प्रिया धामानि) मनोऽनुकूल पद हों, और (यत्र अग्नेः) जहां अग्नि पावक, विद्युत् आकर्षण आदि के अधीन (प्रिया धामानि) उनके मन के अनुकूल पद हों, इसी प्रकार जब, (सोमस्य) सोम, सर्व ओषधि राजा, के (सुत्राम्ण इन्द्रस्य) उत्तम पालक, शत्रुनाशक इन्द्र के, (सवितुः) सर्वप्रेरक, सब उत्पादक सविता के (वरुणस्य) सब कर्मों के धारक, दुष्टों के नाशक, सब के वरणीय पुरुष के, (वनस्पतेः) वट आदि के समान प्रजा के आश्रयरूप पुरुष के, और (यत्र) जहां (आज्यपानाम्) विजय साधन शस्त्रों के पालक, (देवानाम्) विजयशील पुरुषों के और (यत्र अग्नेः होतुः) जहां सब विद्वानों के प्रकाशक, सब को पदाधिकारों के प्रदाता होता नामक अधिकारी के (प्रिया धामानि) उन २ अधिकारियों के मनोऽनुकूल पद और (प्रिया पाथांसि) प्रिय, अन्नादि द्रव्य, या पालन करने योग्य ऐसा स्थान हों (तत्र) उन २ स्थानों पर (एतान्) इन २ नाना पदाधिकार योग्य २ पुरुषों को (प्रस्तुत्य इव) स्वयं पूछ २ कर, सब के समक्ष आदर २ पूर्वक वर्णन करा कर उन को प्रस्तुत कर २ के, या प्रस्ताव करके और (उपस्तुत्य इव) मानो उनके सम्बन्ध में उत्तम परिचय करा कर, या उनका समर्थन करके (उप अव अस्रक्षत्) उन २ मुख्य पदाधिकारियों के अधीन स्थापित करे । और उनको भी (रभीयसः इव) बड़े विक्रम से समर्थ, एवं कार्यकुशल (कृत्वी) बना कर स्वयं (वनस्पतिः) आश्रय वृक्ष के समान सर्वाश्रयदाता, वनस्पति नामक पद पर स्थित मुख्य पुरुष (करत्) उनको राष्ट्र में नियुक्त करे । (एवं) इस प्रकार (देवः वनस्पतिः) विजिगीषु राजा, या सबको अधिकार देनेवाला, (वनस्पतिः) सर्वाश्रय, मुख्य पदाधिकारी (हविः जुषताम्) ग्रहण करने योग्य पद और राष्ट्र को स्वीकार करे । हे (होतः यज) होतः ! तू उसको यह पद प्रदान कर ।

किसी व्यक्ति को कोई पदाधिकार या सभासद् पद प्रदान करने के पूर्व उसका परिचय और गुणस्तुति आवश्यक है। उसी को वेद 'प्रस्तुत्य, उपस्तुत्य' कहता है। प्रथम 'प्रस्ताव' हो उसके पश्चात् 'उपस्ताव' या समर्थन हो।

[1]होता यक्षदग्नि स्विष्टकृतम् [2]अयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्यया-डिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथांस्ययाड् देवानामाज्य-पानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्या ऽइषः कृणोतु सो ऽअध्वरा जातवेदा जुषता-ᳪहविर्होतर्यज ॥ ४७ ॥

१ भुरिगाकृतिः । (२) आकृतिः । पञ्चमः ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त अधिकार प्रदाता विद्वान् पुरुष (स्विष्टकृतम्) स्विष्टकृत, राज्यरूप सुव्यवस्थित राष्ट्र के संचालन की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाले और सर्वाश्रय सभापति, (अग्निम्) अग्रणी तेजस्वी, ज्ञानी, विद्वान् पुरुष को भी (यक्षत्) आदर से नियुक्त करे। वह (अग्नि) नेता, क्षात्र बलका नायक पुरुष भी (अश्विनो) उक्त अश्विनाम पदाधिकारी जनों के (छागस्य हविषः) शत्रु नाशक साधन के (प्रिया धामानि) अनुकूल पदों को (अयट्) सुव्यवस्थित करे। वह (सरस्वत्याः मेषस्य हविषः) सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ज्ञान प्रतिस्पर्द्धी नायक के (प्रिया धामानि) मनोनीत पदों को सुसंगत करे। वह (इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः) इन्द्र पद पर बैठे, सर्व श्रेष्ठ पुरुष के मनोनीत पद को (अयाट्)

सुशासन करे। इस प्रकार (भर्गः, अंशमाम, पृश्नयः इन्द्रस्य, अग्निः) अग्नि, सोम, उत्तम रक्षक सेनापति इन्द्र, और सविता नाम मुख्य शासकों के (जिता भागानि भवाः) सर्वोपयुक्त निज पदों को का भेद, और वे दो का ज्ञात करे कराये। यह (मरुत्वते जिता भागानि भवत) मरुत्वान् नामक अधिकारी के लिए, अधिकार को ज्ञात करावे। (मरुत्वतो ईश्वमान्) पुरोहित्यों सामर्थ्य क रक्षक देव, जिससे पुरुषों के या ग्राम के रक्षक अधिकारी के (जिता भागानि भवत) लिए अधिकारी को ज्ञात करावे। (इन्द्र. सर्व.) सब के अधिकारी को उत्पन्न करने वाले सेना पुरुष के भी (जिता भागानि भवत) लिए, सर्वोपयुक्त अधिकारी को ज्ञात करावे। इस प्रकार वह 'विराट् पुरुष' राजा सेना 'अग्नि', (स्वम्) अपने (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को ही (सम्यक्रूपम्) सब को प्रकट करे। और वही (पुरुष.) प्रजा करने योग्य (इष) अभिलषित अन्न और समृद्धि सामर्थ्य (इषांसु) उत्पन्न करता है। (स) वह ही (अनवेश.) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी होकर (सत्पात) प्रजा का पालन करने वाले शासकों को (उत्तमाम्) संयम को, प्राप्त करे। हे (देव इति मत) होता। तू उसको (इषे) उचित अधिकार (भग) प्रदान कर।

'विराड्जन्' — श्रीर्वै विराट्। श० १३। ८। १। १६॥ अन्नं विराट्। श० ११। २। ० १६॥ पशवो वा एते यद् विराड्। श० ११। १। ६। २०॥ वायुर्विराट् श० ११। ०। १। १८॥ इन्द्रो वै विराट्। ऐ० २। १। १०॥

विराट्—वई सहस्र नूनं विराट् अन्विराट्। श० ११। २। ३। १८॥ अन्नं वै विराट्। सर्वमेवेदमन्नं विराट्। तेजो वै सर्वमन्विराट्। विराड्। सर्वं प्रजापतिर्वै विराट् एव ... इत्यर्थः। प्रजाभ्यः हेव

विदुर्ये च न, त ग्राहुः क्षत्रियो वाव क्षत्रियस्याभिषेक्ता । इति ॥ श० १२ । ८ । ३ । १३ ॥

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे ऽअश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्यो र्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४८ ॥

(४८—४९) सरस्वत्यादयो देवता. । त्रिष्टुप् । धैवत

भा०—(सरस्वती) उत्तम बल वीर्य, और ज्ञानवती स्त्री जिस प्रकार (देव) अपने कामना योग्य पति को (बर्हि.) आसन, या विष्टर प्रदान करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्-सभा (सुदेवम्) उत्तम राजा को (बर्हिः) वृहत् राष्ट्र या प्रजा के ऊपर शासन पद प्रदान करे। (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार (अक्ष्यो चक्षु न) दोनों आखों को दर्शन शक्ति प्रदान करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) उक्त मुख्य विद्वान् एवं व्यापक शक्तिमान् 'अश्वि' नामक अधिकारी दोनों (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (तेज इन्द्रिय दधतु) तेज और ऐश्वर्य को प्रदान करें। और दो अश्विन्, और सरस्वती तीनों मिलकर (इन्द्रे) राजा और राष्ट्र में (बर्हिषा) इस प्रजामय राष्ट्र के महान् पद या प्रजागण द्वारा ही (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य, धन समृद्धि के रक्षा स्थान कोष के योग्य धनको (वसुवने) धन समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा के लिये स्वयं (व्यन्तु) प्राप्त करें। हे (होत) अधिकार प्रदात ! तू (यज) उनको वह अधिकार प्रदान कर।

देवीर्द्वारो ऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्य्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४९ ॥

साहृष्णुष्णिक । ऋषभ ॥

भा०—(सरस्वती) सुशिक्षिता स्त्री जिस प्रकार (इन्द्रे) अपने सौभाग्यवान् पति के लिये (देवी) प्रकाशवाले, उत्तम सजे (द्वारः) द्वारों को खोल देती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा

(इन्द्रे) राजा के लिये (देवी उषासा) उत्तम शोभा से युक्त रात्रि और दिनरात्रि अनुकूल शक्तियों को संवारती, प्रकट करती हैं। और (अश्विना) प्राण और अपान जिस प्रकार (वाचि प्राण न इन्द्रे) नासिका में प्राण का धारण करते हैं उसी प्रकार (सुत्रामा अश्विना) रोग निवारक, विद्वान् अश्वि नामक वैद्य या पुरोहित राष्ट्र शरीर के रोगों, शत्रुओं को नाश करने वाले दोनों अधिकारी गण (वाचि आस्ये न) मुख में प्राण के समान ही मुख्य पुरुष में (वीर्यं दधुः) बल, इन्द्रिय, राजा के ऐश्वर्य और बलको धारण कराते हैं। और वे तीनों मिलकर (वसुवने वसुधेये) कोश के निमित्त धन को समा-निवासी राजा के लिये (व्यन्तु) प्राप्त करावें। और हे होत: ! तू इनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

देवीऽ उषासानक्ताश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्य उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४० ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा० — (सरस्वती देवी जोष्ट्री) जो जिस प्रकार ज्ञानवान् पुरुष और श्रोत्र दोनों कानों को (इन्द्रे) उत्तम ऐश्वर्यवान् पति के निमित्त सेवन करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विदुषी (जोष्ट्री देवी) दिव्य गुणवती स्त्री प्रातः सायं दोनों कालों को (इन्द्रे) इन्द्र, राजा के निमित्त सेवन करे। और (सुत्रामा) उत्तम रक्षक राजा (अश्विना) प्राण और उदान जिस प्रकार शरीर में (कर्णयोः श्रोत्रम्) मुख में कानों को धारण करते हैं उसी प्रकार यह अश्वि नामक अधिकारी (जोष्ट्रीभ्याम्) दोनों कालों, दिन और रात (यशः दधुः) यश को धारण करावें। और (इन्द्रियं वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत्।

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्द्धयन् । श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

भा०—(सरस्वती) पूर्वोक्त सरस्वती (देवी जोष्ट्री) गृहदेवी पति के प्रति अति प्रेमवती होकर जिस प्रकार उसको बढ़ाती है उसी प्रकार विद्वत्सभा और (अश्विनौ) प्राण और अपान जिस प्रकार (इन्द्रम्) आत्मा को बढ़ाते हैं और (कर्णयोः) कानों में (श्रोत्रं न) श्रवणेन्द्रिय के समान (यशः) उत्तम ख्याति को उक्त तीनों (जोष्ट्रीभ्यां दधु) प्रेम और सेवा करनेवाली प्रजा और राजवर्ग दोनों से धारण कराते हैं इस प्रकार वे (इन्द्रियं दधु) ऐश्वर्य को भी प्रदान करते हैं। वे तीनों (वसुवने) धनवान् राजा के लिये (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त करें। हे होतः ! तू उनको (यज) पदाधिकार दे।

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः। शुक्रं न ज्योतिः स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५२

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सरस्वती) स्त्री जिस प्रकार सायं प्रातः दोनों समय (इन्द्रे) अपने पति के लिये (देवी) उत्तम गुणवाली, मन को लुभाने वाली (ऊर्जाहुती) अन्न की थाली प्रदान करती है। उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (इन्द्रे) राजा के निमित्त (देवी) उत्तम गुणों वाली होकर (दुघे) बलकारक (ऊर्जाहुती) अन्न और वीर्य के आहुतियों को प्रदान करती है। और (सुदुघा) उत्तम रीति से समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) दोनों अश्वी नामक अधिकारी (भिषजा) दो वैद्यों के समान (अवतः) इन्द्र, अर्थात् राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। और स्त्री जिस प्रकार (स्तनयोः शुक्रं न) स्तनों में दूध धारण करती है और प्राण और अपान जिस प्रकार शरीर में (ज्योतिः) कान्ति को या दिन रात्रि जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी के बीच में कान्तिमान् (ज्योतिः) सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार वे तीनों

(इन्द्रियं) धन और सामर्थ्य को और (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक दोनों प्रकार की [illegible] द्वारा (इन्द्रे इन्द्रियं धत्त) राजा और राष्ट्र में ऐश्वर्य और शारीरिक बल (धत्त) धारण करावें। वे (वसुवने) [illegible] के लिये (वसुधेयस्य) धन कोश को (व्यन्तु) प्राप्त करें। हे होतः! इनको (यज) तू अधिकार प्रदान कर।

देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिं होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५३ ॥

[illegible] ॥

भा०—(सरस्वती देवानां होतारौ देवौ) जो जिस प्रकार विद्वानों को विद्या प्रदान करनेहारे गुरु और उपदेशक दोनों को उनके वृद्धि के करने के लिये (वषट्कारैः) सत्कारपूर्वक अन्नादि प्रदान करके [illegible] करती है वही प्रकार (सरस्वती) विद्यासभा ([illegible]) राष्ट्र के [illegible] करावे द्वारा (देवौ होतारौ) [illegible] और [illegible] देनेहारे दो विद्वानों [illegible] को और (इन्द्रम् अश्विना) इन्द्र राजा की वृद्धि करें। और जिस प्रकार (भिषजा अश्विना) वैद्यों के समान [illegible] और [illegible] (होतृभ्याम्) [illegible] और [illegible] करनेहारे [illegible] (हृदये मतिम्) [illegible] की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (अश्विना) वे दोनों [illegible] और सरस्वती [illegible] में (त्विषिं) [illegible] (इन्द्रियम्) [illegible] के दोनों विद्वानों द्वारा और ([illegible]) देवने को ([illegible]) [illegible] (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत्।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती। शूषं न मध्ये नाभ्या-

मिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥
त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती इन्द्राय यथा तिस्रः देवीः) स्त्री जिस प्रकार अपने पति के लिये अंश, कान्ति और उत्तम वाणी तीनों अभिलषणीय शक्तियों का प्रयोग करती है, उसी प्रकार (इन्द्राय सरस्वती तिस्रः देवीः) राजा के लिये विद्वत्सभा भी तीनों प्रकार की सभाओं की स्थापना करे। और (अश्विना) अश्वि नामक अधिकारी, और (इडा) इडा नाम भूमि की प्रबन्ध-कारिणी सभा तीनों (नाभ्यां मध्ये शूष न) नाभी के बीच में बल के समान (इन्द्रियं दधुः) वीर्य को धारण करें। और (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत् ।

देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः।
रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(देवः) विजिगीषु विद्वान् (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् (नराशंसः) समस्त जनों से स्तुति योग्य, राजा (त्रिवरूथ) अपने तीनों तरफ़ तीन शत्रुवारक सेनाओं सहित होकर (सरस्वत्या अश्विभ्याम्) सरस्वती, और दोनों अश्विनामक अधिकारी इन तीनों से (त्रिवरूथ. रथ इव) तीन छतों से सुरक्षित रथ के समान (ईयते) प्रतीत होता है । (त्वष्टा) शिल्पी, बढ़ई जिस प्रकार (इन्द्राय रूपम् इन्द्रियाणि दधत्) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये रुचिकर सुन्दर, पदार्थ, और नाना ऐश्वर्य के योग्य बहुमूल्य पदार्थ बनाता है और जिस प्रकार (त्वष्टा) जगत् का कर्त्ता परमेश्वर (इन्द्राय) जीव के भोग के लिये (अमृतम्) अमृत स्वरूप, (जनित्रम्) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ (रेतः न) वीर्य को और (इन्द्रियाणि)

चक्षु, नाक, कान आदि इन्द्रियों को (दधत्) शरीर में रखता है (न) उसी प्रकार (त्वष्टा) नाना शिल्पों का विद्, विश्वकर्मा, अधिकारी (इन्द्राय) राजा के भोग के लिये (रूपम्) सुन्दर २ भवन, आभूषण युक्त पोशाक और (इन्द्रियाणि) नाना राजोचित ऐश्वर्य, यन्त्र कौशल आदि प्रदान करता है । (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत् ।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽअश्विभ्याᳬसरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

निचृज्जगती । गान्धारः ॥

भा०—(वनस्पतिः) महावृक्ष वट, पीपल आदि जिस प्रकार पक्षुओं को आश्रय देता है उसी प्रकार समस्त प्रजाजनों को आश्रय देनेवाला पुरुष, अथवा वृक्ष समूहों के समान सघन सैनिक दलों का पति (देवः) विजयशील सेनापति स्वयं (देवैः) विजयेच्छु सैनिकों से (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के पत्रों या सुन्दर पत्रों से सजे वृक्ष के समान और (सुपिप्पलः) उत्तम पालन सामर्थ्यों से उत्तम बलवान् (अश्विभ्यां सरस्वत्या च) अश्विगण और सरस्वती, विद्वत् सभा द्वारा (इन्द्राय) सम्राट् के लिये (मधु पच्यते) मधुर रस के समान उत्तम बल को परिपक्व करता है । वह (ऋषभः वनस्पतिः) सर्वश्रेष्ठ बलवान् वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट 'वनस्पति,' सेनापति (ओजः न, भामं न) देह में स्थित ओज और क्रोध के समान राष्ट्र में भी (ओजः, भामं) पराक्रम और तेजस्विता को और (इन्द्रियाणि) शरीर के इन्द्रियों के समान राष्ट्र में नाना ऐश्वर्यों को (दधत्) धारण करावे । (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत् ।

अग्निर्वै वनस्पतिः । कौ० १० । ६ प्राणो वै वनस्पतिः । कौ० १२ । ७ ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या

स्योनमिन्द्र ते सदः । ईशायै मन्युᳯराजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४७ ॥

भा०—माता पिता द्वारा (उर्णम्रदा. स्तीर्णंबर्हिः) ऊन के समान कोमल बिछाया आसन जिस प्रकार (सद) वर के बैठने का आसन होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (वारितीनाम्) संकटों और शत्रु के आक्रमणों को निवारण करने वाली सेनाओं के (अध्वरे) राज्य पालन के कार्य में (सरस्वत्या अश्विभ्यान्) सरस्वती और अश्वि नामक प्रधान पदाधिकारियों द्वारा (स्तीर्णम्) विस्तृत (अध्वरे) यज्ञ में या गृह में (सरस्वत्या अश्विभ्याम्) विदुषी कन्या और उसके द्वारा किया गया (देवं) ज्ञान और उत्तम गुणों से युक्त, भव्य (बर्हि) प्रजारूप राष्ट्र या जनपद (ते) तेरे लिये (उर्णम्रदा.) ऊन के समान कोमल एव आच्छादक या राजा के गुणों के आच्छादन करनेवाले लोगों को मर्दन कर देनेवाले (स्योनं सद) सुखकारी आसन के समान आश्रय हो। सरस्वती और दोनों अश्विगण (मन्युम्) शत्रुओं का स्तम्भन करनेवाले (राजानम्) राजा को (ईशायै) राष्ट्र के शासन करने के लिये (इन्द्रिय) ऐश्वर्य की (दधु) धारण कराते हैं । (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत् ।

क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरे बर्हिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥ अयं वै लोको बर्हि । श० १ । ४ । १ । २४ ॥ प्रजा वै बर्हि । कौ० ५ । ७ ॥

गृहस्थपक्ष में—पशवो वै बर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥

'देवोऽअग्नि स्विष्टकृद् देवान्यक्षद्यथायथᳯ होतारावुिन्द्रमश्विना वाचा वाचᳯ सरस्वतीमग्निᳯ सोमᳯ स्विष्टकृत् स्विष्टऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिᳯ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८॥

भा०—(स्विष्टकृत्) उत्तम रीति से अधिकार प्रदान करनेवाला (देवः अग्निः) विद्वान् अग्रणी पुरुष (देवान् यक्षत्) अन्य विद्वान्, तिलक-शील, एवं इच्छानुकूल पुरुषों को (यक्षत्) नियुक्त करे। (होतारौ) अधिकार प्रदान करनेवाले (अग्निना) अग्नि नामक व्यापक अधिकार वाले विद्वान् पुरुष (वाचा) अपनी आज्ञा रूप वाणी से (इन्द्रम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को नियुक्त करते हैं। वे ही (वाचम्) व्यवस्था-पुस्तक, वाणी का विधान करते हैं। वे ही (सरस्वतीम्) विद्वत्-सभा को, (अग्निम्) अग्रणी, सेनापति को, और (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को, नियुक्त करते हैं। (स्विष्टकृत् स्विष्टः) उत्तम नायक पुरुष भी उत्तम आदर के पद को प्राप्त हो। (सुत्रामा इन्द्रः) उत्तम रक्षक इन्द्र नामक महाधिकारी, (सविता, वरुणः भिषग्) सविता, वरुण और चिकित्सक, (देवः वनस्पतिः) वनस्पति नामक विजेता, ये सब (इष्टः) उचित आदर प्राप्त करें। (आज्यपाः देवाः) अन्न वीर्य के रक्षक विद्वान् पुरुष (स्विष्टाः) उत्तम आदर प्राप्त करें। (अग्निना) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष द्वारा ही (अग्निः) उसी प्रकार का तेजस्वी पुरुष (स्विष्टः) उत्तम रीति से आदर पद प्राप्त करे। और (होता) अधिकार दाता पुरुष (होत्रे) अन्य अधिकार दाता पुरुष को (स्विष्टकृत्) उत्तम आदर मान देनेवाला हो। और यह (यशः) यश, (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (ऊर्जम्) उत्तम अन्न, बल, पराक्रम, (अपचितिम्) आदर पूजा, (स्वधाम्) अन्न वेतनादि (दधत्) प्रदान करे। ये सभी (यजते) ऐश्वर्य के अधिकारी बड़े राजा के कार्य करें। (व्यन्तु आज्यस्य होतर्यज) उचित ऐश्वर्य प्राप्त करें। हे होतः! (यज) उन सबको अधिकार और वेतनादि प्रदान कर।

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशान् [illegible] [illegible] इन्द्राय [illegible]

अश्विभ्याᳬ सरस्वत्या ऽइन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥ ५९ ॥

धृति । ऋषभ ॥

भा०—(अद्य) आज, अब, नित्य (अयं यजमान) यह यजमान, सब राज्यव्यवस्था को सुसंगत करने और सबको पदाधिकार देनेवाला राजा (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (होतारम्) 'होता' पद के लिये (अवृणीत) वरण करता है। और वह यजमान, (पक्ती) नाना कर्मों के बदले में देने योग्य प्रति फलों को और (पुरोडाशान्) काम करने के पूर्व ही पेशगी देने योग्य पदार्थों को (पचन् २) पकाता या नियत करता हुआ उनको पक्का करता हुआ और (अश्विभ्या) पूर्वोक्त अश्वि नामक व्यापक या बड़े पद के अधिकारियों के कार्य के लिये (छागम्) छेदन भेदन में कुशल पुरुष को और (सरस्वत्यै) सरस्वती, विद्वत्सभा के लिये (मेषम्) प्रतिपक्षी की स्पर्द्धा में बोलने वाले पुरुष को और (इन्द्राय) इन्द्र, सेना पति पद के लिये, या राष्ट्र के संचालक पद के लिये (ऋषभम्) सर्वश्रेष्ठ पुरुष को (बध्नन्) बड़े वेतन पर बांधता हुआ और (अश्विभ्या) अश्वियों, (सरस्वत्यै) सरस्वती, विद्वत्सभा और (सुत्राम्णे इन्द्राय) उत्तम त्राणकारी, सुरक्षक इन्द्र पद के लिये (सुरासोमान्) राज्य लक्ष्मी और राष्ट्र के अंशों को, या (सुरासोमान्) स्त्री पुरुषों को, या अभिषेक क्रिया से अभिषिक्त पुरुषों को (सुन्वन्) नाना पदों पर अभिषिक्त करता हुआ होता' का वरण करता है।

सूपस्थाऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्त प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥६०॥

धृति । ऋषभ ॥

भा०—(अद्य) आज, अब, अभिषेक हो चुकने और पदाधिकारियों

के नियुक्त हो जाने पर, (वनस्पतिः) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्राणियों को अपनी सुख देने वाली छत्रछाया में रखने हारा (देवः) राजा (अश्विभ्याम्) मुख्य अधिकारियों के निमित्त स्थापित (छागेन) संशय छेदन करने वाले विद्वान् द्वारा और (सरस्वत्यै) सरस्वती, वेदवाणी या विद्वत्सभा के कार्य के लिये नियुक्त (मेषेण) प्रतिपक्षियों के स्पर्धाशील, विद्वान् से और (इन्द्राय ऋषभेण) इन्द्र के निमित्त नियुक्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष से (सूपस्थाः) उत्तम रीति से राष्ट्र में व्यवस्थित (अभवत्) हो जाता है । (मेदस्तः) उनके स्नेह से या उनके प्रिय पदार्थ या उनको शत्रुनाशक बल से ही वे अश्वि आदि पदाधिकारी उक्त पुरुषों को (अघत्तन्) प्राप्त करते हैं । और (पचता) परिपक्व, सुसम्पन्न, दृढ़ करने योग्य पुरुषों को दृढ़ करने के लिये (प्रति अगृभीषत) प्राप्त करते हैं, उनको भर्ती करते हैं । और पशुओं को (पुरोडाशैः) पद पर नियुक्त होने के पूर्व ही वृत्तियां देकर उन पूर्व प्रदत्त वृत्तियों से (अवीवृधन्त) उन पुरुषों के उत्साहों को बढ़ाते हैं, और इस प्रकार (अश्विना) दोनों उच्च पदाधिकारी अश्विजन और (सरस्वती) विद्वत्सभा और (सुत्रामा इन्द्रः) उत्तम प्रजारक्षक राजा, (सुरासोमान्) अभिषेक क्रिया द्वारा अभिषिक्त योग्य पुरुषों को अथवा राजपदों से ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (अधुः) पालन करते हैं ।

त्वामद्यऽऋषऽआर्षेयऽऋषीणान्नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽ
आ सङ्गतेभ्यऽएष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽइति ता या देवा
देव दानान्यदुस्तान्यस्माऽआ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होत-
रसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥६१॥

[illegible] विद्वांसः । [illegible] ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन् ! मन्त्रार्थों के देखने वाले ! (आर्षेय) ऋषि मन्त्रार्थ द्रष्टाओं के उत्तम विद्वन्, ! हे (ऋषीणां नपात्) मन्त्रार्थ-

द्रष्टा ऋषियों के पुत्र ! अथवा उनके सिद्धान्तों को न गिरने देनेहारे ! (अयं यजमान) यह यजमान, वेतन पुरस्कार आदि देने वाला राजा, गृहपति, यजमान के समान (बहुभ्य) बहुतसे (सगतेभ्य) एकत्र हुए विद्वानों में से (अथ) आप (त्वाम् आ अवृणीत) तुझे ही वरण करता है। क्योंकि वह जानता है (एषः) यह आप (मे) मुझ यजमान को (देवेषु) विद्वानों और राजाओं के बीच (वसु) धनैश्वर्य, (वारि) और वरण करने योग्य सकल पदार्थ (आयक्षते) प्राप्त करा देंगे (इति) इसलिये वह आपको वरता है। हे (देव) विद्वन् ! (देवा-) विद्वान् पुरुष या दानशील राजागण, धनाढ्य पुरुष (या) जो २ (ता) वे नाना प्रकार के (दानानि) दान करने योग्य पदार्थों को (अदु) प्रदान किया करते हैं (तानि) वे सब प्रकार के पदार्थ (अस्मै) इसके लिये भी (आशास्स्व च) प्राप्त करने की आशा कर। (इषित च) इस प्रकार प्रार्थना किया गया तू (आगुरस्व च) उद्यम कर। हे (होत) होत- ! विद्वन् ! उपदेष्ट ! ज्ञान प्रदान करने हारे ! तू (भद्रवाच्याय) सुख और कल्याण करने वाले हितकारी कार्यों के उपदेश के लिये (प्रहित असि) प्रार्थना किया जाता है। हे विद्वन् ! तू (मानुष) विचारवान् पुरुष होकर (सूक्तवाकाय) उत्तम सुवचनों के उपदेश के करने के लिये (सूक्ता ब्रूहि) उत्तम २ वचनों और वेद के सूक्तों का उपदेश कर।

पारिप्लव विधिमें होता समस्त राज्य के प्रजाजनों को नाना वेदों का उपदेश करता है।

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मे पाहि । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥

[य० २२—२४] प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (तेजः) तेज है। तू (शुक्रम्) शरीर में शुक्र धातु के समान राष्ट्र में बलकारी है। (अमृतम्) शरीर में वीर्य, पृथ्वी में जल और अग्नि के समान राष्ट्र में भी अमृत जीवन का रक्षक है। तू (आयुष्पा) सब के आयुओं का पालक (असि) है। तू (मे आयु पाहि) मेरे में दीर्घजीवन का पालन कर। परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है।

हे राष्ट्रवासिजन ! (त्वा) तुझको (सवितुः) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) बनाये जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्र के समान प्रचण्ड और सौम्य स्वभाव के अधिकारियों की (बाहुभ्याम्) शत्रुओं के बाधक शक्तियों या बाहु के समान बलवान् बाधक बल से और (पूष्णः) पृथ्वी के समान पोषक वैश्य वर्ग के या राजा के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान सङ्ग्रह करनेवाले या दुष्टों के हनन करनेवाले साधनों के द्वारा (आ ददे) तुझ राष्ट्र को मैं अपने वश करता हूं। (देवस्य त्वा सवितुः०) इत्यादि व्याख्या देखो अ० १। म० १०॥

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विदथेषु कव्या ।
सा नोऽअस्मिन् सुत आ बभूवऽऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥२॥

[illegible] ऋषिः । [illegible] देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

[illegible] ॥

भा०—([illegible]) इस उत्पन्न जगत् में ([illegible]) हमें (सा) वह व्यापक शक्ति ([illegible]) ज्ञात होता है। [illegible]) मूल, परम

सत्य कारणरूप परमेश्वर और प्रकृति के सत्य तत्व के (सरम्) व्यापार या चेष्टा को (सामन्) आदि से अन्त तक (आ रपन्ती) स्पष्ट बतलाती है। (इमाम्) उस (रशनाम्) व्यापक शक्ति की ज्ञान शृंखला को ही (ऋतस्य पूर्वे आयुषि) संसार के प्रारम्भ के काल में (कवयः) क्रान्तदर्शी ऋषि लोग (विदथेषु) यज्ञों और ज्ञान के अवसरों में या ज्ञानरूप वेदों में (अगृभ्णन्) ग्रहण करते हैं, जानते हैं।

राष्ट्र के पक्ष में—(ऋतस्य पूर्वे आयुषि) व्यक्त जगत् के प्रारम्भ के आदि काल में (वृषभ) क्रान्तदर्शी ऋषि लोग (इमाम् रशनाम्) रस्सी के समान व्यापक या विस्तृत संसार की नियामक शक्ति को या व्यवस्था को (विदथेषु) ज्ञानमय वेदों में (अगृभ्णन्) प्राप्त करते हैं। (सा) वह व्यापक व्यवस्था (अस्मिन् सुते) राजा के अभिषेक के अवसर पर भी (न आबभूव) हमें प्राप्त हो। वह (ऋतस्य) सत्य व्यवहार से पूर्ण राष्ट्र के (सामन्) आदि से अन्त तक हमें (सरम्) ज्ञान का (आरपन्ती) स्पष्ट उपदेश करनेवाली रहे। शत० १३।१।२।१॥

अभिधाऽअसि भुवनमसि युन्तासि धर्त्ता।
स त्वमग्निं वैश्वानुरꣳ सप्रथसङ्गच्छ स्वाहाकृतः ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (अभिधा असि) समस्त पदार्थों को साक्षात् बतलाने वाला है। तू (भुवनम् असि) जलके समान समस्त चराचर प्राणियों और लोकों का प्राण देने वाला आश्रय, उत्पादक है। तू (यन्ता असि) समस्त संसार का नियन्ता, उसको नियम में रखने वाला है। तू (धर्त्ता) सबका धारण करने वाला है। (सः) वह तू (सप्रथसम्) अति विस्तृत शक्ति से युक्त (वैश्वानरम्) समस्त ब्रह्माण्ड को चलाने वाली प्रवर्त्तक शक्तियों के सञ्चालक (अग्निम्) ज्ञानरूप, तेजोमय, स्वतः

महान्, सर्वप्रकाशक सूर्य आदि को भी (स्वाहाकृत) उत्तम गुण-कामना और सत्य वाणियों द्वारा स्तुति किया जाकर (गच्छ) प्राप्त है।

विद्वान् तथा पक्ष राजा के पक्षमें—हे राजन् ! तू (अभिधा असि) शत्रुओं का उपदेश करने वाला या राष्ट्र को सब प्रकार से बांधने या प्रबन्ध करने में समर्थ है। तू (भुवनम् असि) सबका आश्रय, (यन्ता) नियामक और (धर्ता) कर्त्ता धर्ता धारण करने हारा है। (स त्वम्) वह तू (स्वाहाकृत) उत्तम स्तुति से युक्त होकर या उत्तम यश कीर्ति से सम्पन्न होकर, या सत्यवाणी से विश्वासयोग्य होकर, (समयतम्) अतिविस्तृत यश से युक्त, (वैश्वानरम्) समस्त जनों के हितकारी (अग्निम्) अग्रणी नेता पद को (गच्छ) प्राप्त हो। शत० १३। १। २। ३ ॥

ऋतुना त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्। तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥४॥

यथ विश्वराध ऋषिः। [illegible]। [illegible] ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! मैं अधिकारकर्ता (त्वा) तुमको (ऋतुना) स्वतन्त्र, यथेच्छ दूरंक जाने का अधिकार देता हूं। (देवेभ्यः) समस्त विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के लिये और (प्रजापतये) प्रजा के पालक राजा के पद के लिये, हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मन् ! ज्ञानवृद्ध पुरुष ! (देवेभ्यः) विद्वानों, विजिगीषु पुरुषों के हित के लिये और (प्रजापतये) प्रजा के पालन करने वाले राजा के कर्त्तव्य पालन के लिये (अश्वं) मैं अति शीघ्रगामी अश्व के समान व्यापक शक्ति वाले सुदृढ़ एवं राष्ट्र के भोक्ता पुरुष को (भन्त्स्यामि) बांधूंगा, शासन पर नियुक्त करूंगा। (तेन) उससे मैं (राध्यासम्) समृद्ध होऊं एवं उत्तम फल प्राप्त करूं। हे विद्वन् ! तू (देवेभ्यः प्रजापतये) विद्वानों, विजयेच्छु पुरुषों के लिये और प्रजापति पद के लिये (तं बधान)

उसका बाध, नियुक्त कर। उसको योग्य सामग्री देकर उसे वेतनादि पर रक्ख। पैं(तेन राध्नुहि) उससे समृद्ध हो, कार्य को पूर्ण कर।

अश्वमेध में इस मन्त्र से अश्व को बांधकर खुला विचरने देते हैं। वह अश्व राष्ट्रपति का प्रतिनिधि है। शत० १३ । १ । २ । ३ ४ ॥

वीर्यं वा अश्वः । श० २ । १ । ४ । २३ ॥ क्षत्रं वा अनु अश्वः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥ क्षत्रं वा अश्वो विडितरे पशवः । श० १३ । २ । २ । १५ ॥ वज्रो वा अश्वः । श० १३ । १ । २ । ९ ॥ इन्द्रो वा अश्वः । कौ० १५ । ४ ॥ वज्री वा अश्वः प्राजापत्यः । तै० ३ । ८ । ४ । २ ॥

अध्यात्म—अश्व=आत्मा, ब्रह्म=परमात्मा। ब्रह्मचर्य पक्षमें—ब्रह्म= आचार्य। अश्व=वीर्य।

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। योऽअर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा ॥ ५ ॥

इन्द्राग्न्यो देवताः। अभिधृतिः षड्जः।

भा०—हे विद्वन्! श्रेष्ठ पुरुष! (जुष्टं) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको म (प्रजापतये) प्रजा के पालक पद के लिये, (इन्द्राग्नीभ्यां त्वा) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति और अग्रणीपद के लिये, (वायवे) वायु के समान शत्रुरूप वृक्षों के डाल तोड़ डालने वाले शूरवीर के पद पर और (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त प्रजा के विद्वान् पुरुषों के हित के लिये, (जुष्टं) सब लोगों से प्रसन्न, एवं चाहे गये (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि ५) अभिषिक्त करता हूं। (यः) जो पुरुष भी (अर्वन्तम्) अश्व के समान तीव्र वेगवान् वीर, एवं विद्वान् पुरुष, और सब पदों के प्राप्त करने वाले राजा को

(जिघांसति) मारना चाहता है (वरुणः) दुष्टों का वारक पदाधिकारी (तम्) उसको (अभि-अमीति) विनष्ट करे । ऐसा (मर्तः) राजद्रोही, पुरुष (परः) शत्रु है, उसको देश से निकाल कर दूर कर दिया जाय और (परः श्वा) पर अर्थात् शत्रु पुरुष कुत्ते के समान दुत्कार दिया जाय । अथवा (श्वा) कुत्ते के स्वभाव से व्यर्थ निन्दा करनेवाला पुरुष भी (परः) पर, अर्थात् शत्रु है उसे भी राष्ट्र से बाहर कर दिया जाय । शत० १३ । १ । २ । ४-६ ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥

भुरिक् जगती । निषादः ॥ अग्न्यादयो देवताः ॥

भा०—राजा के समस्त स्वरूपों के लिये आदर सत्कार करने का उपदेश करते हैं । (अग्नये स्वाहा) अग्नि के समान ज्ञानदाता आचार्य और शत्रु के संतापक तेजस्वी राजा आदि पुरुष का उत्तम स्तुति और सत्कार करो । 'अग्नि' तत्त्व का सदुपयोग करो । (सोमाय स्वाहा) सब के आह्लादक ऐश्वर्यवान्, शान्ति और सोमरस के समान आनन्द और पुष्टिकारक पुरुष का आदर करो और ओषधियों के रस रूप सोम का सेवन करो । (अपां मोदाय) जलों के समान स्वच्छ शान्तिदायक एवं प्रवाह से चलने वाले आप्त जनों के आनन्द देनेवाले और प्रजाओं के हर्षकारी राजा के कर्मों और ज्ञानों को प्रसन्नता से प्राप्त कराने वाले गुरु का आदर सत्कार करो और जलों से प्राप्त आनन्द का उत्तम रीति से सेवन करो । (सवित्रे स्वाहा) सविता, सूर्य, सर्वोत्पादक परमेश्वर, आज्ञापक राजा, नेता, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् का आदर करो और सूर्य के प्रकाश और ताप का उचित प्रयोग और ज्ञान करो । (वायवे स्वाहा) वायु के

[illegible]

समान तीव्र, गतिमान् सैनिक, उसके समान शत्रु रूप वृक्षों को उखाड़ने में समर्थ सेनापति, राजा, और वायु के समान जीवनाधार पुरुष का आदर करो और वायु और प्राण का उत्तम उपयोग और ज्ञान करो। (विष्णवे स्वाहा) सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना, स्तुति प्रार्थना करो और व्यापक शक्तिशाली राजा शास्त्र में पारगत विद्वान् का आदर सत्कार करो। विष्णु अर्थात् यज्ञ का अनुष्ठान करो, और विद्युत् का प्रयोग करो। (बृहस्पतये स्वाहा) सब बड़ों से भी बड़े, ब्रह्माण्डों के पालक परमेश्वर की उपासना करो। बृहती वेदवाणी के पालक विद्वान् ब्राह्मण का, राजा के विद्वान् मन्त्री का और बड़े राष्ट्र के पालक सम्राट् का आदर करो। (मित्राय स्वाहा) सबके स्नेही, मृत्यु से बचानेवाले परमेश्वर की उपासना करो। एवं मित्र, स्नेही पुरुष, सूर्य के समान तेजस्वी राजा, स्नेही न्यायाधीश और मित्र राजा का भी आदर करो। (वरुणाय स्वाहा) दुष्टों के वारक, रक्षक, सब से श्रेष्ठ, वरण करने योग्य पुरुष का आदर और ऐसे परमेश्वर की स्तुति करो। शत० १३। १। ३। ३॥

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय

७—अन्नमहोमय एकोनन्चपाशत् ।

स्वाहा चलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

ऋष्यादि. । गन्धर्व. । ८ धृतिः । षड्ज. ॥

भा०—(हिङ्काराय स्वाहा) 'हिं' ऐसा शब्द करने वाले साम गायक विद्वान् का, राजा का, (हिङ्कृताय) 'हिं' कर चुकनेवाले विद्वान् का (स्वाहा) आदर सत्कार करो । और पशु प्राणी का उपयोग करो । यज्ञो हिङ्कारः । कौ० ३ । २ ॥ हिङ्कारेण वज्रेण अस्माल्लोकादसुराननुदत । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥ अर्थात् वज्र को धारण करनेवाले राजा का और शासन करने वाले शासक का आदर करो । पुरुषमेव हिङ्कार । जै० उ० १ । ३४ । १ ॥ उत्तम धर्म कार्य करनेवाले और धर्मात्मा का आदर करो । प्राणो वै हिङ्कार. । श० ४ । २ । २ । ११ ॥ प्राण साधक और प्राण विद्याविद् का आदर करो । प्रजापतिर्वै हिङ्कार । श० ६ । ८ । १ । ४ ॥ प्रजा के पालक पुरुष का आदर करो । जिसने प्रजा का पहले पालन किया हो ऐसे वृद्ध, भूतपूर्व पालक की भी प्रतिष्ठा करो । (क्रन्दते स्वाहा अवक्रन्दाय स्वाहा) शत्रु को ललकारने वाले, विद्वानों को बुलाने वाले और ललकारने वाले का दबाने-वाले राजा का, या विजय से बुलानेवाले सत्पुरुष का आदर करो । (प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा) स्वयं सब पदार्थों का स्वयं प्राप्त करनेवाले उत्कृष्ट कोटि के धनैश्वर्यादि प्राप्त करनेवाले का आदर सत्कार करो । (गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा) गन्ध लेनेवाले और गन्धादि के भोग के अनुभवी, सुगन्ध प्रेमी स्वामी का और पुरुष का भी आदर करो । (निविष्टाय स्वाहा) छावनी बनाकर, या वस्ती बसाकर बैठे हुए और (उपविष्टाय) 'आसन'

वृत्ति मे नीति पूर्वक विराजनेवाले राजा का आदर करो। इसी प्रकार पूज्य पुरुष जो लेटा हो या बैठा हो उसका उसी अवस्था में भी आदर करें। (संदिताय स्वाहा) अच्छी प्रकार से शत्रुओं को काटनेवाले या न्यायपूर्वक *विभाग करनेवाले का आदर करो।* (*वल्गते स्वाहा*) *गमन करते हुए, या* आतिथ्य सत्कार करते हुए, उत्तम उपदेश करन वाले पुरुष का आदर करो। (आसीनाय स्वाहा) बैठे हुए आदर करो। (शयानाय स्वाहा) सोते हुए का आदर करो। (स्वपते जाग्रते, कूजते स्वाहा) सोते हुए, जागते हुए, बुड़ बुड़ाते हुए का भी आदर करो। (*प्रबुद्धाय, विजृम्भमाणाय, विचृताय स्वाहा*) अच्छी तरह से जागे हुए, जम्भाई लेते हुए, बन्धनादि से युक्त होते हुए का भी आदर करो। (संहानाय स्वाहा) विस्तर त्यागते हुए का आदर करो। (उपस्थिताय स्वाहा) सभाभवन में उपस्थित हुए का, (अयनाय) मार्ग *से जाते हुए का* (*प्रायणाय*) *विशेष रूप से जाते हुए का भी* (स्वाहा) आदर करो ॥ ७ ॥

(यते) गमन करते हुए, (धावते) दौड़ते हुए, (उद्द्रावाय) बहुत तीव्र गति से जाते हुए (उद्द्रुताय स्वाहा) और उछल २ कर द्रुत गति से जाने वाले शूरवीर का भी आदर करो। (शूकाराय, शूकृताय) शीघ्र काम करने वाले और शीघ्रता करने वाले, (निषण्णाय, उत्थिताय,) बैठे और उठे का भी आदर करो। (जवाय, बलाय, विवर्तमानाय, विवृत्ताय) वेग और बल वाले, लोटते पोटते और पासे पलटते हुए का भी आदर करो। (*विधून्वानाय, विधूताय*) *विविध शत्रुओं अथवा विविध मानस वासनाओं* को धुनते हुए और शत्रुओं को परास्त कर चुके हुए या पापमलसे रहित का भी आदर करो। (शुश्रूषमाणाय, शृण्वते,) विद्वानों से ज्ञान श्रवण करने के लिये उनकी सेवा शुश्रूषा करने वाले और ज्ञान श्रवण करते हुए को भी आदर करो। (ईक्षमाणाय, ईक्षिताय, वीक्षिताय) साक्षात्

करते हुए, साक्षात् किये, और विशेष रूप से साक्षात् हुए का भी आदर करो। (निमेषाय) पलक चलाते हुए इशारा करते हुए (यदत्ति तस्मै) जब खावे तब उसका, (यत् पिबति तस्मै) जब कुछ पान करता हो तब उसका, (यत् मूत्रं करोति) जब मूत्र करता हो तब उसका, (कुर्वते, कृताय स्वाहा) काम करते हुए और काम कर चुकने पर भी उसका आदर करो ॥ ८ ॥ शत० १३ । १ । ३ । ५ ॥

इस प्रकार ४१ दशाओं में आदरणीय पुरुष का आदर करना चाहिये और इन ४१ दशाओं में राजा को भी उत्तम रीति से आदर सत्कार और रक्षा करनी चाहिये।

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥ ऋ० ३ । ६२ । १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । ३५ ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये।
स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥ ऋ० १ । २२ । ५ ॥

१०—१४ सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(हिरण्यपाणिम्) सुवर्ण को कङ्कण रूप में पहने। हाथों में रखने वाले, अथवा हिरण्य अर्थात् लोह के बने तलवार को हाथ में रखने वाले (सवितारम्) सबके आज्ञापक, वीर राजा को मैं (ऊतये) रक्षा के लिये (उपह्वये) बुलाता हूं। (स) वह (चेत्ता) समस्त बातों का ज्ञाता और सब को कर्त्तव्य का बतलाने वाला राजा (देवता) साक्षात् देव सब का दाता और परम सर्वोच्च पद है। अथवा वह (देवता पदम्) समस्त विद्वानों का आश्रय है।

परमेश्वर के पक्ष में—(हिरण्यपाणिम्) सूर्यादि पदार्थों को वश करने वाले, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूं वह

(चेत्ता) सर्वज्ञ, सत्यासत्य का ज्ञापक और (पदम्) परम प्राप्य (देवता) देव, प्रकाशक और सर्वप्रद है।

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे।
सुमतिꣳ सत्यराधसम्॥ ११॥

भा०—(सवितु) सब के शासक, (चेतत.) सब को चैतन्य अर्थात् सावधान करने वाले, (देवस्य) दानशील राजा की (महीम्) बड़ी भारी (सत्यराधसम्) सत्य, धर्मानुकूल ऐश्वर्य के देनेवाली (सुमतिम्) उत्तम मति, शासन शक्ति की (प्र हवामहे) स्तुति करते हैं।

ईश्वर पक्षमें—(चेतत· सवितु) चित्स्वरूप, सर्वोत्पादक (देवस्य) परमेश्वर देव के (सत्यराधसम्) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्ययुक्त (सुमतिं) उत्तम ज्ञानमयी वेदवाणी की (प्र हवामहे) याचना करते हैं।

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳसवितुरीमहे।
प्र देवाय मतीविदे॥ १२॥

भा०—(सुमतीवृध) उत्तम स्तुति और मति, ज्ञान की वृद्धि करने वाले (सवितु) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक राजा का (देवाय) धन विद्यादि की कामना करने वाले (मतीविदे) विद्वान् के प्रति देने योग्य रातिम्) दान की (ईमहे) याचना करते हैं।

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये।
आसवं देववीतये॥ १३॥

भा०—(रातिम्) दानशील, (सत्पतिम्) सत् जनों, सत् पदार्थों और समस्त जीवों के पालक (सवितारम्) सब के शासक सब के उत्पादक (आसव) सब कार्यों की अनुज्ञा देनेहारे, अथवा सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और राजा को (देववीतये) दिव्यगुणों और विद्वान् पुरुषों के प्राप्त करने के लिये (उपह्वये) स्तुति करता हूं।

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् ।
धिया भगं मनामहे ॥ १४ ॥

भा०—(देवस्य) सब सुखों के दाता, सब सुख देखने वाले (सवितुः) शासक और उत्पादक राजा और परमेश्वर की (मतिम्) मति अर्थात् ज्ञान का और (विश्वदेव्यम्) समस्त विद्वानों के हितकारी, (आसवम्) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक (भगम्) ऐश्वर्य का (धिया) धारणवती बुद्धि से हम (मनामहे) मनन करते हैं ।

अग्निः स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

[१५—१७] अग्निर्देवता । शुनःशेपविश्वामित्रविश्वरूपा ऋषयः ।
गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (अमर्त्यम्) अविनाशी, कारणरूप से नित्य (अग्निम्) अग्नि को जिस प्रकार (स्तोमेन) काष्ठ समूह से जलाया जाता है उसमें (हव्या) हव्य, चरु पदार्थ डाल कर वायु आदि दिव्य-गुण वाले पदार्थों में पहुंचा दिये जाते हैं उसी प्रकार तू (सम् इधानः) ज्ञान से प्रदीप्त होता हुआ भी (स्तोमेन) स्तुतियों द्वारा (अमर्त्यम्) अमर, मरणधर्म से रहित, आत्मारूप (अग्निम्) अग्नि, स्वयं प्रकाश तेजोमय को (बोधय) प्रदीप्त कर । और (नः देवेषु) हमारे देव अर्थात् अन्य प्राणों में भी (हव्या) ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को (दधत्) धारण कर ।

दूत के पक्ष में—(स्तोमेन) स्तुतियों से (अमर्त्यम्) अमर्त्य, सुरक्षित न मारने योग्य, अवध्य, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को (समिधानः) प्रदीप्त करता हुआ (बोधय) चेता । और वह (नः देवेषु) हमारे अन्य विजिगीषु राजाओं और विद्वान् पुरुषों को (हव्या)

अन्न आदि योग्य पदार्थ अथवा राजा की ग्रहण और स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को (दधत्) प्रदान करें।

स हव्यवाडमर्त्यऽ उशिग्दूतश्चनोहितः।
अग्निर्धिया समृण्वति ॥ १६ ॥ ऋ० ३।११।२॥

भा०—(स) वह (हव्यवाड्) स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को दूसरों तक पहुंचाने वाले, (अमर्त्यः) न मारने योग्य (उशिग्) स्वयं कान्तिमान्, अन्यों को प्रिय, विद्वान् (दूत) दूत (चनोहित) वचनों को धारण करने मे समर्थ है वह (अग्नि) तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (धिया) अपनी बुद्धि से (सम् ऋण्वति) समस्त कर्म सम्पादन करता है।

अग्नि के पक्ष में—हव्य चरु को वायु आदि तक पहुंचानेवाला कारण, नित्य, (उशिक्) कान्तिमान्, (दूत) तापवान्, (चनोहित) परिपाक करने मे लगाने योग्य (अग्नि) अग्नि (धिया) धारण सामर्थ्य या दाहक्रिया से ही (सम् ऋण्वति) अन्य दिव्य पदार्थों से संगत होता है।

अध्यात्म में—वह ज्ञानी, कान्तिमान्, (दूत) उपासक (चनो हितः) संचित ज्ञान या उत्तम वचन को धारण करनेवाला (अग्नि) ज्ञानी आत्मा (धिया) धारणा के बल से परमेश्वर को (समृण्वति) प्राप्त करता है।

'चन'—वचनशब्दस्य वकारलोपेनान्ते रुकारोपजननेन 'चनः'। यद्वा वचेरसुनि बाहुलकात् नोऽन्तादेशः इति दे० य० ॥ चन इत्यन्न नाम। तथैव पचनस्य पकारलोपे सकारोपजननं च। पचेर्वासुनि नोऽन्तादेशः। चीयतेर्वा।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे देवाँ२ऽ
आसादयादिह ॥ १७ ॥ ऋ० ८।४४।३॥

१६—०वाऽ० इति काण्व०। इतः परमेका ऋगधिका पठ्यते काण्व० परिशिष्टे द्रष्टव्या।

भा०—मैं राजा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य संदेश को लानेवाले (दूतम्) दूत बनकर आये, (अग्निम्) ज्ञानी विद्वान् को (पुरः) सबके समक्ष, आगे (दधे) स्थापित करता हू और (उपब्रुवे) उससे प्रार्थना करता हू कि वह (इह) इस पद पर रहकर (देवान् आसादयात्) अन्य राजाओं तक पहुंचे ।

अग्नि के पक्ष में—हव्य, चरु को वहन करनेवाले (दूते) तापयुक्त अग्नि को मैं आगे स्थापित करता हूं । वह (देवान् आसादयात्) वायु आदि पदार्थों तक चरुको पहुंचावे ।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पर्यः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥ ऋ० ९।११०।३॥

त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषी । पवमानो देवता । निचृदार्षी, अनुष्टुप् । गांधार ॥

भा०—हे (पवमान) सबको पवित्र करनेहारे विद्वन् ! अग्नि तत्व जिस प्रकार (सूर्य) सूर्य को उत्पन्न करता है उसी प्रकार तू (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष राजा को (अजीजनः) उत्पन्न करता है । और सूर्य जिस प्रकार (गोजीरया) समस्त पृथ्वी लोक को जीवन देने और (पुरन्ध्या) पुर देह, ब्रह्माण्ड को धारण पोषण करनेवाली शक्ति से (रंहमाणः) गति करता हुआ (शक्मना) अपनी शक्ति से (पयः) जल को (विधारे) विशेष रूप से धारण करता है और इसी प्रकार (गोजीरया) गौ आदि पशुओं के जीवन देनेवाली और (पुरन्ध्या) पुर को धारण करनेवाली राजनीति से (रंहमाणः) चलता हुआ (शक्मना) अपनी शक्ति से (पयः) पुष्टिकारक राष्ट्र को धारण करता है ।

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवा आशापाला एतं देवेभ्यो-

ऽश्वं मेधाय प्रोक्षितᳪ रक्षत। इह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १६ ॥

अग्निर्देवता। भुरिग् विकृति । मध्यम ॥

भा०—हे राजन् ! तू (मात्रा विभूः) माता के प्रभाव से विविध गुणों से युक्त है। और (पित्रा प्रभूः) पिता के द्वारा उत्कृष्ट प्रभु शक्ति या ऐश्वर्य से युक्त है। अर्थात् तू मातृमान् और पितृमान् है। गर्भ के उत्तम संस्कारों में माता और विनय आदि में पिता द्वारा शिक्षित है। तू (अश्वः असि) समस्त राष्ट्र का भोक्ता है। तू (हय असि) अति वेगवान्, पराक्रमी है। तू (अत्यः असि) निरन्तर गतिशील, बराबर आगे बढ़नेवाला, सबको अतिक्रमण करने हारा है। तू (मय असि) प्रजा का सुखकारी अथवा नियन्ता है। तू (अर्वा असि) सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने हारा, एवं सब विद्याओं का ज्ञाता है। तू (सप्तिः असि) शत्रु को पीड़ा करने हारा, अथवा राष्ट्र के सातों अंगों का स्वामी, या राष्ट्र में समवाय बनाकर रहने में समर्थ है। तू (वाजी असि) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और आक्रमण में वेगवान् है। तू (नृमणा असि) मनुष्यों के मान और आदर योग्य, सबके मनों का आकर्षक है। तू (ययुः नाम असि) शत्रुओं पर विजय करने के लिये प्रयाण करनेवाला होने से 'ययु' नाम से विख्यात है। तू (शिशुः नाम असि) शत्रियों को कृश, या दुर्बल, या नाश करनेवाला, राष्ट्र में व्यापक होकर रहने वाला होने से 'शिशु' नाम से कहाता है। पृथ्वी का पुत्र या शासक होने से भी तू 'शिशु' है। (आदित्यानां) सूर्य जिस प्रकार मार्गों के अनुसार द्वादश राशियों में गमन करता है उसी प्रकार तू आदित्य के समान तेजस्वी होकर द्वादश राज-मण्डल के बीच में (पत्वा) राजमार्ग से (अनु इहि) गमन कर। अथवा—(आदित्यानां) आदित्यों के समान विद्वान् पुरुषों के (पत्वा) गमनयोग्य मार्ग का (अनु इहि) अनुसरण कर। हे (देव) विजय की

कामना करनेवाले ! (भागपाला) दिशागामिनी प्रजा के पालक मण्डलिक राजगण ! आप लोग (देवेभ्य) विद्वान् पुरुषों, विनादी और दानशील पुरुषों की उन्नति और (मेधाय) राष्ट्र के बलवृद्धि या शत्रुओं के नाश के लिये (एनं) इस (प्रोक्षित) अभिषिक्त हुए राजा की (रक्षत) रक्षा करो । (इह) इस राष्ट्र में (रन्तिः) चित्त की प्रसन्नता है । (इह रमताम्) यहां रमण करे । (इह धृतिः) इस राष्ट्र में धारण करने की सामर्थ्य है (इह) इसमें हो (स्वधृतिः) अपनी पूर्ण धृति अर्थात् धारण शक्ति हो । (स्वाहा) इससे तेरा उत्तम यश और आदर हो ।

यही विशेषण अश्व, विद्वान्, परमेश्वर और आत्मा पक्ष में भी लगते हैं । मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद । शत० ।

[1]काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा [2]सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥

प्रजापति ऋषिः । (१) विराट् [illegible] । (२) निचृद[illegible] । [illegible] ॥

भा०—(काय कस्मै कतमस्मै) साधनों के करनेवाले, सुख-स्वरूप साधकों में भी श्रेष्ठ, प्रजापालक प्रजापति का (स्वाहा) उत्तम मान, आदर करो । (आधिम्) आर्धान, अधिष्ठान या पदार्थमात्र करनेवाले का और (आधीताय) मनन किए हुओं को पालनेवाले का (स्वाहा)

२० [illegible]

उत्तम अन्नादि से सत्कार करो। (मन=मनसे) मननशील और (प्रजापतये) प्रजा के पालक का (स्वाहा) उत्तम रीति से आदर करो। (चित्त-चित्ताय) चित्त के समान चिन्तन करनेवाले का और (विज्ञाताय) विज्ञान और उसके विशेष ज्ञाता का आदर करो। (आदित्यै स्वाहा) पृथिवी और माता का आदर करो। (अदित्यै मह्यै) अखण्ड, पृथ्वी, पूजनीय माता और विशाल अखण्ड शासन की व्यवस्था और पूज्य गोमाता का (स्वाहा) आदर करो। (सुमृडीकायै आदित्यै स्वाहा) समस्त सुखों के देनेवाली, माता, वेदवाणी का उत्तम उपयोग करो। (सरस्वत्यै स्वाहा) सरस्वती, वेदवाणी, स्त्री और विद्वत्सभा का आदर, आज्ञापालन, सम्मान करो। (पावकायै सरस्वत्यै) पावन, पवित्र करनेवाली ज्ञानमयी ब्रह्मशक्ति की (स्वाहा) पूजा करो। (बृहत्यै सरस्वत्यै) बृहती, बड़ी भारी, विद्वानों की सभा या प्रभुवाणी का (स्वाहा) अभ्यास, मनन, श्रवण और अध्यापन, वाचन, दान करो। (पूष्णे स्वाहा) पोषक पुरुष का आदर करो। (प्रपथ्याय) उत्तम पथ्य, आहारयोग्य पोषक अन्न का (स्वाहा) सदुपयोग करो। और (नरन्धिषाय पूष्णे) मनुष्यों को धारण पोषण करनेवाले प्रजापालक राजा का (स्वाहा) उत्तम रीति से आदर करो। (त्वष्ट्रे स्वाहा) त्वष्टा, शिल्पी का आदर करो, उसे उत्तम उपयोग में लगाओ। (तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा) तुरीप अर्थात् नौकाओं के पालक अथवा बुनने के यन्त्रों के पालक, अथवा वेगवान् रथों के पालक, निर्माता का आदर और (पुरुरूपाय त्वष्ट्रे) नाना रूपों के पदार्थों के बनाने वाले त्वष्टा, परमात्मा की उपासना करो। (विष्णवे स्वाहा) व्यापक परमेश्वर की उपासना करो। (निभूयपाय विष्णवे स्वाहा) सब के नीचे, सब का आश्रय होकर, जो सब की रक्षा करे उस व्यापक शक्तिमान् राजा का आदर करो। और (शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा) समस्त पशुओं में व्यापक रूप से, अथवा शक्ति रूप से या किरणों में तेज रूप से विद्यमान तेजस्वी, सर्वोत्पादक प्रभु शक्ति का आदर करो।

यही सब नाम ईश्वर, परमेश्वर आत्मा और राजा के भी होने से उन में इन गुणों का रखना जा सकता है।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ २१ ॥

अग्निर्ऋषिः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(विश्व) समस्त (मर्त्तः) मनुष्य, मरणशील प्राणीमात्र (नेतु देवस्य) नायक राजा के (सख्यम्) मित्रभाव को (वुरीत) प्राप्त करे। (विश्वः मर्त्तः) समस्त मनुष्य (रायः) धनों को (इषुध्यति) चाहते हैं। और सभी (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (द्युम्नं) धनैश्वर्य को (वृणीत) प्राप्त करना चाहते हैं। उसी के लिये (स्वाहा) उत्तम व्यवहार से रहो। विशेष व्याख्या देखो (अ० ४। ८)।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥

लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—१ (ब्रह्मन्) 'महान् शक्ति वाले ब्रह्मन्' 'परमेश्वर' (राष्ट्रे) राष्ट्र में (ब्राह्मणः) ब्रह्म, वेद का विद्वान्, ज्ञानी पुरुष (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चस्वी, वीर्यवान् (आ जायताम्) हो। और राष्ट्र में (राजन्यः) राजा का पुत्र या क्षत्रियगण (शूरः) शूर, (इषव्यः) धनुर्धर (अतिव्याधी) अति वेग और बल से शत्रु को पराजित करने वाला (महारथः) महारथी, बड़े २ रथारोही वीरों का स्वामी, (आ जायताम्) हो। (धेनु

२२—०' ब्रह्मन्' इति काण्व०।

दोग्ध्री) गाय बहुत दूध देन वाली, (अनड्वान् वोढा) बैल खूब बोझा उठाने में समर्थ, (आशु सप्तिः) घोडा अति वेगवान् और (योषा पुरन्धि) स्त्री कुटुम्ब को धारण करने में समर्थ हो। (जिष्णु रथेष्ठा) रथ पर स्थित वीर विजयशील हो। (अस्य यजमानस्य) सब को वेतन और जीवन वृत्ति देने हारे राजा के राष्ट्र में (सभेय युवा) सभा में साधु उत्तम वक्ता और युवा, स्त्रियों के हृदयों का ग्रहण करने वाला, (वीर) वीर्यवान् पुरुष (आ जायताम्) हो। (नः) हमारे राष्ट्र में (*निकामे निकामे*) *प्रत्येक प्रार्थना के अवसर पर जब जब भी हमें आव*-श्यकता हो तब २ (पर्जन्य वर्षतु) मेघ बरसे। (नः) हमारी (ओषधयः) ओषधि, अन्न आदि (फलवत्यः) फल वाली होकर (पच्यन्ताम्) पकें। (नः) हमारे राष्ट्र में (योगक्षेम) जो धन पहले प्राप्त न हो वह प्राप्त हो, जो प्राप्त है वह सुरक्षित (कल्पताम्) रहे।

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

प्राणादयो देवता । स्वराडनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—(प्राणाय) भीतर से बाहर आने वाला निश्वास 'प्राण' है। और (अपानाय) बाहर से भीतर जाने वाला उच्छ्वास अपान है। अथवा इससे विपरीत समझें। अथवा नाभि तक सचरण करने वाला श्वासो-च्छ्वास 'प्राण' है। नाभि से गुदा तक व्याप्त, एव नीचे की तरफ के मलों को *बाहर करने वाला बल 'अपान' है। इन दोनों को (स्वाहा) योग क्रिया* से वश करना चाहिये। (व्यानाय स्वाहा) इसी प्रकार शरीर के अन्य शिर, बाहु, जघा आदि में विद्यमान प्राण ही 'व्यान' है। उसका भी उत्तम रीति से *ज्ञान और अभ्यास करना चाहिये। (चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा)* चक्षु को उत्तम रीति से देखने के कार्य में लगाओ, एव दर्शन शक्ति को उत्तम

रीति से प्राप्त करो । श्रोत्र को गुरु के उपदेश में लगाओ और श्रवण शक्ति की वृद्धि करो । (वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा) वाणी को उत्तम रीति से प्राप्त करो और मन को उत्तम रीति से एकाग्र करो । शरीर में प्राण, अपान व्यान चक्षु, श्रोत्र वाणी और मन को हृष्ट पुष्ट करो इसी प्रकार राष्ट्र शरीर के इन भागों को भी पुष्ट करो ।

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४ ॥

[illegible] । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(प्राच्यै दिशे) सूर्य प्रातः जिस दिशा को प्रथम स्पर्श करता है वह सूर्योदय की दिशा 'प्राची' है । (अर्वाच्यै दिशे) उसके समीप की कोण दिशा 'अर्वाची' है । (दक्षिणायै दिशे) पूर्वाभिमुख के दाहिने हाथ की दिशा 'दक्षिणा' है उसके समीप की (अर्वाच्यै दिशे) एक कोण दिशा 'अर्वाची' है । (प्रतीच्यै दिशे) पूर्वाभिमुख खड़े पुरुष की पीठ पीछे की दिशा 'प्रतीची' या पश्चिम दिशा है । उसके पास की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है । (उदीच्यै दिशे) पूर्वाभिमुख पुरुष के बायें हाथ की दिशा 'उदीची' है उसके समीप की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है । इसी प्रकार (ऊर्ध्वायै दिशे अर्वाच्यै दिशे) पुरुष के सिर के ऊपर की दिशा ऊर्ध्वा है उसके पास का कोण दिशा 'अर्वाची' है । और (अवाच्यै, अर्वाच्यै दिशे) पैरों के नीचे की दिशा 'अवाची' और उसकी कोण दिशा 'अर्वाची' है ।

इस प्रकार ४ दिशाएं १२ उपदिशाएं हैं उनका उत्तम रीति से ज्ञान और उपयोग करो । इसी प्रकार राष्ट्र की सभी दिशाओं को उत्तम रीति

मे रक्षा और विजय करनी चाहिये। इसी प्रकार विजिगीषु और प्रजापति की भी दिशाएं हैं। देखो ब्रात्यसूक्त अथर्ववेद।

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

जलादयो देवता । अष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(अद्भ्यः) सामान्य जल, (वार्भ्यः) रोगनिवारक, उत्तम जल, (उदकाय) गहरे प्रदेशों से ऊपर निकाले गये या गीला करने वाले, (तिष्ठन्तीभ्यः) एक स्थान पर खड़े रहने, या स्थिर परिमाण वाले (स्रवन्तीभ्यः) चूने या झरने वाले, (स्यन्दमानाभ्यः) प्रवाह से या नदी रूप से प्रवाह में बहने वाले, (कूप्याभ्यः) कूप के जल, (सूद्याभ्यः) झरनों के जल, (धार्याभ्यः) पात्रादि में धरे जल, (अर्णवाय) समुद्र और (समुद्राय) आकाशस्थ जल (सरिराय) वायुस्थ अथवा मध्यस्थ जल। इन सब को (स्वाहा) उत्तम रीति से शुद्ध करो, प्रयोग करो, संग्रह करो, उपयोग में लाओ जिससे सुख हो। जलों के समान प्रजाओं और सेनाओं के भी इतने भेद जानने चाहियें राजा उनको वश करे। जैसे आप्त प्रजा-जन 'आप' हैं। शत्रुवारक वीर प्रजाएं 'वार्' हैं। सदा खड़े रहने वाली सावधान वीर सेनाएं 'तिष्ठन्ती' हैं। साधारण वेग से जाने वाली 'स्रवन्ती' हैं। रथ-वेग से दौड़ने वाली 'स्यन्दमाना' हैं। गहरी खाइयों की आड़ में बैठी 'कूप्या' हैं। शत्रु पर प्रहार करने वाली 'सूद्या' हैं। विशेष अवसर के लिये सुरक्षित सेनाएं 'धार्या' हैं। संग्रहीत समस्त सेना समूह 'अर्णव' है, और उमड़ती सेनाएं 'समुद्र' हैं और शत्रु पर आक्रमण करती सेना 'सरिर' हैं।

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

विराडभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(वाताय, स्वाहा) बहने वाली, तीव्र वायु का उत्तम उपयोग करो, उसके समान प्रबलता से शत्रु पर आक्रमण करने और शत्रुरूप वृक्ष को तोड़ने वाले सेनापति का आदर करो। अथवा (स्वाहा) उसको उत्तम अन्न प्राप्त हो। (धूमाय स्वाहा) धूम, और धूम के समान काले मेघ, उत्तम रीति से उत्पन्न हों। धूम अर्थात् शत्रु को कंपाने वाले को आदर अन्न, मान प्राप्त हों। (अभ्राय स्वाहा) वर्षणकारी मेघ की पूर्व दशा के मेघ अच्छे प्रकार बनें। अभ्र अर्थात् बदली के समान राष्ट्र या शत्रु सेना पर छा जाने वाले को उत्तम अधिकार, मान आदर प्राप्त हो। (मेघाय स्वाहा) जल वर्षाने वाला 'मेघ' कहाता है, उसी के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष भी 'मेघ' है, उसका आदर हो। (विद्योतमानाय स्वाहा) विविध विद्युतों को पैदा करने वाला मेघ 'विद्योतमान' है उसकी उत्पत्ति हो। और विविध विद्याओं और गुणों से प्रकाशमान और अन्यों को प्रकाश देने वाला पुरुष 'विद्योतमान' है, उसको आदर और उन्नति प्राप्त हो। (स्तनयते स्वाहा) गर्जते हुए मेघ की वृद्धि हो। सिंहनाद करने पुरुष की वृद्धि हो। (अवस्फूर्जते स्वाहा) नीचे बिजुली फेंकते हुए मेघ की। और उस मेघ के समान ही आग्नेयास्त्रों का शत्रु पर प्रयोग करने वाले वीर सेनापति की विजय हो। (वर्षते स्वाहा, उग्रं वर्षते स्वाहा) बरसते

२१—'अवर्षते' इति काण्व०।

हुए प्रचण्ड वेग से बरसते हुए और भयकर तीव्रता से बरसते हुए मेघ बढ़ें और लाभकारी हों। उनके समान प्रजाओं पर सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करते हुए शत्रुओं पर भयकरता से शस्त्र बरसाते हुए और अति शीघ्रता से शस्त्र फेंकते हुए वीर सेनापति की वृद्धि और विजय हो। (उद्गृह्णते स्वाहा, उद्गृहीताय स्वाहा) जलों को पुन ऊपर उठाते हुए, और खूब जल लेलेने वाले मेघ अच्छी प्रकार उठें और बरसें। उनके समान शत्रु से और मित्र राष्ट्र और अपने राष्ट्र से बल, धन, ऐश्वर्य सग्रह करते हुए और कर चुके हुए वीर पुरुष की वृद्धि और विजय हो। (प्रुष्णते स्वाहा) स्थूल बूंदों से सींचते हुए या नदी ताल आदि को भरते हुए मेघ की वृद्धि हो। और प्रजा पर स्नेह से देखते हुए उस पर कृपा करते और धनधान्य से पूर्ण करते हुए की सदा वृद्धि और यश हो। (शीकायते स्वाहा) सेचन करते हुए, फुहार छोड़ते हुए मेघ की अच्छी प्रकार से उत्पत्ति हो। और इसी प्रकार सुखकारी धनधान्य, उपकारों और सद्वचनों से प्रजा पर सुख सेचन करते हुए राजा की खूब वृद्धि हो। (प्रुष्वाभ्य स्वाहा) मेघ के स्थूल बिन्दु सेचन करने वाली धाराओं की वृद्धि हो, राजा की भयकर प्रजा को समृद्ध करने वाली शक्तियों की वृद्धि हो। (ह्रादुनीभ्य स्वाहा) शब्द करने वाली विद्युतें बढ़ें। राजा की गरजती तोपें बढ़ें। (नीहाराय स्वाहा) कुहरे की वृद्धि हो। उसके समान शत्रु की लक्ष्मी को नि शेष रूप से हर लेने वाले सेनापति और राजा की वृद्धि हो।

इस मन्त्र में मेघ की सब दशाओं का और उसके समान आचरण करने वाले वीर सेनापति का वर्णन और उसकी वृद्धि की प्रार्थना भी है।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे

स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

अग्न्यादयो देवताः । जगती । निषादः ॥

भा०—(अग्नये स्वाहा) अग्नि का सदुपयोग, जाठराग्नि की वृद्धि और स्वस्थता तथा अग्रणी नेता का अभ्युदय हो। (सोमाय स्वाहा) सोम आदि ओषधि रस प्राप्त हों सब के प्रेरक राजा की उन्नति हो। (इन्द्राय स्वाहा) जीव की उन्नति हो परमेश्वर प्रसन्न हो विद्युत् गुणकारी हो, वह ऐश्वर्य सुख प्रदान करे। (पृथिव्यै स्वाहा) पृथिवी, (अन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा) अन्तरिक्ष और २ द्यौ तीनों लोक सुखकारी हों, (आशाभ्य स्वाहा) आशाएं दिशाएं सुखकारी हों, प्रजाएं बढ़ें, (ऊर्ध्वै दिशे स्वाहा) ऊपर की दिशा और (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) नीचे की दिशा ये सब तत्व फलें, फूलें और सुखकारी हों।

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासे-
भ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा
संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा चन्द्राय स्वाहा
सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा
दित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा
मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः
स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

नक्षत्रादयो देवताः । भुरिक्कृतिः । ऋषभः ।

भा०—(नक्षत्रेभ्य , नक्षत्रियेभ्य स्वाहा २) नक्षत्र, जो कभी अपने स्थान से च्युत नहीं होते और 'नक्षत्रिय', नक्षत्रों में गति करने वाले ग्रह, उपग्रह, ये सभी हमें सुखकारी हों। (अहोरात्रेभ्य , अर्धमासेभ्य , ऋतुभ्य , आर्तवेभ्य , संवत्सराय स्वाहा ५) दिन रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और ऋतुओं में होने वाले विशेष परिवर्तन और संवत्सर ये हमें सुखकारी हों। (द्यावापृथिवीभ्यां, चन्द्राय, सूर्याय, रश्मिभ्य स्वाहा ५) द्यौ, पृथिवी,

चन्द्र, सूर्य और रश्मियें सुखकारी हों। इनके शुभ लक्षण प्रकट हों। (वसुभ्य रुद्रेभ्य आदित्येभ्य स्वाहा ३) आठ वसु पृथिवी आदि ११ रुद्र= प्राण आदित्य द्वादश मास या अविनाशी काल के अवयव और (मरुद्भ्य स्वाहा) नाना वायुएं ये हमें सुखकारी हों। (विश्वेभ्य देवभ्य स्वाहा) समस्त अन्य दिव्य शक्तियां सुखकारी हों। (मूलेभ्य शाखाभ्य वनस्पतिभ्य, पुष्पेभ्य, फलेभ्य ओषधीभ्य स्वाहा ६) मूल, शाखा, वनस्पतियें, फूल फल और ओषधिगण ये सब हमारे लिये सुखकारी हों और हम उन सब उक्त पदार्थों को सुखकारी बनाने के उत्तम साधन उपस्थित करें।

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्य स्वाहाद्भ्य. स्वाहौषधीभ्य स्वाहा वनस्पतिभ्य स्वाहा परिप्लवेभ्य स्वाहा चराचरेभ्य स्वाहा सरीसृपेभ्य स्वाहा ॥ २६ ॥

पृथिव्यादयो देवता । निचृदत्यष्टि । गान्धार ॥

भा०—(पृथिव्यै अन्तरिक्षाय, दिवे, सूर्याय, चन्द्राय, नक्षत्रेभ्य स्वाहा) पृथिवी अन्तरिक्ष, आकाश सूर्य चन्द्र, नक्षत्र ये सब हमें सुख दें, हम इनको सुखकारी बनाने के उत्तम उपाय करें। (अद्भ्य ओषधीभ्य वनस्पतिभ्य स्वाहा) जल ओषधि और वनस्पति इनको हम उत्तम बनाने का साधन करें जिससे ये सुखकारी हों। (परिप्लवेभ्य चराचरेभ्य सरीसृपेभ्य स्वाहा) आकाश में स्वच्छन्दता से विहार करने, उपद्रव करने वाले धूमकेतु उल्का आदि, चराचर प्राणि और सर्प आदि रेंगने वाले जन्तु ये सभी हम सुखकारी हों, हम इनको सुखकारी बनाने का उत्तम उपाय करें।

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय

स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥ ३० ॥

प्राणादयो देवताः । कृतिः । निषादः ॥

भा०—(असवे स्वाहा) शरीर के रोगों को बाहर फेंकने वाले 'प्राण' की हम उत्तम साधना करें। (वसवे स्वाहा) शरीर में बसने वाले जीव की उत्तम साधना करें। (विभुवे स्वाहा) व्यापक वायु और परमेश्वर की हम साधना और उपासना करें। (विवस्वते स्वाहा) विविध वसु, वास योग्य लोकों को धारण करने वाले सूर्य को हम सुखकारी बनावें। इसी प्रकार शत्रु को बाहर निकालने के लिये अस्त्रों के फेंकने वाला 'असु', प्रजा को बसाने वाला 'वसु', विशेष सामर्थ्यवान् 'विभु', विविध ऐश्वर्यों से युक्त 'विवस्वान्', इन सब प्रकार के उत्तम आदर योग्य पुरुषों का हम आदर करें। (गणश्रिये) गण, संघ, सैनिक संघ से सुशोभित या संघों में सुशोभित सैनिकों को उत्तम वस्त्र आदि पदार्थ प्राप्त हों। (गणपतये स्वाहा) उन गणों के पालक का उत्तम आदर हो। (अभिभुवे स्वाहा) सन्मुख जाने वाले का और (अधिपतये) अधिपति का उत्तम मान आदर हो। (शूषाय स्वाहा) सैन्य बल की उत्तम वृद्धि और विजय लाभ हो। (संसर्पाय स्वाहा) शत्रुगण में गुप्त रूप से फैल कर उनके भेद लेने वालों को उत्तम जीविका प्राप्त हो। (चन्द्राय स्वाहा) आह्लादकारी पुरुष को और (ज्योतिषे) दीप्ति प्रकाश के उत्पादक को उत्तम पद प्राप्त हो। (मलिम्लुचाय स्वाहा) मारा मारी करके दूसरे के धन हरण करने वाले दुष्ट पुरुष का अच्छा दमन हो। और (दिवापतये स्वाहा) दिन के पालक अथवा दिन के समय दूर तक चलने वाले पथिक की उत्तम रक्षा हो।

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे

स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाᳬहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

मन्त्रद्रष्टा ऋषिः ॥ पुनिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(मधव स्वाहा) मधुरादि गुणों के उत्पादक 'मधु' नाम चैत्र को हम सुखकारी बनावें। इसी प्रकार (माधवाय, शुक्राय, शुचये, नभसे नभस्याय, इषाय, ऊर्जाय, सहसे, सहस्याय तपसे, तपस्याय, स्वाहा) वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण भाद्र आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ और फाल्गुन इन समस्त मासों को हम सुखकारी बनायें। और (अहम पतय स्वाहा) सब मासों में अवशिष्ट तिथियों के रूप में मरे हुए काल के पालक १३ वें मल मास को भी हम सुखदायी बनावें। इसके अतिरिक्त संवत्सर के समान प्रजापति के ये द्वादश मासों के समान द्वादश अधिकारी और तदनुसार प्रजापति राजा के १२ स्वरूपों के भी क्रम से ये नाम हैं।

मधुर स्वभाव होने से 'मधु', अन्न आदि मधु या उनका उत्पादक प्रबन्धक 'माधव', शुद्धि करने एवं तेजस्वी होने से 'शुक्र', ज्योतिष्मान्, सत्य व्यवहारवान् होने से 'शुचि', जलवर्धक होने या मेघ को बांधने वाला प्रबन्धक होने से 'नभस्', उस कार्य में उत्तम सहायक 'नभस्य' अन्नोत्पादक होने से 'इष्', बलोत्पादक या पराक्रमी होने से 'ऊर्ज', शत्रुदमन कारी बलवान् 'सहस्', उसका उत्तम सहयोगी 'सहस्य' शत्रुतापक 'तपस्', उसका उत्तम सहयोगी 'तपस्य' और पापी पुरुषों का अध्यक्ष जेलर 'अंहसस्पति' ये राजपदाधिकारी समझने चाहियें।

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥ आयुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पतां स्वाहापानो

प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहापानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ॥ ३३ ॥

भा०—(३२ । २३) की व्याख्या देखो मन्त्र से, अ० १८ मन्त्र २८ । २९ ॥ (स्व स्वाहा,) सुख और प्रकाश हमें उत्तम रीति से प्राप्त हों, (मूर्ध्ने स्वाहा) शिर हमारा उत्तम सुख प्राप्त करे, उसको हम उत्तम रीति से शुद्ध पवित्र बलवान् करें। (व्यश्नुविने स्वाहा) विविध कर्मों में व्यापक, वीर्य और उसके समान बलकारी पुरुष की वृद्धि हो।

(प्राण अपान, व्यान, उदान, समान, यज्ञेन, कल्पताम्, स्वाहा) प्राण अपान, व्यान, उदान, समान पांचों शरीरस्थ वायुएं हमारे यज्ञ, परस्पर सङ्गति, [illegible] साधना से अधिक बलशाली हों।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳬ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥ ३४ ॥

[illegible]

भा०—(एकस्मै, द्वाभ्यां, स्वाहा) एक परमेश्वर, दो कार्य और कारण, इनके [illegible] । ईश्वर की उपासना करो और कार्य और कारण का ज्ञान करो। इसी प्रकार (एकस्मै, द्वाभ्यां, त्रिभ्य, चतुर्थ्य, इत्यादि) एक, दो, तीन, चार, पांच आदि सभी संख्याओं से परिमित

३३—[illegible]

पदार्थों को सुख से प्राप्त करो, उनका सदुपयोग करो । और इन सख्या से परिमित आयु के वर्ष भी सुखकारी हों । उनको हम सुखकारी बनावें । और अन्त में सो वर्ष तक जीवें तब (शताय स्वाहा) सौ वर्ष का जीवन भी सुखकारी हो और अधिक जीवन हो तो (एकशताय स्वाहा) एक-सौ एकवा वर्ष भी सुखकारी हो । इससे अधिक की गणना दो, तीन आदि पहले कह चुके । विशेष पाप भावों को दहन करने वाली शक्ति की (व्युष्ट्यै स्वाहा) उन्नति हो, वह हमें प्राप्त हो । और (स्वार्गाय स्वाहा) स्वर्ग, अर्थात् सुख देनेवाले पदार्थ और उसके निमित्त पुरुषार्थ हमें उत्तम रीति से प्राप्त हों, उस आनन्दमय मोक्ष का हम साधना करें ।

॥ इति द्वाविंशोऽध्याय ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकविंशोऽध्यायः ॥



॥ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३ । ४ ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा । यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् [1] तू (उपयामगृहीतः असि) राज्यव्यवस्था या समस्त प्रजा के निर्धारित राजनियमों द्वारा स्वीकृत या बद्ध है (जुष्टं) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको (प्रजापतये) प्रजापति के पद के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं और नियुक्त करता हूं । (ते एषः योनिः) तेरा यह स्थान, पद अधिकार है । (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरा महान् सामर्थ्य है । अर्थात् सूर्य तेरे बड़े अधिकार और सामर्थ्य को बतलाता है । अर्थात् सूर्य जिस प्रकार दिन को प्रकट करता है वह अन्धकार का नाश करता है इससे दिन में सूर्य का महान् सामर्थ्य प्रकट होता है उसी प्रकार मनुष्य अन्धकार और अज्ञान को नाश करके प्रजा में सुख, शान्ति और ज्ञानप्रकाश पैदा कर सब प्रजाजन को कार्यों में प्रवृत्त कराने हार (यः) जो (ते) तेरा (अहनि) दिन में दिन के समान तेरे उज्ज्वल

१—[illegible]

राज्य में (महिमा) महान् सामर्थ्य (सबभूव) अच्छी प्रकार प्रकट हो रहा है और (सवत्सर) सूय जस वर्ष में १२ मासो को उत्पन्न कर उनमें भूलाक स जल ग्रहण कर पुन वर्षा कर अन्नादि उत्पन्न करता एव समस्त प्राणियों का पालन करता है उसी प्रकार प्रजा से कर लकर दुष्टों का दमन कर, सब का वर्षा क समान शान्ति दकर ऐश्वर्य को प्रना क हित लगा कर (सवत्सर) पुन समस्त प्रजाओं का एकत्र बसा दन रूप कार्य में (य ते महिमा) जो तरा महान् सामर्थ्य है और (वायो) वायु जिस प्रकार सब प्राणों का आधार है उसी प्रकार सब क जावनों का आधार हान म (य) जो तरा महान् सामर्थ्य (वायो) वायु नाम महा भूत मे आर (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष जिस प्रकार सब का आच्छादित करता है उसा प्रकार सब पर छत्र छाया रखन वाल तरा (य) जो (महिमा) महान् सामर्थ्य अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में (स बभूव) प्रकट होता है। अथवा — (अन्तरिक्षे वायौ) अन्तरिक्ष म जिस प्रकार वायु सर्व व्यापक आर बराकटाक बड़े वग स व्यापना गति करता है उसी प्रकार तू (अन्तरिक्ष) अपने और शत्रु राष्ट्र क बाच में स्थित मध्यम राष्ट्र में बेरोक गति करन का बडा प्रबल महान् सामर्थ्य है (दिवि सूय) परल महान् आकाश में जिस प्रकार सूर्य प्रखर तज म चमकता है कभी अस्त नहीं हाता, सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार (दिवि) तजोमय राजसभा मे तरा सूर्य क समान जा प्रखर (य महिमा सबभूव) महान् सामर्थ्य प्रकट है (तस्मै) उस (ते) तुम (प्रजापतय) प्रजापालक राजा के (महिम्न) महान् सामर्थ्य क लिये और (देवेभ्य) तेर अन्य देव, दानशील, विजयी विद्वान् तेजस्वी पुरुषों के लिये भी (स्वाहा) हम उत्तम आदर सत्कार करत हैं। परमेश्वर पक्षमें—योग के यम नियमों से तू साक्षात् किया जाता है। (जुष्ट) अति सवनीय तुमको (प्रजापतय गृह्णामि) प्रजापालक परमेश्वर करक मानता हू (एष) यह समस्त

विश्व (ते) तेरा निवासस्थान है। (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरी महिमा है, (यः ते अहन् संवत्सरे) प्रतिदिन और प्रतिवर्ष में जो तेरा महान् सामर्थ्य (सं बभूव) प्रकट होता है, (यः ते महिमा वायौ अन्तरिक्षे सं बभूव) जो तेरी महिमा वायुगण और अन्तरिक्ष में विद्यमान है और (यः ते दिवि सूर्ये महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य तेजोमय सूर्य में प्रकट है उस महान् सामर्थ्य स्वरूप समस्त प्रजापालक परमेश्वर की और (देवेभ्यः) उसके प्रकट दिव्य गुणों की मैं (सु-स्वाहा) सदा उत्तम स्तुति करूं।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

क प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—परमेश्वर पक्ष में—(यः) जो परमेश्वर (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (प्राणतः) प्राण लेने वाले और (निमिषतः) नेत्रादि के चेष्टा करने वाले सजीव, चर (जगतः) जगत् का (एकः इत्) एकमात्र (राजा बभूव) राजा है। और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये मनुष्य, पक्षी और (चतुष्पदः) चौपाये पशु संसार का भी (ईशे) स्वामी है (कस्मै देवाय) उस 'क' प्रजा के विधाता, परमेश्वर, प्रजापति, देव, सर्वद्रष्टा, सर्व सुखदाता के लिये (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति, सेवा, प्रार्थना करें।

राजा के पक्ष में—(यः) जो (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से समस्त प्राणधारी जगत् का राजा है, और दुपाये चौपायों का स्वामी है, उस राज्यकर्त्ता, विधाता, प्रजापति का हम (हविषा) उसकी आज्ञानुसार अन्न कर अथवा अन्नादि भेट योग्य पदार्थ द्वारा (विधेम) सत्कार करें।

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

विकृति। मध्यम ॥

भा०—(उपयामगृहीत असि०) इत्यादि पूर्ववत्। हे राजन्! (ते महिमा चन्द्रमा) तेरे महान् सामर्थ्य का एक स्वरूप चन्द्र है। अर्थात् तू चन्द्र के समान सबको आह्लादित, सुखी करता, रात्रि में भी प्रकाश और पहरेदारी करता है। अर्थात् (य ते रात्रौ संवत्सरे महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य रात्रि और संवत्सर में (स बभूव) प्रकट होता है और (य ते महिमा पृथिव्याम् अग्नौ स बभूव) जो तेरा महान् सामर्थ्य पृथिवी पर अग्नि अर्थात्-शत्रुतापक नायक अग्रणी के रूप में प्रगट होता है, (य ते महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य (नक्षत्रेषु चन्द्रमसि) नक्षत्रों और उसके बीच में उपस्थित चन्द्रमा में (स बभूव) प्रकट है, उस (ते प्रजापतये महिम्ने) तुझ प्रजापति के महान् सामर्थ्य और (देवेभ्यः) तेरे दिव्य गुणों के लिये (स्वाहा) हम तेरा आदर सत्कार करते हैं। राजा का महान् सामर्थ्य रात्रि में कैसे? रात्रि में जिस प्रकार चन्द्र प्रकट होता है उसको प्रकाशित करता है और रात्रि चन्द्र को अधिक उज्वल करता है इसी प्रकार ऐश्वर्यों को देनेवाली, समस्त प्राणियों को रमण कराने वाली राजसभा या राष्ट्र-शक्ति में राजा का महत्ता प्रकट होता है। जिस राजव्यवस्था में प्रजाएं सुखी, रात को सुख से निर्भय रहेंगी वह व्यवस्था राजा का महिमा है। इसी प्रकार चन्द्रमा संवत्सर में नाना स्वरूप प्रकट करता है। सभी मासों पक्षों का प्रवर्तक है। उसी प्रकार जो संवत्सररूप राष्ट्र है जिसमें सब प्राणी एकत्र सुख से रहते हैं, उसमें चन्द्

स्वरूप राजा की महत्ता प्रकट होती है। पृथिवी पर अग्नि की महती सत्ता प्रकट होती है, वह सब को भस्म कर देती है उसी प्रकार राजा पृथिवी पर समस्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं को भस्म कर देता है। नक्षत्रों के बीच में जैसे चन्द्रमा की शोभा है वैसे ही 'नक्षत्र' अर्थात् क्षत्र-बल से रहित प्रजाओं के बीच क्षत्रिय राजा की शोभा है।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर का महान् सामर्थ्य व्यक्त है उसका महान् सामर्थ्य रात्रि में, संवत्सर में, पृथिवी में, अग्नि में, नक्षत्रों में, चन्द्रमा में, सभी दिव्य पदार्थों में विद्यमान है। उन्हीं दिव्य गुणों के लिये हम प्रजापालक परमेश्वर की स्तुति उपासना करें।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । सूर्याग्निचन्द्रात्मसेनाः स्तुतिविषया देवता । गायत्री छन्दः ।

भा०—परमेश्वर पक्ष में—जो विद्वान्, योगाभ्यासी जन (ब्रध्नम्) महान्, सूर्य के समान, सब के मध्य में स्थित होकर, सबको अपनी आकर्षण शक्ति से बांधने वाले, (परि तस्थुषः) अपने चारों ओर स्थिर चेतना रहित, महान्, पञ्च भूत आदि प्रकृति के विकार-पदार्थों के भीतर और बाहर सब प्रकार से (चरन्तम्) व्यापक (अरुषं) शरीर के सभी मर्मों में विराजमान आत्मा को (युञ्जन्ति) योग द्वारा साक्षात् करते हैं। वे (दिवि) ज्ञानमय मोक्ष में (रोचना) स्वतः दीप्तिमान् एवं यथा काल, यथारुचि होकर (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं।

आत्मा के पक्ष में—जो योगाभ्यासी (परितस्थुषः) चारों ओर स्थित इन्द्रियों में व्याप्त, (ब्रध्नम्) सब को अपने साथ बांधने वाले आत्मा को, अथवा, (तस्थुषः) स्थावर या स्थूल स्थिर देहों के (परि)

आधार पर (चरन्तम्) भोग करने हारे (अरुषम्) मर्मों में व्यापक आत्मा को योग द्वारा प्राप्त करते हैं वे (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (रोचना) यथेष्ट प्रज्वलित होकर (रोचन्ते) सबके प्रीतिपात्र होते है, अथवा प्रकाशित होते हैं, अथवा यथेष्ट कामों को प्राप्त करते हैं।

सूर्यपक्षमें—(दिवि) आकाश में (रोचना) तेजस्वी नाना सूर्य (रोचन्ते) चमकते हैं। (परि तस्थुष) चारों ओर स्थित ग्रहों तक (चरन्तम्) प्रकाश से व्यापनेवाले (ब्रध्नम्) उनको आकर्षण सामर्थ्य से बाधने वाले (अरुषम्) अति दीप्त सूर्य को (युञ्जन्ति) सब के सञ्चालक रूप से नियुक्त करते हैं।

राजा के पक्ष में—विद्वान् लोग (परितस्थुष) चारों ओर खड़े रहनेवाले, अनुयायी लोगों और देशों को (चरन्तम्) भोग और पराक्रम द्वारा प्राप्त करनेवाले (अरुषम्) रोष रहित सौम्य स्वभाव के, (ब्रध्नम्) सूर्य के समान तेजस्वी, सबके बांधनेवाले, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, महान् पुरुष को (युञ्जन्ति) राष्ट्रपति के पद पर नियुक्त करें और (रोचना) तेजस्वी पुरुष (दिवि) राजसभा में (रोचन्ते) विराजें।

युञ्जन्त्य॑स्य॒ काम्या॒ हरी॒ विप॑क्षसा॒ रथे॑।
शोणा॑ धृ॒ष्णू नृ॒वाह॑सा ॥ ६ ॥

सूर्यो देवता। विराड गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(काम्या) कमनीय, कान्तिमान्, सुन्दर (विपक्षसा) विविध बन्धनों से बंधे (हरी) दो घोड़ों को (रथे) रथ में जिस प्रकार (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं उसी प्रकार (रथे) रमण योग्य इस शरीर में (काम्या) कान्तियुक्त, (विपक्षसा) विविध उपायों से वश में आये (हरी) वेगवान् प्राण और अपान को (युंजन्ति) योग द्वारा नियुक्त करते हैं। उसी प्रकार योगी जन (अस्य रथे) इस परमेश्वर के परम रस

भा०—हे राजन् ! (वसवः) वसु नामक विद्वान् जन (त्वा) तुझको (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री मन्त्र से, अथवा पृथ्वी पालन, अथवा ब्राह्मबल से (अञ्जन्तु) ज्ञानवान् एवं युक्त करें । (रुद्राः) रुद्र नैष्ठिक पुरुष (त्वा) तुझको (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुभ मन्त्र से (त्वा अञ्जन्तु) तुझको ज्ञानवान् करें अथवा (रुद्राः) क्षत्रियगण तुझको क्षात्रबल से युक्त करें । (आदित्याः) आदित्य ब्रह्मचारी लोग (त्वा) तुझको (जागतेन छन्दसा) जगती छन्द के मन्त्रों से शिक्षित करें और वैश्यगण व्यापारों द्वारा तुझे समृद्ध करें ।

इसी प्रकार परमेश्वर के स्वरूप को (वसवः) बसनेवाले, जीवगण जीवों के बसाने वाले पृथिवी आदि लोक (गायत्रेण छन्दसा) पृथ्वी लोक के ज्ञान से प्रकाशित करते हैं । (रुद्राः) अन्तरिक्षस्थ वायु प्राण आदि पदार्थ (त्रैष्टुभेन छन्दसा) अन्तरिक्षस्थ जल वायु विद्युत् पदार्थों से परमेश्वर के स्वरूप को प्रकट करते हैं । सूर्य आदि लोक जागत छन्द में अर्थात् नाना जगतों के स्वरूप में ईश्वर के महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं । हे विद्वान् पुरुषो ! (भूः भुवः स्वः) पूर्व कहे उक्त तीनों लोक हैं भूः, भुव, स्वः, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और प्रकाशस्थ लोक इन तीनों को तू वश कर । हे (लाजिन्) प्रकाशों से प्रकाशवान् और हे (शाचिन्) शक्ति से शक्तिमान् ! तू उक्त लोकों को अपने वश कर । हे (देवाः) विद्वान् पुरुष ! (यव्ये) जव आदि से बने और (गव्ये) गो दुग्ध आदि के बने पदार्थ के स्वरूप में विद्यमान (एतत्) इस (अन्नम्) भोजन करने योग्य अन्न को (अत्त) खाओ । हे (प्रजापते) प्रजापालक राजन् ! तू भी (एतत् अन्नम्) इस अन्न को (अद्धि) भोजन कर ।

लाजिन् शाचिन् इत्येतत् संबोधनपदद्वयम् । दूराद्धाने प्लुतिः । लाजाः दीप्तयोऽस्य सन्तीति लाजी दीप्तिमान् । शाचाः शक्तयोऽस्य सन्तीति स शाची । शक्तिमान् इत्यर्थः ।

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ९ ॥

[९-१२] [illegible] । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—बतलाओ (कः स्वित्) कौन (एकाकी चरति) अकेला विचरता है ? (क उ स्वित्) बतलाओ कौन (पुनः) बार २ पैदा होता है ? (किं स्वित्) बतलाओ क्या पदार्थ (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) उपाय है ? (किम्) और कौनसा पदार्थ (महत्) बड़ा भारी (आवपनम्) बोने का खेत है ?

सूर्यऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १० ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य, सूर्य के समान सबका प्रेरक परमेश्वर और विद्वान् परिव्राट् और राजा (एकाकी चरति) अकेला, अद्वितीय विचरता है। (चन्द्रमाः) चन्द्र जिस प्रकार बार २ पैदा होता है कला घटके २ नाश शेष होकर पुनः कलावृद्धि से बढ़ता है उसी प्रकार जीव आत्मा बालक रूप से बढ़कर युवा होता, पुनः क्षीण होकर मृत्यु द्वारा नष्ट हो जाता है, अथवा योग द्वारा मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः संसार में आता है। इसी प्रकार प्रजा को आह्लादित करनेवाला राजा युद्धादि में क्षीण होकर पुनः समृद्ध हो जाता है। (अग्निः) अग्नि, (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) उपाय है। (हिमस्य) हनन करनेवाले शत्रु या दुष्ट पुरुष का वश करने का उपाय भी (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा ही है। (भूमिः) यह भूमि ही (महत् आवपनम्) बड़ाभारी बीज बोने के योग्य खेत है। समस्त स्थूल विकारों को उत्पन्न करनेवाली प्रकृति ही परमेश्वर के बीज वपन का स्थान है। यही 'क्षेत्र' है। परमात्मा 'क्षेत्री' है।

आदित्यस्य हि सहायनैरपेक्ष्येण जगद्भ्रमणं प्रसिद्धम्। कृष्णपक्षे क्षीणश्चन्द्रः शुक्लपक्षे पुनर्जायत इति प्रसिद्धम्। अग्निसेवया हि शैत्योपद्रवो निवर्तते इति सायण तै० ब्रा० भाष्य [तै० ब्रा० । ८ । ३ । ६ । ५ ॥]

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳪस्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

भा०—(पूर्वचित्ति) सबसे पूर्व की स्मरण करने योग्य (का आसीत्) कौनसी स्थिति है। और (कि स्वित्) बताओ ! कौनसा (बृहद् वय) सबसे बड़ा बल है। (का स्वित्) कौनसी (पिलिप्पिला) पिलिप्पिला' सुन्दर अर्थात् शोभावती है ? (का स्वित्) कौनसी (पिशंगिला) 'पिशंगिला' अर्थात् समस्त रूपों को निगल जाने वाली है।

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ १२ ॥

भा०—(द्यौ) द्यौ, वृष्टि ही (पूर्वचित्ति) 'पूर्वचित्ति' है अर्थात् सबसे प्रथम स्मरण करने योग्य पदार्थ है। (अश्व) समस्त पदार्थों को भस्मकर खाजाने वाला, सर्वव्यापक अग्नि ही (बृहत् वय) सबसे बड़ा बल है और (अवि) सब की रक्षिका भूमि (पिलिप्पिला) 'पिलिप्पिला' सब से अधिक शोभा वाला है। (पिशंगिला) और 'पिशंगिला', समस्त पदार्थों के रूपों को निगलजाने वाली (रात्रि आसीत्) रात्रि है।

राष्ट्र पक्षमें—सबसे पूर्व चयन या निर्माण करने योग्य, (द्यौ) प्रकाश ज्ञानवाली राजसभा है। (अश्व) सर्व राष्ट्र का भोक्ता राजा या तुरग बल ही (बृहद् वय) बड़ा भारी बल है। (अवि) सबका रक्षा करनेवाली राजशक्ति (पिलिप्पिला) पालन करनेवाली 'राष्ट्र श्री' है। (रात्रि) समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाली, सबको रमानेवाली रात्रि, राजशक्ति ही (पिशंगिला) समस्त रूपवान् पदार्थों को अपने भीतर निगल जाती है।

अर्धं पिशिपिला । अहोरात्रे वै पिशङ्गिला । शत० १३ । २ । ६ । १६ ॥ या वृष्टिकारणभूता द्यौः सैव प्रथमम् आदपमाना । प्रथमतः वृष्टि नस्या पश्चादापधिद्वारा सर्वं लालिता नार्या इ । पुत्रद्वारा वीरत्वावच इत्युपदेशो बृहद्वय ॥ शलिनायक स्यपत्नी पिशङ्गिला रात्रिश्च तददर्श धान्दिकया नक्षत्रैश्च स्यपत्नातिभामात् प्रजाससदनिमित्तस्य प्रतिविशेषस्य पिशिपिलत्वमनुकरत धाम तथाविधप्रजानिपुत्रा यस्मिन् गृहे धन मणोदिसन जनबाहुल्यतया निरन्तर तथाविध शब्दा भवति । इति सायण ।

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलि-र्वृद्ध्या । एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

मन्त्रोक्ता देवताः । भुरिगतिजगती । निषादः ।

भा०—हे राजन् ! (त्वा) तुझको (वायु) वायु के समान वेगवान्, शत्रुओं का दमन करने वाला और उत्साहन वाला वीर पुरुष (पचतैः) अपने शत्रुओं को परिपाक या पीड़न करने के साधनों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे। (असितग्रीवः) नील गर्दन वाला अर्थात् नील मणि या विशेष चिह्न को कण्ठ में पहनने वाला वीर पुरुष तुझे (छागैः) शत्रुओं के छेदन करने वाले शस्त्रों या वीरों से (अवतु) तेरी रक्षा करे। (न्यग्रोधः) वट जिस प्रकार ज्यों २ फैलता जाता है त्यों स्थान २ पर अपने मूल फैलाता है उसी प्रकार जिस २ देश का विजय करता जाय वहीं वहीं हो स्थापना जमा कर राजा के शासन सूत्रों का दायनहारा 'वनस्पति' नामक अधिकारी (चमसैः) पर राष्ट्र का भक्षण करने या हड़प जाने वाले सैनिकों द्वारा या विजयमात्रों, यन्त्रबद्ध भूपों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे। (शल्मलिः वृद्ध्या) और सेमर वृक्ष के समान स्वयं विशाल हो कर फैला २ कर बढ़ने और परिमाण में

उड़ा २ कर मानो राजा की कीर्त्ति फैलाने वाला अधिकारी या प्रधान माण्डलिक अपनी वृद्धि मे तुझे बढावे। (एष) यह (अस्य) इस राजा का (राथ्य) रथ समूहों का स्वामी (वृषा) बलवान् सेनापति (चतुर्भि पड्भि) चार पदों या अधिकारों से युक्त होकर (आ अगन् इत्) आवे और (अकृण च) अकृण अर्थात् शुक्ल, निष्पाप या शुद्ध श्वेतवस्त्र धारण करने हारा (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता होकर (न) हमें (अवतु) रक्षा करे। (नम अग्नय) उस अग्नि के समान तेजस्वी वेदज्ञ विद्वान्, अग्नि के समान तेजस्वी राजा और सेनापति का हम प्रजाजन झुक कर आदर करें।

सꣳशितो रश्मिना रथ सꣳशितो रश्मिना हय ।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगव ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (रश्मिना) रस्सी से (संशित) अच्छी प्रकार बँधा (रथ) रथ अच्छा सुखकारी होता है और जिस प्रकार (हय) घोड़ा भी (रश्मिना) रासों से बधा हुआ उत्तम और वशीभूत रहता है उसी प्रकार (अप्सुजा) प्रजा में से उत्पन्न विद्वान् (अप्सु संशित) प्रजाओं द्वारा ही भली प्रकार नियम व्यवस्थाओं और कर्म, कर्त्तव्यों से बद्ध हो। और (ब्रह्मा) ब्रह्म अर्थात् वेद का जानने हारा विद्वान् ही (सोम-पुरोगव) राजा के आगे २ चलने हारा उसका मार्गदर्शक हो। अथवा—(अप्सुजा) प्रजाओं में विशेष तेज से स्वामी बनने वाला राजा (अप्सु संशित) प्रजाओं द्वारा ही खूब तीक्ष्ण, एव कर्त्तव्यपरायण, व्यवस्था बद्ध किया जाकर (ब्रह्मा) महान् शक्तिमान् प्रभु और विद्वान् के समान (सोम पुरोगव) ऐश्वर्य या राष्ट्र का नेता हो।

अध्यात्म में—(रथ) रमण साधन देह, (रश्मिना) सूर्य के किरण के समान तापदायी तप से (संशित) तीक्ष्ण किया जाय।

(इयः) इन्द्रियें भी तप में संयुक्त हों। (अश्नुत) [illegible] तप हों। और तब (महान्) विद्वान् लोगों (सोम पुरुष) सोमवत् [illegible] रस प्राप्ति में समर्थ होता है।

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥

विराट् छन्दः ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! तू (तन्वं) अपने शरीर या विस्तृत राष्ट्र को (स्वयं) स्वयं, अपनी इच्छानुसार (कल्पयस्व) सजा, उत्तम और समर्थ, अधिक बलवान् बना। (स्वयं यजस्व) स्वयं यथेच्छ दान कर, अथवा स्वयं अन्यों से सङ्गति लाभ कर। (स्वयं जुषस्व) स्वयं यथेच्छ राष्ट्र का प्रेम से सेवन कर। (अन्येन) अन्य, तेरे से भिन्न २ कोई, तेरा शत्रु राजा (ते) तेरे (महिमा) महान् सामर्थ्य को न (स नशे) नाश नहीं कर सके। अथवा तेरी महिमा का कोई नाश नहीं करे।

अध्यात्म में—हे (वाजिन्) आत्मन्! तू अपने शरीर को यथेच्छ ग्रहण कर। स्वयं (यजस्व) आत्मदान यज्ञ कर। स्वयं (जुषस्व) सेवन कर। तेरी महिमा तुझ से अन्य, जड़ देह, नाशादि नाश नहीं कर सकती।

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

[illegible] ॥

भा०—(न वा) और न ही (एतत्) इस प्रकार [illegible] होजाने पर तू (म्रियसे) मर सकता है। (न रिष्यसि) और न [illegible] अन्य विद्वान् [illegible] और विद्वज्जन, या तुझे [illegible] या तुझ से धन चाहने वाले लोगों को (इत्) ही (एषि) [illegible]

कर। तू (सुगेभि) सुख से गमन करने योग्य, सुगम (पथिभि) प्रजा पालन के मार्गों से (एधि) गमन कर। (यत्र) जिस मार्ग में (सुकृत) उत्तम सदाचारी पुरुष (आसत) स्थित रहते हैं और (यत्र) जिस पर उच्च यशस्वी पद का (ते ययु) वे प्राप्त होते हैं। (देव सविता) सब का द्रष्टा और दाता सर्वोत्पादक परमेश्वर या तेरा मार्गदर्शक प्रेरक विद्वान् (तत्र) वहां ही (दधातु) स्थापित करे।

अग्नि पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्नि स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैताऽ अप । वायु पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायु स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अप । सूर्य पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्य स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अप ॥ १७ ॥

अग्न्यादयो देवता । अतिशक्वर्यौ पञ्चम ॥

भा०—(अग्नि) 'अग्नि', ज्ञानी (पशु) सर्वद्रष्टा, मार्गदर्शक, निरीक्षक (आसीत्) है। (तेन) उससे विद्वान् लोगों के समान दिव्य पदार्थ भूत (अयजन्त) यज्ञ किया करते हैं। (स) वह (एतं लोकम्) इस लोक को (अजयत्) विजय कर लेता है, (यस्मिन् अग्नि) जिसमें अग्नि तत्व ही मुख्य बल है। तू भी हे राजन्, अग्नि के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र का निरीक्षक साक्षी होकर रह। और इससे (स) वह यह भूलोक (ते लोक) तेरा अपना आश्रयस्थान (भविष्यति) हो जाएगा। तू (तं जेष्यसि) उसी लोक का विजय कर लेगा। इसके लिये (एता अप) इन आप्त पुरुषों का ज्ञान रस और इन प्रजाओं के ऐश्वर्य रस का (पिब) पान कर।

(वायु पशु आसीत्) 'वायु सर्वद्रष्टा है (तेन अयजन्त) देवगण उससे यज्ञ करते हैं। (स) वह वायु (एतम् लोकम् अजयत्) इस

अन्तरिक्ष लोक का विजय करता है (यस्मिन् वायुः) जिसमें वायु प्रधान बल है । (ते सः लोकः भविष्यति) तेरा वही लोक हो जायगा (एताः अपः पिब) तू इन आप्त जनों और प्रजागणों के ज्ञान और ऐश्वर्य का पान कर ।

(सूर्यः पशुः आसीत्) सूर्य पशु, सर्वद्रष्टा है । देवगण (तेन अयजन्त) उससे ही यज्ञ सम्पादन करते हैं । (सः एतं लोकम् अजयत्) सूर्य उस लोक का विजय करता है (यस्मिन् सूर्यः) जिसमें सूर्य स्वयं विराजता है । (ते सः लोकः भविष्यति) तेरा भी वही लोक हो जायगा । (एताः अपः पिब) इन आप्तजनों के ज्ञानों और प्रजाओं का ऐश्वर्य पान कर ।

अर्थात् राजा वायु के समान प्रचण्ड हो तो उसको मुख्य बनाकर 'देव' विजिगीषु जन युद्ध यज्ञ करते हैं । उससे वे अन्तरिक्ष लोक अर्थात् मध्यम राजाओं पर विजय करते हैं । इससे वह अन्तरिक्ष में वायु के समान और प्रजा का प्राण होकर विराजता है । यही राजा का अन्तरिक्ष विजय है । इसी प्रकार सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी को मुख्य बनाकर विजिगीषु गण युद्धयज्ञ करते हैं इससे वह स्वयं राजा सूर्य के समान 'द्युलोक' अर्थात् समस्त राजाओं और विद्वानों पर वश पाता है वह समस्त राजाओं के बीच, ग्रहों के बीच सूर्य के समान विराजता है । इन तीनों दशा में उसको प्रजा का ऐश्वर्य और विद्वानों का साहाय्य प्राप्त करना आवश्यक है ।

इस मन्त्र की योजना अ० ६ । १० के साथ लगाकर देखो ॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा ।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

प्रजापतिर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । निषादः ॥

भा०—(प्राणाय, अपानाय, व्यानाय स्वाहा) प्राण, अपान और व्यान इन तीनों मुख्य शरीर के प्राणों को उत्तम रीति से प्रयोग करो और उनको उत्तम सामर्थ्य प्राप्त हो।

सामर्थ्यवान् पुरुष के न होने से राजा से रहित राज्यलक्ष्मी कहती है हे (अम्बे) मातः पृथिवि ! हे (अम्बिके) मातः पृथिवि ! हे (अम्बालिके) मातः पृथिवि ! (अश्वक) कुत्सित राजा तो (ससस्ति) आलस्य और अज्ञान से पड़ा सोता है। (सुभद्रिकाम्) उत्तम सुख-सम्पदा से युक्त (काम्पीलवासिनीम्) सुन्दर सुखप्रद, शोभाजनक वस्त्रों से ढकी सुन्दरी स्त्री के समान (काम्पीलवासिनीम्) सुखों के बाधनेहारे पति को राष्ट्रपति के अपने ऊपर बसाने में समर्थ (मा) मुझको (कः चन) कोई भी वीर जन (न नयति) प्राप्त नहीं करता। कुत्सित आचरण वाला राजा मुझ राज्यलक्ष्मी को क्या भोग कर सकता है? वीरभोग्यावसुन्धरा।

'काम्पीलवासिनीम्'—काम्पीलनगरे हि सुभगाः सुरूपा विदग्धा स्त्रियो भवन्तीत्युवटः। तथैव च महीधरः। काम्पीलशब्देन वस्त्रविशेष उच्यते। स वस्ते आच्छादयति इति काम्पीलवासिनी इति सायणस्तैत्तिरीयसंहिता भाष्ये। का० ७। ४। १६॥ शृङ्गारार्थं विचित्रदुकूलवस्त्रोपेते इत्यपि सायणः। तैत्तरीयब्राह्मणभाष्ये का० ३। ६। ६॥ कं सुखं पीलयति बध्नाति गृह्णाति इति कपीलः। स्वार्थे अण्। तं वासयितुं शीलमस्यास्ताम् लक्ष्मीम्। इति दयानन्द स्वभाष्ये। कं सुखं पीलयति बध्नाति इति कम्पीलः, अथवा कं प्रजापतिं पीडयति। डो लत्वं छान्दसम्। सुखेन बध्नाति आश्लिष्यति यः स पतिः प्रियतमः। तं वासयितुं शीलमस्या स्त्रिया राज्यलक्ष्म्या वा। सा काम्पीलवासिनी। अथवा कामेन यथाकामं वा पीडयति आश्लिष्यतिय स काम्पीलः। अलोपो लत्वं च छान्दसम्। पृषोदरादित्वाद्

स्यात् । न यामयति तदर्थानं या अयति या सा काम्पीलवासिनी श्रीः । तथा-ऽरपाय राजलक्ष्मीः । यद्वे नगरविशेषात्प्रसिद्धेश्वरमहीधरौ न समीचीनौ ।

उक्त मन्त्र का शुक्ल कृष्ण दोनों शाखाओं में विनियोग भेद होने से कर्म काण्डानुसारी योजना व्यभिचरित है इसलिये उपरादिष्ट कर्मकाण्ड परक योजना असंगत, अव्यवस्थित और अश्लील है ।

स्वयंवरा कन्या का माता आदि वृद्धा स्त्रियों से ऐसा कहना कि—हे माता ! वृद्ध पुरुष तो आलस्य में सोते हैं । मुझ कल्याणी को कोई वैसा पुरुष न प्राप्त करे, अधिक उपयुक्त है । इस पक्ष में योजना नीचे लिखे प्रकार से है ।

हे (अम्बे अम्बालिके अम्बिके) माता ! हे दादी ! हे परदादी ! (अश्वकः ससस्ति) वृद्ध पुरुष प्रायः आलस्य किया करता है । यह (सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण लक्षणों से युक्त (काम्पीलवासिनीम्) शुभ, सुखप्रद पति के पास रहने योग्य (मा) मुझको (कः चन) वैसा कोई भी (न नयति) न लेजावे ।

इससे अगले १६–३१ तक १२ मन्त्र राष्ट्र की प्रजा और राजा के प्रबल दुर्बल और राजबल के परस्पर भोग्य भोक्तृरूप सम्बन्ध का वर्णन करते हैं और अन्त में गृहपति और गृहपत्नी के परस्पर सहयोग का भी वर्णन करते हैं । यहां विशेषतः प्रथम पक्ष ही मुख्य है क्योंकि शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण दोनों में उस पक्ष को लेकर ही व्याख्यान है । और अश्वमेध का प्रकरण भी उसी अर्थ को पुष्ट करता है ।

अध्यात्म में—हे (अम्बे) जगत् की माता स्वरूप परमात्मन् सबको परमोपदेश देने वाली शक्ते ! (अश्वकः ससस्ति) कुत्सित विषयों का भोक्ता मनुष्य प्रमाद में पड़ा सोता है । और (मा) मुझ पुरुष, या आत्मा को (सुभद्रिका काम्पीलवासिनीम्) अति कल्याण कारिणी, एवं परम सुख

मय ब्रह्म में रहने वाली ब्रह्मविद्या के पास (मा कश्चन न नयति) मुझे कोई नहीं लेजाता।

गुणानां त्वा गुणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १६ ॥

गणपतिर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—हे (वसो) सब राष्ट्र को बसाने हारे ! परमेश्वर और राजन् ! हे विद्वन् ! हम (त्वा) तुझको (गणाना) समस्त गणों का (गणपतिम्) गणपति, गणनायक (हवामहे) स्वीकार करते हैं। (प्रियाणा) सब प्रिय पदार्थों का तुझको (प्रियपतिम्) प्रियपति, पालक (हवामहे) स्वीकार करते है। और (निधीना) समस्त खजानों का तुझको (निधिपतिम्) निधिपति, कोशपाल, (हवामहे) स्वीकार करते हैं। हे (वसो) राष्ट्र को बसाने हारे राजन् ! परमेश्वर ! तू (मम) मुझ पृथ्वीवासी राष्ट्र प्रजा का भी पति है। (अहम्) मैं प्रजा (गर्भधम्) अपने 'गर्भ'=ग्रहण करने या वश करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले तुझ पति को (आ अजानि) प्राप्त होती हूं। तू (गर्भधम्) अपने भीतर समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली मुझको (अजासि) प्राप्त हो।

पति पत्नी के पक्ष में—हे पते ! मैं समस्त गणों में स्त्री के समान अपना गणपति, समस्त प्रिय जनों में तुझको प्रियपति, अपने समस्त ऐश्वर्यों का निधिपति तुझको ही कहती हू। मैं गर्भ धारण कराने में समर्थ तुझको (आ अजानि) प्राप्त होती हूं। गर्भ धारण में समर्थ, उर्वरा मुझ पत्नी को तू प्राप्त हो।

परमेश्वर सबका गणपति, प्रियपति और निधिपति है। प्रकृति कहती है—हे ईश्वर ! हिरण्यगर्भ को धारण करनेवाले, तुझको मैं (आ

प्रजानि) प्राप्त होती हूं और तू (गर्भधम्) समस्त संसार को अपने भीतर अव्यक्त रूप में धारण करनेवाली मुझ प्रकृति को (त्वम् अजासि) तू प्राप्त होता और सृष्टि को उत्पन्न करता है। अथवा (अहम्) मैं जीव (गर्भधम्) हिरण्यगर्भ के धारक और संसार को अपने बीच धारण करनेवाली प्रकृति के भी धर्ता तुझको जानूं, प्राप्त होऊं और तू प्रकृति को प्राप्त हो।

'गर्भध'—गर्भधारक कलशरूप इति सायण। तै० ब्रा० भा०। 'गर्भधात्री' इति सायण। तै० सं० भा०॥

ताऽउभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

[illegible] ॥

भा०—(तौ उभौ) वे हम दोनों राजा और प्रजा मिलकर (चतुर: पद:) चारों पद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन प्राप्तव्य पुरुषार्थों को (सम्प्रसारयाव) भली प्रकार विस्तृत करें, बढ़ावें। और (स्वर्गे लोके) सुखमय लोक में (प्र ऊर्णुवाथाम्) एक दूसरे को अच्छी प्रकार ढांपें, एक दूसरे की अच्छी प्रकार रक्षा करें। (वृषा) दुष्टों को बांधनेवाला और राष्ट्र का प्रबन्ध करनेवाला राजा और (रेतोधा:) वीर्य, सामर्थ्य बल, पराक्रम को धारण करनेहारा होकर (रेत:) राष्ट्र में भी वीर्य, बल, पराक्रम को (दधातु) धारण करे।

पतिपत्नी पक्ष में—(तौ उभौ) वे दोनों पति पत्नी परस्पर (चतुर: पद:) चारों पद, अर्थात् प्राप्तव्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका विस्तार करें। (स्वर्गे लोके) सुखमय लोक, गृहस्थ आश्रम में (प्र ऊर्णुवाथाम्) दोनों उत्तम रीति से अपने वस्त्र धारण करें या दोनों एक दूसरे को कवच के समान

२०—[illegible]

आच्छादित करें, रक्षा करें। उन दोनों में से (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष (वाजी) वेगवान् अश्व के समान बल वीर्यवान् एव (रेतोधा) स्वय वीर्य धारण करनेहारा और कलत्र में भी वीर्य स्थापन करने में समर्थ होकर (रेत) वीर्य का (दधातु) स्थापन करे।

महीधर और उवट ने इस मन्त्र को घोड़े और रानी के भोग में लगाने का जो भ्रष्ट और असगत अर्थ किया है वह अमान्य है।

'सम्प्रोर्णुवाथाम्' क्षौम वस्त्र सम्यागाच्छादयतम्। इति सायण तै० स० भा० का० ७। ४। १९॥

उत्सक्थ्या ऽअव गुदं धेहि सम॒ञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

भुरिग्गायत्री। षड्जः। लिङ्गोक्तो वृषा देवता॥

भा०—हे (वृषन्) दुष्टों के शत्रुओं को दमन करनेवाले ! तू (उत्सक्थ्या) प्रसग से वर्तमान प्रजा के बीच में (गुदं) उस केवल क्रीड़ाशील व्यसनी पुरुष को (य) जो (स्त्रीणा) स्त्रियों के ऊपर (जीवभोजन) अपनी आजीविका का भोग करता है। (अव धेहि) नीचे गिरा। और (अञ्जिम्) विद्या और न्याय के प्रकाश को (स चारय) अच्छी प्रकार फैला।

पति पत्नीपक्ष में—हे (वृषन्) वीर्यसेक्त पुरुष ! तू (उत्सक्थ्या) जांघें उठाये स्त्री के (गुदम् अव अञ्जि धेहि, सचारय) उस अग में सुखपूर्वक वीर्य आधान कर (स्त्रीणा) स्त्रियों का (य) जो अग (जीवभोजन.)

२१—उत्सक्थ्याऽऽगुदं ध्यञ्जिमुरुञ्जिमवत। य स्त्रीणा जीवभोजन य दु आसां निरुभवत। प्रियं स्त्रीणामपीच्य। य आसां कृष्णे लक्ष्मणि सर्दिगृदिं परावधीत्। इति तै० स०। अव इत् इति। सक्थ्योः। इति पदपाठः॥

न्यायाधीशो देवता। द०। अ० ४० इति सर्वा०॥

सन्तान रूप जीव का पालन करनेहारा है अथवा, हे पूषन्[1] पुत्र दुरुष (च) जो तू (स्त्रीणां) स्त्रियों के जीवन की रक्षा करता है वह तू न तानों हरति कर इत्यादि इस रहस्य के विशेष जिज्ञासा के लिये परक व प्रश्नोत्तरि विषयक शास्त्र भाग का मनन करना चाहिये ।

यस्ति शुल्म पते । इति सायण तै० । सं० ७ । १ । १७ ॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति ।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥

[illegible] विराट् अनुष्टुप् । [illegible] ॥

भा०—(यका असकौ=या असौ) यह जो (शकुन्तिका) शक्ति सम्पन्न प्रजा (आहलक्) मेरा भूपति सर्वत्र कृषि के निमित्त हलादि चलाने के कार्य में कुशल है । (इति) इस कारण (वञ्चति) अपने भूपति को प्राप्त होता है । वह भूमिपति (गभे=भगे) भाग्यवान् समृद्ध प्रजा में (पस =पसः) रूप धारकर बैठे, सुगम्पद, सुनपर राष्ट्र के राज-प्रबन्ध को (आ हन्ति) विस्तृत करता है । और वह (धारका) देवर्व धारण करने में समर्थ प्रजा उसकी आज्ञा को (नि गल्गलीति) अपूर्व प्रकार श्रवण करता है ।

'निगल्गलीति'—गल्ह अदने । इत्यादि ॥

गभ , पस , वर्णव्यत्ययेन भग पस. । पस गत्यर्थे । इत्यादिः ॥

'शकुन्तिका'—शकेः उनोन्तोन्युन्तयः । उणा० । पू० ३ । ४९ ॥ शकेर्नोतोन्ति शकुन । शकुन्त । शकुन्ति. । शकुनिः ॥ इति दया० उणा० । 'यका',- असकौ', अकच् शब्द हैं ॥

२२—२३ दया० [illegible] । [illegible]
[illegible] ॥

दम्पति पक्षमें—(यका) जो वह (शकुन्तिका) शक्तिमती, प्रजोत्पत्ति में समर्थ स्त्री (असकौ आहलक्) यह पुरुष मेरे हृदय का विलेखन, प्रेम से अकन या आकर्षण करता है (इति) इस कारण से (वञ्चति) उसको प्राप्त हो। वह प्रेमी पति, (गभे पसः आहन्ति) उसके ऐश्वर्य सौभाग्य के निमित्त उससे सगत होता है। वह (धारिका) गर्भ धारण में समर्थ स्त्री (निगल्गलीति) उसके वचन आदर से श्रवण करती है। अर्थात् शक्तिमती स्त्री समर्थ पति को प्रेम से प्राप्त हो। वे सुसंगत होकर रहें। प्रेम से एक दूसरे के वचन श्रवण करें।

यकोऽसकौ शकुन्तक ऽआहलगिति वञ्चति।
विवक्षतऽ इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथा ॥२३॥

भा०—(यक=यः) जो पुरुष (शकुन्त शक्तिशाली है, (असकौ=असौ) वह (आहलक्) मैं सब प्रकार से भूमि को विलेखन करने में समर्थ हूं (इति) इस हेतु से (वञ्चति) भूमि को प्राप्त होता है। राज्य प्राप्त होजाने पर आगे उपदेश है कि—हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो! हिंसा रहित ! प्रजापालन के कार्यभार का सचालन करने हारे राजन्! (विवक्षत-ते) विशेषरूप से राष्ट्र भार को उठाना चाहने वाले तेरा पद (मुखम् इव) शरीर में मुख के समान मुख्य है। अतः तू (नः) हम से (मा अभिभाषथा) व्यर्थ बातें मत किया कर।

दम्पति पक्ष में—(यः शकुन्तः) जो पुरुष शक्तिमान् है वह (आहलक्) मैं अमुक स्त्री के हृदय को खींचने में समर्थ हूं (इति वञ्चति) इसलिये उसको प्राप्त हो। हे अध्वर्यो ! गृहस्थ यज्ञ के मार्ग में युक्त होना चाहने वाले पुरुष ! (ते विवक्षत इव मुखम्) तेरा मुख अब विवाहेच्छु पुरुष के समान है। तू (नः मा अभिभाषथा) अब हम सामान्य स्त्री पुरुषों से अधिक व्यर्थालाप मत कर। महीधर ने इसमें भ्रष्ट अर्थों की पराकाष्ठा करदी है। जिसकी यहां गन्ध भी नहीं।

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः ।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥ २४ ॥

भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! हे सूर्य ! (ते माता च) तेरे मध्य में माता अर्थात् ज्ञानवान् पुरुष तुझे निर्माण करने वाला, (ते च पिता) और तेरा पिता, पालक राजा, ये दोनों (वृक्षस्य) समस्त भूमि को आच्छादन करने वाले शासन के (अग्रम्) मुख्य पद पर (रोहतः) आरूढ होते हैं। और (ते पिता) तेरा पालक राजा भी (प्रतिलामि इति) खेद करता हूं इस भाव से ही (गभे=भगे) प्रजा के ऐश्वर्य के आधार पर (मुष्टिम्) अपने दुःखों से छुड़ाने वाले सुसंगठित राष्ट्र को अथवा शत्रु नाशक सैन्य बल को (अतंसयत्) सुशोभित करता है।

'अग्र'—श्रीर्वै राष्ट्रस्य अग्रम् । श्रियमेवैनं राष्ट्रस्याग्रं गमयति । विड्वै गभः । राष्ट्रं मुष्टिः । राष्ट्रमेव विश्याहन्ति । तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः । श्री राष्ट्र का अग्र भाग है । 'गभ' प्रजा है । राष्ट्र राज्य-प्रबन्ध या शासन मुष्टि है । अर्थात् जिस प्रकार खुले हाथ में कुछ शक्ति नहीं, परन्तु उसकी मुट्ठी बांध लेने पर वह बलवान् होजाता है उसी प्रकार अव्यवस्थित प्रजा को शासन में बांध लेने पर वह एक दृढ मुट्ठी के समान होजाता है । वह राष्ट्र ही प्रजा के आधार पर चलता है । इसीसे राष्ट्रवृत्ति भी प्रजा को ही प्राप्त होता है । राजा का यह खेद ही है कि वह बिखरी प्रजा को मुट्ठि का रूप देता है जिस खेद से पांचों अंगुलियों के समान पांचों जन मिलकर एक होजाते हैं और यही प्रजा की शोभा है ।

'वृक्षस्य'—वृश्चते वा विवृणोति । निरुक्तम् ।

'मुष्टिम्'—मोचनाद् मोषणाद्, मोहनाद्वा । निरु० ६ । १ । १ ॥

गृहस्थ पक्षमें—हे पुरुष ! (ते माता च पिता च वृक्षस्य अग्रं रोहत.) तेरे माता पिता ही गृहस्थाश्रमरूप आश्रय वृक्ष के मुख्य पद पर स्थित हैं। (ते पिता) तेरे पिता स्नेह करता हुआ इस भाव से ही (गभे = भगे) ऐश्वर्य के बल पर अथवा स्त्री के आधार पर ही अपने (मुष्टिम्) मुट्ठी के समान एक कर देने वाली पारिवारिक स्नेहकी व्यवस्था को सुशोभित करता है

माता च॑ ते पि॒ता च॑ तेऽग्रं॑ वृ॒क्षस्य॑ क्रीडतः ।
विव॑क्षतऽइव ते॒ मुखं॒ ब्रह्म॒न्मा त्वं व॑दो ब॒हु ॥ २५ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे प्रजाजन ! हे पुरुष ! (ते माता च) तेरी माता, उत्पादक जननी के समान परिपालक राजसभा और (पिता च) तेरा पिता, पालक राजा, दोनों (वृक्षस्य) समग्र पृथ्वी पर फैले राज्य के (अग्रे) मुख्य पद पर (रोहत·) विराजमान होते हैं। हे (ब्रह्मन्) महान् राष्ट्रपते ! और हे ब्रह्मज्ञान के जानने वाले विद्वन् ! (विवक्षतः इव) भार वहन करने वाले के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख्य कार्य है अर्थात् शरीर में मुख के समान राष्ट्र की व्यवस्था करना तेरा मुख्य और दर्शनीय कार्य है, इसलिये हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिशालिन् ! (त्वं) तू (बहु) बहुत सा व्यर्थ (मा वद·) मत बोला कर। उत्तरदायी जिम्मेवार पुरुष को व्यर्थ बहुत नहीं बोलना चाहिये। मुख्य अधिकारी को अपना आज्ञाकारी मुख बहुत सम्भाल कर रखना चाहिये। उससे बहुत अनर्थ होने सम्भव होते हैं।

ऊ॒र्ध्वामे॑ना॒मुच्छ्रा॑पय गि॒रौ भार॒ꣳ हर॑न्निव ।
अथा॑स्यै॒ मध्य॑मेधता॒ꣳ शी॒ते वाते॑ पु॒नन्नि॑व ॥ २६ ॥

श्रीर्देवता अनुष्टुप् । गांधार ॥

२५—०क्रीडत० इति काण्व० ।

भा०—(गिरौ) पर्वत पर (भारं) भार, बोझा को (हरन् इव) उठा कर लेजाने वाला पुरुष जिस प्रकार सिर या पीठ पर ऊंची चोट को ऊपर लेजाता है उसी प्रकार (एनाम्) इस प्रजा, पृथ्वी को (ऊर्ध्वाम्) उन्नत पद पर (उत् श्रापय) उठा कर उन्नत कर। (अथ) और (अस्यै) इस राष्ट्र की प्रजा का (मध्यम्) मध्य भाग, बीच की राजधानी का भाग (एधताम्) बढ़े, समृद्ध हो। और (शीते वाते) शीतल वायु में जिस प्रकार किसान अन्न को हाथ से गिरा २ कर साफ करता है और वायु के बल से तुषों को दूर करता है और स्वच्छ अन्न की ढेरी को बढ़ाता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (शीते वाते) शीत अर्थात् बढ़े हुए वात अर्थात् वायु के समान प्रचण्ड बल पर राष्ट्र को पवित्र कर, उसे दुष्ट पुरुषों से रहित कर।

दम्पति के पक्षमें—(एनाम् ऊर्ध्वम् उत् श्रापय) इस स्त्री को तू उच्च पद पर स्थापित कर, हे पुरुष ! तू (गिरौ भार हरन् इव) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने हारे के समान है। (अथ अस्य मध्यम्) और जब इसका मध्य भाग, गर्भाशय पुत्र सन्तान आदि से वृद्धि को प्राप्त हो तब तू उस समय पूर्वोक्त अन्न को साफ करनेवाले के समान (शीते) वृद्धिकारी और (वाते) पवित्र पदार्थों के आधार पर अपने आचार व्यवहार को पवित्र रख और आहार पर उत्तम संस्कार डाल। स्त्री के गर्भिणी होने के काल में पुरुष को संयम से रहना चाहिये। उसको 'शीत' अर्थात् वृद्धिकर, पुष्टिप्रद और पवित्र पदार्थों पर पुष्ट करे।

'शीतम्'—श्रीर्वै पृष्टी । श्यादि. । श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः । श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम् क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम् । श० ३ । ३ । १-४ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयतात् गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥ २७ ॥
अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(गिरौ भार हरन् इव) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने वाला जिस प्रकार बोझा को पर्वत के शिखर पर लेजाता है और स्वय भी ऊपर चढ जाता है उसी प्रकार हे प्रजे ! (ऊर्ध्वम्) ऊंचे पद पर स्थित (एनम्) इस राजा को (उच्छ्रयतात्) उन्नत कर। (अथ) और जब (अस्य मध्यम्) इसका मध्य भाग बीच का शासन का केन्द्र-बल (शीते वाते) परिपुष्ट ऐश्वर्य के आधार पर ऐसे (एजतु) कम्पन करे, ऐसे प्रदीप्त हो जैसे (वाते) वायु में (पुनन् इव) तुष, अन्न को साफ करता हुआ पुरुष चेष्टा करता है। अर्थात् राज्य का मुख्यबल देश के लुच्चे लोगों को दूर करे। सदा ऐसा प्रयत्न होता रहे।

दम्पति के पक्ष में—स्त्री पुरुष को उन्नत करे। पुरुष का मध्यभाग, धनसम्पत्ति अथवा प्रजनन भाग वीर्य बल से युक्त हो। और वह अपने आचार को ब्रह्मचर्य से पवित्र करे।

यदस्या अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(यद्) जब (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) पाप को भेदन करनेवाली, स्वच्छ, दुष्टों से रहित, प्रजा को (कृधु) दुष्टों का नाशक (स्थूलम्) स्थूल, स्थिर दृढ राज्य (उपातसत्) पृथवी पर जम जाता है। तब (अस्याः) इसके (मुष्कौ) शत्रुओं और अज्ञान का खण्डन या विनाश करनेवाले अथवा बन्धन से छुडानेवाले अथवा पुष्टि करनेवाले क्षात्र और ब्राह्मबल दोनों (गोशफे) गौ के चरण में (शकुलौ) लगे खुर के दो खण्डों के समान (राजत) शोभा देते हैं। अर्थात् जिस प्रकार गौ के चरण में खुर के दो भाग ही पूरे शरीर को थामे रहते हैं उस

२८—मुष्काइद० इति काण्व०।

प्रकार प्रजा में से दुष्टों के नाशक शासक और अज्ञान अविद्या का नाशक प्राज्ञ बल विद्वान् गण, दोनों पृथिवी के शासनरूप कार्य में विराजते और पृथिवी रूप गौ का भार उठाये रहते हैं।

'शुष्क' शुषे क । औणा० ३ । ४१ ॥ अथवा 'शुषे शोषणे' इत्यस्मात् क प्रत्ययान्तम् । शुरिषद् शोषणाद्वेति इतिनिरुक्तम् । शुरेतो । पस्य मरणान्तम् । 'हृषु' इत्योनेहिमाथंस्य । कारणया । 'शूल' निष्ठते ।

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः ।
सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥
देवा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—(यत्) जब (देवास) विद्वान् पुरुष (ललामगुम्) सुन्दर उत्तम वाणी वाले विद्वान् (विष्टीमिनम्) विशेष दयालुता के भावों से युक्त, अथवा विशेष प्रजा के विविध कर्मों के विवेचक न्यायाधीश पुरुष को (प्र आविषुः) प्राप्त होते हैं तब जैसे (सक्थ्ना) शरीर के जघा भाग से (नारी देदिश्यते) स्त्री या मादीन का पता लग जाता है उसी प्रकार (अक्षिभुव सत्यस्य) आंख से देखे गये सत्य और (अक्षिभुव) प्रत्यक्ष से उत्पन्न होनेवाले (सत्यस्य) सत्य अनुमान ज्ञान का भी (देदिश्यते) वर्णन किया जाय ।

'ललामगुं' ललाम सुन्दर शब्दं गच्छति इति ललामगुः । इति उवट । (विष्टीमिनम्) विविधा ष्टीमा आर्द्रीभूता पदार्था यस्मिन् अथवा 'विष्टी मिनम्' विष्टी कर्माणि वेतनानि वा मिनोति, माति, मन्यते विवेचयति वा शब्दयति उपादिशति वा स 'विष्टीमी' तम् । माङ् माने शब्दे च अदादि । माङ् माने । दिवादि । ललाम ललाटभावयुक्त इति सायण ।

अथवा—(नारी) नेता पुरुषों की बनी सभा में (सक्न्था) प्रेम से, सम्मिलित शक्ति से (यथा) यथावत् (अक्तिभव ससत्य देदिश्यते) आस से देने सत्य पदार्थ का प्रतिपादन करना उचित है।

षच सेवने सेचने च । षच समवाये भ्वादि ।
'नारी' इति लुप्तसप्तम्यन्त पदम् । नराणा इयं नारी तस्याम् ।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

राजा देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जब (हरिणः) हरिण (यवम्) जौं को (अत्ति) खाता है तब क्षेत्रपति (पशुम्) पशु को (पुष्ट) पुष्ट हुआ (न मन्यते) नहीं मानता। प्रत्युत क्षेत्रपति अपने खेत का विनाश हुआ ही गिना करता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्र की राजसत्ता यवरूप प्रजा को खाजाय तो प्रजा का स्वामी राजा (पशु) राजसत्ता को पुष्ट हुआ नहीं मानता, प्रत्युत प्रजा के विनाश को होता देखकर अधिक दुःखी होता है। इसलिये राजा को चाहिये कि वह प्रजा को हानि पहुचा कर राज्य प्रबन्ध या राजशक्ति को न पुष्ट करे। (यद्) जब (शूद्रा) शूद्र वर्ण की स्त्री नौकरानी (अर्यजारा) वैश्य या स्वामी को जार रूप से प्राप्त करती है तब वह (पोषाय) अपने कुटुम्ब पोषण के लिये धन नहीं चाहती। इसी प्रकार जो प्रजा (शूद्रा) केवल श्रमशील होकर (अर्य-जारा) अपने स्वामी की बल वृद्धि के लिये ही स्वयं जीर्ण और निर्बल होती रहती है और वह (पोषाय) अपने को समृद्ध वा पुष्ट करने के लिये (न धनायति) धन की आकाङ्क्षा नहीं करती तब वह नष्ट ही होजाती है। इसलिये प्रजा को चाहिये कि राजा के भोग ऐश्वर्य के बढ़ाने के लिये वह अपना नाश न करे। इसी कारण विद्वान्जन वैशी पुत्र या वैश्यवृत्ति के राजा का अभिषेक नहीं करते वह प्रजा का समस्त ऐश्वर्य हर लेता है और प्रजा को धन समृद्ध नहीं करता है।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यजारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

राजप्रजे देवते । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जो (हरिणः) हरिण के समान राजा (यवम्) यव के समान प्रजाजन को खा लेता है वह राजा (पुष्टम्) पुष्ट प्रजाजन को (पशु) अधिक आवश्यक (न मन्यते) नहीं जानता । इसी प्रकार वह (शूद्रः) शूद्र वर्ण का पुरुष, नौकर (यत्) जो (अर्याय जारः) गृहस्वामिनी का भोग करता है तब वह भी (पोषम्) अपने भरण पोषण की आजीविका पर (न अनुमन्यते) विचार नहीं करता । अर्थात्—जो राजा अपनी प्रजा को लूट कर पीड़ित करके खाता है वह उस हरिण के समान है जो खेत में लगे जौ को खा जाता है और खेत के जौ को बढ़ने नहीं देता । इसी प्रकार वह राजा उस शूद्र, नौकर के समान है जो व्यभिचार से घर की मालकिन का भोग करके उसका और उसके धन का नाश कर देता है और उसकी मर्यादा, मान कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि की परवाह नहीं करता । वह राजा व्यभिचारी दुराचारी भृत्य के समान समृद्ध प्रजा को लूट खसोट के दरिद्र कर देता है और उसकी समृद्धि को बढ़ने नहीं देता । और प्रजा के भी व्यापार, व्यवहार, मान कीर्ति और धन सब का नाश कर देता है ।

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

[illegible] । अनुष्टुप् । गान्धारः । [illegible] ॥

भा०—(दधिक्राव्णः) अपने धारक पोषक पुरुषों को प्राप्त होने वाले (जिष्णोः) विजयशील, (वाजिनः) ऐश्वर्यवान्, (अश्वस्य) राष्ट्

के भोक्ता पुरुष को (अकारिषम्) मैं नियत करता हूं। वह (न) हमारे (मुखा) मुख्य पदों को (सुरभि) उत्तम, बलवान्, यशस्वी (करत्) बनावे। (न आयूंषि) हमारे जीवनों को (प्र तारिषत्) दीर्घ, चिरकाल तक स्थिर करे। ईश्वर पक्ष में—(दधिक्राव्ण) ध्यान करने वाले को प्राप्त होन वाले (जिष्णोः) सब दुःखों के नाशक, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (अकारिषम्) स्तुति करता हूं। वह (न. मुखा) हमारे मुख्य प्राणों को (सुरभि) बलवान् बनावे, हमें दीर्घ जीवन दे।

गा॒य॒त्री त्रि॒ष्टुब् जग॑त्यनु॒ष्टुप्प॒ङ्क्त्या स॒ह।
बृ॒ह॒त्यु॒ष्णिहा॑ क॒कुप्सू॒चीभि॑: शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

वाचः विद्वांसो देवता। उष्णिक्। ऋषभः।

भा०—हे पुरुष ! (गायत्री) गायत्री, (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (जगती) जगती, (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् ये समस्त छन्द (पङ्क्त्या सह) पंक्ति छन्द के साथ और (बृहती) बृहती और (ककुप्) ककुप् ये दोनों (उष्णिहा) उष्णिक् छन्द के साथ मिलकर (सूचीभिः) ज्ञान को सूचित करनेवाली ऋचाओं से तेरे हृदय को शान्त करती हैं। उसी प्रकार (गायत्री) गान और उपदेश करने वालों का त्राण या पालन करने वाली (त्रिष्टुप्) तीनों प्रकार के सुखों को वर्णन करने वाली (जगती) जगत् में विस्तृत शक्ति, अनुष्टुप्, सबको अनुकूल उपदेश करनेहारी, (पंक्त्या सह) परिपाक या पुनः २ अभ्यास करने की क्रिया के सहित और (बृहती) बड़े प्रयोजनवाली, (ककुप्) सुन्दरपद-लालित्यवाली वाणी, (उष्णिहा) उत्तम स्नेहमयी वाणी के साथ मिलकर (सूचीभिः) ज्ञान और साधनों की सूचना देनेवाली अथवा वस्त्र खण्डों के समान नानादेश के भागों को मिलाकर सीकर सन्धियों द्वारा एक करदेने वाली नाना प्रकार की सन्धिकारिणी, वाणियों से विद्वान् लोग, हे राजन् ! (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करें।

३३—१ 'वाचः', इति पद ३५ मन्त्रादाकृष्यते।

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

ऋष्यः देवताः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे पुरुष (द्विपदा) दो चरणवाली (याः च चतुष्पदा) और जो चार चरणवाली (याः च षट्पदा) और जो छः चरणवाली (विच्छन्दा) बिना छन्द की और (सच्छन्दाः) जो छन्द वाली हैं वे सब प्रकार की वाणियां (सूचीभिः) विविध २ अभिप्राय बोधक रीतियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें।

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

ऋष्यो देवताः । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(महानाम्न्यः) 'महानाम्नी' नामक वेद ऋचाएं, (रेवत्यः) रेवती नामक ऋचाएं और (विश्वा आशाः) समस्त 'आशा' शब्दवाली ऋचाएं, (प्रभुवरीः) 'प्रभु' शब्दवाली, (मैघीः) मेघ सम्बन्धी ऋचाएं, (विद्युतः) विद्युत् सम्बन्धी ऋचाएं, ये सब (वाचः) वाणियें (सूचीभिः) अपनी ज्ञानसूचक रीतियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें। ऊपर की सातों ऋचाएं प्रजाओं के साथ २ प्रजाओं का भी वर्णन करती हैं। जैसे—(गायत्री) ब्राह्मण वर्ण, (त्रिष्टुप्) क्षत्रिय वर्ण, (जगती) वैश्य वर्ण, (अनुष्टुप्) शूद्र वर्ण, (पंक्ति) पञ्चजन, (बृहती) बड़े राष्ट्र की जनता अर्थात् बड़ी राष्ट्रवासी, (उष्णिहा) सबके प्रेमी, (ककुप्) सर्व श्रेष्ठ पुरुष वे अपनी ज्ञान सूचक शक्तियों से हृदय को शान्त करें।

(२) (द्विपदा) मनुष्यों की, (चतुष्पदा) पशुओं की, (त्रिपदा) पक्षगण, (षट्पदा) षट्-सम्पन्ना, भ्रमर, (विच्छन्दा) स्वर्गी

(सच्छन्दा) विशेष साधननिष्ठ ये सब भी तुझे ज्ञानप्रद वाणियों से सुखी करें। (३) (महानाम्न्य) बड़ी यशस्विनी, (रेवत्य) धन धान्य सम्पन्न, (विश्वा आशा) समस्त दिशाओं में बसी, (प्रभूवरी)प्रभूत, बल और धन सामर्थ्य वाली, (मैघी) मेघ के समान सब पर सुख वर्षण करनेवाल ज्ञानोपदेशक वर्ग, (विद्युत) विद्युत के समान प्रकाश देने वाले शिल्पिवर्ग, (वाच) वेद वाणियों के वक्राजन ज्ञानसाधनों से तुझे शम्यन्तु) शान्ति दें।

नायस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवाना पत्न्यो दिश सूचीभि शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

भा०—हे राजन् ' (ते) तेरे राष्ट्र को (पत्न्य) पालन करनेवाली (नार्य) नेता पुरुषों की बनी राजसभाए और (नार्य) पुरुषों के हित के लिये बनी सेनाएं, (मनीषया) बुद्धि से (ते) तर (लोम) काटने योग्य उच्छृङ्ख शत्रु को, नाइ जिस प्रकार केशों को पकड कर काटता है उसी प्रकार (विचिन्वन्तु) विशेषरूप से सग्रह करे। और (देवाना पत्न्य) विद्वानों की पालक (दिश) दिशाओं में रहनेवाली प्रजाए और सेनापति क आज्ञा में मार्ग देखनहारी सेनाए (सूचीभि) अपने ज्ञान सूचक नीतियों से और सेनाए शस्त्रों से (त्वा शम्यन्तु) तुझको शान्ति, सुख, अभय प्रदान करें।

रजता हरिणी सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभि ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमा शम्यन्तु शम्यन्ती ॥ ३७ ॥

रजतादय स्त्रिया देवता । अनुष्टप् । गान्धार ॥

भा०—(रजता) राग से युक्त, (हरिणी) मन को हरण करने-वाली, (सीमा) प्रेम को बाधने वाली (युज) गृहकार्य में चतुर, समस्त कार्यों में सहयोग देने, और सावधान रहनेवाली स्त्रियें (कर्मभि) धर्मानुकूल क्रियाओं और व्रत पालन की प्रतिज्ञाओं द्वारा (अश्वस्य)

उनके हृदय में व्यापक, (वाजिनः) उत्तम बलवान् वेगवान् पुरुष की (त्वचि) रक्षा में, उसके साथ (शम्यन्तीः) सदा के लिये जोड़ दी जाती हैं, संग करदी जाती हैं। वे (सिमाः) बद्ध होकर (शम्यन्तीः) स्वयं शान्ति सुख प्राप्त करती हुई उस पति को भी (शम्यन्तु) सुख प्रदान करें।

राजा प्रजा पक्ष में—(रजता) अनुरक्त या सुवर्णादि धनैश्वर्य से सम्पन्न (हरिणीः) हरणशील, बलवती, (सीसाः) और सम्पत्तियों से या सेनाओं से बद्ध (युजः) राजा का राज्य कार्यों में सहयोग देनेवाली, प्रजाएं (अश्वस्य वाजिनः) राष्ट्र के भोक्ता, बलवान् पुरुष के (त्वचि) रक्षा में (कर्मभिः युज्यन्ते) कर्मों में नियुक्त की जांय। वे (सिमाः) बद्ध होकर (शम्यन्तीः) स्वयं शान्त रह कर (शम्यन्तु) राजा को सुखी करें।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३२ ॥

कस्त्वाच्छ्यति कस्त्वा वि शास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति ।
क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

भा०—हे प्रजाजन! (त्वा कः आच्छ्यति) तुमको कौन विद्वान् पुरुष सब तरफ से काटता, या तुझे दण्डित करता है? (त्वा कः विशास्ति) तुझको कौन नाना प्रकारों से विविध शास्त्रों से उपदेश करता है (ते गात्राणि) तेरे अंगों को (कः शम्यति) कौन सुख पहुंचाता है। और अन्त में, (कः उ) कौन सा विद्वान् पुरुष (ते शमिता) तुझे शान्ति प्रदान करता है। इन प्रश्नों का उत्तर इसके अगले में दो हैं। (कः) सुखकारक प्रजापति, प्रजा-पालक राजा ही प्रजा को दण्ड देता है। वही उस पर शासन करता है,

३९—[illegible]

वह राज्य के समस्त अंगों को सुखी करता है, वही उसका (शमिता) शान्तिप्रद है।

ऋतवस्त ऽऋतुथा पर्वं शमितारो वि शासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

ऋतवो देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(ऋतवः) सत्यज्ञानवान्, राजसभा के सदस्यगण, (ऋतुथा) अपने ज्ञान के अनुसार (शमितारः) शान्तिदायक होकर (पर्व) प्रजा पालन करने के कार्य का (वि शासतु) विविध रूपों से उपदेश या शासन करें। और (संवत्सरस्य) समस्त प्राणियों और लोकों को बसाने वाले सर्वाश्रय राजा के (तेजसा) तेज, बल पराक्रम से (शमीभिः) शान्तिदायक उपायों से हे राष्ट्र (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करें, सुख पहुंचावें।

सदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३। १२। ६। ४॥ ऋतवो वै विश्वेदेवा। यजु० १२। ६१॥ ऋतवो वै वाजिनः। कौ० ५। २॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य। ऐ० १। १३॥

जिस प्रकार कालात्मक संवत्सर में ऋतुएं हैं उसी प्रकार राजा के अधीन विद्वान्, कार्यकुशल मुख्य राजसभासद् शासक पुरुष हैं। वे सदा प्रजापालन के नये २ उपाय सोचें।

अर्द्धमासाः परूंषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

प्रजा राष्ट्रं वा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जिस प्रकार संवत्सर के पर्वों को अर्धमासों और मासों में विभक्त करते हैं। उसी प्रकार हे राष्ट्र! (ते) तेरे (परूंषि) पालन कार्य, राज्य-व्यवस्था के अंगों को (अर्धमासाः) विशेष समृद्ध विद्वान् पुरुष और (मासाः) विद्वान् पुरुष (शम्यन्तः) शान्ति प्राप्त करानेहारे (आ

च्छ्यन्तु) सब तरह विभक्त करें। परिमाण करने या मापने में कुशल जन ही भूमि रूप राष्ट्र को भी माप २ कर विभक्त करें। (अहोरात्राणि) वर्ष में दिन और रात्रि के समान विद्यमान (मरुत्) विद्वानगण और दण्ड देनेहारे निपुण राजपुरुष (ते) तेरे व्यवस्थाकार्य में (विलिष्टम्) होनवाली त्रुटि को (सूदयन्तु) निवृत्त करें। सामान्य मनुष्य पक्ष में— हे मनुष्य! तेरे वर्षों को मास पक्ष और दिन, रात विभक्त करें। और वे तुझे शान्ति दें। (मरुत्) विद्वान् पुरुष तेरी (विलिष्टम्) त्रुटि को दूर करें।

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥ ४२ ॥

[illegible]

भा०—हे राष्ट्र! (दैव्याः) विद्वानों में भी कुशल, श्रेष्ठ कोटि के (अध्वर्यवः) यज्ञ के समान न नष्ट होनेवाले राष्ट्र के पालक पुरुष (त्वा) तुझे (आ छ्यन्तु) विभक्त करें और (वि शासतु च) विविध उपायों से शासन करें। और वे (ते) तेरे (गात्राणि) अंगों को (पर्वशः) पर्व पर्व पोर २ पर (शम्यन्तीः) शान्तियुक्त सुखी करती हुई (सिमाः) तुझे बांधनेवाली मर्यादाएं, राज नियमानुकूल व्यवस्थाएं (कृण्वन्तु) करें।

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥ ४३ ॥

[illegible]

भा०—हे राष्ट्र! (ते) तेरे (छिद्र) छिद्र को (द्यौः) आकाश और उसके समान ज्ञानमय विद्वन्मय सूर्यों से प्रकाशित राजसभा (पृथिवी) पृथिवी और उसके समान सर्वाश्रय राजा, (वायुः) वायु और वायु के समान तीव्र बलवान् सेनापति (पृणातु) पूर्ण करे। (सूर्यः) सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् राजा (नक्षत्रैः) नक्षत्रों और उनके समान

सामान्य प्रजाओं, अथवा युद्ध में क्षत और विचलित न होनेवाले वीर सैनिकों के (सह) साथ ते) तेरे म वस (लोक) जन समूह को (साधुया) साधु, सच्चरित्र (कृणोतु) बनावे ।

> शं ते परेभ्यो गात्रेभ्य शमस्त्ववरेभ्य ।
> शमस्थभ्यो मज्जभ्य शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

भा०—हे राष्ट्र ! और हे राजन् ! (त) तेरे (परेभ्य) पर उत्कृष्ट अंगों को (शम् अस्तु) कल्याण और शान्ति प्राप्त हो । और (अवरेभ्य) गौण अंगों को भी (शम्) शान्ति प्राप्त हो । (अस्थभ्य) शरीर में विद्यमान हड्डियों को और उनके समान राष्ट्र में विद्यमान उन दृढ पुरुषों को जो शत्रुओं और दुष्टों पर शस्त्र फेंकते हों, या उनको परे हटाते हों और (तव मज्जभ्य) तेरा मज्जाओं और तुझे राष्ट्र के कण्टक शोधन करनेहारे, दमनकारी अथवा नगरों ग्रामों और वसतिस्थानों में सफाई करानेवाले अधिकारी लोगों को और (तव तन्वे) तेरे शरीर को और तेरे सम्पूर्ण राष्ट्र को (शम् अस्तु) शान्ति प्राप्त हो, सदा कल्याण सुख बना रहे ।

'अस्थि'—असु क्षेपणे । उणादि । ३ । १५४ ॥ अस्यति प्रक्षिपति येन तद् अस्थि । 'मज्जा'—मज्जते मज्जति शुन्धतीति मज्जा । उणादि निपातनम् । १ । १५७ ॥

> क' स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
> किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ४५ ॥

> सूर्य ऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुन ।
> अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४६ ॥

भा०—(४५–४६) इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो इसी अध्याय के मन्त्र ९, १० में ।

किꣳस्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः ।
किꣳस्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(सूर्यसमं ज्योतिः किम्) सूर्य के समान प्रकाश कौनसा है ? (समुद्रसमं सरः किम्) समुद्र के समान तालाब कौनसा है ? (पृथिव्यै वर्षीयः) पृथिवी से भी अधिक वर्षों का पुराना (किंस्वित्) कौनसा पदार्थ है ? (कस्य मात्रा न विद्यते) किसका परिमाण नहीं है ?

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मादयो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(सूर्यसमं ज्योतिः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश (ब्रह्म) ब्रह्म, वेद, वेदज्ञ और महान् परमेश्वर है । (समुद्रसमं) समुद्र के समान (सरः) जलों को निरन्तर बहानेवाला तालाब महान् आकाश (द्यौः) आकाश या सूर्य है । (पृथिव्यै वर्षीयान्) पृथिवी से भी अधिक चिरकाल पुराना (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य है । अथवा पृथिवी के लिये (वर्षीयान्) प्रभूत जल वर्षानेवाला, इन्द्र, वायु या मेघ है और पृथिवी से भी अधिक (वर्षीयान्) बूढ़ा, पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा समस्त पृथिवी का पूज्य है । (गोः तु) गौ, वाणी और सूर्य की किरणों की (मात्रा न विद्यते) मात्रा या परिमाण कोई नहीं है ।

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशाँ३ ॥ ४९ ॥

भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ।

४९—०विवेशाँ३ इति काण्व० ।

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! ब्रह्मन् ! हे (देवसख) देवों-विद्वानों के परम मित्र ! मैं (चितये) ज्ञान प्राप्ति के लिये (त्वा पृच्छामि) तुझ से प्रश्न करता हूं । (यदि) क्या (त्वम्) तू (अत्र) इस देवसभा में (मनसा) ज्ञान के साथ दत्तचित होकर (जगन्थ) उपस्थित है । अथवा यह प्रश्न स्वयं परमेश्वर से ही उपासक करता है । हे (देवसख) विद्वानों के सखा परमेश्वर ! (त्वा) तुझ से (चितये) ज्ञान का उत्तम रीति से प्राप्त करने के लिये (पृच्छामि) मैं पूछता हूं । (यदि) क्या (त्वम्) तू (अत्र) यहां (मनसा) ज्ञानरूप से (जगन्थ) व्याप्त है ? (येषु त्रिषु पदेषु) जिन तीन ज्ञान कराने वाले साधनों या ज्ञान करने योग्य पदों और लोकों, चरणों, सृष्टि, स्थिति, संहार इन त्रिविध सामर्थ्यों में (विष्णु) तू व्यापक परमेश्वर ही (इष्ट) उपासना किया गया है (तेषु) उनमें ही क्या (विश्व भुवनम्) यह समस्त उत्पन्न जगत् (आ विवेशाँ ३॥ऽ) समा जाता है ?

अ॒पि तेषु॑ त्रि॒षु प॒देष्व॑स्मि॒ येषु॒ विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॑ ।
स॒द्यः पर्ये॑मि पृथि॒वीमु॒त द्यामेके॒नाङ्गे॑न दि॒वोऽ अ॒स्य पृ॒ष्ठम् ॥५०॥

परमेश्वरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—[उत्तर]–(तेषु) उन (त्रिषु पदेषु) सृष्टि, स्थिति और संहार, द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों ज्ञानने योग्य स्वरूपों में (अपि) भी (अस्मि) मैं ही हूं (येषु) जिन में (विश्वम् भुवनम्) समस्त उत्पन्न जगत् भी (आविवेश) आविष्ट है । मैं (पृथिवीम्) पृथिवी को (सद्यः) बहुत शीघ्र या अब भी समान भाव से (परि एमि) व्याप्त हूं । (उत द्याम्) और द्यौ, सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों में व्याप्त आकाश में भी सदा व्याप्त हूं । और (एकेन अंगेन) एक अंग या एक अंश से (अस्य दिवः) इस तेजोमय सूर्य के भी (पृष्ठम्) ऊपर के भाग को या सेचन करने वाले सामर्थ्य को भी व्याप्त हूं ।

केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किं स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पुरुषो देवता । भुरि. । त्रिष्टु. । धैवतः ॥

भा०—(पुरुषः) पुरुष, जीव और परमेश्वर (केषु) किन पदार्थों के (अन्तः) बीच (आ विवेश) प्रविष्ट है । और (कानि) कौन २ से और कितने तत्त्व (पुरुषे अर्पितानि) पुरुष के आश्रय पर विद्यमान हैं । हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मन् ' ब्रह्मवित् विद्वन् ' (एतत्) यह प्रश्न हम (त्वा उप वल्हामसि) तुझ से पूछते हैं ? तू (अत्र) इस विषय में (नः) हमें (किंस्वित्) क्या (प्रतिवोचासि) उत्तर कहता है ?

पुरुष, अर्थात् जीव या चेतन शक्ति किन २ तत्त्वों पर आश्रित है । और चेतन तत्त्व में क्या २ तत्त्व गुथे हैं ? यह प्रश्न है । इस प्रश्न को वैज्ञानिक भी अभी तक सरल नहीं कर सके ।

पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पुरुषो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(पञ्चसु अन्तः) पांच तत्त्वों के भीतर (पुरुषः) पुरुष, जीवात्मा चेतन (आविवेश) प्रविष्ट है, ओत प्रोत है और (तानि) वे पांचों (पुरुषे अर्पितानि) पुरुष आत्मा में आश्रित हैं । इसी प्रकार पांचों भूत और उन पांचों सूक्ष्म रूप तन्मात्राओं के भीतर पुरुष, पूर्ण परमेश्वर प्रविष्ट है और वे पांचों भूत और तन्मात्राएं पूर्ण परमेश्वर में ओत प्रोत हैं । (एतत्) यह (त्वा) तुझे मैं (प्रतिमन्वानः) बतला रहा (अस्मि) हूं । हे प्रश्न करनेहारे ! (मायया) बुद्धि या ज्ञान से तू (मत्) मुझ से (उत्तरः) बढ़कर बाहर समाधान करने वाला (न भवसि) नहीं है ।

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वं आसीद् बृहद्वयं ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ ५४ ॥

भा०—(५३,५४) दोनों की व्याख्या देखो अ० २३ । ११ । १२ ॥

काऽ ईमरे पिशङ्गिला काऽ ई कुरुपिशङ्गिला ।
कऽ ईमास्कन्दमर्षति क ई पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

प्रश्न० । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अरे) हे विद्वन् ! बतला (का ईम् पिशङ्गिला) 'पिशङ्गिला' क्या वस्तु है ? (कुरुपिशङ्गिला का ईम्) 'कुरुपिशङ्गिला' यह क्या वस्तु है ? (आस्कन्दम्) उछल उछल के (क ईम् अर्षति) कौन चलता है । (पन्थाम्) मार्ग में (क ईम्) कौन (विसर्पति) सरकता जाता है ।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शशऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

प्रतिवचनम् । स्वराड् उष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—(अरे) हे प्रश्नकर्त्तः ! सुन, (पिशङ्गिला) समस्त रूपों को अपने भीतर निगल जाने वाली (अजा) अजा प्रकृति है। वह कारणरूप समस्त कार्य पदार्थों को अपने में विलीन कर लेती है । (श्वावित्) सेही जिस प्रकार धान्यादि उत्पन्न अन्न को खाजाता है उसी प्रकार 'श्वा' कुत्ते के समान केवल विषय रस के पीछे भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव, (कुरुपिशङ्गिला) स्वयं अपने कर्मों से उत्पादित रूपों को अपने में धारण करता है इसलिये वह 'कुरुपिशङ्गिला' है । (शशः) शशक जिस प्रकार कूद २ कर चलता है । उसी प्रकार (शश.) सबको क्षीण करने

वाला काल ही 'शत्रु' है वह (आक्रन्दन्) सब पदार्थों पर आक्रमण करता हुआ (अर्वति) गुजरता आ रहा है । (अहिः) सर्प जिस प्रकार मार्ग पर सरकता आता है उसी प्रकार मेघ (पन्थाम्) आकाश मार्ग में (विसर्पति) भ्रमण करता है । अथवा (अहिः) आघात करने वाला काल या मृत्यु (पन्थाम् विसर्पति) जीवन मार्ग में व्यापता है ।

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥५७॥

यज्ञः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्य) इस जगत् के (कति विष्ठाः) कितने विशेष आश्रय हैं, जिन में यह जगत् स्थित है ? (कति अक्षराणि) इसमें कितने अक्षर अर्थात् अविनाशी पदार्थ हैं जो कारण रूप होने से भी कभी नष्ट नहीं होते ? (कति होमासः) कितने प्रकार के 'होम' अर्थात् कारण पदार्थों के संयोग विभाग हैं ? (कतिधा समिद्धः) यह कितने प्रकारों से प्रकाशित एवं प्रेरित है अथवा (कतिधा समिद्धः) इसमें कितने प्रकाशक और प्रेरक तत्त्व हैं ? हे विद्वन् ! (यज्ञस्य विदथा) इस 'यज्ञ' विराट् के विज्ञानों को मैं (त्वा) तुझ से (पृच्छम्) पूछता हूं और यह भी पूछता कि (कति होतारः) कितने होता (ऋतुशः) ऋतुओं के अनुसार (यजन्ति) यज्ञ कर रहे हैं ।

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति ॥५८॥

अग्निः । [illegible] । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

५८—श० [illegible] ।

भा०—(अस्य) इस अध्याम यज्ञ के (विष्ठा पद्) छ आश्रय है। जिनमें वह विशेषरूप से स्थित हैं ५ प्राण, ६ ठा मन या आत्मा। (शतम् अक्षराणि) जीवन के सौ वर्ष, सौ अक्षर हैं। (अशीति होमा) इस पुरुष यज्ञ में (अशीति) अन्न का अशन, अर्थात् भोजन करना ही 'होम' है। (तिस्र समिध) तीन समिधा ह बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य। (यज्ञस्य विदथा) यज्ञ विषयक ज्ञानों को (प्र ब्रवामि) मैं बतलाता हू कि (सप्त होतार) सात होता, शिर में स्थित सात प्राण (ऋतुशः) ऋतु अर्थात् प्राणों क बल पर (यजन्ति) यज्ञ करत, ग्राह्य विषयों से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

संवत्सररूप यज्ञ में—६ विष्ठा अर्थात् आश्रय ६ ऋतुएं है, (शत अक्षराणि) सौ अक्षर हैं। अर्थात् सैकड़ों दिन रात ह। (अशीतिर्होमा) अन्न का भोजन ही होम योग्य पदार्थ है। तीन समिधाएं तीन मुख्य ऋतु हैं, गर्मी, सरदी और वर्षा और सात रश्मियां जल ग्रहण करने से 'होता' है।

को ऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षम्।
क सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमस यतोजा ॥५६॥

प्रश्न । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(अस्य भुवनस्य) इस उत्पन्न जगत् की (नाभिम्) नाभि, बन्धनस्थान, या आश्रय को (क वेद) कोन जानता है ? (क द्यावा पृथिवी) आकाश भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को कौन जानता है कि वे कहा से पैदा हुए है ? (बृहत सूर्यस्य) महान् सूर्य के (जनित्रम्) मूल कारण का (क वेद) कौन जानता है ? (चन्द्रमस क वेद) चन्द्रमा के विषय में कौन जानता है कि वह (यत -जा) कहा से पैदा हुआ है ?

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अहम्) मैं (अस्य भुवनस्य) इस समस्त उत्पन्न जगत् के (नाभिम्) परम आश्रय मुख्य केन्द्र को (वेद) जानता हूं । और मैं (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्) आकाश पृथिवी और वायु स्थान अन्तरिक्ष के विषय में भी जानता हूं कि वे जहां से उत्पन्न होते हैं । (सूर्यस्य बृहतः) महान् सूर्य के (जनित्रम्) उत्पत्ति स्थान को भी (वेद) जानता हूं । (अथो) और (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा के विषय में भी जानता हूं कि वह (यतः-जाः) जहां से उत्पन्न होता है । वह सब परमात्मा से उत्पन्न होते हैं । वह सबका कर्त्ता है और 'प्रकृति' जगत् का उपादान कारण है ।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥६१॥

यज्ञः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन् ! (त्वा) तुझ से मैं (पृथिव्याः) पृथिवी का (परम् अन्तम्) परला अन्त परली सीमा (पृच्छामि) पूछता हूं । (यत्र) जिस स्थान पर (भुवनस्य) इस जगत् का (नाभिः) केन्द्र है जिस पर बंधा होकर वह रहता है वह भी (पृच्छामि) पूछता हूं । और (पृच्छामि) पूछता हूं कि (वृष्णः) इस महान् सब सुखों के वर्षक (अश्वस्य) सर्वव्यापक परमेश्वर का (रेतः) उत्पादक वीर्य क्या पदार्थ है ? और पूछता हूं (वाचः) वाणी का (परमम्) परम सर्वोच्च (व्योम) विशेष रक्षास्थान कौनसा है ?

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२॥

भा०—(इयं वेदि) यह 'वेदि' (पृथिव्या पर अन्त) पृथिवी का परम अन्त है। (अय यज्ञ) यह यज्ञ सर्व पूजनीय परमेश्वर (भुवनस्य नाभि) समस्त संसार का परम आश्रय है। वही उसका व्यवस्थापक, संयोजक, और प्रबन्धक है। (अय सोम) यह 'सोम' सबका प्रेरक सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थ समूह ही (वृष्ण) महान् (अश्वस्य) व्यापक परमेश्वर का (रेत) परम वीर्य, सर्वोत्पादक सामर्थ्य है। (अय ब्रह्मा) यह ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् ब्रह्मा ही (वाच) वाणी का (परमम् व्योम) परम रक्षास्थान है।

ये सब प्रश्नोत्तर राष्ट्र के पक्षमें भी नीचे लिखे प्रकार से नाना प्रश्नों का समाधान करते हैं। जैसे—

म० [४७-४८] ब्रह्म, बृहत् राष्ट्रपति या महान् ब्रह्मज्ञ सूर्य के समान प्रकाशक है। 'द्यौ' राजसभा समुद्र के समान ज्ञानप्रचारक होने से अगाध समुद्र के समान अगाध ज्ञान का भण्डार है। 'इन्द्र' अर्थात् राजा पृथिवी से महान् है। 'गौ' अर्थात् पृथिवी या वाणी का कोई परिमाण नहीं।

म० [४९-५०] राजा तीनों पदों में विद्यमान है, राजा, शासकजन और प्रजा। उन्हीं मे सब राष्ट्र स्थित हैं। पृथिवी और (द्यौ) राजसभा को प्राप्त करके राजा एक अङ्ग से सिंहासन पर विराजता है।

म० [५१-५२] पुरुष, सबका पालक राजा पाचों जनों में स्थित है और पाचों जन उसमें आश्रित हैं।

[५६-५७] राष्ट्रवासी पुरुष चार प्रकार के स्वभाव वाले हैं एक 'अजा' स्वभाव के हैं जो सब स्थानों से धन प्राप्त करते हैं दूसरे 'श्वाविन्' जो कर्म करके धन प्राप्त करते हैं। तीसरे शश' हैं जो उन्नति की उछाल भरते हैं, चौथे 'अहि' जो पथिक हैं।

(२७, २८) ६ अमात्य राष्ट्र के ६ आधार हैं। सैकड़ों नगर, ग्राम कोश हैं। अधिकारी होम हैं। प्रजा, उत्साह, सेना ये तीन समिधाएं हैं। ६ अमात्य और सातवां राजा या राज्य के सप्ताङ्ग सात होता है।

(२९, ३०) समस्त राष्ट्र का प्रबन्धक, राजा, राजसभा और शासक, सबका मूल, महान् सूर्य राजा है। आह्लादक राजा का उत्पत्ति स्थान यह राष्ट्र है।

[३१, ३२] राज्याभिषेक की वेदि सर्वोत्कृष्ट स्थान है यह राज्य प्रबन्ध राष्ट्र का प्रबन्ध है। साम, ऐश्वर्य या राष्ट्र स्वयं राजा का बल है। प्रजा, वेदज्ञ विद्वान्, वाणी अर्थात् समस्त आज्ञाओं का उद्गम स्थान है।

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(सुभूः) सब से श्रेष्ठ सर्वोत्पादक (स्वयम्भूः) स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान (प्रथमः) सबसे प्रथम, पूर्व विद्यमान, ईश्वर (महति अर्णवे) बड़े भारी अर्णव, प्रकृति के परमाणु रूप के (अन्तः) बीच में, (ऋत्वियम्) स्त्री के देह में ऋतुकाल के बाद पुरुष जैसे सन्तति उत्पादक गर्भ को स्थापित करता है उसी प्रकार (ऋत्वियम्) ऋतु अर्थात् ठीक नियत काल में (गर्भम्) हिरण्यगर्भ को (दधे ह) धारण करता है। (यतः) जहां से (प्रजापतिः) प्रजा का पालक, सूर्य ... (जातः) उत्पन्न होता है। राजा के पक्ष में—(सुभूः) उत्तम शासक राजा (स्वयम्भूः) स्वयं बलवान्, (प्रथमः) सब से श्रेष्ठ विद्वान (महति अर्णवे) बड़े भारी जन-सागर के बीच (अन्तः) राजसभा में ... ऋतु के अनुरूप (गर्भम्) राष्ट्र का वश करने वाले प्रबन्ध को (दधे) धारण करता है (यतः) जिससे (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (जातः) उत्पन्न होता है। २।६।६।

होता॑ यक्षत्प्रजाप॑तिꣳ सोम॑स्य महि॒म्न ।
जु॒षता॒ पिब॑तु॒ सोम॒ꣳ होत॒र्यज॑ ॥ ६४ ॥

भा०—(होता) सब को अधिकार देनेहारा होता नामक विद्वान् (प्रजापतिम्) प्रजापति, अर्थात् प्रजा के पालक पुरुष को (सोमस्य) समग्र राष्ट्र के ऐश्वर्य के (महिम्न) बड़े भारी अधिकार को (यक्षत्) प्रदान करे। और वह (सोम) समग्र राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (जुषताम्) प्रेम से स्वीकार करे। और (पिबतु) उसका उपभोग करे। हे (होत) होत. ! तू (यज) अधिकार प्रदान कर।

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव ।
यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥ ६५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १०। २० ॥

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयोविंशोऽध्याय ॥



॥ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव
आग्नेयो ररार्टे पुरस्तात् सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधो-
रामौ बाह्वोः सोमापौष्णः श्यामो नाभ्यां सौर्ययामौ श्वेतश्च
कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः
पुच्छ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥ १ ॥

॥ [illegible] ॥

भा०—राजा के [illegible] राष्ट्र के [illegible] का वर्णन करते हैं—(१) 'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः ॥' (अश्वः) घोड़ा, (तूपरः) सींगों वाला [illegible] (गोमृगः) गोमृग अर्थात् [illegible] (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के स्वरूप हैं अर्थात् राजा के [illegible] के हैं। घोड़ा जिस प्रकार [illegible] है, अपने कन्धों पर दूसरों को उठाता है [illegible], इसी प्रकार राजा [illegible] में स्थित, अपने कन्धों पर प्रजाओं का भार उठाने वाला, राष्ट्र के रथ में आगे जुड़कर राष्ट्र का सञ्चालन करता है। [illegible] अपना सिर दूसरे से जोर में लगाता है [illegible] तक झुकना नहीं सीखता। इसी प्रकार राजा प्रजापालक भी अपने प्रतिस्पर्धी शत्रु से लड़े और [illegible] तक [illegible] न रहने दे। 'गोमृग' [illegible] मृग, [illegible] अपनी भूमि के लिये [illegible]। अथवा जिस प्रकार [illegible] के लिये [illegible] राजा भी [illegible] और [illegible] के लिये [illegible] हैं। इस प्रकार [illegible] हैं। इसी राजा

१—[illegible]

और उसके अधीन शासकों को अपने कर्त्तव्यों की शिक्षा लेनी चाहिये। इसी से ये तीनों प्रजापति देवता के कहे जाते हैं।

अथवा—(प्राजापत्या:) प्रजापति के विशेष गुणों के दिखाने वाले (अश्व.) अश्व, (तूपर.) हिंसक मेढ़ा और (गोमृग) गोमृग है।

'प्राजापत्या '—प्रजापति देवताका इत्यर्थ । देवो गुणदर्शनात् गुणद्योतनात् वा । तथा चाह दयानन्द । अत्र सर्वत्र देवता शब्देन तत्तद् गुणयोगापशवो वेदितव्या ॥

अथवा—(अश्व) घोड़े के समान वेगवान्, युद्धशील, (तूपर.) मेढ़े के समान प्रतिपक्षी से प्राण रहने तक टक्कर लेने वाला और (गोमृग) गवय के समान योग्य लक्ष्मी के लिये प्राण पण से लड़ने वाला, ये तीनों प्रकार के पुरुष (प्राजापत्या) प्रजापति के गुणवाले होने से प्रजापति राजा के पद के योग्य हैं।

(२) 'कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तात् ॥' (कृष्णग्रीव:) कालीगर्दन वाला (आग्नेय) अग्नि देवता वाला है। वह राष्ट्र के (रराटे) ललाट में, शिर भाग या मुख्य भाग में (पुरस्तात्) आगे स्थापित करने योग्य है। जैसे अग्नि नीचे उज्वल और धूम से नील होता है उसी प्रकार श्वेत पशु जिसके गर्दन में काला है वह अग्नि के समान है। उसी प्रकार वह पुरुष जो उज्वल पोशाक और गर्दन में काला या नीला वस्त्र या नीले मणि आदि चिन्ह धारण करे वह 'अग्नि' पद के योग्य अग्रणी नेता होने योग्य है उसे (रराटे) शरीर में ललाट या मस्तक के समान आगे और अग्नि अर्थात् ज्ञानी विद्वान् के समान मस्तक द्वारा सोचने वाला विचारशील होना चाहिये। अर्थात् विचारशील ज्ञानी, अग्रणी पुरुष राष्ट्र के मस्तक के समान (पुरस्तात्) सब से आगे मुख्य पद पर नियुक्त हो।

(३) 'सारस्वती मेषी अधस्तात् हन्वो: ॥' (सारस्वती) सरस्वती

देवता की (मेषी) भेड़ (हन्वोः अधरात्) दोनों जबाड़ों के नीचे। अर्थात् भेड़ का स्वभाव है कि दो लड़ाकू भेड़ों में जो प्रबल है वह उसको प्राप्त होती है। अर्थात्, (हन्वोः) परस्पर आघात प्रतिघात करने वालों के (अधरात्) मूल में, उनके नीचे जिस प्रकार उन दोनों की स्पर्धा का विषय वह भेड़ी होती है और जिस प्रकार (सरस्वती) सरस्वती, वाणी स्वयं (हन्वोः अधरात्) दोनों जबाड़ों के नीचे होती है इसी प्रकार (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक विद्वान् की प्रतिस्पर्धा में प्रवृत्त सभा भी (हन्वोः) पक्ष प्रतिपक्ष से एक दूसरे का खण्डन करने वाले दोनों दलों के (अधरात्) नीचे, उनके किये निर्णय के अधीन रहे।

(४) 'अश्विनौ अधोरामौ बाह्वोः ॥' शरीर में (बाह्वोः) जिस प्रकार बाहू हैं उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में दो बाहुओं के स्थानों पर (अश्विनौ) 'अश्वि' देवता वाले (अधोरामौ) नीचे से श्वेत वर्ण के दो बकरों के समान स्वभाव के दो पुरुष नियुक्त किये जाय। अर्थात् बकरे जिस प्रकार सदा चरते हैं उस प्रकार वे दोनों भी राष्ट्र का चर, सकें, निरन्तर भोग सकें, निरन्तर भोगने में समर्थ होने से ही वे (अश्विनौ) अश्वि देवता के हैं। अर्थात् वे राष्ट्र में व्याप्त होकर भोगने में समर्थ हैं। उनके पोशाक ऊपर से काले नीचे से श्वेत हों। ऊपर से भयकर और नीचे से उज्ज्वल हों। ऐसे भीतर से हितैषी और बाहर से क्रूर, कठोर स्वभाव के पुरुषों को राष्ट्र के (बाह्वोः) बाहुओं अर्थात् रक्षा के निमित्त नियुक्त करें।

(५) 'सौमापौष्णः श्यामः नाभ्याम् ॥' सोम और पूषा देवता वाला श्याम वर्ण का नाभिस्थान में हो। (श्यामः) श्याम, हरे वर्ण का सेना में लगा हुआ पशु (नाभ्याम्) राष्ट्र के नाभि या केन्द्रस्थान या मध्य भाग में हो। वे (सौमापौष्णाः) सोम, राष्ट्र के ऐश्वर्य और 'पूषा' प्रजा के पोषक हैं। इस श्यामल वर्ण के दो देव, विद्वान्

अधिकारी है सोम, ओषधि रस का वेत्ता वैद्य और पोषक अन्न का उत्पादक कृषि-विभागाध्यक्ष।

(६) सौर्ययामौ श्वेत च कृष्ण च पार्श्वयो ॥ सूर्य और यम अर्थात् वायु और आकाश इन दो के गुणों के दिखानेवाले काले और सफेद पोषाक को पहनने वाले दो मुख्य अधिकारी (पार्श्वयो) शरीर में दो पासों या बगलों के समान राष्ट्र की दो बगलें बनावें अर्थात् राष्ट्र में एक बगल श्वेत सूर्य के समान तेजस्वी प्रखर राजा और दूसरी बगल में यम अर्थात् दिन के विपरीत रात्रि के समान समस्त राष्ट्र में शान्तिस्थापन करनेवाला नियन्ता पुरुष हो। वह 'सूर्य' नामक पदाध्यक्ष श्वेत हो अर्थात् राष्ट्र के सब कार्यों को बढ़ानेवाला और यशस्वी, तेजस्वी हो, दूसरा नियन्ता 'यम' कृष्ण, रात्रि के समान सुख में प्रजा को प्रेम से खैंचनेवाला और पीड़ाओं से शत्रुओं को (कर्षण) अर्थात् बन्धनागार में खैंचनेवाला हो। राष्ट्र-व्यवस्था की ये ही दो बगलें या पहलू हैं। एक प्रजा की वृद्धि और दूसरा दुष्टों का दमन।

(७) "त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्यो ॥" (लोमशसक्थौ) जिनकी सक्थि अर्थात् समवाय अर्थात् एका करके शत्रुओं का छेदन करनेवाले दो नायक जो (त्वाष्ट्रौ) शत्रु सेनाओं को शस्त्रों से विनष्ट करनेवाले हों उनको (सक्थ्यो) राष्ट्र-शरीर के 'सक्थि' अर्थात् जघा भाग समझे।

(८) "वायव्य श्वेत. पुच्छे ॥" पुच्छ भाग, आधार स्थान पर (वायव्यः) वायु के समान तीव्र प्रचण्ड बलवान् (श्वेत.) अति वृद्धिशील तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करे।

(९) स्वपस्याय इन्द्राय वेहत् ॥ (स्वपस्याय) उत्तम कर्म और प्रज्ञावान् (इन्द्राय) इन्द्र सेनापति के कार्य के लिये (वेहत्) विशेष

रूप में या विविध २ साधनों से शत्रुओं का नाश करनेवाला पुरुष नियुक्त किया जाय।

(१०) वैष्णवो वामन ॥" सर्वव्यापक सामर्थ्यवान् पद के लिये (वामन) अति सुन्दर हृदयग्राही पुरुष को नियुक्त करें।

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः। शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः। शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ २ ॥

निचृत् संकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—(११) रोहित धूम्ररोहित कर्कन्धुरोहित ते सौम्या ॥" (रोहित) लाल रंग (धूम्ररोहित) धूआं मिला लाल रंग लाल नीला और (कर्कन्धु रोहित) बेर के फल का सा लाल, ये तीन रंग की पोशाक वाले प्रधान अधिकारी (सौम्या) सोम अर्थात् राजा के पद के साथ सम्बद्ध हैं।

(१२) (बभ्रु) भूरा (अरुणबभ्रु) लाल भूरा (शुकबभ्रु) हरा भूरा ये तीन प्रकार के रंग की पोशाकों वाले (वारुणा) वरुण नाम पद के सम्बन्धी पुरुष हों।

(१३) (शितिरन्ध्र) श्वेत छिटकनों वाला, (अन्यतः शितिरन्ध्र) एक तरफ श्वेत छिटकनवाला (समन्त शितिरन्ध्र) सारे शरीर पर श्वेत छिटकनवाला ये तीन प्रकार के वर्णों के पुरुष (सावित्रा) सविता पद के सम्बन्ध के पुरुष हों।

(१४) शितिबाहु अन्यतः शितिबाहु समन्तशितिबाहु ते बार्हस्पत्या ॥' (शितिबाहु) बाहु भागों पर श्वेत, (अन्यतः शितिबाहु) किसी एक ओर की बाहु भाग पर श्वेत, (समन्त शितिबाहु) समस्त

बाहुओं पर श्वेत, (ते) ऐसी पोशाक वाले सर्व (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति अर्थात् महामात्य पद के अधीन हों।

(१४) पृषती, क्षुद्रपृषती, स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्य ॥ (पृषती) विचित्र वर्ण के बिन्दु या छींटवाली, (क्षुद्रपृषती) छोटी २ छींट वाली, (स्थूल पृषती) बड़ी २ छींटवाली पोशाकों वाली स्त्रियां (मैत्रावरुण्य) मित्र न्यायाधीश और वरुण, दुष्टों के वारक पोलीस विभाग की समझनी चाहिये।

ये १४ विभाग या अङ्ग राष्ट्र के 'पर्यङ्ग' कहाते हैं।

शुद्धवाल सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णायामाऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ३ ॥

भा०—(शुद्धवाल) शुद्ध श्वेत, बालों वाले, (सर्वशुद्धवाल) समस्त श्वेत बालों वाले, (मणिवाल) मणि के समान नीले बाल वाले (ते आश्विना) वे आश्विन पद के अधिकारियों के अधीन हों।

"श्येत श्येताक्ष अरुण ते रुद्राय पशुपतये।" (श्येत) श्वेत वर्ण का (श्येताक्ष) आंख पर श्वेत वर्णवाला और (अरुण) लाल ये (रुद्राय) सब दुष्टों के रुलाने वाले (पशुपतय) पशु पालकजन के अधीन जानो।

(कर्णा यामा) काना वाले अर्थात् बहुश्रुत लोग 'यम' नामक अधिकारी के हों।

(अवलिप्ता रौद्रा) शरीर पर चन्दन आदि के विशेष रङ्ग का लेप करने वाले 'रुद्र' पद से सम्बद्ध जानो। (नभोरूपा पार्जन्या) आकाश के समान वर्णवाले हल्के नीले रंग के (पार्जन्या) पर्जन्य' अर्थात् मेघ के समान पुष्ट जल धाराओं से अग्नि बुझानेवाले विभाग के हों।

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ४ ॥

भा०—(पृश्नि) चित्रविचित्र वर्ण, (तिरश्चीनपृश्नि) तिरछे या आड़े शरीर पर चिटकने वाला, (ऊर्ध्वपृश्नि) ऊपर की ओर चित्र बिन्दु-वाले, (मारुता) 'मरुत' विभाग के हैं।

फल्गू, लोहितोर्णी, पलक्षी ता सारस्वत्य ॥ (फल्गू) स्वल्पबल वाली, (लोहितोर्णी) लाल ऊन पहनने वाली और (पलक्षी) श्वेत ऊन वाली अथवा अतिचञ्चल आंखों वाली स्त्रियां (ता) वे (सारस्वत्य) सरस्वती, वाणी या आज्ञाएं पहुंचाने के कार्य में लगाई जाय।

प्लीहाकर्ण. शुण्ठाकर्ण अध्यालोहकर्ण ते त्वाष्ट्रा ॥ (प्लीहाकर्ण) तीव्र गति से भीतर प्रवेश करने वाले साधन, (शुण्ठाकर्ण) शुष्क काष्ठ के बने अथवा छोटे उपकरण और (अध्यालोहकर्ण) समस्त लोह के बने साधनों वाला (ते) ये सब (त्वाष्ट्रा) त्वष्टा अर्थात् शिल्पि वर्ग के पुरुष हैं।

"कृष्णग्रीव शितिकक्ष अञ्जिसक्थ ते ऐन्द्राग्ना ॥" काली ग्रीवा वाला या ग्रीवा पर काले चिह्न वाला, कक्ष अर्थात् बगल में श्वेत चिह्न वाला और जांघ पर श्वेत चिह्न वाला ये सब भी इन्द्र, अग्नि, सेनापति और अग्रणी नेता पुरुषों के वर्ग के हैं।

कृष्णाञ्जि, अल्पाञ्जि महाञ्जि ते उषस्या। काले लंगोट के छोटे लंगोट के और बड़े लंगोट के ये पुरुष 'उषस्या', उषा शत्रुदाहक या प्रकाश-कारी विभाग के पुरुष हों।

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(वैश्वदेव्य शिल्पा) सब प्रकारों के शिल्पों को दर्शाने वाले सभी कारिक विद्वान् गण हैं । (रोहिण्य) पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली लताएं या उनके समान बढ़ती उमर की कुमारी कन्याएं (त्र्यवय) माता पिता और गुरु इन तीन की रक्षा में रहने वाली होकर (वाच) ज्ञान वाणी की शिक्षा के लिये जावें । (अविज्ञाता) ज्ञान रहित प्रजाएं (अदित्यै) पृथ्वी के ऊपर कृषि और खोदने आदि श्रम के कार्य पर लगें । अथवा (अविज्ञाता) अज्ञात कुल की कन्याएं पालनार्थ (अदित्यै) अखण्ड स्थिर गृहस्थों को पालनार्थ देदी जाय । (सरूपा) समान रूप गुण, कीर्त्ति वाली स्त्रियें (धात्रे) पोषण करने और उत्तम सन्तानार्थ वीज वपन करने में समर्थ पतियों को प्राप्त हों । (वत्सतर्यः) बहुत छोटी उमर की कन्याएं (देवानां पत्नीभ्य) विद्वान् गुरुओं की स्त्रियों के अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें ।

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬरोहिता रुद्राणाᳬश्वेता ऽअवरोकिणऽआदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

विराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(कृष्णग्रीवा आग्नेया) गर्दन पर काले चिह्न वाले पुरुष 'अग्नि' अर्थात् अग्रणी सम्बन्धी हों । (शितिभ्रव वसूनाम्) भवों पर श्वेत चिह्न के पुरुष 'वसु' नाम के प्रजा बसाने वाले अधिकारियों के हों । (रोहिता रुद्राणां) लाल वर्ण के पोषाक वाले 'रुद्र' नाम अधिकारियों के हों । श्वेत वस्त्र वाले दूसरों को बुरे काम करने और कुमार्ग से जाने से रोकने वाले पुरुष (आदित्यानां) आदित्य नाम के अधिकारियों के हैं । (नभोरूपा

पार्जन्या) नील मेघ के वर्ण का पोशाक वाले पुरुष 'पार्जन्या' पर्जन्य, मेघ के समान जलदाता विभाग के हों।

उन्नतऽऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नत शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽआग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(उन्नत) ऊंचा, (ऋषभ) हृष्ट पुष्ट और (वामन) बौना, या अतिसुन्दर रूप वाले ये तीनों प्रकार के पुरुष (ऐन्द्रावैष्णवाः) इन्द्र और विष्णु नाम अधिकारी के अधीन हों। (उन्नत शितिबाहु शितिपृष्ठ ते) ऊंचे बाहु पर श्वेत वस्त्र वाले और पीठ पर श्वेत वस्त्र वाले वे तीनों (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) 'इन्द्र बृहस्पति' राजा, राजमन्त्री के विभाग के हों। (शुकरूपा वाजिनाः) तोते के समान हरे पोशाक के पुरुष वेगवान् अश्वों के ऊपर नियत हों। (कल्माषा आग्निमारुताः) श्वेत काले, चितकबरी रङ्ग की पोशाक वाले 'अग्नि और मरुत्' विभाग के हों। (श्यामाः पौष्णाः) नीले रङ्ग के पूषा अर्थात् कर समाहर्त्ता विभाग के हों।

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामनाऽअनड्वाहऽआग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतऽएन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(एताः) कबुर रंग के (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि विभाग के हैं। (द्विरूपाः अग्नीषोमीयाः) दो २ रंग की पोशाक वाले (अग्नीषोमीयाः) अग्नि और सोम विभाग के हैं। (वामनाः) छोटे अंग के पुरुष या पशु (अनड्वाहः) जो गाड़ी खींच कर लावें वे (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और विष्णु विभाग के हैं। (वशाः) वशकारिणी संस्थाएं और पुरुष (मैत्रावरुण्यः) 'मित्र और वरुण' विभाग के हैं। एक तरफ से चित्रित

वर्ण के वस्त्र पहनने वाली स्त्रियाँ (मैत्र्य) 'मित्र' विभाग के अधीन हों।

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रव सौम्या श्वेता वायव्याऽअविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्य ॥ ६ ॥

निचृदावन । पञ्चम ॥

भा०—(कृष्णग्रीवा आग्नेया) गर्दन पर काले चिह्न वाले 'अग्नि' विभाग के हैं। (बभ्रव सौम्या) बभ्रु, नेवले के रंग के, या भूरे रंग के 'सोम' विभाग के हैं। (श्वेता वायव्या) श्वेत वर्ण के वायु विभाग के हैं। (अविज्ञाता) इत्यादि म० ५ के समान।

कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्या. शबला वैद्युता सिध्मास्तारका ॥ १० ॥

विराड् गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(कृष्णा भौमा) कृषि के उपयोगी, कर्षक पुरुष और पशु (भौमा) भूमि के उपयोगी हों। (धूम्रा आन्तरिक्षा) धूम जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जाता है एसे धूम के द्वारा रमण करने में कुशल पुरुष अन्तरिक्ष में जाने में कुशल हों। (बृहन्त) बड़े शक्तिशाली पुरुष (दिव्या) सूर्य के समान तेजस्वी एवं ज्ञान, विजय और तेज को प्राप्त करते हैं। (शबला) बल को प्राप्त करने वाले तीव्र गतिमान् यन्त्र (वैद्युता) विद्युत् से उत्पन्न करने के योग्य है। (सिध्मा) तीव्र वेग से जाने हारे साधन (तारका) दूर देशों तक लजाने के लिये हों।

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्याऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

विराड् बृहती । मध्यम ॥

भा०—(वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिये (धूम्रान्) धुमेले रंग के वस्त्रादि को (आलभते) प्राप्त करे। (ग्रीष्माय श्वेतान्) ग्रीष्म काल

के लिये श्वेत वस्त्रों का उपयोग करे। (वर्षाभ्यः कृष्णान्) वर्षा काल के लिये काले या नीले रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। (अरुणान् शरदे) शरद् काल के लिये लाल रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। (पृषत. हेमन्ताय) नाना वर्ण के चितकबेदार अथवा मोटे वस्त्रों को हेमन्त काल में उपयोग करे। (पिशङ्गान् शिशिराय) पीले, वसन्ती रंग के वस्त्रों का उपयोग शिशिर ऋतु के लिये करे। विशेष ऋतु में विशेष रंग के वस्त्र, तथा अन्य पदार्थों के उपयोग से प्राकृतिक लाभ और चित्तप्रसाद और स्वास्थ्य उत्पन्न होता है। अथवा ऋतु भेद से जिस प्रकार मेघों का वर्ण भेद है उसी प्रकार सदस्यों के भेद से राजा के कर्त्तव्यों का भेद है। जैसे वसन्त के निमित्त धूमाकार मेघों को प्राप्त करता है। ग्रीष्म में श्वेत मेघों को, वर्षा में काले, शरद् में साय समय में लाल, हेमन्त में कई रंग के और शिशिर के लिये पीले मेघों को प्राप्त करते हैं।

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा ऽअनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे ॥ १२ ॥

पृष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥ १३ ॥

विराट् अनुष्टुप्। गान्धार ॥

भा०—जैसे गौओं में अवस्था भेद से भेद है उसी प्रकार गौ रूप वाणी में भी छन्दो भेद से भेद है। गौ की अवस्थाओं को वाणी के छन्दों से तुलना करते हैं। (त्र्यवयः गायत्र्यै) १½ वर्ष की गौएं गायत्री के स्थान पर हैं। (पञ्चावय त्रिष्टुभे) २½ वर्ष की गौएं त्रिष्टुप की तुलना के लिये हैं। (दित्यवाहः जगत्यै) कटे धानों को पीठ पर लेकर चलने वाली ३ वर्ष की गौएं जगती के समान जानो। (त्रिवत्सा अनुष्टुभे) तीन तीन वर्ष की गौ अनुष्टुप् के समान है। (तुर्यवाह उष्णिहे) चतुर्थ वर्ष की

गो-जाति उष्णिग् छन्द के समान है। (पष्ठवाह विराजे) पृष्ठ से बोझ उठाने वाली गो जाति विराट् छन्द के समान है। (उक्षाण बृहत्या) वीर्य सेचन में समर्थ बैल बृहती के समान हैं (ऋषभा ककुभे) ऋषभ, बडे बल, ककुप् छन्द के समान समझो। (अनड्वाह पङ्क्त्यै) शकट का बोझ उठाने वाले बैल, (पङ्क्त्ये) पङ्क्ति छन्द के समान हैं और (धेनव) दुधार गौवें (अतिछन्दसे) अति शब्दयुक्त छन्द के समान जानो।

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

भा०—(कृष्णग्रीवा आग्नेया) गर्दन पर काले चिह्नवाले सेवक जन (आग्नेयाः) 'अग्नि' पद के सम्बन्ध के हैं। (बभ्रवः सौम्याः) भूरे पोशाक वाले 'सोम' पद के सम्बन्ध के हैं। (उपध्वस्ताः सावित्राः) अन्य वर्णों से मिले २ वर्ण के 'सवितृ' पद के सम्बन्धी जन हैं। (वत्सतर्यः सारस्वत्याः) अत्यन्त छोटे वर्ष की बालक प्रजाएं (सारस्वत्याः) सरस्वती अर्थात् शिक्षा अथवा विभाग के अथवा गृहस्थ स्त्री द्वारा पोषण योग्य हैं। (श्यामाः पौष्णाः) श्याम, हरे धान 'पूषा' अर्थात् भाग-धुक् नामक अधिकारी के हैं अथवा (श्यामा पौष्णाः) नीले मेघ पृथ्वी के और अन्न के निमित्त हों। (पृश्नय) रसों से पूर्ण गौएं (मारुताः) वैश्यगण की हैं। (बहुरूपा वैश्वदेवाः) नाना प्रकार की प्रजाएं सामान्य समस्त विद्वान् पुरुषों की हैं। (वशा) वशकारिणी शक्तियां (द्यावा पृथिवीयाः) द्यौ पृथिवी के समान माता पिता और राजा प्रजा के बीच में प्रयुक्त हैं।

उक्ताः सञ्चराऽएताऽऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

विराड् उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—(मरुत:) भिन्न २ विभागों के योगा उनके मुख्य और अनुचरों का (उग्रा) वर्णन कर दिया गया है। जैसे (एता: ऐन्द्राग्ना) कर्बुर रंग के इन्द्र और अग्नि के (कृष्णा वारुणा) काले रंग के वरुण के, (पृषत. मारुत) चित्र वर्ण के मरुतों के, (तूपरा: कायाः) हिंसक स्वभाव के प्रजापति के हों।

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवा॑त्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सᳬसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

शक्वरी। धैवत ॥

भा०—(अनीकवते) मुख्य सेना के स्वामी (अग्ने) अग्रणी सेना नायक के कार्य के लिये, (प्रथमजान्) प्रथम श्रेणी के, एवं श्रेष्ठ गुणों और विद्याओं में कुशल पुरुष को (आ लभते) प्राप्त करे और उनको अग्रणी के बलवृद्धि के लिये नियुक्त करे।

(सान्तपनेभ्य) अच्छी प्रकार स्वयं तपस्या करने और शत्रुओं के तपानेहारे (मरुद्भ्य) विद्वान् पुरुषों या वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करनेवाले पुरुषों के लिये (सवात्यान्) प्राणों को या तीव्र वायु के समान तेजी से भागनेवाले, हवा में यान करनेवाले पुरुषों और यानादि को (आलभते) प्राप्त करे। (गृहमेधिभ्य: मरुद्भ्य:) गृहस्थ विद्वान् के रक्षा के लिये (बष्किहान्) हिंसकों के भी मारनेवाले रक्षकों को (आलभते) प्राप्त करे। (क्रीडिभ्य:) क्रीड़ा अर्थात् आनन्द विनोद, या युद्ध क्रीड़ा करनेवाले (मरुद्भ्य:) प्रजाओं या वीर पुरुष के लिये (संसृष्टान्) उनके साथ मिलकर काम करने में समर्थ, या खूब सध हुए साथियों को प्राप्त करे। (स्वतवद्भ्य:) अपने ही बल पर कार्य करनेवाले (मरुद्भ्य:) मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) उनके अनुकूल चलनेवाले पुरुषों को प्राप्त करे।

१६–गृहमेधि॰।

उक्ता सञ्चराऽएता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

भा०—(सञ्चरा उक्ता) इनके साथ के अनुचर पूर्व कह चुके हैं। ये विशेष समझो कि (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि के (एताः) चितकबरे वर्ण के (प्राशृङ्गा माहेन्द्रा) महान् राजा के अनुचर खुले हिंसा साधन, हथियारों को आगे थामे हुए हों। (वैश्वकर्मणा) विश्वकर्मा एञ्जीनियर के अधीन (बहुरूपा) नाना प्रकार के कर्मचारी हों।

इस प्रकार राष्ट्र के भिन्न २ पदाधिकारियों के अधीन उनके भृत्य, साथी सङ्गियों के नाना वर्ण के पोषाकों, स्वभावों और प्रकारों का वर्णन कर दिया। तदनुसार ही उनके विभाग में काम आनेवाले पशुओं और यान आदि के भी भिन्न २ रूप सकेतार्थ कर लेने चाहियें।

अश्वमेध यज्ञ में प्रतिनिधिवाद से इन वर्णों के बकरों को ही लेकर २१ यूपों में बांधने का लिखा है। पर जब अश्व राष्ट्र का प्रतिनिधि है तो ये बकरे भी राष्ट्र के कार्यों में नियुक्त पुरुषों के उपदर्शक मात्र हैं। ऐसा जानना चाहिये।

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाᳬ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः। पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

भुरिग् अतिजगती। निषादः ॥

भा०—(सोमवतां पितृणां) राज्य के विशेष पालन करने वाले रक्षक पुरुषों के अधीन पुरुष (धूम्रा) धुमैले रंग के और (बभ्रुनीकाशा) भूरे के से पोशाक के हों। (बर्हिषदां पितृणाम्) प्रजा पर अधिष्ठित पालक पुरुषों के अधीन चाकर (बभ्रव) भूरे रङ्ग के (धूम्रनीकाशा) धुमैले छापवाले हों। अर्थात् उन के वस्त्रों पर धूमैले रंग पर भूरे रङ्ग की धारियां हों। दूसरों के वस्त्रों

भा०—(अग्नये) अग्नि के प्रयोग के लिये (कुटरून्) कुटरू नामक मुर्गा, पक्षियों को (आलभते) प्राप्त करे। (*वनस्पतिभ्यः उलूकान्*) वनस्पतियों के ज्ञान के लिये उल्लू जातियों के पक्षियों को प्राप्त करे, उनके जीवन का अनुशीलन करे। (अग्निषोमाभ्याम्) अग्नि और जल की परीक्षा के लिये (चाषान्) चाष नामक पक्षियों को देखे। (अश्विभ्यां मयूरान्) स्त्री पुरुषों के संयमी और प्रेमी और सुन्दरता सुगम्भ आलाप के लिये (मयूरान्) मयूरों को देखे। (मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्) मित्र और वरुण अर्थात् मित्रता, स्नेह और परस्पर वरण के लिये (कपोतान्) कपोत नाम पक्षियों को देखे।

सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥

भा०—(सोमाय लबान् आलभते) सोम, सौम्य भाव के लिये 'लवा' नामक पक्षी को देखे (त्वष्ट्रे कौलीकान्) त्वष्टा, अर्थात् कारीगरी के काम देखने के लिये 'कौलिक' यथा नाम पक्षी को देखे। (देवानां पत्नीभ्यः) विद्वान् पुरुषों या राजाओं की पत्नी या पालक शक्तियों के अर्थ दृष्टान्त के लिये (गोषादीभ्यः) गौओं पर बैठने वाला 'गुरसल' नामक पक्षियों का देख। व गौ पर बैठती है, उनके नाशकारी कीड़ों को खाजाती है और उन को हानि नहीं पहुंचाती। इसी प्रकार पृथ्वी के पालक शक्तियों को राष्ट्रवासी प्रजाओं को हानि न पहुंचा कर उनके बीच में दुष्ट पुरुषों को पकड़ २ कर नष्ट करें। (कुलीका: देवजामिभ्यः १) देव, विद्वानों या राजाओं या विजयी पुरुषों के 'जामि' भगिनियों या स्त्रियों के लिये दृष्टान्त रूप से 'कुलीक' नामक पक्षी को देखना चाहिये। (अग्नये गृहपतये पारुष्णान्) गृहपति के उत्तम दृष्टान्त के लिये पारुष्ण

१—जमि सम्पूर्णा नि:।

नामक पक्षियों को देखना चाहिये। वे प्रत्येक अंग में उत्पन्न होते हैं और अपने बच्चों को अपने अंगों से लगा कर पालते हैं।

अन्हे पारावतानालभते रात्र्ये सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

विराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—दिन के प्रारम्भ के लिये (पारावतान्) कबूतरों को देखे, वे भोर में ही उठते हैं घुत्कार करते हैं। वैसे मनुष्य भी शीघ्र उठें और मन्त्रपाठ करें। अथवा दिन के कार्य के लिये पारावत, कबूतरों के प्रयोग करें वे दिन में दूर तक देखते हैं। (रात्र्ये सीचापू) रात्रि के कार्य के लिये 'सीचापू' नाम पक्षी का ज्ञान करें। (अहोरात्रयोः सन्धिभ्यः जतूः) *दिन और रात की सन्धिकाल या सन्ध्या समय में* 'जतू' अर्थात् चमगीदड़ों का ज्ञान करें। वे उस समय अच्छा देखती और आहार पाती हैं। (मासेभ्यः दात्यौहान्) मासों के उत्तमता के ज्ञान के लिये काल कौओं का ज्ञान करें। (संवत्सराय महतः सुपर्णान्) संवत्सर की उत्तमता को जानने के लिये बड़े २ पक्षियों का अध्ययन करें।

भूम्याऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

भा०—(भूम्यै आखून् आलभते) भूमि की उत्तमता के लिये मूषकों का स्वाध्याय करे। (अन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्) अन्तरिक्ष विज्ञान के लिये पङ्क्ति बनाकर चलनेवाले पक्षियों को देखे। (दिवे कशान्) प्रकाश के *लिये 'कश' नाम के पक्षियों को प्राप्त करे।* (*दिग्भ्यः नकुलान्*) *दिशाओं* के ज्ञान के लिये (नकुलान्) नवलों को स्वाध्याय करे। (अवान्तर दिग्भ्यः) उपदिशाओं के ज्ञान के लिये (बभ्रुकान्) बभ्रुक नामक जन्तुओं को देखे।

वसुभ्यऽऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वे-
भ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

भा०—प्रजा में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और साध्य ये पांच श्रेणियां उसी प्रकार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जानो जैसे वन के मृगों में ऋश्य, रुरु, न्यङ्कु, पृषत और कुलुङ्ग ये पांच हरिण जाति के हैं। इनमें क्रम से एक के लिये एक को दृष्टान्त से लेवें। (वसुभ्यः ऋश्यान् आलभते) वसु २४ वर्ष के ब्रह्मचारियों के लिये मृग जाति में (ऋश्यान् आलभते) ऋश्य नामक मृगों को लेवें। (रुद्रेभ्यः रुरून्) रुद्रों के लिये रुरु नामक मृगों को और (आदित्येभ्यः) आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (न्यङ्कून्) न्यङ्कु जाति के मृगों को और (साध्येभ्यः कुलुङ्गान्) साध्य अर्थात् योग साधनाभ्यासी पुरुषों के लिये कुलुङ्ग जाति के मृगों का ग्रहण करें। अथवा उक्त वसु आदि के लिये उक्त मृगों के चर्म दान, आसनादि के लिये प्रदान करें।

ईशानाय परस्वतऽआलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान्
बृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ २८ ॥
दृ० । मन्त्र ॥

भा०—(ईशानाय) ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् जन के लिये (परस्वतः) परस्वान् नामक मृगों का निदर्शन करे। (मित्राय गौरान्) मित्र स्नेही व्यक्ति के लिये (गौरान्) गौर मृगों का दृष्टान्त देवें। ये परस्पर बहुत ही स्नेह करते हैं। (वरुणाय महिषान्) वरुण, शत्रुओं को वारण करने वाले के लिये महिष अर्थात् भैंसा को देखना चाहिये। (बृहस्पतये गवयान्) बृहस्पति के बड़े राष्ट्र की रक्षा के लिये नील गायों को देखना चाहिये। ये जंगल स्वयं का बड़ी चिन्ता से रक्षा करते हैं नर गवय मादाओं के बीच में घर के रक्षा करता है। (त्वष्ट्रे उष्ट्रान्) त्वष्टा, शिल्पियों के लिये ऊंट जाति के समान उद्यम वाले जन्तुओं का निदर्शन करना चाहिये। जिस प्रकार

लम्बी टांगों पर भारी शरीर किस कारीगरी से लगा है उसका अनुकरण करना चाहिये। या भार वाले पदार्थों के उठाने के लिये ऊँटों का उपयोग करना चाहिये।

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन ऽआलभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

भा०—(प्रजापतये) प्रजापालक राजा की सत्ता के लिये (पुरुषान्) वीर पुरुषों को और (हस्तिन) हाथियों को (आलभते) प्राप्त करे। (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषी नामक जन्तुओं को प्राप्त करे। (चक्षुषे मशकान्) आंख के लिये छोटे २ मच्छरों को देखे। जिस प्रकार चक्षु के रूप को देखकर व मुग्ध होते हैं ऐसे उत्तम रूपों पर चक्षु को लगावे। (श्रोत्राय भृङ्गाः) श्रवणेन्द्रिय के सुख के लिये (भृङ्गाः) भृङ्गों को प्राप्त करे, उनके सुन्दर झंकार श्रवण करे।

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

भा०—(प्रजापतये वायवे च) प्रजा के पालक और वायु के समान वेग से जाने के लिये (गोमृग) गवय अनुकरण करने योग्य है। (वरुणाय) शत्रु का वारण करने के लिये (आरण्य मेष) जंगली मेढा अनुकरण करने योग्य है। अर्थात् शत्रु का वारण करने वाला वीर मेढे के समान शत्रु से टक्कर ले। और (यमाय कृष्णः) यम, नियमपालक ब्रह्मचारी के लिये (कृष्णः) कृष्ण मेष अनुकरणीय है, वह उसके समान हृष्ट पुष्ट हो। (मनुष्यराजाय मर्कटः) मनुष्य स्वभाव के राजा के लिये वानर का दृष्टान्त समझना चाहिये। अर्थात् प्रायः मनुष्य स्वभाव के राजा

वानर के समान चपल और कंपी होते हैं, अथवा वे उनके समान दिखावटी क्रोध के हों। अन्दर से वे क्रोध न करें। (शार्दूलाय रोहित्) जिस प्रकार सिंह के लिये एक मृग पर्याप्त होता है उसी प्रकार शार्दूल के समान वीर पराक्रमी के लिये (रोहित्) वृद्धिशील प्रजा प्राप्त हो। (ऋषभाय गवयी) जिस प्रकार बैल की संगत के लिये गौ प्राप्त होती है उसी प्रकार नरश्रेष्ठ को यह पृथिवी भोग के लिये प्राप्त हो। (क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका) जिस प्रकार वेग से झपटने वाले बाज के (वर्त्तिका) बटेरा शिकार में प्राप्त होती है। उसी प्रकार वेग से श्येन पक्षी के समान परराष्ट्र पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष को भी (वर्त्तिका) वृत्ति राज्य से प्राप्त हो। (नीलङ्गोः कृमिः) नीड़ में बैठने वाले विशेष छोटी जाति के पक्षी को जिस प्रकार भोजन के लिये (कृमि) कृमि प्राप्त होता है उसी प्रकार 'नीड' अर्थात् आश्रय रक्षास्थान में बैठे पुरुष को उसके कर्म का फल प्राप्त हो। (समुद्राय शिशुमारः) समुद्र में जिस प्रकार स्वयं 'शिशुमार' नाम का घड़ियाल आश्रय किये रहते हैं। उसी प्रकार ऐश्वर्य के समुद्र राजा के पास घड़ियाल के समान शत्रु को अपने बल से पीड़ित करने वाले भयङ्कर वीर पुरुष प्राप्त हों। (हिमवते हस्ती) जिस प्रकार विशालकाय हाथी जन्तु हिमवान् पर्वत का आश्रय लेता है उसी प्रकार हिमालय के समान उन्नत पुरुष के अधीन मद कुञ्जर भी प्राप्त होते हैं।

मयुः प्राजापत्य ऽउलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

विराट् । धैवतः ॥

भा०—(मयु) बगल झाड़ा देने वाला पुरुष (प्राजापत्य) प्रजापति प्रजापालक राजा के योग्य है। अथवा (मयु) गान, अर्थात् वादि के वस्त्र

शब्द गान करने हारा (प्राजापत्य) प्रजापति, राजा के सुख के लिये हो। (उल) ऊन के वस्त्र देने वाला, (हलिक्ष्ण) सिंह के समान निर्भय चक्षु वाला और (वृषदंश) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट दिखाई देने वाला (ते) ये तीनों प्रकार के पुरुष (धात्रे) राष्ट्र में धाता, प्रजा के पोषणकारी पद के योग्य हैं। (धुङ्क्षा) शत्रुओं को धुन डालने या कंपा देने वाली और उसको क्षीण करने वाली सेना (आग्नेयी) 'अग्नि' नामक अग्रणी नायक के अधीन रहे। (कलविङ्क) मधुरध्वनियों को या कलायन्त्रों को प्रकट करने वाला, (लोहिताहि) लोहित अर्थात् लोहादि के बने पदार्थों को आघात करने वाला लोहकार और (पुष्कर साद) तालाब को बनाने वाला, अथवा पुष्ट करने वाले दृढ़ दुर्गों को बनाने वाला (ते) ये सब (त्वाष्ट्रा) शिल्पकार के अधीन हों। (वाच क्रुञ्च) उत्तम वाणी के लिये ज्ञानवान्, चतुर पुरुष प्राप्त हो।

सोमाय कुलुङ्ग ऽआरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥

भुरिक् जगती । निषादः ॥

भा०—(सोमाय कुलुङ्ग) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्यवान् पद के लिये (कुलुङ्ग) मृग के समान उछाल भर कर शत्रु पर धावा करने वाला पुरुष प्राप्त हो। (आरण्य अज) जंगली 'अज' 'अजाशृंगी नामक ओषध' या शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला पुरुष, (नकुल) नेवुरा और उस स्वभाव का विषवैद्य, (शका) मधु-मक्खियें और उनसे तैयार मधु अथवा समवाय बनाकर शक्तिशाली हुए पुरुष (ते पौष्णा) ये सब पुष्टि करने के लिये प्राप्त किये जायँ। (मायो) दीर्घ शब्द करने के निमित्त पद के लिये (क्रोष्टा) दूर तक बुलाने वाला पुरुष प्राप्त किया जाय। (इन्द्रस्य गौरमृग)

ऐश्वर्यवान् या इन्द्र आचार्य के पद के लिये (गौरमृग) वाणियों में रमण करने और अन्त करणों को शुद्ध करने में समर्थ पुरुष चाहिये अथवा ऐश्वर्यवान् होने के लिये (गौरमृग) गौओं और भूमियों में रमण करने और धनादि के खोजने वाला पुरुष चाहिये। (पिद्व) ज्ञानवान् पुरुष, (न्यङ्कु) नीचे, शनै आचरणशील और (कक्कट) निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करने वाला (ते) वे (अनुमत्यै) अनुमति, सलाह करने के लिये प्राप्त करने चाहियें। (चक्रवाक) चक्र राजचक्र में आचरण करने में समर्थ, वाग्मी पुरुष (प्रतिश्रुत्काय) सभा में स्थित प्रत्येक को राजा की घोषणा श्रवण कराने के लिये प्राप्त किया जाय।

'पिद्व'—पी गतौ। भ्वादि। दुगागम। न्यञ्चति इति न्यङ्कु। कटी गतौ। भ्वादि, गति ज्ञान गमन प्राप्तिश्चेति त्रयोऽर्थाः। चक्रे वर्तते चक्रवाक। प्रति प्रति श्रूयते यया क्रियया सा प्रतिश्रुत्का तस्यै। गोषु, वाणीषु भूमिषु, गोषु धनेषु वा रमत इति गौर। मृजू शुद्धौ। मृगयतेर्वा। कुलुग कुत्र गच्छति इति कुलग डाच छान्दसम्। अथवा कुत्सित लुनाति इति कुलु शत्रुकुल आकुलयति वा। अणति क्षिपति रागान् बहिरिति अन। अरण्य अच आरण्य। न कुत्सित मल लाति इति नकुल शुद्धाशीचध्वापक। शका शक्नुवन्त समवायेन वर्तन्ते, शासयन्ताति वा शका।

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

भा०—(बलाका) बल से जाने वाली सेना को (सौरी) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये प्राप्त कर। (शार्ग =शारग,) सार पदार्थों तक पहुँचने वाला अथवा 'शार ग' शरणभूमि सहित जाने वाला, अथवा (शार्ङ्ग) शृङ्ग के धनुष के धारण करने वाला, या शस्त्रधर (सृजय) वेग

स विनय करने वाला और (शयाण्डक) शयन से सुख कराने वाला (ते) ये तीनों (मैत्रा) स्नेही एवं प्रजा को मरण से बचाने वाले राजा के लिये प्राप्त करो। (सरस्वत्यै) विद्या के अभ्यास के लिये (पुरुषवाक् शारि) पुरुष वाणी बोलने वाली मैना के समान पद पाठ का पुनः अभ्यास करने वाला पुरुष हो। (भौमी श्वावित्) भूमि के भीतरी तत्वों को प्राप्त करने वाला (श्वावित्) सेह के समान खोदने वाला हो। (शार्दूल) शार्दूल के समान पराक्रमी (वृक) भेड़िये के समान साहसी और (पृदाकु) अजगर के समान तपस्वी ये तीनों प्रकार के पुरुष (मन्यवे) 'मन्यु' अर्थात् क्रोध शीलता के लिये राजा को अनुकरणीय हैं (सरस्वते) प्रशस्त ज्ञान का अगाध सागर होने के लिये (पुरुषवाक् शुक) पुरुष की वाणी बोलने वाले शुक के समान पुनः २ पाठशील पुरुष को प्राप्त करो।

सुपर्णः पार्जन्य ऽआतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज ऽआन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३८ ॥

स्वराट् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(सुपर्ण) उत्तम पालनशक्ति से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पार्जन्य) मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का वर्षाता हो। (आति) निरन्तर सर्वत्र भ्रमण करने में समर्थ (वाहस) वाहनों को साथ रखने वाला और (दर्विदा) दारु अर्थात् काष्ठों के विद्वान् (ते) वे तीनों पुरुष (वायवे) वायु के समान तीव्र वेग से गति करने में उपकारी होवें वे शीघ्रगामी रथ बनावें।

(वाचस्पतये पैङ्गराजः) वाणी के पालकस्वरूप वाचस्पति पद के लिये उत्तम उपदेश और अध्यापन कार्य एवं उत्तम सूक्त पद्यादि कहने वालों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष को प्राप्त करो। (अलज) जो पुरुष अपने कार्मों

से दूसरों को संताप न दे ऐसा व्यक्ति (आन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष के समान सब का रक्षक होने योग्य है। (प्लवः) जहाज़, (मद्गु) जलकाग के समान जल और स्थल दोनों स्थानों पर विहार करने में समर्थयान और (मत्स्य) मछली के समान रचना वाला यान (ते नदीपतये) वे नदीपति समुद्र के सतरण के लिये चाहिये।

(द्यावापृथिव्यः कूर्मः) क्रिया उत्पन्न करने में समर्थ सूर्य जैसे द्यौ और पृथिवी को प्रकाश करता है। इसी प्रकार (कूर्मः) क्रियाशील, कर्मक्षम, तेजस्वी पुरुष राजा और प्रजा दोनों का हितकारी हो। नीचे की पृथिवी और ऊपर का आकाश दोनों मिल कर महान् 'कूर्म' अर्थात् कच्छप का आकार बनाते हैं। यह विराट् कूर्म है, वह जैसे पृथिवी और आकाश का मिलकर कूर्म है उसी प्रकार पृथिवी और उसका रक्षक राजा दोनों का मिलकर राज्य रूप एक कूर्म बनता है। यह उत्तम राज्य राजा प्रजा दोनों का ही होने से द्यावा पृथिवी दोनों का कहाता है।

'पैङ्गराज '—पिङ्गिभापार्थं । 'अलजः'—अज गतिक्षेपणयोः इत्यादिः ।

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

निचृत् शक्वरी । धैवतः ।

भा०—(चन्द्रमसः पुरुषमृगः) पुरुषों को अपने उपदेश, आचार व्यवस्था द्वारा पवित्र करने वाला पुरुष 'चन्द्रमा' के पद के योग्य है। वह चन्द्र के समान सब का आह्लादक है। (गोधा) गौओं का पालक (कालका) यथाकाल, ऋतु अनुसार फल प्राप्त करने वाला और (दार्वाघाट) काष्ठों का चीरने फाड़ने वाला (ते) ये तीन पुरुष (वनस्पतीनाम्) वन के वनस्पतियों के पालने और प्रयोग के लिये हों। (कृकवाकुः)

कण्ठ मे शुद्ध वाणी बोलने वाला विद्वान् (सावित्र) सविता, सर्वप्रेरक आज्ञापक और सविता के समान ज्ञानी आचार्य पद के योग्य है। (हंस वातस्य) हंस के समान जल में निर्लेप रह कर विहार करने वाला योगी (वातस्य) प्राण के संयमन में कुशल (नाक्र) नक्र के शरीर के समान बनी नाव, (मकर) मगरमच्छ के शरीर के समान बनी नाव और (कुलीपय) कुलीपय नामक जलजन्तु के समान रचना वाला जलयान (अकूपारस्य) समुद्र के विहार के लिये बनाना चाहिये। (ह्रियै शल्यकः) लज्जा के लिये सेहा या जंगली कांटेदार चूहा अनुकरण करने योग्य है वह आहट और स्पर्श पाते ही मुंह छिपाकर पड़ जाता है।

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश ऽआश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त ऽइतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(एणी) नित्य आनेवाली उषा (अह्न) दिन को प्रकाश करती है। (मूषिका तित्तिरि मण्डूक) मेंढक, मूसा और तीतर ये तीनों (सर्पाणाम्) सांपों के आहार होते हैं। (लोपाश आश्विन) स्त्री और पुरुष दोनों का परस्पर सम्बन्ध 'लोपाश' [पाश=लोहपाश] अर्थात् लोह से बने पाश के समान दृढ़ हों। (कृष्ण) काला अंधकार (रात्र्या) रात्रि का स्वरूप है। (ऋक्ष जतू सुषीलिका ते इतरजनानाम्) रीछ, चमगीदड़ और सुषीलिका नामक पक्षी ये तीनों श्रेष्ठ पुरुषों से भिन्न २ जनों के स्वभाव के दृष्टान्त हैं। रीछ क्रूर है वह पशु होकर भी अपुच्छ है, चमगीदड़ न पक्षी है न पशु है। सुषीलिका पक्षी होकर बिल बनाकर रहती है। इस प्रकार ये भिन्न वर्ग के हैं उसमें होकर भी उनसे भिन्न रूप और स्वभाव के हैं इसी प्रकार जो लोग श्रेष्ठ पुरुषों में होकर भी उनसे भिन्न

आकार स्वरद्वार के होने से इन २ पुरुषों के समान हैं। (ऋद्धवै गती) सर्वत्र फैलाने वाली व्यापक शक्ति परमेश्वर की है। राष्ट्र में व्यापक शक्ति राजा की है। 'ऋद्धवा' — आह्लाद गतौ।

अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासान् कश्यपो रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—(अन्यवापः अर्धमासानाम्) स्वयं न दूसरों द्वारा बीज वपन करने (अर्धमासानाम्) आधे मास अनुकाल मात्र के लिये हो। उसके अतिरिक्त समय नियुक्त पुरुष का स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं। जिस प्रकार 'अन्यवाप' अर्थात् दूसरे के घोंसले में उत्पन्न कोयल का काक से पालन मात्र का सम्बन्ध है बाद में वह पुनः कोयल का ही बच्चा कहाता है उसी प्रकार असमर्थ पुरुष के स्त्री में अन्य वीर्य द्वारा उत्पादित नियोगज पुत्रों का भी वीर्य दाता के साथ केवल ऋतुकाल के १५ दिनों के संग मात्र का सम्बन्ध है। उसके अतिरिक्त वे पुत्र स्त्री के पाणिग्रहीता पति के ही कहाते हैं।

(ऋश्य मयूर सुपर्णा ते गन्धर्वाणाम्) ऋश्य नामक मृग जो गान पर मुग्ध हो जाता है (मयूर) मोर जो मधुर षड्ज स्वर का आलाप करता है (सुपर्ण) हंस ये गन्धर्व अर्थात् गान विद्या के विशेष २ पुरुषों के लिये स्वर निर्णय में अनुकरण करने योग्य हैं। ऋश्य मृग का स्वर ऋषभ मयूर का षड्ज और हंस का पञ्चम है।

(अपाम् उद्रः) उद्र अर्थात् उदक में रमण करनेहारे ऊद् नाम जीव का अनुकरण करके (अपाम्) जलों के विहार करने के साधन तैयार करना चाहिये। (कश्यपः) सर्वप्रकाशक, सूर्य (मासान्) मासों १२ महीनों का उत्पादक होता है। (रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका ते

अप्सरसाम्) रहित कण्डूणाची और गोलत्तिका ये तीन पशुजाति (अप्सरसान्) स्त्रियों के स्वभाव बतलाने वाले दृष्टान्त हैं। अथवा ये स्त्रियों के तीन नमूने हैं, १ रहित जो पुरुष का सङ्ग लाभ कर पुत्र सन्तानादि से फूलती फलती है। अथवा लता स्वभाव का है। वे पुरुष का आश्रय करके रहती है। दूसरी (कण्डूणाच)दाह या कामानल से पीड़ित होकर पुरुष के पास आती है। तीसरी गोलत्तिका अर्थात् गोरतिका गौ के स्वभाव की अन्न वस्त्र हो से सन्तोष करनेवाली अथवा गौ इन्द्रियों को सुख देनेवाली पशु के समान रतिमात्रफला। कामचित् कामशास्त्र की दृष्टि से रहित=मृगी। कण्डूणाची = हस्तिनी और गोलत्तिका = चित्रिणी हो।

(असित) बन्धन रहित नाव (मृत्यवे) मृत्यु अर्थात् शरीर त्याग के वश होता है। अर्थात् मृत्यु का स्वरूप देहबन्धन से छूटना है। अथवा (असित) कृष्ण पापी बन्धनरहित निमर्याद पुरुष (मृत्यवे) मृत्यु दण्ड के योग्य है।

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

स्वराट् जगती । निषादः ।

भा०—(वर्षाहूः ऋतूनाम्) वर्षाओं को लानेवाला काल (ऋतूनाम्) ऋतुओं में सबसे श्रेष्ठ है। (आखुः) सब ओर से भूमि को खनकर उसमें से रत्न जल अन्नादि प्राप्त करने वाला (कशः) कशा के समान शासन करने हारा या सब विद्याओं का प्रकाशक और (मान्थाल) मथन करके सार भाग प्राप्त करने वाला ये नाना प्रकार के पुरुष (पितृणाम्) पालक माता पिता के समान नित्य हितकारी होते हैं। (बलाय) बल के सम्पादन के लिये (अजगर) अजगर का अनुकरण करना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार अजगर सुदृढ़ यथेच्छ बलवाला होता है उसी प्रकार

शरीर देखने में कोमल होकर भी इच्छानुसार कठोर और बलपूर्ण हो। (पमूनां कपिञ्जल) उत्तम वचन कहने वाला पुरुष (पमूनाम्) राष्ट्रवासी प्रजाओं का प्रिय होता है। (कपोत उलूक शश. ते निर्ऋत्यै) कपोत, उलूक और शशक ये तीनों जन्तु सङ्कट, विपत्ति की सूचना देने वाले और उस काल में सहायक हैं। उसके लिये इनकी प्रकृति का स्वाध्याय करना चाहिये। (वारुणो मेष वरुणाय) जंगली मेढ़ा या जंगली भैंसा, 'वरुण' अर्थात् शत्रुनिवारण करने वाले पुरुष को अनुकरण करने योग्य है। वह जैसे शत्रु से प्राणपण से जुट जाता है उसी प्रकार शत्रु मारने के काम में लगे पुरुष को अपने कार्य में प्राणपण से जुट जाना चाहिये।

श्वित्र ऽआदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते ऽमत्या ऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयि. कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(श्वित्र. आदित्यानाम्) श्वेत प्रकाश सूर्य की किरणों का होता है। वह श्वित्र, निष्पाप चरित्र आदित्य ब्रह्मचारियों को अनुकरण करना चाहिये। (उष्ट्र. घृणीवान् वार्ध्रीनस ते मत्यै) उष्ट्र, अर्थात् पापों का दहन करने वाला (घृणीवान्) सूर्य के समान तेजस्वी और (वार्ध्रीनस) नाक में नकेल लगालेने के समान अपने इन्द्रियों पर निग्रह करने वाला ये तीन प्रकार के पुरुष (मत्यै) उत्तम मति, ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपासना करने योग्य हैं। (अरण्याय सृमर) गवय के समान नित्य जंगलों में घूमने वाला पुरुष जंगल के प्रदेश के लिये पथप्रदर्शक होने योग्य है। (रुरुः) निरन्तर उपदेश करने वाला (रौद्रः) उपदेशक विद्वान् होने योग्य है। अथवा भयकर शब्द करने वाला पुरुष भयजनक है।

(क्वयिः कुटरु दात्यौह. ते) क्वयि कुटरु=कुक्कुट और काला काक ये तीनों (वाजिनाम्) घोड़ों के हितकारी होते हैं। अथवा पहाड़ा कुक्कुट और काक

ये तीन दृष्टान्त (वाजिनाम्) युद्ध करनेवालों को अनुकरण करने योग्य हैं। (कामाय पिकः) काम, मनोभिलाषा पूर्ण करने के लिये (पिकः) कोकिल के समान मनोहर वाणी से बोलनेहारा हो।

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

भा०—(खड्गः) गेंडा नामक पशु (वैश्वदेवः) समस्त विजिगीषु, योद्धा पुरुषों के ढाल बनाने के काम का होता है। अथवा (खड्ग) खड्ग तलवार सब सैनिकों के उपयोग की है। (कृष्णः श्वा) काला कुत्ता, (कर्णः गर्दभः) कानों वाला गधा और (तरक्षुः) चीता ये पदार्थ (रक्षसाम्) दुष्ट पुरुषों से बचने के लिये उपाय और अनुकरणीय दृष्टान्त हैं। (इन्द्राय सूकरः) भूमि विदारण करने के काम में 'सूकर' सूअर नाम का लम्बी थोथन वाला पशु अनुकरण करने योग्य है। (सिंह मारुतः) सिंह, प्रयाण करने वाले योद्धा के लिये वीरता और तीव्रता के लिये अच्छा अनुकरण योग्य दृष्टान्त है। (कृकलासः) कृकलास नाम सरट गिरगट, (पिप्पका) पिप्पका नाम का छोटा पक्षी और (शकुनिः) शक्तिशाली बड़ा पक्षी, ये तीनों पदार्थ (शरव्यायै) बाण बनाने के उपयोग के हैं। गिरगट के समान बाण का मुख पिप्पका के पूंछ के समान बाण का पुंछ और बड़े पक्षियों के परों के खण्डों से बाण बनाया जाता है। (पृषतः विश्वेषां देवानाम्) पृषत् नामक सामान्य मृग समस्त विद्वान् पुरुषों के लिये मृगछाला आदि के आसन और वस्त्र के कार्य का है।

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार विरुदोपशोभित-श्रीमज्जयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ ' शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दंष्ट्राभ्याᳪ सरस्वत्याऽअग्रजिह्वं जिह्वायाऽउत्सादमवक्रन्देन तालु वाजᳪ हनुभ्यामप ऽआस्येन वृषणमाण्डाभ्याम् । ' आदित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याᳪ शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्याऽ इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

ऋषिः प्रजापतिः (२) निचृदतिधृतिः । धैवतः ॥

भा०—(शादं दद्भिः) काटने की क्रिया को दांतों से सीखो। (दन्तमूलैः) दांतों के मूल भागों से (अवकाम्) रक्षा करने की विधि का उपदेश करना। काटने का विज्ञान दांतों से सीखना चाहिये कि किस प्रकार वे पदार्थों को काटते हैं। उसी प्रकार दन्तमूल काटने के अवसर पर दांतों की कैसे रक्षा करते हैं। (बर्स्वैः मृदम्) दांतों के पृष्ठ भागों से (मृदम्) मर्दन करने की क्रिया का पाठ सीखो। वे चबाये पदार्थ को कैसे मसलते हैं। (दंष्ट्राभ्यां तेगान्) दाढ़ों से तीक्ष्णता का ज्ञान करो। (सरस्वत्यै अग्रजिह्वम्) सरस्वती, शुद्ध वाणी के उच्चारण के लिये जिह्वा के अग्रभाग का उपयोग करो। (जिह्वायाः) जीभ से (उत्सादम्) उखाड़ने के व्यापार की शिक्षा लो। वह अपनी चतुरता से दांतों में फंसे पदार्थों के अवयवों को किस प्रकार उखाड़ती है। (अवक्रन्देन तालु) नीचे शब्द के प्रयास से (तालु) तालु का प्रयोग सीखो। (हनुभ्याम् वाजम्) दोनों जबाड़ों से बल की शिक्षा लो। (आस्येन अपः) मुख से जलों के

१—शादं दद्भिरित्यस्य पूर्व्वो सर्वा (२५ । १) [illegible] मन्त्र इति महीधरः ॥

प्रकट होने का विज्ञान देखो, किस प्रकार मुख में लगी ग्रन्थियों से जल छूटता है और नित्य सदा मुख जल से गीला रहता है। (आण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्डकोषों से वीर्य सेचन के ज्ञान को प्राप्त करो। (श्मश्रुभिः) दाढ़ी मोछ के बालों से (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारियों को पहचानो, अथवा दाढ़ी मोंछ के बालो से (आदित्यान्) सूर्य की किरणों को जानो। अर्थात् मनुष्य के मुख पर दाढ़ी मोंछ उसी प्रकार है जिस प्रकार सूर्यबिम्ब के चारों ओर उससे निकलने वाली किरणें। (भ्रूभ्याम् पन्थानम्) भौंहों से मार्ग को जानो अर्थात् जिस प्रकार नाक पर दो भौंहें एक दूसरे के विपरीत दिशा में लगी हैं उसी प्रकार भिन्न २ दिशा में गये मार्गों को सूचित करना चाहिये। अथवा (भ्रूभ्याम्) भौंहों के इशारे से ही (पन्थानम्) जाने योग्य मार्ग को समझो। बुद्धिमान को इशारों से ही अपने कर्त्तव्या कर्त्तव्य को जानना चाहिये। (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) ऊपर नीचे की पलकों से आकाश और पृथिवी को जानो अर्थात् जैसे दो पलकें ऊपर नीचे हैं वे चक्षु को अपने भीतर लिये रहती है उसी प्रकार आकाश ऊपर और पृथिवी नीचे वे दोनों दो पलकों के समान सूर्य रूप तेज को अपने भीतर धारण करती हैं। (कनीनकाभ्या) आंख की पुतलियों से (विद्युतम्) विद्युत् या विशेष द्युतिमय सूर्य को समझो। पलकों के बीच का पुतली उसी प्रकार है जैसे आकाश और भूमि के बीच विशेष तेजस्वी सूर्य है। (शुक्लाय स्वाहा) आंख के शुक्ल भाग का भी ज्ञान करो और (कृष्णाय स्वाहा) कृष्ण भाग का भी ज्ञान करो। वे दोनों दिन और रात्रि के प्रकाश और अन्धकार के समान हैं। (पक्ष्माणि) पलकों पर के लोम (पार्याणि) नदी के परले तट पर लगे कासों के समान हैं। (इक्षव) नीचे की पलकों के लोम (अवार्याणि) मानो इस तीर के कासों के समान हैं। अथवा (पक्ष्माणि) स्वीकार करने योग्य वस्तु (पार्याणि) पालन करने योग्य है। (इक्षव) इच्छानुकूल पदार्थ (अवार्याणि)

धारण नहीं करने चाहियें। और इसी प्रकार (वर्त्साभिः अवकाभिः) अपने पक्ष के, प्रहण योग्यों का तिरस्कार न किया जाय। (इवधः पार्यो) हुए सम्बन्धियों का पालन करना चाहिये।

अथवा–इस मन्त्र में राष्ट्र की मनुष्य के मुँह से तुलना की गई प्रतीत होती है। जैसे (शाद दद्भि.) शाद अर्थात् छेदन करनेवाले शस्त्र बल की दांतों से तुलना करो। (अवकां दन्तमूलै) शैवाल को दन्तमूलों से तुलना कर। अथवा काटने वाले हथियारों की दांतों से तुलना कर। राष्ट्र की रक्षा करने वाली सेना को दांतों के मूलों के तुल्य मानो। (तेगां दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण शस्त्र की दाढ़ों से तुलना करो। (सरस्वत्या अग्रजिह्वं) सरस्वती या विद्वत्-समिति से मुखस्थ जीभ की तुलना करो। (जिह्वाया उत्सादम्) मुख में लगी जीभ की राष्ट्र में शत्रु को उखाड़ देने की शक्ति से तुलना करो। (अव-क्रन्देन) शत्रु को ललकारने वाले या दबाने वाले बल से (तालु) तालु की तुलना करो। जिस प्रकार भोज्य पदार्थ को तालु दबा लेता है उसी प्रकार राजा भोग्य राष्ट्र को दबाकर भोग करे। (वाज हनुभ्याम्) राष्ट्र के बल वीर्य की मुख के जबाड़ों से तुलना करो। (अप आस्येन) राष्ट्र में स्थिर जलों की (आस्येन) खुले मुख से तुलना करो। अथवा (अपः आस्येन) प्रजाओं की समस्त खाने वाले मुख से तुलना करो। (वृषणम् आण्डाभ्याम्) शरीर में स्थित अण्डकोशों से वर्षा करनेवाले मेघ की तुलना करो। (आदित्यान् श्मश्रुभि.) सूर्य की किरणों की मुख के मूंछ दाढ़ी से तुलना करो। (पन्थानं भ्रूभ्याम्) राष्ट्र में बने मार्ग की मुख पर लगी भौंहों से तुलना करो। (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) दो पलकों से आकाश और पृथिवी की तुलना करो। (विद्युतं कनीनकाभ्याम्) आकाश पृथिवी के बीच स्थित विशेष कान्तिवाले सूर्य या विद्युत् की आँखों की पुतलियों से तुलना करो। (शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा अर्थात् शुक्लेन शुक्लं सुष्टु आह। कृष्णेन कृष्णं सुष्टु उच्यते। अथवा, शुक्ल-

शुक्र स्वम् उपमानमाह कृष्ण कृष्णं स्वम् उपमानम् आह) आंख के श्वेत भाग और कृष्ण भाग के लिये भी दिन और रात्रि के शुक्र और कृष्ण प्रकाश और अन्धकार दोनों की उत्तम रीति से तुलना करो। (पक्ष्माणि पार्याणि) ऊपर के पलक के लोम राष्ट्र के पालन करने वाले अथवा दूर के देश वासी जन के समान हैं। और (इत्वः) निचली पलक के रोम (अवार्याणि) समीप के प्रान्तों के वासी जनों के समान हैं। अथवा इससे विपरीत (पक्ष्माणि अवार्याणि पार्या इत्वः) ऊपर की पलकों के लोम पास के प्रान्तों की प्रजा और नीचे के पलक के रोम दूर के प्रान्तों की प्रजा के समान हैं।

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रᳬं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳬं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳬं स्तुपेन ॥ २ ॥

भुरिगतिशक्वर्यौ । धैवतः ॥

भा०—(प्राणेन वातम्) शरीरगत प्राण से राष्ट्रगत वायु की तुलना करो। (अपानेन नासिके) शरीर की नासिका को अपान वायु से तुलना करो। (अधरेण ओष्ठेन उपयामम्) नीचे की होंठ से राज्यव्यवस्था की तुलना करो। (सत् उत्तरेण) ऊपर के होंठ से राज्य के सदाचार व्यवस्था की तुलना करो। (प्रकाशेन अन्तरं) राज्य में विद्यमान् विद्या, विज्ञान और सूर्यादि के प्रकाश से शरीर के भीतर विद्यमान् अङ्गों की ज्ञानपूर्वक रचना की तुलना करो। (अनूकाशेन) उसके अनुरूप प्रकाश से (बाह्यम्) देह के बाह्य स्वरूप की तुलना करो। (मूर्ध्ना निवेष्यं) शरीर

के शिरो भाग से राष्ट्र के भीतर व्यापक या एक स्थान पर राजधानी में बसे मुख्य भाग की तुलना करो। (स्तनयित्नुं निर्बाधेन) शरीर में स्थित शिर के बीच के भाग के घन भाग की तुलना आकाश में स्थित गर्जनकारी मेघ से करो। (अशनिं मस्तिष्केण) मस्तक में स्थित भाग या भूरे रंग के भाग से अधरस्थ वज्र की तुलना करो। (विद्युतं कनीनकाभ्यां) चक्षुओं में स्थित पुतलियों से मध्यस्थ विद्युत् की तुलना करो। (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) दिशाओं के दो कानों से शरीर के श्रोत्र की, या कानों से आकाश की तुलना करो। (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) शरीरगत श्रवण के साधन कानों से (कर्णौ) शेष दो कानों की तुलना करो। (तेदनीम् अधरकण्ठेन) राष्ट्र की 'तेदनी'=तर्जनी, तीक्ष्ण शक्ति की शरीरगत कण्ठ के अधर भाग से तुलना करो। (शुष्ककण्ठेन अपः) शरीरगत सूखे कण्ठ से राष्ट्र की (अपः) प्रजाओं की तुलना करो। अर्थात् वे सदा सूखे गले के समान सदा जल की प्यासी रहती हैं। (चित्तं मन्याभिः) शरीर में स्थित चित्त की (मन्याभिः) राष्ट्र का मान करने वाली राजसभाओं से तुलना करो। (अदितिं शीर्ष्णा) शरीरस्थ शिर से प्रभु की अखण्ड आज्ञा की तुलना करो। (निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा) राष्ट्र के नाश या विपत्ति की तुलना शरीर में लगे बिना बोलने वाले मृत्युग्रस्त अथवा (निर्जर्जल्प) अत्यन्त जर्जर, उस असुर शिर से करो जिसका बोलना बंद हो चुका है। (संक्रोशैः प्राणान्) राष्ट्र में एक दूसरे के प्रति बोले हुए शब्द, वार्तालाप, आह्वान आदि की तुलना शरीरस्थ प्राणों से करो। (रेष्माणं स्तुपेन) शिर में लगे आघात आदि से राष्ट्र में उत्पन्न परस्पर घात प्रतिघात उपद्रव की तुलना करो।

अथवा—(प्राणेन वातम् आप्नुय) हे अध्यात्मपुरुष ! तू प्राणवृत्ति अर्थात् बाहर से भीतर श्वास द्वारा वायु को प्राप्त कर। (अपानेन नासिके) और फिर अपान अर्थात् भीतर से बाहर आते हुए निःश्वास द्वारा दोनों नाकों को शुद्ध कर। (अधरेण ओष्ठेन उपयामम्) ऊपर और नीचे

के ओष्ठों से प्राप्त या स्वीकृत नियम मौनमुद्रा या वाक् संयम की साधना कर। (प्रकाशेन अन्तरम्) ज्ञान के प्रकाश से भीतर को उज्ज्वल कर और (अनुकाशेन बाह्यम्) तदनुसार स्वच्छ आचरण से अपने बाह्य शरीर को सुन्दर बना। (मूर्ध्ना निवेश्यम्) अपने शिर में ध्यान करने योग्य ध्येय पदार्थ की चिन्ता कर। (निर्बाधेन) अच्छी प्रकार रोक लेने के उपाय से (स्तनयित्नुम्) मेघ को या गर्जनकारी विद्युत् को प्राप्त कर अथवा (निर्बाधेन) निरन्तर ताडना या प्रहार से (स्तनयित्नुम्) शब्द करने की क्रिया को उत्पन्न कर। (मस्तिष्केण अशनिम्) मस्तिष्क-मस्तक में स्थित मज्जा तन्तु के जाल से देह में व्यापक विद्युत् की साधना कर। (कनीनकाभ्याम् विद्युतम्) आंख की पुतलियों से विशेष दीप्ति को प्राप्त कर। (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) कानों से श्रवण शक्ति को प्राप्त कर। (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) श्रवण करने वाले भीतरी इन्द्रियों से बाह्य कानों को शक्तियुक्त कर। (अधरकण्ठेन तेदनीम्) कण्ठ के नीचे के भाग से 'तेदनी' भोजन की क्रिया को कर। (शुष्ककण्ठेन अपः) सूखे कण्ठ से जलों का पान कर। (मन्याभिः चित्तम्) मन्या नाम की धमनियों से या मनन करने की विज्ञान क्रियाओं से (चित्तम्) चित्त को तीव्र कर। (शीर्ष्णा अदितिम्) शिर से अविनाशिनी अर्थात् न नाश होने वाली अखण्ड ब्रह्मविद्या या प्रज्ञा को प्राप्त कर। (निर्जर्जल्येन) सर्वथा जर्जर हुए शिर से (निर्ऋतिम्) मृत्यु को या भूमि को प्राप्त हो। अर्थात् शिर की ज्ञान चेतना के सर्वथा नाश या लोप होजाने पर पुनः देह से मृत्यु द्वारा मिट्टी में मिल जा। (सङ्क्रोशैः प्राणान्) लम्बे २ आह्वान अर्थात् दीर्घ शब्दों से प्राणों की शक्ति को बढ़ा (रेतुपेन रेष्माणं) हिंसा के प्रयोग से अपने हिंसक को विनाश कर।

निर्जल्पेन इति बम्बईनिर्णयसागरीय. पाठ ', ' निर्जर्जल्पेन इत्यजमेर-मुद्रित पाठ ।' 'निर्जर्जल्येन' इति स्वाध्यायमण्डलप्रकाशित. शुद्ध पाठ ।

मशकान् केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्मान्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

भा०—राष्ट्र में स्थित (मशकान्) मशक, मच्छर आदि क्षुद्र जन्तुओं की शरीर में स्थित (केशैः) केशों से तुलना करो। (वहेन स्वपसा) उत्तम कर्म करने और भार उठाने में समर्थ स्कन्ध देश से (इन्द्रम्) राष्ट्र के इन्द्र या मुख्य राजा की तुलना करो, (शकुनिसादेन) पक्षी या शक्तिशाली पुरुष के समान पैर जमाकर बैठने की शक्ति से (बृहस्पतिम्) राष्ट्र के बृहस्पति पद, महामात्य की तुलना करो। (शफैः कूर्मान्) पैर के खुरों से राष्ट्र के कछुओं या क्रियाशील पुरुषों की तुलना करो।(स्थूराभ्याम् आक्रमणम्) स्थूल घुटनों से राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर उसे दबा बैठने की तुलना करो। अर्थात् जैसे मनुष्य घुटनों से आसन पर बैठ जाता है और उस जगह को घेर लेता है उसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण करके उसे अपने वश कर लेता है, उसे घेर लेता है। (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) घुटने के नीचे की नाड़ियों से राष्ट्र में विद्यमान कपिञ्जल अर्थात् उत्तम २ उपदेश देनेवाले विद्वानों की तुलना करो। (जङ्घाभ्याम् जवम्) शरीर के जंघाओं से राष्ट्र के वेग के कार्यों की तुलना करो। (बाहुभ्याम् अध्वानम्) शरीर के हाथों से राष्ट्र के मार्ग की तुलना करो। (जाम्बीलेन अरण्यम्) गोडी के नीचे के भाग से राष्ट्र के जंगल के भाग की तुलना करो। (अतिरुग्भ्याम् अग्निम्) अति दीप्तिवाले सुन्दर दोनों जानु भागों से राष्ट्र के 'अग्नि' अग्रणी पद से तुलना करो। (दोर्भ्यां पूषणं) बाहुओं से राष्ट्र के पूषा नामक अधिकारी की तुलना करो। (अंसाभ्याम् अश्विनौ) कन्धों से 'अश्वी' नामक दो मुख्य अधिकारियों की तुलना करो। (रोराभ्यां रुद्रम्) कन्धों की गांठ से रुद्र नामक अधिकारी की तुलना करो।

अथवा—(केशैः मशकान्) बालों की चौमरियों से जिस प्रकार मच्छरों को दूर किया जाता है उसी प्रकार मच्छर के स्वभाव के दुःखदायी जीवों को (केशैः=क्लेशैः) क्लेशदायी साधनों से विनष्ट करो। (स्वपसा) उत्तम कर्म और प्रज्ञा से (इन्द्रम्) आत्मा और ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को प्राप्त करो। (वहेन) उत्तम प्राप्ति के साधन रथादि से (बृहस्पतिम्) बृहती वेद वाणी के पालक आचार्य को, या बड़े राष्ट्र के पालक राजा को प्राप्त करो। (शकुनिसादेन) पक्षियों को पकड़ने के साधन जाल से ही कूर्म के जाति के जन्तुओं को जल में से जिस प्रकार पकड़ा जाता है उसी प्रकार (शकुनिसादेन) पक्षियों के पकड़ने की विधि अर्थात् प्रलोभन दिखा २ कर (कूर्मान्) कर्म करनेवाले योग्य पुरुषों को वश करो। (शफैः आक्रमणम्) खुरों से जिस प्रकार वेग से आक्रमण किया जाता है इसी प्रकार वेगवान् साधनों से आक्रमण करो। (स्थूराभ्यां जघाभ्य जवम्) हृष्ट पुष्ट जंघाओं से वेगपूर्वक गमन करो। (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) 'ऋक्षला' अर्थात् कपाटिकाओं से जिस प्रकार गौरय्या जैसे छोटे २ पंछियों को पकड़ा जाता है उसी प्रकार 'ऋक्षला' अर्थात् विद्वानों की वृत्तियों द्वारा उत्तम उपदेश देनेवाले विद्वानों को प्राप्त करो। (जघाभ्याम्) अध्वानम्) जांघों से ही मार्ग को तय करो। (जाम्बीलेन अरण्यम्) जम्बीर जाति के कांटेदार वृक्षों से जगल को पूर्ण करो। (अतिरुग्भ्याम् पूषणं अग्निम्) रुचि और पुष्टिकारक अन्न को और दीप्ति से अग्नि को प्राप्त करो। (दोर्भ्यां असाभ्यां) बाहुओं और कन्धों से (अश्विनौ) राजा और प्रजा को प्राप्त करो। अर्थात् राजा अपने बाहुओं के बल से प्रजा को वश करे और प्रजाएं अपने कन्धों से राजा का वहन करें। (रोराभ्याम्) श्रवण और उपदेश द्वारा (रुद) विद्वान् उपदेशक को प्राप्त करो।

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै

पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥४॥

स्वराड् धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—राष्ट्र के अंगों की, शरीर के छाती की पसुलियों के अंगों से तुलना करते हैं। (अग्नेः पक्षतिः) अग्नि अर्थात् अग्रणी पुरुष को शरीर में प्रथम पसुली से तुलना करो। (वायोर्निपक्षतिः) वायु को दूसरी पसुली से तुलना करो। (इन्द्रस्य तृतीया) इन्द्र, विद्युत् को तीसरी पसुली से तुलना करो। (सोमस्य चतुर्थी) सोम, ओषधि आदि को चौथी पसुली से तुलना करो। (पञ्चमी अदित्यै) अदिति अर्थात् भूमि से पांचवीं पसुली की तुलना करो। (इन्द्राण्यै षष्ठी) इन्द्र राजा की स्त्री, महारानी, से छठी पसुली की तुलना करो। (मरुतां सप्तमी) वायुएं और वैश्य प्रजाओं या विद्वान् पुरुषों से सातवीं पसुली की तुलना करो। (बृहस्पतेः अष्टमी) बृहस्पति, मन्त्री को आठवीं पसुली से तुलना करो। (अर्यम्णः नवमी) अर्यमा, न्यायकारी न्यायाधीश की नवीं पसुली से तुलना करो। (धातुर्दशमी) धाता, राष्ट्रपोषक से दशवीं पसुली की तुलना करो। (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र सेनापति की ११ वीं पसुली से तुलना करो। (वरुणस्य द्वादशी) वरुण की १२ वीं पसुली से तुलना करो। (यमस्य त्रयोदशी) नियन्ता मक्षधारी पुरुष 'यम' की तेरहवीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार १३ अधिकारी मानो राष्ट्र की दायीं ओर की छाती के १३ अधिकारी हैं। इसी प्रकार अगले मन्त्र में वाम बायें की १३ पसुलियों से अन्य १३ अंगों का वर्णन करेंगे।

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाꣳ सप्तमी विष्णोरष्टमी

पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

स्वराड् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—(इन्द्राग्न्योः पक्षतिः) बायें पार्श्व की प्रथम पसुली इन्द्र और अग्नि दोनों पदों की समझो। (सरस्वत्यै निपक्षतिः) सरस्वती का दूसरी पसुली से तुलना करो। (मित्रस्य तृतीया) 'मित्र' की तीसरी पसुली से तुलना करो। (अपां चतुर्थी) प्रजाओं का चौथी पसुली से तुलना करो। (निर्ऋत्यै पञ्चमी) निर्ऋति' अर्थात् मृत्यु दण्ड की पांचवीं पसुली से तुलना करो। (अग्नीषोमयोः षष्ठी) अग्नि और सोम की छठी पसुली से तुलना करो। (सर्पाणां सप्तमी) सर्प अर्थात् चरों की सातवीं पसुली से तुलना करो। (विष्णोः अष्टमी) व्यापक विष्णु या राजा की आठवीं पसुली से तुलना करो। (त्वष्टुः) त्वष्टा अर्थात् शिल्पशास्त्र वेत्ता की (नवमी) नवमी पसुली से तुलना करो। (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र की ११ वीं पसुली से तुलना करो। (वरुणस्य द्वादशी) 'वरुण' की १२ वीं पसुली से तुलना करो। (यम्यै त्रयोदशी) यमी, ब्रह्मचारिणी स्त्रियों की १३ वीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार (द्यावापृथिव्योः) द्यौ और पृथिवी के समान एवं राजा और प्रजा दोनों का (दक्षिणं पार्श्वम्) दायां पार्श्व है और (विश्वेषां देवानाम् उत्तरम्) समस्त विद्वान् पुरुषों का बायां पार्श्व है।

अर्थात् राजसभा के दो भाग होगये एक में राजा और प्रजा के अधिकारीगण और दूसरे में समस्त विद्वान् जन।

मरुताᳬ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ

५—० तृतीया मासस्य० इति काण्व०

श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणं स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(मरुतां स्कन्धाः) जैसे शरीर में कन्धे हैं वैसे ही राष्ट्र में 'मरुत्' अर्थात् शत्रु को वायुवेग से झपट कर मारने वाले सैनिकों के (स्कन्धाः) स्कन्धावार या छावनियां ही राष्ट्र के कन्धे हैं। (विश्वेषां देवानाम्) समस्त विद्वान् पुरुषों की (प्रथमा) सब से प्रथम, सर्वोत्तम (कीकसा) उपदेश क्रिया (प्रथमा कीकसा) प्रथम 'कीकसा' अर्थात् पसले की पहली मोहरी के समान परम आधार है। (रुद्राणां द्वितीया) रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले दमनकारी पुरुषों की शासन व्यवस्था दूसरी मोहरी के समान है। (तृतीया आदित्यानां) आदित्य के समान तेजस्वी अनतिक्रम शासन कारी अधीशों का शासन तीसरी मोहरी के समान है। (वायोः पुच्छम्) 'वायु' न्यायाधीश का पद शरीर में पूछ के समान राष्ट्र का आश्रय अथवा (पुच्छम्) दुष्ट पुरुषों का नाशक है। (अग्निषोमयोः) अग्नि, अग्रणी, सेनापति और सोम, ऐश्वर्यवान् राजा इन दोनों तेजस्वी पदाधिकारी राष्ट्र के (भासदौ) दो नितम्ब भागों के समान राष्ट्र के आधार हैं। (क्रुञ्चौ) हंसों के समान विशेष विवेकी, दो विद्वान् (श्रोणिभ्याम्) राष्ट्र के कटिप्रदेशों से तुलना किये जाते हैं। (इन्द्रा बृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति, राजा और मन्त्री दोनों (ऊरुभ्याम्) राष्ट्र के दो जांघों से तुलना किये जाते हैं। (अल्गाभ्यां) अति वेग से गमन करने वाले ऊरुओं के दो सन्धि भागों से (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण इन दो पदाधिकारियों की तुलना की जाती है। (आक्रमणं) राष्ट्र का विजयार्थ आक्रमण करना (स्थूराभ्याम्) स्थूल जांघों के भागों से तुलना किया

१—मित्रावरुणा वल्गा० इति काण्व० ।

जाता है। (कुष्ठाभ्याम्) जांघ और चूतड़ दोनों के बीच गहरे स्थानों में (बर्ज़े) राष्ट्र के सैन्य बल की तुलना की जाती है।

पूरणं वनिष्ठुनान्धाहीन्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुतऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्मान्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

भा०—(वनिष्ठुना पूरणम्) स्थूल आँतों से पूरा नाम अधिकारी की तुलना करो। (स्थूलगुदया अन्धाहीन्) अन्धे साँपों की स्थूल गुदा के भाग से तुलना करे। (गुदाभि सर्पान्) गुदाओं से साँपों की तुलना करो। (आन्त्रै विह्रुत) शरीर की आँतों से अन्य कुटिलगामी सर्पों की तुलना करो। (वस्तिना अप·) राष्ट्र के भीतर जल, जलाशयों नदियों की वस्ति भाग से तुलना करो। (वृषणमाण्डाभ्याम्) वर्षणकारी मेघ की वीर्य सेचन समर्थ अण्डकोशों से तुलना करो। (वाजिनं) वीर्यवान् पुरुष बलवान् को शरीर में पु-लिङ्ग से तुलना करो। (रेतसा प्रजां) राष्ट्र की प्रजा को शरीरस्थ वीर्य से तुलना करो। (चाषान् पित्तेन) खाने योग्य पदार्थों को शरीरस्थ पित्त पदार्थ से तुलना करो। (पायुना प्रदरान्) शरीरस्थ पायु या गुदा मार्ग से राष्ट्र के भीतर विशेष फटे २ दरारभागों की तुलना करो। (कूश्मान्) 'कूश्म' अर्थात् शामक पदाधिकारी अथवा अग्नि के बल से फेंके जाने वाले गोलों और अग्निमय पदार्थों को (शकपिण्डैः) शक्तिमान् पिण्डों के समान शरीर में स्थित विष्ठा के पिण्डों से तुलना करो।

अथवा—(पूरणम्) पोषक पुरुष को उससे (वनिष्ठुना) याचना द्वारा शक्ति और अन्न प्राप्त करो। (स्थूलगुदया सहितान् अन्धाहीन् गुदया सर्पान्) मोटी गुदा से युक्त अंधे साँपों को और गुदा भाग से साधारण साँपों को पकड़ कर वश करो। (आन्त्रै विह्रुत.) विशेष कुटिल साँपों को उनकी आँतों से वश करो। (वस्तिना अप) वस्ति

क्रिया द्वारा जलों को प्राप्त करो। (अण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्ड कोषों से वीर्याधार स्थान को पूर्ण करो। (शेपेन वाजिनम्) लिङ्ग भाग से वीर्यवान् अश्व या वीर्यवान् पुरुष की परीक्षा करो। (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) प्रजा को प्राप्त करो। (पित्तेन) पित्त के बल से (चाषान्) भुक्त पदार्थों को पचाओ। (प्रदरान् पायुना) गुदा भाग से पेट के भीतरी भागों को स्वच्छ और बलवान् करो। (शकपिण्डैः) शक्ति के मर्मों से (कूश्मान्) शासन बलों को प्राप्त करो।

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ ८ ॥

निचृदाकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(क्रोडः इन्द्रस्य) शरीर का गोद का भाग इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा का है। शरीर में जिस प्रकार पेट का अगला भाग, नाभि स्थान केन्द्र है उसी प्रकार राष्ट्र के नाभि भाग में राजा का स्थान है। (अदित्यै पाजस्यम्) अदिति पृथिवी का स्वरूप शरीर में पार्श्व या सबसे बल का स्थान है। (दिशां जत्रवः) दिशाओं का स्वरूप शरीर में जत्रु अर्थात् कन्धे और कोखके बीच की पसुलियां हैं। (अदित्यै भसत्) अदिति द्यौ, आकाश ही राष्ट्र की (भसत्) प्रकाशक, तेजस्वरूप होने से वह शरीर में भी (भसत्) लिङ्गभाग, तेजोमय वीर्यवान् अङ्ग के समान है। (जीमूतान् हृदयौपशेन) राष्ट्र के विजयशील पुरुषों को, या मर्मों को शरीर के हृदय भाग में विद्यमान बल या रुधिर सञ्चारक उपकरणों से तुलना करो। (पुरीतता अन्तरिक्षम्) शरीर में स्थित पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी से अन्तरिक्ष

का तुलना करो। (उदर्येण) उदर में स्थित यन्त्रों से (नभ) आकाश की तुलना करो। (मतस्नाभ्यां) हृदय के दोनों पार्श्व पर स्थित फुफ्फुसों को (चक्रवाकौ) राष्ट्र में स्थित चकवा चकवी के समान प्रेम से बद्ध स्त्री पुरुषों की तुलना करो। (दिव वृक्काभ्याम्) शरीर में वृक्का अर्थात् गुर्दों से (दिवम्) द्यौ या आकाश की तुलना करो। अर्थात् जिस प्रकार आकाश से जल गिरता है उसी प्रकार शरीर के गुर्दों से मूत्र जल स्रवित होता है। (गिरीन् प्लाशिभि) शरीर में स्थित 'प्लाशि' नामक पेट के भीतरी अन्नरस प्राप्त करने वाली नाड़ियों से (गिरीन्) राष्ट्र में स्थित पर्वतों की तुलना करो। (उपलान् प्लीहा) शरीर में स्थित प्लीहा, पिलही भाग से मेघों की तुलना करो। (क्लोमभि बल्मीकान्) राष्ट्र में स्थित बल्मीक के बने ढेरों की शरीर के 'क्लोम' नाम कलेजों के खण्डों से तुलना करो। दोनों सछिद्र होने से एक जैसे हैं। (ग्लौभि गुल्मान्) राष्ट्र में विद्यमान लता आदि से आवृत प्रदेशों को 'ग्लौ' नामक हृदय की हर्ष, भय या शोक, पीड़ा, आघात संवेदना आदि अनुभव करने वाली विशेष नाड़ियों से तुलना करो। (हिराभि स्रवन्ती) शरीर में स्थित अन्नरस और रुधिर को वहन करने वाली नाड़ियों से राष्ट्र में स्थित नदियों की तुलना करो। (हृदान् कुक्षिभ्याम्) राष्ट्र में विद्यमान ताल, जलाशयों की शरीर में स्थित कोखों के बीच रुधिर से भरे स्थानों से तुलना करो। (समुद्रम् उदरेण) समुद्र की उदर भाग से तुलना करो। जिस प्रकार समुद्र से जल उठकर समस्त भूमि पर वर्षा होती और बलकारी अन्नरस ओषधिया उत्पन्न होती है उसी प्रकार उदर से अन्नरस उठकर सर्वत्र पहुचते हैं और केश लोम, मांस, त्वचा आदि सब पुष्ट होते हैं। (वैश्वानर भस्मना) भस्म के समान निस्सार अथवा भुक्त अन्न को जीर्ण करने वाली कान्तिजनक जाठर अग्नि से वैश्वानर नामक समस्त नरों के हितकारी अग्नि की तुलना करो।

इस मन्त्र की तुलना तैत्तिरीय संहिता के का० ७ । प्र० ५ । २५ में तथा बृहदारण्यक के १ । १ । से करो उसमें अश्व के अङ्गों से यज्ञ पुरुष, एवं विराट् प्रजापति और राष्ट्र शरीर की तुलना की गई है।

विधृतिं नाभ्या घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा।

भुरिगष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(विधृतिं) विशेष रूप से लोकों को धारण पालन करने वाली शक्ति को (नाभ्या) शरीर के मध्य में स्थित नाभि के भाग से तुलना करो। (घृत रसेन) घृत के समान तेजोवर्धक पदार्थ की शरीरस्थ बलकारी रस से तुलना करो। (यूष्णा आपः) शरीर में पक्वाशय में स्थित पक्वरस से राष्ट्र में स्थित अन्नों की या परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् आप्त पुरुषों की तुलना करो। (मरीची विप्रुड्भि) सूर्य की किरणों की तुलना विशेष पूर्ण रूप करने वाले शरीर के वसा आदि धातुओं से करो। (ऊष्मणा नीहारम्) शरीर में स्थित उष्णता से राष्ट्र के 'नीहार' अर्थात् प्रभात काल में पड़े जलके ओस के फुहार से तुलना करो। अर्थात् जैसे शरीर की गर्मी से सब अङ्ग जीवित जागृत रहते हैं उसी प्रकार ओस से वनस्पति आदि जीवित, वर्धित होते हैं। (शीनं वसया) शरीर में स्थित अंग प्रत्यंग या मांस के प्रत्येक परमाणु में बसे जीवन के कारणस्वरूप जीवन शक्ति से शीन अर्थात् वनस्पतियों और ओषधियों की वृद्धि करने वाली शीतलता की तुलना करो। (प्रुष्वा अश्रुभिः) शरीर के आँसुओं से वृक्षों को सींचने वाले फुहारों की तुलना करो। (ह्रादुनी दूषीकाभि) नेत्र में उत्पन्न मल, कीचों से आकाश में उत्पन्न विद्युतों की तुलना करो। (अस्ना रक्षांसि) शरीर के रुधिर से रक्षा करने वाले साधनों और रक्षा करने योग्य पदार्थों

की तुलना करो। (चित्राणि अङ्गैः) शरीर के भिन्न २ अङ्गों से राष्ट्र के चित्र विचित्र, स्थानों, दरयों और देशों की तुलना करो। (नक्षत्राणि रूपेण) नक्षत्रों की तुलना शरीर के बाह्य रूप या रुचिकर तेज से करो। (पृथिवीं त्वचा) पृथिवी या राष्ट्र के पृष्ठ की तुलना (त्वचा) शरीर की त्वचा से करो।

जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

ग्रुपिदभो मुपिडभोवा औदन्यऋषि । जुम्बको वरुणो देवता।
द्विपदा यजुर्गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(जुम्बकाय) सब शत्रुओं के नाश करने में समर्थ, सब से अधिक वेगवान्, बलवान् पुरुष को यह राष्ट्र (स्वाहा) उत्तम सत्य प्रतिज्ञा करा कर उसी तरह सौंप दिया जाय जिस प्रकार (जुम्बकाय) रोगनाशन में समर्थ या वेगवान् बलकारी, अपान के अधीन यह समस्त शरीर है।

वरुणो वै जुम्बक । श० १३ । ३ । ६ । ५ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव।
यऽईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

भा०—व्याख्या (१०—११) को देखो अ० २३ । १, ३ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

क प्रजापतिर्देवता । स्वराट्पङ्क्ति । पञ्चम ॥

भा०—(यस्य) जिसके (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (इमे) ये (हिमवन्त) हिमवाले बर्फों से ढके पर्वत बने हैं और (यस्य महित्वा) जिसके महान् सामर्थ्य से (रसया सह) स्नेह गुण या जलों से बद्ध, ठोस हुई

अथवा इस पृथिवी के साथ (समुद्रम्) महान् समुद्र को वर्तमान (आहुः) बतलाते हैं। और (यस्य) जिसके महान् सामर्थ्य से बनी (इमाः) ये) (प्रदिशः) दिशाएं और उपदिशाएं (यस्य बाहू) जिसके बाहुओं के समान फैली हैं उस (कस्मै) सुखस्वरूप, प्रजापालक (देवाय) कान्तिमान् तथा परमेश्वर की (हविषा) स्तुति द्वारा हम (विधेम) उपासना करें। राजा के पक्ष में—(यस्य महित्वा) जिसके महान् सामर्थ्य के अधीन ये हिमवाले पर्वत और पृथ्वी सहित समुद्र कहे जाते, दिशा प्रदिशा के वासी जिसके आधार रहकर (यस्य बाहू) जिसके बाहु के समान बल या सहायक हों उस महान् प्रजापालक राजा को हम (हविषा) कर और अन्न और ज्ञान द्वारा सेवा करें।

यऽआत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आत्मदाः) आत्मा चेतन जीव को प्राणियों के शरीर में प्रदान, स्थापन करता है और जो (बलदाः) प्राणों का ज्ञान रहन और बाधक कारणों को दूर करने का बल प्रदान करता है अथवा (यः) जो (आत्मदाः) समस्त विश्व को अपना ऐश्वर्य प्रदान करता है (यस्य) जिसके (प्रशिषम्) उत्कृष्ट शासन को (विश्वे देवाः) समस्त सामान्य जन और विद्वान् गण एवं प्रकट वह सूर्य आदि लोक भी (उपासते) राजा के समान प्राप्त करते हैं और उसके शासनकारी स्वरूप की उपासना, या ध्यान करते हैं। (यस्य) जिसकी (छाया) आश्रय लेना (अमृतम्) अमृत स्वरूप, अभय और मृत्यु पर विजय है। और (यस्य) जिसके शासन का भङ्ग करना ही (मृत्युः) मृत्यु है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप प्रजापालक सब सुखों के दाता परमेश्वर की हम ज्ञान स्तुति द्वारा उपासना करें।

राजा के पक्ष में—जो (आत्मदा) अपने आपको राष्ट्र में सौंपता और राष्ट्र शरीर में आत्म के समान ऐश्वर्य को भोगता है (बलदा) राष्ट्र म बल प्रदान करता है। समस्त सामान्य जन और (देवा) विजिगीषु राजा भी जिसके शासन का आश्रय लेते हैं जिसकी (छाया) छत्रछाया अभय, अमृत के समान है (यस्य) जिसकी आज्ञा भङ्ग करना, करने वाले के लिये मृत्यु है उसकी हम अन्न आदि द्वारा सेवा करें।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥१४॥

[१४–२३] गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । [१४–१६] जगती । निषाद ॥

भा०—(नः) हमें (विश्वतः) सब प्रकार से सब से, (अदब्धासः) अविनाशी, नित्य, (अपरीतासः) अपरिज्ञात, जिनको अभी तक किसी ने न पाया हो ऐसे, (उद्भिदः) नाना फलों को उत्पन्न करने वाले, (भद्राः) सुखकारी, (क्रतवः) विज्ञान और बल (नः) हमें (विश्वतः) सब ओरों से, (आयन्तु) प्राप्त हों । (यथा) जिससे (नः रक्षितारः) हमारे रक्षक (देवाः) देव, दिव्य पदार्थ और विद्वान् पुरुष (अप्रायुवः) दीर्घायु और अप्रमादी होकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि, उन्नति के लिये (नः सदम्) हमारी सभा में (असन्) विद्यमान हों।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

भा०—(देवानाम्) विद्वान्, विद्या के दाता, ज्ञानप्रकाशक पुरुषों की (भद्रा) कल्याणकारिणी सुखप्रद (सुमतिः) उत्तम ज्ञानमयी, शुभ मति, (नः) हमें (नि वर्त्तताम्) सब प्रकार से प्राप्त हो। और (ऋजूयताम्) सरल, धर्म के मार्गों से जाने वाले या सब की वृद्धि की कामना करने वाले

(देवानां) दानशील विद्वान् और पुरुषों के (रातिः) ज्ञान और धन के दान (नः) हमें (अभि निवर्त्तताम्) सब ओर से प्राप्त हों। (वयम्) हम (देवानां सख्यम्) विद्वानों के मित्र भाव को (उप सेदिम) प्राप्त हों। (देवाः) विद्वान् पुरुष (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (आयुः प्रतिरन्तु) आयु की वृद्धि करें।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्। अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

भा०—(वयम्) हम (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (मित्रम्) स्नेही, (अदितिम्) अखण्ड ब्रह्मचारी, अखण्ड विद्यावान्, (दक्षम्) ज्ञानवान्, बलवान्, कार्यचतुर, (अस्रिधम्) बात से न चूकने वाला, सदा सद्भाव युक्त, अहिंसक, (अर्यमणम्) न्यायकारी, स्वामी, (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों के वारक, (सोमम्) सन्मार्ग में प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, (अश्विनौ) विद्या में निष्णात स्त्री और पुरुष और (सुभगा) उत्तम सौभाग्य से युक्त (सरस्वती) वेदवाणी, विद्वत्सभा या विदुषी स्त्री इन (तान्) मान्य विद्वानों की हम (पूर्वया) सब से पूर्व विद्यमान अथवा पूर्णभाव से युक्त, अथवा प्रथम जिस रूप में चित्त में आई, वैसी अकृत्रिम सत्य (निविदा) ज्ञानयुक्त वाणी से (हूमहे) आदर सत्कार करें। वह (नः) हमें (मयः) सुख कल्याण (करत्) करे।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

भा०—(वातः) वायु (नः) हमें (तत्) नाना प्रकार के (भेषजं) रोगनाशक, (मयोभु) सुखकारी ओषधि (वातु) प्राप्त करावे या औषध

रूप होकर बढ़े । (माता) माता और उसके समान सर्वोत्पादक (पृथिवी) पृथिवी और (तत्) उसी के समान (पिता) पालक पिता और (द्यौ) सूर्य (तद्) उसी के समान (सोमसुत) ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले (ग्रावाण) उपदेशक विद्वान् पुरुष, ये सब (मयोभुव) सुख के उत्पादक हों । (तद्) और हे (अश्विना) विद्या में निष्णात उत्तम पुरुषो ! या रथी और सारथी के समान राजा और मन्त्री जनो ! (धिष्ण्या) प्रज्ञावान् एवं राष्ट्र की व्यवस्था के धारक और मुख्य पदाधिकार पर स्थित होकर (युवम्) तुम दोनों (न शृणुतम्) हम, प्रजा के हितों का श्रवण करो ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८॥

भा०—(तम्) उस (जगत तस्थुष) जंगम और स्थावर संसार के (पतिम्) पालक, (धिय जिन्वम्) अपने कर्म और ज्ञान से सबको तृप्त और प्रसन्न करनेहारे (ईशानम्) परमेश्वर और स्वामी को (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिये (हूमहे) बुलाते हैं, प्रार्थना और स्तुति करते हैं । (यथा) जिससे (पूषा) सब का पोषक, (रक्षिता) रक्षक, (वायु) सबका पालक, (अदब्ध) किसी से भी न पराजित होकर (न) हमारे (वेदसा) धनैश्वर्यों और ज्ञानों के (वृधे) वृद्धि करने के लिये और (स्वस्तये) सुख पूर्ण जीवन स्थिति या कल्याण के लिये (असत्) हो ।

स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥

इन्द्रो देवता । स्वराड् बृहती । मध्यम ॥

भा०—(वृद्धश्रवा) बहुत अधिक ज्ञान, यश, धन से युक्त आचार्य, राजा और परमेश्वर (न) हमें (स्वस्ति दधातु) सुख प्रदान

करे। (विश्ववेदाः) समस्त ज्ञान रूप वेदों और समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी (पूषा) सबका पोषक, परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति दधातु) कल्याण, सुख प्रदान करे। (तार्क्ष्यः) रथ या अश्व जिस प्रकार (अरिष्टनेमिः) चक्र धारा के बिना टूटे, सुखपूर्वक मार्ग से दूर देश को पहुंचाता है उसी प्रकार (अरिष्टनेमिः) अखण्ड शस्त्र या नित्य सामर्थ्यवान् (तार्क्ष्यः) अश्व के समान बलवान् राजा और व्यापक शक्तिमान् परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमें कल्याण सुख प्रदान करे। (बृहस्पतिः) महान् राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् और महती शक्ति का स्वामी परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ २० ॥

गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । निचृत् ॥

भा०—(पृषदश्वाः) हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, (पृश्निमातरः) पृथिवी को अपनी माता मानने वाले (शुभंयावानः) शुभ, कल्याण मार्ग पर गमन करने वाले (विदथेषु जग्मयः) संग्रामों में जाने वाले, (मरुतः) वायुओं के समान तीव्र वेगगामी, (मनवः) मननशील एवं शत्रु स्तम्भन में समर्थ, (अग्निजिह्वाः) विद्वान् को प्रमुख प्रवक्ता रखने वाले, (सूरचक्षसः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् को अपने आंखों के समान मार्गदर्शक बनाने वाले (देवाः) विजयी पुरुष (अवसा) अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्य सहित (इह) इस राष्ट्र में (नः) हमें (आ गमन्) प्राप्त हों।

वायु पक्ष में—(पृषदश्वाः) पुष्ट अश्वों के समान संचारी या महान् आकाश को व्यापने वाले, (पृश्निमातरः) मेघों के उत्पादक, अथवा अन्तरिक्ष से उत्पन्न (शुभंयावानः) प्रजा के कल्याण के लिये गमन करने वाले, (विदथेषु) आकाश मार्गों में चलने वाले (अग्निजिह्वाः)

विद्युत्रूप जिह्वा से युक्त अथवा अग्नि की लपटों की ज्वाला से युक्त (सूरचक्षस) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित (मनव) जलस्तम्भक, (देवा) सुखदायक (अवसा) अपने रक्षण, सामर्थ्य और अन्न, जल समृद्धि सहित (इह) यहां (आगमन्) आव ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

भा०—हे (देवा) विद्वान् पुरुषो ! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याणकारी, सुखजनक, हितवचनों को (शृणुयाम) श्रवण करें। हे (यजत्रा) ईश्वरोपासक, एवं सत्संगति योग्य पुरुषो ! हम सदा (भद्रम्) सुख कल्याणजनक पदार्थ को ही (अक्षभिः) आंखों से देखा करें। हम (स्थिरैः) स्थिर, दृढ़ (अङ्गैः) अङ्गों से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की स्तुति करते हुए अथवा सत्य तत्वों का उपदेश करते हुए, (तनूभिः) शरीरों से (देवहितं) विद्वानों द्वारा 'हित' अर्थात् निश्चित की हुई (यत्) जो (आयुः) उचित १०० या १२५ वर्ष आयु की अवधि है उसको (वि अशेमहि) विशेष प्रकार से और विविध उपायों से प्राप्त करें और उसका आनन्द लाभ करें। साग्र वर्षशतं जीवेत् । इति स्मृतिः । भूयश्च शरदः शतात् इति श्रुतिः ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥
त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवा) विद्वान् पुरुषो ! (अन्ति) आप लोगों के समीप (यत्र) जब, जिस काल में, (शतम् शरदः) सौ वर्ष (इत् नु) का ही जीवन कम से कम (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (जरसं) वृद्धावस्था को (चक्र) बनावे। अर्थात् विद्वानों के सत्संग से हम १०० वर्षों

२१—'अग्ने दव' इति काण्व ॥

के वृद्ध हों। (यत्र) जब (पुत्रासः) मनुष्यों को बुढ़ापे के कष्ट से बचाने वाले पुत्र और शिष्य लोग (पितरः) बच्चों के बाप और बूढ़ों और बुड्ढियों के पालक (भवन्ति) होजाय तब तक आप लोग (गन्तोः) गुजरते हुए (नः) (आयुः) आयु को (मध्या) हमारे बीच में (मा रीरिषत) मत विनष्ट करो।

वृद्धावस्था आदि घोर कष्टों को देख कर भी विद्वान् लोग जीवन को बीच ही में विनष्ट न किया करें। मनुष्यों में जीवन भोगना दिया करें।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥२३॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(द्यौः) आकाश और सूर्यादि प्रकाशरूप तेज (अदितिः) कभी खंडित या टुकड़े २ या विनष्ट नहीं होते। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष भी (अदितिः) अविनश्वर, अटल है। (माता) सब जगत् को निर्माण करने वाली प्रकृति भी (अदितिः) कभी विनाश को प्राप्त नहीं होती। (स पिता) वह सबका पालक परमेश्वर और (स पुत्रः) वह पुत्र, पुत्ररूप से पालक जीव भी (अदितिः) कभी नाशवान् नहीं है। (विश्वेदेवाः अदितिः) सब दिव्य पदार्थ या मूल तत्त्व जो अपने गुण द्वारा नाना प्रकार पदार्थों को प्रकट कर रहे हैं वे भी नाश न होने वाले हैं। (पञ्चजनाः) पांच प्रकार होने वाले तत्त्व भी (अदितिः) विनष्ट होने वाले नहीं हैं। (जातम् अदितिः) उन पांचों भूतों के सूक्ष्म परमाणुओं से उत्पन्न हुआ यह जगत् भी (अदितिः) कारण रूप से नाशवान् नहीं है। और (जनित्वम्) जो आगे पैदा होता है वह भी सत् कारण रूप से विनष्ट नहीं होता।

राजा के पक्ष में—(द्यौः) राजसभा, (अन्तरिक्षम्) सर्वोपरि रक्षक राजा, (माता) राजा को बनाने वाली प्रजा, (स पिता) वह पालक राजा और पुत्र के समान (सः) वही राजा पृथिवी का पुत्र है। समस्त

विद्वान् लोग और (पञ्चजना.) पाचों जन चार वर्ण और वर्णबाह्य, पांचवां (जातम्) नव उत्पन्न सन्तान और (जनित्व) अगली उत्पन्न होने वाली सन्तान ये सब (अदितिः) पृथिवी या अखण्ड राष्ट्र का रूप है और ये सब (अदिति) अदीन, दीनता रहित या प्रवाह से नाश न होने वाली हों।

मानो मित्रो वरुणो अर्य्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्र वक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ २४ ॥

[२४—२९] दीर्घतमा ऋषिः । त्रिष्टुप् धैवतः । मित्रादयो देवताः ॥

भा०—(मित्र) सबका स्नेही, प्राण के समान प्रिय मित्र, (वरुणः) दुष्टों का वारक, उदान के समान श्रेष्ठ, (अर्यमा) न्यायाधीश के समान नियन्ता (आयु) दीर्घ जीवन, अन्न (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा के समान आत्मा, (ऋभुक्षा) सत्य व्यवहार से उज्ज्वल पुरुषों में निवास करने वाले बड़े पुरुष और (मरुत) विद्वान् पुरुष (न) हमें (मा परि ख्यन्) त्याग न करें, हमारी निन्दा और उपेक्षा न करें। (यत्) क्योंकि (देव-जातस्य) विद्वान् पुरुषों द्वारा उत्पन्न और दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (वाजिन.) वेग और ऐश्वर्यवान् (सप्ते) सर्पणशील अश्व के समान बलवान् एवं समवाय बनाकर कार्य करने वाले राजा के (वीर्याणि) बल पराक्रम और पदाधिकारों का ही हम (प्र वक्ष्याम) विशेष रूप से वर्णन करते हैं।

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २५ ॥

भा०—(यत्) जब (निर्णिजा) विशेष राज्य अभिषेक और (धनेन) ऐश्वर्य से (प्रावृतस्य) घिरे हुए सुशोभित राजा के (रातिम्) प्रदान की हुई और पुन (गृभीताम्) स्वीकार की गई वृत्ति को सब अधीनस्थ लोग (मुखत) मुख्य रूप से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं। तभी (सुप्राङ्) उत्तम रीति से आगे बढ़ाने वाला, उन्नतिशील (विश्वरूप)

सब अधिकारियों के स्वरूपों को धारण करने वाला (मन) सब का प्रेरक राजा, (मेम्यन्) सब को आज्ञा करता हुआ (इन्द्रपूष्णोः) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा और सर्व पोषक पूषा, दोनों पदों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) पालन करने हारे सामर्थ्य और भोग्य ऐश्वर्य को (अप्येति) प्राप्त करता है।

अर्थात् जब राजा राज्याभिषेक और राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करके और अधीन निपुण पुरुष उसकी वृत्ति और पुरस्कार का मुख्य रूप से ग्रहण करें उसी को सर्वस्व मानें, वे और सब देते रहें और वे सबको आज्ञा में चलावें, तभी यह राजा, प्रजा पालक के लिए ऐश्वर्य पद को प्राप्त करता है। यह दान देने से 'इन्द्र' है, वृत्ति द्वारा पोषक होने से पूषा है।

परमेश्वर के पक्ष में—(यत्) क्योंकि (निर्णिजा) शुद्ध स्वरूप से और (रेक्णसा) ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर के दिये दान और प्राप्त वृत्ति को ही लोग मुख्य मानते हैं। वह मुख से पूर्व दिशा में प्राप्त सूर्य के समान उज्ज्वल (विश्वरूप) समस्त विश्व का प्रकाशक, वेदवाणी द्वारा उपदेश करता सब लोगों को अपनी आज्ञा में चलाता है। वह इन्द्र और पूषा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

विद्वान् के पक्ष में—(निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य) जो विद्वान्गण शुद्ध, निष्पाप, धन से युक्त पुरुष के दान को प्राप्त कर मुख से खाते हैं, वे और विश्व के पदार्थों को निरूपण करने वाला विद्वान् ऐश्वर्यवान् और पोषक दोनों के लिए परम भोग्य को प्राप्त करता है।

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति॥२६॥

भा०—(यत्) जब (विश्वदृव्य) समस्त विजयी पुरुषों से, सबसे श्रेष्ठ, एवं सब विद्वानों का हितकारी (एष) यह (छाग) शत्रुओं का छेदन भेदन करन हारा अथवा राष्ट्र क भिन्न २ विभागों मे बारने वाला पुरुष (वाजिना) ऐश्वर्य युक्त (अश्वेन) राष्ट्र के द्वारा (पुर) सबके आगे, सबसे प्रथम, (पूष्ण) पूपा सर्व राष्ट्र पापक के पद को (भाग) सेवन करने वाला (नीयते) प्राप्त किया जाता है। तब (त्वष्टा इत्) त्वष्टा, शत्रुनाशक सेनापति ही (अर्वता) व्यापक राष्ट्र के सहित विद्यमान, (अभि प्रियम्) सबका प्रिय लगन वाले (पुराडाशम्) सबमे प्रथम दने योग्य पदाधिकार को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति के लिये (जिन्वति) पूर्ण करता, या राजा को प्रदान करता है।

यद्धविष्य॑मृतुशो दे॑वयानं त्रिर्मानु॑षाः पर्य्यश्वं॒ नय॑न्ति ।
अत्रा॑ पू॒ष्णः प्र॑थ॒मो भा॒ग ए॑ति य॒ज्ञं दे॒वेभ्यः॑ प्रतिवे॒दय॑न्न॒जः ॥२७॥

त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(यत्) जब (हविष्यम्) अन्न के समान श्रेष्ठ हवि के रूप में स्वीकार करने योग्य (देवयान) देवों, विद्वानो को प्राप्त करने योग्य (अश्व) अश्व के समान बलवान्, राष्ट्र के भोक्ता राष्ट्रपति को (मानुषा) मनुष्य लोग (ऋतुश) ऋतु, ऋतु में भिन्न २ अवसरों में (त्रि) वर्ष में तीन वार (परि नयन्ति) सर्वत्र लेजाते हैं उसको भ्रमण कराते हैं तब (अत्र) इस राष्ट्र में (पूष्ण) पोषक, पृथ्वी का (प्रथम भाग) सबसे अधिक श्रेष्ठ सवनीय (अज) सबका प्रेरक विद्वान् (देवेभ्य) समस्त विद्वानों के हित के लिये (यज्ञ) प्रजापालक, सबके सयोजक राजा को (प्रतिवेदयन्) विज्ञापित करता हुआ (एति) प्राप्त होता है।

होता॑ध्व॒र्युराव॑या अग्निमि॒न्धो ग्रा॑वग्रा॒भ उ॒त शंस्ता॒ सुवि॑प्रः ।
तेन॑ य॒ज्ञेन॒ स्व॑रंकृतेन॒ स्वि॑ष्टेन व॒क्षणा॒ आ पृ॑णध्वम् ॥ २८ ॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अध्वर्यु, अग्निइन्धाता अग्नीध, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता, और ब्रह्मा ये ऋत्विग् होते हैं उसी प्रकार राष्ट्ररूप यज्ञ में (होता) अधिकारों का प्रदाता, (अध्वर्युः) मुख्य महामात्य या पुरोहित (आवया.) आहुति प्रदान करने वाले के समान, सबको परस्पर सुसंगत करने वाला, या भृत्यों को वेतन देने वाला, (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले अग्नीध्र के समान राजा को विशेष ज्ञान और मान से उज्ज्वल करने वाला, (ग्रावग्राभ.) सोमयज्ञ में प्रस्तरों के ग्रहण करने वाले के समान राष्ट्र में विद्वानों का आदर सत्कार से ग्रहण करने वाला या शस्त्रास्त्र धर, (शंस्ता) राजा का प्रशंसक अथवा उत्तम उपदेष्टा, (सुविप्रः) यज्ञ के ब्रह्मा के समान उत्तम मेधावी, ज्ञानी विद्वान् सभापति पद पर स्थित हो। (तेन) उस (स्वरंकृतेन) उत्तम रीति से सुसज्जित सुशोभित (स्विष्टेन) उत्तम रीति से सुसम्पादित (यज्ञेन) सुव्यवस्थित राष्ट्र से (वक्षणाः) जलों से नदियों के समान अपनी अभिलाषाओं या प्रजाओं को (आ पृणध्वम्) पूर्ण करो।

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(ये) जो पुरुष (यूपव्रस्काः) यज्ञ के यूप को गढ़ने वालों के समान शत्रुओं के विनाश करने वाले राजा या उसके उच्च अधिकार को बनाते हैं— (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) उस शत्रुनाशक, सूर्य समान तेजस्वी अधिकारी को अपने ऊपर धारण करते हैं। जो (ये) और (अश्वयूपाय) अश्व के लिये गड़े स्तम्भ के समान राष्ट्र संचालक राजा के लिये (चषालम्) यूप के ऊपर या अग्र भाग के समान राजा के सर्वोत्तम पद को (तक्षति) निर्माण करते हैं और (ये च) जो (अर्वते) ज्ञानवान् राजा के लिये

(पचनं) पाक योग्य नाना भोग्य ऐश्वर्य सामग्री को (संभरन्ति) संग्रह करते हैं, लाते हैं (तेषाम्) उन सबका (अभिगूर्त्तिः) उद्यम (नः) हमें, (इन्वतु) प्राप्त हो।

उप॒ प्राग॑त्सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ उप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः ।
अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥३०॥
त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—जो पुरुष (मे) मुझ प्रजाजन के हित के लिये (वीतपृष्ठः) विशाल हृष्ट पुष्ट पीठ वाला, सबको आश्रय देने में समर्थ, अश्व के समान बलवान् (सुमत्) स्वयं (उप प्र अगात्) मुझे अनायास ही प्राप्त है और (येन) जो (देवानाम्) विद्वानों और शासकों के मन को अभिप्रेत ऐश्वर्य को और (आशाः) समस्त कामनाओं और दिशावासी प्रजाजनों को भी (उप अधायि) धारण पोषण करता है (एनम् अनु) उसको देखकर (विप्राः) विद्वान्, मेधावी (ऋषयः) ज्ञानी, मन्त्रद्रष्टा, ऋषिजन भी (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं। और (पुष्टे) हृष्ट पुष्ट, धन से समृद्ध प्रजाजन के बीच उसको ही हम (देवानाम्) विद्वानों और विजयशील सैनिकों के (सुबन्धुम्) उत्तम बन्धु और उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (चकृम) नियत करें।

यद्वा॒जिनो॒ दाम॑ स॒न्दान॒मर्व॑तो॒ या शी॑र्ष॒ण्या॑ रश॒ना रज्जु॑रस्य ।
यद्वा॑ घास्य॒ प्रभृ॑तमा॒स्ये॒ तृण॑ꣳ॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३१॥
त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (वाजिनः) वेगवान् अश्व के (दाम) दमन करने वाला बन्धन, नियन्त्रण उसके पेट पर, (संदानम्) और जैसा नियन्त्रण पैरों आदिक में रहता है। और (अर्वतः) शीघ्र वेग से जाने वाले अश्व के (या) जो (शीर्षण्या) शिर पर बन्धी (रज्जुः)

रस्सी होती है उसी प्रकार (वाजिन) ऐश्वर्यवान् पुरुष पर भी (दाम) दमनकारी नियन्त्रण और (संदानम्) उत्तम दान करने के नियम या दण्ड भय अथवा (दाम संदानम्) सुन्दर, प्रभावशाली शिरोवेष्टन या मुकुट आदि होता है (अर्वत.) ज्ञानी पुरुष को (अस्य) इसके (शीर्षण्या) शिर की या मुख्य अङ्ग या पद के लिये शोभा देने वाली (रशना) राष्ट्र में व्यापक (रज्जु) सदा सर्जनकारिणी, व्यवस्थानिर्माणी शक्ति या अधिकार प्राप्त हों। (यत्) और जिस प्रकार (अस्य आस्ये तृणं प्रभृतम्) इस पशु के मुख में तृण, घास आदि दिया जाता है उसी प्रकार (अस्य आस्ये) इसके मुख्य अधिकार के स्थान में (तृणम्) शत्रु और मच्छरों के काटने वाले बल, (प्रभृतम्) भली प्रकार भृति या वेतन पर नियत किया जाय, (ता ते सर्वा) वे तेरे सब पदार्थ (देवेषु अपि) विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर (अस्तु) हों।

रशना —अशेररश्च्। अश्नुते व्याप्नोतीति रशना। उ० २। ७५॥

रज्जु —सृजेरसुम् च। उ० १। १५॥ सृजति सृजति वा इति रज्जु। तृणम्-तृहे. क्नो ह्लोपश्च। उ० ५। ८॥ तृणते हन्यते तृणेन हिनस्ति वा तत् तृणम्।

अर्थात् ऐश्वर्य राष्ट्र और राष्ट्रपति पर भी उत्तम व्यवस्था और नियन्त्रण हो, उसके रचना और निर्माण की शक्ति विद्वान् के हाथ में हो, उसका नाशकारी मुख्य बल वेतनबद्ध हो वे सब विद्वानों के आश्रय पर हों।

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु॥ ३२॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(क्रविष.) विजय करने योग्य (अर्वस्य) अश्व के समान बड़े बलवान् राष्ट्र की (यत्) जो अश (मक्षिका) शिक्षा या उपदेश या रोष का कार्य करने वाली सभा या सेना (आश) खाजाती है (यत् वा) और जो अंश (स्वरौ) अति तापदायक, शत्रुसन्तापक (स्वधितौ) वज्र आदि शस्त्रास्त्रों में (रिप्तम् अस्ति) लग जाता है और (यत्) जो भाग (शमितुः) शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले के (हस्तयो) हाथों में या हनन करने के साधनों और उपायों में है। और (यत् नखेषु) जो भाग राष्ट्र के प्रबन्धकर्त्ताओं और प्रबन्ध के कार्यों में राष्ट्र का है (सर्वा ता अपि) ये सब भी कार्य (देवेषु) विद्वानों के अधीन हों।

अर्थात् सेना, शस्त्रागार, शान्ति, सन्धि, विग्रह आदि, राज्य प्रबन्ध आदि पर होने वाले सब राष्ट्र के व्यय विद्वानों के अधीन हों।

'मक्षिका'—मश शब्दे रोषकरणे च । भ्वादिः । हनिमशिभ्यां सिकन् । उणा० ४ । १५४ ॥ मशति शब्दयति रोष करोति वा सा मक्षिका ।

'क्रविष'। क्रवि हिंसाकरणयोश्च । अत्र करणमर्थ । 'स्वरुः' स्वृ, शब्दोपतापयो । अत्र उपतापार्थः । स्वधितिर्वज्रः । 'नखेषु' नहेः हॢलोपश्चेतिख., । उ० १ । २३ ॥ नह्यति बध्नाति इति नख ॥

यदूवध्यमुदरस्याप॒वाति॒ य आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धो अस्ति॑ ।
सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तार॑ कृण्वन्तू॒त मेध॑ꣳ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥३३॥

नृचित् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(यद्) जो भी (ऊवध्यम्) उच्छेद करने योग्य या मलिन कार्य करने वाला राष्ट्र का भाग (उदरस्य) पेट से अधकचे अजीर्ण अन्न के समान उपद्रवियों के उच्छेदक विभाग से (अप वाति) निकल भागे और (यः) जो (आमस्य) रोगकारी, हिंसक जन्तुओं का (गन्ध)

हिंसा का व्यापार (अस्ति) है । (शमितारः) उपद्रवों और विनाशक दशा और मानुषी विपत्तियों के शान्त करने वाले विद्वान् (सुरुचा) उत्तम उपाय द्वारा (तत्) उसका (कृण्वन्तु) प्रतिकार करें । और (मेधं) हिंसा योग्य दुष्टजन को यज्ञ के समान (शृतपाक) खूब पीड़े संताप से (पचन्तु) संतप्त करें ।

उदि स्नातेरलघी पूर्वंपदादमपत्ययोश्च । 'उदरम्' । उणा० २ । ७६ ॥
यम योगे । याम । गन्ध पूयने । गन्ध । मेध. । मेधृ हिंसासंगमयोः ।

यत्ते गात्रांद॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति ।
मा तद्भूम्या॒मा श्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥३४॥

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! (शूलम्) पीड़ाजनक शूल, दुःख आदि शस्त्रों से (अभिनिहतस्य) मारे या छेदे गये और (अग्निना) अग्नि के समान संतापक सूर्य या राजपुरुष द्वारा (पच्यमानात्) परिपक्व किये हुए (गात्रात्) शरीर रूप खेतों आदि से (यत्) जो भाग भी (अवधावति) अलग प्राप्त हो (तत्) वह भाग (भूम्याम्) भूमि पर (मा) न (आश्रिषत्) पड़ा रहे, (मा तृणेषु) वह घास तिनकों में न मिल जाय प्रत्युत (तत्) वह (उशद्भ्यः) चाहने वाले (देवेभ्यः) देवों, विद्वान् पुरुषों को (रातम् अस्तु) दान कर दिया जाय ।

दुःख आदि यत्ना कर सूर्य द्वारा पके हुए अन्न और ओषधि आदि जो पदार्थ राष्ट्र के शरीर से उत्पन्न हों वे मट्टी में और घासफूस में न मिल जाय प्रत्युत वे विद्वानों को प्राप्त हों । वे उससे प्रजा का पालन और रोग नाश करें ।

ब्रह्मचर्य पक्ष में—हे ब्रह्मचारि ! (अग्निना पच्यमानात्) ब्रह्मकर अग्नि या तप से संतप्त (शूलम् अभि निहतस्य) संतापकारी कामदेव के

पीड़ित (गात्रात्) गात्र से जो वीर्य नीचे के अंगों में स्त्रवित होता है वह वीर्य भूमि स्त्री योनि में भी न जावे और तिनकों, या तुच्छ स्थलों में भी न नष्ट हो बल्कि (उशद्भ्यः) वह सुरक्षित वीर्य या बलको चाहने वाले अंगों की पुष्टि में लगाया जावे ।

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥३५॥

स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् लोग (वाजिनम्) अन्नादि समृद्धि से युक्त या संग्रामादि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब (पक्वं) परिपक्व, पके खेतों वाला और दृढ़ (परि पश्यन्ति) देख लेते हैं और (ये) जो (ईम्) इसके प्रति (आहुः) कहा करते हैं कि यह (सुरभि) बड़े उत्तम पक्व धान के गन्ध से युक्त है (निः हर) इसे अच्छी प्रकार काट लाओ और (ये च) जो इस (अर्वत) भोग योग्य राष्ट्र के (मांसभिक्षाम्) मन के लुभाने वाले अन्न आदि पदार्थों की भिक्षा या याचना का (उपासते) आश्रय करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्तिः) उद्यम (नः) हमें सफलता पूर्वक प्राप्त हो ।

पूर्ण ब्रह्मचारी के पक्ष में—जो विद्वान् (वाजिनं) ज्ञानवान् बलवान् ब्रह्मचारी को (परिपश्यन्ति) देखते हैं और (ये) जो (ईम्) इसको लक्ष्य करके (पक्वं) उसे परिपक्व (आहुः) कहते हैं और (सुरभिः) उत्तम वीर्य पालक होकर उत्तम आचार के सुगन्धि से युक्त पुरुष (निर्हर) हम से भिक्षा ले (इति) इस भाव से (ये च) जो गृहस्थ जन (अर्वत) ज्ञानवान् पुरुष के (मांसभिक्षाम्) मनको प्रिय लगने वाले पदार्थों की भिक्षा की (उपासते) प्रतीक्षा करते हैं उन हितैषी पुरुषों का (अभिगूर्तिः) उद्यम, प्रयत्न (नः) हमें (इन्वतु) सफल होकर प्राप्त हो ।

शूरवीर पुरुष के पक्ष में—(ये) जो (वाजिनं) बलवान् पुरुष को देखते हैं, (ये ईम् पक्वम् आहुः) जो उसको परिपक्व, शस्त्रकौशल में सुअभ्यस्त बतलाते हैं (सुरभिः निर्हर इति ये च) सुशोभित होकर परराष्ट्र की लक्ष्मी को लेआ इस प्रकार जो (अर्वतः मांस भिक्षाम् उपासते) बलवान् पुरुष के शरीर की साधना की प्रतीक्षा करते हैं (तेषां) उनका (अभिगूर्त्तिः) राष्ट्र के प्रति किया श्रम (नः) हमें प्राप्त हो। राजा राष्ट्र में बलवान् पुरुषों को परिपक्व करे और फिर उनके शरीरों को युद्धादि कार्यों के लिये लगावे।

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यत्) जो (मांस्पचन्याः) मन को अच्छे लगने वाले नाना फलों को परिपाक करने वाली (उखायाः) उत्तम फल देने वाली भूमि का (नीक्षणं) निरंतर देखभाल करना, या दर्शन करने योग्य दृश्य और (या) जो (पात्राणि) पालन करने वाले (यूष्णः) रस या अन्न के (आसेचनानि) सेचन करने के साधन कूप तड़ाग आदि स्थान हैं और जो (चरूणाम्) विचरने वाले पथिकों के निमित्त (ऊष्मण्या) ग्रीष्मकाल में सुखकारी (अपिधाना) के आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं और जो (अङ्काः) स्थान २ पर अङ्कित मार्ग और (सूनाः) स्नान करने के तीर्थ स्थल हैं वे ही सब सुन्दर पदार्थ (अश्वम्) अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को (परि भूषन्ति) सर्वत्र सुभूषित करते हैं।

उवट आदि की दृष्टि में—मांस की हांडी को खोल २ कर झांकना, मांसरस के पात्र, उनके गरम ढक्कन और मांस काटने के चापड़े ये अश्व को सुभूषित करते हैं। अश्व को इन आभूषणों से सजाया जाय तो बस समस्त संसार के अश्व विनष्ट हो जायं।

अध्यात्म में—(मान्पचन्या उखाया) मास आदि देहगत धातुओं का अन्न रस से परिपक्व या दृढ़ करने वाले देह रूप इस पात्र का (यत्) जो (नि ईक्षण) स्वयं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्यपदार्थों का देखना, और (या) जो (पात्राणि) कोष्ठ भाग (Sells) (यूष्ण) अन्न रस को मर्दन (आसेचनानि) सेचन करते हैं और (चरूणाम्) अंगों के (ऊष्मण्या) देह क ताप की रक्षा करने वाली (अपिधाना) त्वचाएं हैं और जो (अङ्का) बाह्य पदार्थों का भीतर ज्ञान करना और (सूना) भीतरी मन क विचारों को बाहर प्रकट करना है ये सब अद्भुत बातें (अश्वम् परिभूषन्ति) भोक्ता आत्मा के शोभाजनक हैं।

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

स्वराट् पङ्क्ति । पञ्चम ॥

भा०—हे राष्ट्र ! एव राष्ट्रपते ! (धूमगन्धि) धूए के गन्ध वाला (अग्नि) आग जिस प्रकार मनुष्य को छींक और आसू ला देता है उसी प्रकार (धूमगन्धि) परराष्ट्र को कम्पा देने वाले बल से प्रजा को पीड़ित कर देने वाला (अग्नि) कोई अग्रणी, अग्नि के समान सन्तापक पुरुष अथवा विषैली धूम से प्रजा को पीड़ित करने वाला अग्नि (त्वा) तुझको (मा ध्वनयीत्) पीड़ित कर न रुलावे। अग्निमयी हाडी, कृत्या या बॉम्ब जिस प्रकार चटखका २ फूट जाता है और पास बैठने वाले के लिये भय का कारण होता है उसी प्रकार (भ्राजन्ती) तेज और क्रोध से अति प्रदीप्त होती हुई (उखा) पृथिवी, (जघ्रि) प्रचण्ड व्याधि के समान तुझे सूंघती हुई तेरा पीछा करती हुई, तुझे (मा अभिविक्त) उद्विग्न न कर। (इष्ट) सब क प्रिय, (वीतम्) कान्तिमान् तेजस्वी, (अभिगूर्त्त) परिश्रमी, (वषट्कृत) दानशील, (तं अश्वम्) उस नरश्रेष्ठ । शीघ्रकारी चतुर पुरुष को (देवासः) विद्वान् पुरुष (प्रतिगृभ्णन्ति) अपना नेता स्वीकार करते हैं।

'भ्राजन्ती वम्रा' कदाचित् विस्फोट पदार्थों से फूटने वाली विशेष घातक कृत्या प्रतीत होती है जिसका वर्णन अथर्ववेद का० ११ सू० १ में स्पष्ट है। इसी प्रकार 'धूमगन्धी अग्नि' धूममात्र से मार देने वाली आग विषैली गैस प्रतीत होती है।

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु॥ ३८॥

विराड् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(अर्वतः) अश्व का जिस प्रकार कदम बढ़ाना, बैठना, फेरना पैरों का बान्धना, जल पीना, घास खाना आदि सब विवेक पूर्वक हो उसी प्रकार (अर्वतः) व्यापक राष्ट्र का भी (निक्रमणम्) सुरक्षित रूप से निकलने के मार्ग, (निषदनम्) सुरक्षित रूप से गुप्त बैठने के स्थान, (यत् च पड्वीशम्) और जो पदाधिकारों पर योग्य पुरुषों का नियुक्त करने का कार्य, (विवर्तनम्) विविध प्रकार के राजकीय व्यापार के स्थान और राष्ट्रवासी जन और अधिकारी राष्ट्रपति आदि (यत् च पपौ) जो पदार्थ पान करते और (यत् च घासिं जघास) जो खाने योग्य पदार्थ खाते हैं (ते) तुम राष्ट्र और राष्ट्रवासी जन और राष्ट्रपति राजा के (सर्वा ता) ये सब कार्य भी (देवेषु) देव अर्थात् विद्वानों के अधीन (अस्तु) हों।

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति॥ ३९॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(यत्) जो (अश्वाय) अश्व के समान वेगवान्, तीव्र गति वाले राष्ट्रपति के आदर के लिये (वासः) वस्त्र (उपस्तृणन्ति) बिछाये जाते हैं और (यत्) जो (अधीवासं) ऊपर पहनने का चोगा पहना दिया जाता है और (या) जो (अस्मै) इसको (हिरण्यानि) सुवर्ण के

आभूषण पहनाये जाते हैं और (अर्वन्त) उस व्यापक, महान् अधिकारवान् पुरुष को (सदान) शिर का विशेष मुकुट दिया जाता है और जो (पड्बीश) पैर का पीढ़ा दिया जाता है वह सब (प्रिया) प्रिय, मनोहर पदार्थ उसको (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के अधीन (आयामयन्ति) सर्वथा नियमानुकूल रूप से सुरक्षित रखते हैं ।

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥४०॥

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—हे राजन् ! (महसा) अपने तेज से (शूकृतस्य) शीघ्रता से कार्य करने वाले, अविवेक से कुपथ पर पैर रखने वाले (ते) तेरे (सादे) अवसाद, अर्थात् कार्यभ्रष्ट हो जाने पर यदि कोई पुरुष, (पार्ष्ण्या) प्रमादयुक्त घोड़े को अश्वारोही जिस प्रकार 'शू'-करके एड़ी या चाबुक से चला देता है उसी प्रकार कोई (पार्ष्ण्या) तेरे पीठ पीछे से आक्रमण करने वाली सेना द्वारा और (कशया) अपनी शासन शक्ति से तुझे (तुतोद) व्यथा या पीड़ा पहुंचावे तो (ते) तेरी (ता) उन (सर्वा) सब त्रुटियों को मैं पुरोहित (हविषः स्रुचा इव) स्रुवों से जैसे हवि, चरु दिया जाता है उसी प्रकार उनको ('ब्रह्मणा सूदयामि) वेद ज्ञान द्वारा अथवा महान् साम्राज्य शक्ति से (सूदयामि) दूर करूं नष्ट करूं कश गतिशासनयो. । स्वादि ॥

चतुस्त्रिᳪशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥४१॥

त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—(स्वधितिः) स्वयं समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ वर्चस्वान् पुरुष तथा वज्र, दण्ड शासन चक्र (दीधितिः) वीर्यवान्, (देवबन्धो) विद्वानों के बन्धु (अश्वस्य) व्यापक राष्ट्र के (चतुस्त्रिंशत्) इन ३४ (वङ्क्रीः) पर्वों का (समेति) भली प्रकार प्राप्त करता है, वश करलेता है। हे विद्वन् पुरुष! आप सब राष्ट्र के (गात्रा) पर्वों को (वयुना) ज्ञान द्वारा (अच्छिद्रा) त्रुटि रहित, निर्दोष (कृणुत) करो और उसके (परुः परुः) प्रत्येक पोर २, अंग २ अर्थात् प्रत्येक विभाग को (अनुघुष्य) यथा क्रम घोषित कर २ के प्रत्येक को (वि शस्त) विविध प्रकार से बतलाओ।

स्पष्टीकरण देखो शतपथ में पारिप्लव विधि।

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथऽऋतुः।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥४२॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति का राष्ट्रमय प्रजापति से तुलना करते हैं। (त्वष्टुः) सूर्य के (अश्वस्य) व्यापक काल का (एकः ऋतुः) एक ऋतु ही सर्व (विशस्ता) उसका विभाग करता है और इसके (द्वा यन्तारा) दो अयन नियन्ता (भवतः) होते हैं। (तथा) उसी प्रकार (ऋतुः) एक २ ऋतु संवत्सर का विभक्त करता है और उस ऋतु के भी (द्वा यन्तारा) दो दो मास नियम से (भवतः) होते हैं। इसी प्रकार हे प्रजापते! प्रजापालक राष्ट्र! (ते) तेरे (गात्राणाम्) अङ्गों में से (या) जिन अङ्गों को मैं विद्वान् पुरुष (ऋतुथा) संवत्सर के ऋतु के समान नियामक, अथवा पुरुष के सामर्थ्य के अनुसार (कृणोमि) पृथक् २ विभक्त करूं उन विभक्त (पिण्डानाम्) अवयवों में से (ता ता) उन २ अवयवों, या राष्ट्र के विभागों को (अग्नौ) ज्ञानवान्, नेता, अग्रणी पुरुष के अधीन (प्र जुहोमि) प्रदान करूं।

मा त्वा तपत् प्रिय आत्माऽपियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३॥

भा०—हे राजन्! हे राष्ट्र! (प्रिय आत्मा) अपने देह और आत्मा के समान प्रिय पुरुष (अपियन्तम्) प्रयाण करते समय (त्वा) तुझको (मा तपत्) सन्तप्त न करे, तुझे शोकातुर न बनाये अथवा तुझे पीड़ित न करे। (स्वधितिः) वज्र, तलवार या शस्त्र बल भी (ते तन्वः) तेरे शरीर के भागों पर (मा आ तिष्ठिपत्) अपना अधिकार न करे। अर्थात् शस्त्र बल भी तुझे व्यर्थ न सतावे। (अविशस्ता) उत्तम शासक न होकर कोई (गृध्नुः) लालची महामात्य या राजा (ते छिद्राणि) तेरे भीतर विद्यमान त्रुटियों को (अतिहाय) छोड़कर (मिथू) व्यर्थ झूठ मूठ निष्प्रयोजन (ते गात्राणि) तेरे अंगों राज्यांगों को (असिना) शस्त्र बल से (मा कः) मत काटे। राष्ट्र जिसको अपना हितू समझे वह उसको पीड़ित न करे, व्यर्थ शस्त्र-बल सेना आदि प्रजा को न सतावें। राजा या मन्त्री उत्तम शासक न होकर केवल लोभ, जोर जबरदस्ती करके अपने पैसे के लोभ में राष्ट्र के अंग छेदन न करे अर्थात् प्रजा को न सतावे।

अध्यात्म में—(अपियन्तम्) ब्रह्म में अप्यय अर्थात् लीन होने वाले या परिव्राजक मार्ग या गुरुगृह में जाते हुए (त्वा प्रियः आत्मा मा तपत्) तेरा प्रिय देह, या बन्धु तुझे शोक से संतप्त मत करे। (स्वधितिः) अपनी ही विशेष धारणा करने की अहंकार वासना अथवा स्वजन के प्रति लालसा (ते तन्वः) तेरे शरीर को (मा आतिष्ठिपत् आस्थापयत्) न बनाये रक्खे। (अविशस्ता) अविद्वान्, उपदेश से अनभिज्ञ अविद्वान् पुरुष (गृध्नुः) केवल लोभ वश (ते छिद्राणि अतिहाय) तेरे दोषों को छोड़कर तेरे अपराधों के बिना ही (गात्राणि) तेरे अंगों को (असिना इव) तलवार के समान दुःख

वायों नखादि या वाणी से (मा विवृक्षत्) स्पर्श मत करो, स्पर्श वा भेदन छेदन और पीड़ित आदि न करे।

न वाऽउ॑ऽए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ२ऽइदे॑षि प॒थिभिः॑ सु॒गेभिः॑। हरी॑ ते॒ युञ्जा॒ पृष॑तीऽअभूता॒मुपा॑स्थाद्वा॒जी धु॒रि रास॑भस्य ॥४४॥

[illegible] ऋषिः । [illegible] ॥

भा०—हे राष्ट्र शासीजन! (एतत्) इस प्रकार सुव्यवस्था से तू (न वा उ म्रियसे) कभी मृत्यु को प्राप्त न हो। (न रिष्यसि) तू कभी पीड़ित न हो, (सुगेभिः पथिभिः) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों, राज-नियम और मर्यादाओं से (देवान्) इन उत्तम २ राजा प्रजा के परस्पर व्यवहारों, श्रेष्ठ गुणों और उत्तम पदार्थों और विद्वानों को (एषि) प्राप्त हो। (ते) तेरे रक्षक (पृषती हरी) रथ में लगे हुए घोड़ों के समान स्त्री पुरुष राष्ट्र के सञ्चालन में जुते हुए हो कर (युञ्जा) नियुक्त (अभूताम्) हों और (रासभस्य) मार्गोपदेश करने वाले महामन्त्री के (धुरि) पद पर (वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (उप अस्थात्) स्थित हो, स्थापित किया जाय।

हे साधक पुरुष! तू तपस्या में लग कर मर मत, (न रिष्यसि) कष्ट मत पा। इन (सुगेभिः) सुगम मार्गों से विद्वानों को प्राप्त होते हुए तेरे (पृषती हरी) बलवान् प्राण और अपान (युञ्जा) योग द्वारा युक्त हों और (रासभस्य धुरि) उपदेश करने वाले आचार्य के पद पर (वाजी) ज्ञानवान् पुरुष (उप अस्थात्) उपस्थित हो।

सु॒गव्यं॑ नो वा॒जी स्व॒श्व्यं॑ पुं॒सः पु॒त्राँ२ऽउ॒त वि॑श्वा॒पुष॑ꣳ र॒यिम्। अ॒ना॒गा॒स्त्वं नो॒ऽअदि॑तिः कृणोतु क्ष॒त्रं नो॒ऽअश्वो॑ वनताꣳ ह॒विष्मा॑न् ॥ ४५ ॥

[illegible] ऋषिः । [illegible] ॥

भा०—(वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान्, संग्राम में कुशल राष्ट्रपति पुरुष (नः) हमें (सुगव्यम्) उत्तम गोधन, (सु अश्व्यं) उत्तम अश्व धन, (पुंसः पुत्रान्) पुत्रान् वीर पुरुष स्वभाव के मर्द, पुत्र को (उत) और (विश्वापुषम् रयिम्) समस्त विश्व का पोषण करने में समर्थ ऐश्वर्य प्रदान करे। हे राजन्! तू (अदिति) अखण्ड शासन और अदीन, स्वतन्त्र शासन वाला होकर (नः) हमें (अनागाः) अपराधों से रहित, शुद्ध आचार व्यवहार वाला (कृणोतु) बनावे। (नः) हमारा (अश्वः) राष्ट्र का भोक्ता श्रेष्ठ पुरुष (हविष्मान्) अन्नादि समृद्धि से युक्त एवं ज्ञान और उपायों से युक्त होकर (क्षत्र) क्षात्र बल को (वनताम्) प्राप्त करे।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

ऋषिः भुवन ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(नु कं इमा भुवनानि) इन समस्त भुवनों, लोकों को, हम (सीषधाम) अपने वश करें, (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा, (विश्वे च देवाः) समस्त विद्वान्, शासकजन या विजयी सैनिक लोग, (इन्द्रः आदित्यैः) १२ मासों सहित सूर्य के समान राष्ट्र को अपने वश में करने हारे शासकों से युक्त इन्द्र, राजा, (सगणः) अपने गणों या दलों सहित (मरुद्भिः) वैश्यों या तीव्र वेगवान् रथों से जाने वाले वीर पुरुषों सहित (अस्मभ्यं) हमारे राष्ट्र का (भेषजं करत्) यथोचित प्रबन्ध करे। दोषों को दूर कर उसे शरीर के समान हृष्ट पुष्ट करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (आदित्यैः सह) १२ मासों सहित सूर्य के समान अपने आदित्य समान तेजस्वी विद्वान् सभासदों, या मन्त्रियों

सहित (नः) हमारे (यज्ञं) सुसंगत प्रजापालक राष्ट्र को और (नः तन्वं) हमारे शरीरों को और (प्रजां च) हमारी प्रजा को भी (सीषधाति) हृष्ट पुष्ट कर अपने अधीन रक्खे।

अग्ने॒ त्वन्नो॑ऽअन्त॒मऽउ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्यः॑ ।
वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ऽअच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मꣳ र॒यिं दाः॑ ॥ ४७ ॥

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः ।
स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ अघाय॒तः स॑मस्मात् ॥ ४८ ॥

भा०—[४७-४८] दोनों की व्याख्या देखो अ० ३ । २५, २६ ॥

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभित-श्रीमज्जयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ।



॥ अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

[अ० २६-४०] विवस्वान् याज्ञवल्क्यश्च ऋषी ॥

॥ ओ३म् ॥ अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे संनमतामदः । वायुश्चान्तरिक्षं च संनते ते मे संनमतामदऽ आदित्यश्च द्यौश्च संनते ते मे संनमतामदः । आपश्च वरुणश्च संनते ते मे सन्नमतामद । सप्त सᳬसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(अग्नि. च पृथिवी च) अग्नि अर्थात् सूर्य और पृथिवी दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं । (ते) वे दोनों (अदः) अमुक मेरे प्रेम और अभिलाषा के पात्र को (मे संनमताम्) मेरे अनुकूल करें, उसे मेरे प्रति प्रेम से झुकावें । (वायु च अन्तरिक्षं च) वायु और अन्तरिक्ष दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के उपकार्य उपकारक होकर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं । वे दोनों अपने दृष्टान्त से (अद) अमुक को (मे) मेरे लिये (संनमतात्) प्रेम से संगत करें । (आदित्य. च द्यौ च) सूर्य और आकाश दोनों (संनते) एक दूसरे के साथ उपकार्य उपकारक भाव से सयुक्त हैं । वे (मे) मेरे लिये अमुक को (सनमताम्) अपने दृष्टान्त से मेरे अनुकूल प्रेम व्यवहार युक्त करें । (आप च वरुण च) जल और वरुण, महान् समुद्र या मेघ दोनों (सनते) एक दूसरे के अनुकूल होकर रहते हैं । (ते) वे दोनों (मे) मेरे लिये (अदः संनमताम्) अमुक को मेरे प्रति प्रेमयुक्त, अनुकूल करें ।

अथ खिलानि । अतः सप्तसप्तति मन्त्राः ॥

(अष्टवसवः) ये आठ वसु हैं इनके आश्रय समस्त जन स्थिर हैं इनमें (अष्टमी) आठवीं (भूतपाली) समस्त भूतों अर्थात् प्राणियों का अपने वश करती है। अर्थात् अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष आदित्य द्यौ, चन्द्र और नक्षत्र ये आठ 'वसव' हैं इनके आश्रय समस्त लोक विराजते हैं। और आठवीं पृथ्वी सब प्राणियों को अपने वश में करती है। यह सबको उत्पन्न करती और पालती है। हे राजन्! तू (सर्वाः) समस्त प्रजाओं को (सकामान्) अपने कामनानुकूल कर। (अमुना) अमुक, २ शक्ति और पदार्थों से (मे संज्ञानम् अस्तु) मुझे सम्यक् अर्थात् सत्य, यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

[illegible]

भा०—मैं परमेश्वर और राजा (यथा) जिस प्रकार (इमाम्) इस (कल्याणीं वाचम्) सब का सुख देनेवाली वाणी को (जनेभ्यः) समस्त उत्पन्न लोकों के हित के लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय (शूद्राय) शूद्र और (अर्याय च) वैश्य (स्वाय च) अपने प्रिय लगने और (अरणाय) प्रिय न लगने वाले अपने और पराये सब जनों के लिये (आवदानि) सर्वत्र उपदेश करूँ। इसी प्रकार मैं भी सब जनों के हितकारी वाणी बोलूँ जिससे मैं (देवानां) विद्वानों का और (दक्षिणायै दातुः) दक्षिणा भूमि देनेहारे पुरुष का (इह) इस राष्ट्र में या लोक में (प्रिय भूयासम्) प्रिय होऊँ। (मे अयं कामः) मेरी यह कामना (समृध्यताम्) पूर्ण हो। (अदः) अमुक पुरुष और मेरा अमुक प्रयोजन (मा उपनमतु) मुझे प्राप्त हो, मेरे अनुकूल हो, मेरे वश या अधीन हो।

परमेश्वर जिस प्रकार सब के हितार्थ वेद वाणी का उपदेश करता है

इसी प्रकार राजा भी अपनी आज्ञा वाणी को सर्वहितार्थ बोले वह विद्वानों और प्रजाजनों के वृत्तिदाता धनकुबेरों का भी प्रिय होकर रहे। उसकी सब इच्छा पूर्ण हों, इस प्रकार उसके अनुकूल, प्रतिकूल समीप और दूर के सभी व्यक्ति और राष्ट्र भी इसके अधीन हों।

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु। यद्दी॒दय॒च्छव॑स ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ बृह॒स्पत॑ये त्वै॒ष ते॒ योनि॒र्बृह॒स्पत॑ये त्वा ॥ ३ ॥

गृत्समद बृहस्पतिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिग् अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े बड़ों के पालक, उनके स्वामिन्! उनमें प्रधान पुरुष! (यत्) जिस कारण से तू (अर्यः) सबका स्वामी होकर (अर्हात्) पूजने योग्य है। और (जनेषु) समस्त जनों में (द्युमत्) सूर्य के समान तेजस्वी (क्रतुमत्) प्रज्ञावान् और क्रियावान् होकर (अति विभाति) सब से अधिक चमकता है और (यत्) जिस कारण से हे (ऋतप्रजात) सत्य व्यवहार, धर्म और ज्ञान द्वारा प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट पद पर स्थित तू (शवसा) बल से ही (दीदयत्) सब की रक्षा करता है अतः तू (अस्मासु) हम प्रजाजनों में (चित्रम्) संग्रह करने योग्य (द्रविणम्) ऐश्वर्य का (धेहि) प्रदान कर, धारण करा। हे विद्वान् पुरुष! तू (उपयामगृहीत असि) राष्ट्र के सुव्यवस्थित राजनियमों द्वारा स्वीकार किया गया है। (त्वा) तुझको (बृहस्पतये) बृहस्पति पद के लिये चुनते हैं। (एष ते योनिः) यह तेरे योग्य आसन, पदाधिकार है। (बृहस्पतये त्वा) तुझे बृहस्पति पद के लिये नियुक्त करता हूँ।

परमात्मा के पक्ष में—हे (बृहस्पते) महान् लोकों और बृहती वेद वाणी और बृहती अर्थात् प्रकृति के स्वामिन्! तू (जनेषु क्रतुमत्) समस्त

उत्पन्न होनेहारे पदार्थों में क्रियावान् और ज्ञानवान् है, तू प्रकाशस्वरूप, सर्व से पूज्य और स्वामी रूप से प्रकाशमान है। हे (अनुज्ञात) व्याप जगत् के उत्पादक और सत्स्वरूप से प्रसिद्ध हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (उपयामगृहीतः) यम नियमों और तप द्वारा योग से प्राप्त होता है यही तेरा स्वरूप है, तुमको बृहस्पति करके मानता हूँ।

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमं शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (गोमन्) वाणी, आज्ञा एवं गवादि पशु और गौ=पृथ्वी के स्वामिन्! तू (इह) यहां इस राष्ट्र में (आयाहि) प्राप्त हो, हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं क्रिया सामर्थ्यों और अधिकारों से युक्त! तू (विद्यद्भिः) विशेष रूप से विद्यमान अथवा विविध खण्डन-मण्डन करने वाले (ग्रावभिः) विद्वानों द्वारा (सुतम्) सिद्धान्त रूप से प्राप्त किये (सोमम्) ज्ञान रस का पान कर। अथवा (विद्यद्भिः) विविध शस्त्रास्त्रों से शत्रुओं का खण्डन करनेवाले (ग्रावभिः) शस्त्रधारियों और विद्वानों से (सुतम्) प्राप्त किये गये (सोमम्) अभिषेक द्वारा प्रदत्त साम्राज्यपद या राष्ट्र और ज्ञान का (पिब) पान कर, उपभोग कर। हे वीर पुरुष! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र द्वारा शासन व्यवस्था द्वारा स्वीकृत या नियुक्त है (त्वा गोमते इन्द्राय) तुमको 'गोमन् इन्द्र' अर्थात् पृथिवी के स्वामी 'इन्द्र' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (एष ते) यह तेरे योग्य (योनिः) आश्रय, पदाधिकार है। (इन्द्राय त्वा गोमते) 'गोमान् इन्द्र' पद के लिये तुझे स्थापित किया जाता है।

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमं शतक्रतो। गोमद्भिर्ग्रावभिः

सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) हे शत्रुओं के विदारक ! हे (वृत्रहन्) विघ्नकारियों के नाशक ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजा और अधिकारों से सम्पन्न ! तू (गोमद्भि) पृथ्वी के स्वामी, (ग्रावभि) शस्त्रधारी भूपतियों द्वारा (सुतम्) अभिषेक द्वारा प्राप्त (सामम्) राष्ट्र ऐश्वर्य को शिलाओं से कुटे सोमरस के समान (पिब) उपभोग कर। (उपयाम गृहीत० इत्यादि) पूर्ववत्।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

भा०—(ऋतावान) सत्य ज्ञानवान् (ऋतस्य ज्योतिष) सत्यज्ञान रूप ज्योति के पालक (घर्मम) अति देदीप्त विद्वान्, (वैश्वानरम्) समस्त पुरुषों के हितकारी पुरुष को (अजस्र) निरन्तर (ईमहे) प्राप्त हों।

सूर्य के पक्ष में—(ऋतावानम्) जल को रश्मियों से ग्रहण करने वाला (ऋतस्य ज्योतिष पतिम्) जल और प्रकाश के पालक, सूर्य से (घर्मम्) अविनाशी ज्योति या दीप्ति, तेज को (ईमहे) प्राप्त करें। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत्।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

जगती। निषाद ॥

भा०—हम लोग (वैश्वानरस्य) समस्त विश्व के, या समस्त राष्ट्र के नायक के (सुमतौ) शुभ बुद्धि के अधीन (स्याम) रहें। (राजा) वह राजा ही (भुवनाना) समस्त लोकों के लिये (अभिश्री) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य है। वह (जात) प्रादुर्भूत होकर (इत) इस मुख्य पद से

हो (विश्वम् इदम्) इस समस्त विश्व को सूर्य के समान (विचष्टे) देखता है और प्रकाशित करता है । इसी से (वैश्वानर) समस्त राष्ट्र का नेता वैश्वानर नाम राजा (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (यतते) राष्ट्र के कार्यों में उद्योग करता है । (उपयाम० इत्यादि पूर्ववत्) ।

अध्यात्म में—चक्षु ज्ञानेन्द्रिय और आत्मा ज्ञानी है । हे ज्ञानिन् ! तू मेरे लिये सब ज्ञान मार्गों को प्रकट कर और अमुक अध्यात्म, देवत और पदार्थ से मुझे यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो ।

पृथिवी पर जिस प्रकार अग्नितत्त्व प्रधान है, पृथिवी अग्नि के अधीन है । और पृथिवी अग्नि का ही उपकारक है इसी प्रकार राष्ट्र की प्रजा का राजा से, वा का पुरुष से सम्बन्ध है । इसी प्रकार अन्तरिक्ष में वायु व्यापक है और स्वच्छन्द विहार करता है इसी प्रकार वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् सेनापति अपने आच्छादक बल पर रहे । आदित्य सूर्य जिस प्रकार आकाश में तेजस्वी है, आकाश को प्रकाशित करता है उसी प्रकार सभापति सभा में विराजे, जल जिस प्रकार समुद्र के आश्रय है आलम्बन या उत्तम्बन करता, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुष में अपना आश्रय समझे । उसी से अपनी वृद्धि करें । परन्तु पृथिवी और तत्स्थानीय राष्ट्र प्रजा ही अन्नरूपी समस्त प्राणियों को अपने आश्रय में रखती है । हे पुरुष ! राजन् ! तू अपने (अध्वन) मार्गों, राज्य के संचालन के नियमों को अपने प्रयोजन और इच्छा और आवश्यकतानुसार बना । (अमुना) अमुक २ विद्वान् पुरुष से मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो सदा ऐसा यत्न कर ।

वैश्वानरो नऽऊतयऽआप्रयातु परावतः ॥ अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥[illegible]॥

भा०—(वैश्वानर) समस्त राष्ट्र का नेता अथवा समस्त नेता पुरुषों का स्वामी, (अग्नि) अग्नि के समान तेजस्वी (उक्थेन)

अपने प्रशसनीय (वाहसा) साधनों और वाहनों से (न क्षतये) हमारी रक्षा के लिये (परावत.) दूर देश तक भी (आ प्रयातु) जाए और दूर देश से भी आजाया करे । (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत् ।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥ ६ ॥

वसिष्ठभारद्वाजावृषी । अग्निर्देवता । उष्णी । निषाद ॥

भा०—(अग्नि) ज्ञानवान् अग्नि के समान तेजस्वी, (ऋषि) ज्ञानी, मन्त्रार्थों का देखने वाला, (पाञ्चजन्य) पाचों जनों का हितकारी (पुरोहित) पुरोहित, सब कर्मों का साक्षी हो । (महागयम्) अति स्तुति योग्य या बड़े विशाल गृहों, धनैश्वर्यों और बड़ी प्रजावाले (तम्) उससे हम अपने अभिलषित पदार्थ की (याचामहे) याचना करें । (उपयामगृहीत असि०) इत्यादि पूर्ववत् ।

महाँ२ऽ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ १० ॥

वसिष्ठ ऋषि । महान् इन्द्रो देवता । निचृज्जगती । निषाद ॥

भा०—(महान्) बड़ा भारी (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक इन्द्र राजा, (वज्रहस्त) खड्ग हाथ में लिये हुए, बलवान् वीर्यवान्, (षोडशी) सोलहों कलाओं के समान सोलह अमात्यों या राज्यांगों से चन्द्र के समान पूर्ण होकर हमें (शर्म) सुख (यच्छतु) प्रदान करे । (य) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करे उस (पाप्मान) पापी, दुराचारी पुरुष को (हन्तु) दण्ड दे । (उपयामगृहीत०) इत्यादि पूर्ववत् ।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवऽ इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ११ ॥

नृमेध मेधम॰ आङ्गिरसावृषी वा ऋषी । इन्द्रो देवता । स्वराट् । विराट् अनुष्टुप् ॥

भा०—(स्वसरेषु) दिनों के पूर्व भाग में (धेनवः वत्सम् न) गौवें जिस प्रकार अति प्रेम से अपने बच्चे के प्रति हम्भारती हैं उसी प्रकार हम भी (वन्दं) अभिवादन और स्तुति करने योग्य, (दस्मम्) दर्शनीय, शत्रुओं के विनाशक, रिपदारी और कार्यसाधक (क्षमोः) बसनेवाले राष्ट्र और (अन्धस) अन्नादि नानाभोग्य पदार्थ से (मन्दानम्) स्वयं और अन्यों को तृप्त, आनन्दित करनेवाले (स्वर्पतिम्) अपने ज्ञान, प्रताप या अस्त्रों से शत्रुओं को पराजय करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्र, सेनापति और राजा को हम (गीर्भिः) स्तुतिवाणियों द्वारा (अभि नवामहे) साक्षात् होने पर स्तुति करें, उसका आदर करें ।

यद्वाहिष्ठन्तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाऽ उदीरते ॥ १२ ॥

पुरुईड ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् अनुष्टुप् । वसुः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (वाहिष्ठम्) सब से अधिक सुख प्राप्त करानेवाला, बड़े जिम्मेवारी का (बृहत्) बड़ा महान् पद है वह (अग्नये) ज्ञानवान् तपस्वी पुरुष को प्रदान करो । (अर्च) उसका आदर सत्कार करो । हे (विभावसो) तेजो रूप ऐश्वर्यवान् तेजस्विन् ! (महिषी इव) जिस प्रकार रानी अपने पति के लिये बड़ी उत्कंठा और प्रेम से उसके आदरार्थ उठती है, उसे प्राप्त होती है, इसी प्रकार (त्वत् रयिः) तेरे निमित्त ऐश्वर्य और (त्वत्) तेरे निमित्त, (वाजाः) समस्त वीर्य, पदाधिकार (उदीरते) उठते हैं और तुझे प्राप्त होते हैं ।

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१३॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! (एहि) आ। (ते) तुझे मैं विद्वान् पुरुष (इतराः) और नाना (गिरः) उत्तम वाणियों को (इत्था) यथार्थ रूप से (सु ब्रवाणि) उत्तम रीति से उपदेश करूँ। (एभिः) इन (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों से तू (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त हो।

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः ।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥ १४ ॥

[illegible] ऋषिः । निचृत् । [illegible] स्वरः ॥

भा०—हे नायक! राजन्! (ऋतवः) जिस प्रकार ऋतुएँ यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं उसी प्रकार उनके समान सदस्यगण (ऋतवः) तेरे राष्ट्र पालन रूप यज्ञ का (वितन्वन्तु) विविध उपायों से करें। (मासाः) मास जिस प्रकार जगत् के अन्नादि पदार्थों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (मासाः) ज्ञानवान् और दुष्टों के नाशक अधिकारीगण (ते) तेरे (हविः) अन्न और राष्ट्र का (रक्षन्तु) रक्षा करें। (ते यज्ञं) तेरे यज्ञ को (संवत्सरः) जिसमें समस्त प्राणी सुख से बसें और रमण करें ऐसा प्रजा पालक विद्वान् पुरुष वर्ष के समान सर्वसुखनिवासन, (दधातु) धारण करे। और वही (नः) हमारे (प्रजां) प्रजा का (परिपातु) परिपालन करे।

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत ॥ १५ ॥

वत्स ऋषिः । मेधा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) समीप में (नदीनां च सङ्गमे) और नदियों के संगम स्थान में, रह कर (धिया) ध्यान, धारण,

कर्म, और विज्ञान करके (दिवि) विविध विद्याओं में प्रवृत्त, प्रकाशमान होकर विद्वान् भी, सूर्य के समान उग्र (प्रतापवान्) प्रकट होता है।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥

—[illegible]

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान्! सूर्य के समान सबके प्रेरक राजन्! (अन्धसः ते) तुझ अन्न के समान पालक प्रजा के धारण करनेवाले तेरा जो (उच्चा दिवि) ऊँचे आकाश में (सत्) सत् स्वरूप से बड़ा (उग्रम्) बड़ा बल, (शर्म) सुखकारी शरण और (महि श्रवः) बड़ा ऐश्वर्य (जातम्) प्रकट होता है उसको (भूमि आददे) भूमि स्वयं धारण करती है, अथवा उसको मैं प्रजाजन (भूमि इव) भूमि के समान सब प्रकार से स्वीकार करता हूँ।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

भा०—हे सोम! राजन्! (सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) शत्रुनाशक, (यज्यवे) दानशील, (वरुणाय) सर्व श्रेष्ठ, शान्ति निवारक और (मरुद्भ्यः) विद्वान् मनुष्यों के लिये (वरिवोवित्) धनवान् ऐश्वर्यवान् सेवा करने योग्य जानकर (परिस्रव) प्राप्त हो।

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

भा०—(एना) इन (विश्वा) सब प्रकार के (मानुषाणां द्युम्नानि) मनुष्यों के उत्तम धनों का (अर्यः) स्वामी, हो (आ) प्राप्त कराता

है। हम (सिषासन्त) उनका सेवन करना चाहते हुए (सनामहे) उन्हीं पदार्थों की याचना करते हैं।

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

आशा । ऋ दप । धवन । सुगल उप ॥

भा०— देवाः (हवगण (न हमारे (यज्ञम्) परस्पर संगत, गृहस्थ, समान आर राष्ट्र रूप यज्ञ को या प्रजापालक राजा को ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार यथाकाल यथावसर इस प्रकार (नयन्तु) ले जावें। इस प्रकार मार्ग दिखावें कि (वयम्) हम (वीरैः) वीरों से (अनुपुष्यास्म) पुष्ट हों (गोभिः अनु) गौओं से समृद्ध हों (पुष्टैः अश्वैः अनु) हृष्ट पुष्ट अश्वों से समृद्ध हों (सर्वेण द्विपदा चतुष्पदा) सब प्रकार के दोपाये और चौपाये भृत्य और पशुओं से (अनु) खूब पुष्ट हों।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।
त्वष्टारꣳ सोमपीतये ॥ २० ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् अग्रणी ! पुरुष ! (इह) इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र और समान के कार्य में (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों की उन (पत्नीः) स्त्रियों को जो (उशतीः) कार्य के करने की अभिलाषा करती हों (उप वह) प्राप्त करा, उनको भी इस कार्य में लगा और (सोमपीतये) सोम या राजपद के स्वीकार करने के लिये (त्वष्टारं) शत्रुहन्ता प्रजापालक पुरुष को भी प्राप्त करा।

अथवा—राष्ट्र के पालन के लिए (देवानां पत्नीः) देव विद्वानों और राजा और विजयी पुरुषों का पालन शक्तियें, सभाओं को एकत्र कर (त्वष्टारं) सब के त्वष्टा, शिल्पक या भूमि आदि के मापक राजप्रासाद दुर्गआदि के निर्माता शिल्पी को भी प्राप्त कर।

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।
त्वᳬ हि रत्नधाऽअसि ॥ २१ ॥

(२१–२२) मेधातिथिर्ऋषिः । ऋतुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (नेष्टः) नेता ! नायक पुरुष ! राजन् ! (नः) हमारे (यज्ञं) प्रजापालक राष्ट्र के स्वरूप को (अभि) स्पष्टरूप से (गृणीहि) हमें बतला। हे (ग्नावः) पालक शक्ति से युक्त श्रीमन् ! इस राष्ट्र को (ऋतुना) अपने बल और ज्ञान से या अन्य अधिकारियों द्वारा (पिब) भोग कर। (त्वं हि) तू ही (रत्नधा असि) राज्य के रत्नों और पुरुषों का धारक और पोषक है।

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२॥

भा०—(द्रविणोदाः) धन और बल का देनेवाला पुरुष ही (पिपीषति) राष्ट्र का भोग करना चाहता है। (जुहोत) उसको पदाधिकार प्रदान करो और (प्रतिष्ठत च) शत्रु पर प्रस्थान करो। (नेष्ट्रात्) नेता, नायक से (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार उसके मुख्य सदस्यों सहित (इष्यत) इष्ट फल को प्राप्त करो।

तवायᳬ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमᳬ सुमना अस्य पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य युक्त राज्य या राष्ट्र (तव) तेरा है। (त्वं) तू (सुमनाः) शुभ चित्त होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (शश्वत्तमम्) सदा काल से चले आये ऐश्वर्य को (अर्वाङ्) अपने अधीन रख के (पाहि) पालन कर। (अस्मिन् यज्ञे) इस महान् यज्ञ में, और इस (बर्हिषि) राजगद्दी पर या प्रजा जन के ऊपर (आनिषद्य) विराज कर (इमं) इस (इन्दुम्) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को (इन्द्र) ऐश्वर्य

के इच्छुक (जठरे) पेट में अन्न के, या ओषधि रस के समान (दधिष्व) धारण कर ।

अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ ऽआ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन ।
अथा॑ मदस्व जुजुषा॒णोऽअन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः ॥२४

गृत्समद ऋषिः । जगती । निषादः । त्वष्टा देवपत्न्यश्च देवताः ॥

भा०—हे (सुहवाः) सुन्दर, शुभ नामवाली देवपत्नियों अर्थात् विद्वान् पुरुषों के स्त्री जनो ! और हे विद्वान् जनो ! आप सब लोग (आ गन्तन हि) आइये । (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतन) निश्चिन्त होकर विराजिये । और (रणिष्टन) उत्तम उपदेश, शिक्षा प्रदान कीजिये । हे (त्वष्ट) विद्वन् ! राजन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार सूर्य अपने (देवेभिः) किरणों से जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (देवेभिः) सहयोगी विद्वान् पुरुषों और (जनिभिः) सहयोगी माता भगिनी पत्नी आदि आनन्द प्रसन्न स्त्रियों के सहित और (सुमत् गणः) उत्तम गुणों वाले गणों अर्थात् भृत्यजनों सहित (अन्धसः) अन्न आदि का (जुषाणः) भोग करता हुआ (मदस्व) हृष्ट पुष्ट हो ।

स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या ।
इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः ॥ २५ ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक ! तू (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद अर्थात् समृद्ध राज्य के लिये (सुतः) अभिषिक्त होकर (स्वादिष्ठया) अति स्वाद वाली, अति मधुर (मदिष्ठया) सबको अति आनन्द देनेवाली, (धारया) प्रजा को धारण पोषण करने वाली, दुग्ध धारा के समान मधुर वाणी और शक्ति से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के (पातवे) पालन करने और भोग करने के लिये (पवस्व) निरन्तर शुद्ध पवित्र होकर रह ।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

भा०—(रक्षोहा) राक्षसों और दुष्ट पुरुषों का नाशक (विश्वचर्षणिः) समस्त प्रजाओं का द्रष्टा होकर सुवर्ण आदि से रचित, ऐश्वर्य युक्त (द्रोणे) राष्ट्र में (सधस्थम्) साथ स्थान, मान और पद के समान योग्य प्रतिष्ठित पद और (योनिम्) अपने गृह या अधिकार पद पर (आसदत्) विराजे और उत्तम गृह में रहे ।

॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥

इति श्रीमत्पण्डित-[illegible]

यजुर्वेद[illegible] षड्विंशो[illegible] ॥



॥ अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

[अ० २७] अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ॥

॥ ओ३म् ॥ समास्त्वाग्न ऽऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽ ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽआभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥

[१—६] अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! अग्रणी नायक! राजन्! (त्वा) तुझको (समाः) एक समान ज्ञान पद और ज्ञानवाले विद्वान् पुरुष और (ऋतवः) बलवान् सभासद् गण (संवत्सराः) अच्छी प्रकार प्रजाओं को बसाकर उनमें स्वयं रमण करनेहारे प्रजापालक नरपति लोग और (ऋषयः) वेदमन्त्रों और सत्य ज्ञानों के गूढ़ तत्वों के अध्यापक तथा अध्येता जन और (यानि सत्या) जितने होनेवाले सत्य, यथार्थ विज्ञान और सत्य व्यवहार हैं वे सब (त्वा) तुझको (सं वर्धयन्तु) बढ़ावें, तेरे यश, बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करें । तू (दिव्येन) उत्तम कान्तियुक्त (रोचनेन) सबको अच्छा लगने वाले तेज से (सं दीदिहि) सूर्य के समान प्रकाशित हो । और सूर्य के समान ही (विश्वाः) समस्त (चतस्रः) चारों दिशा उपदिशाओं सबको (आभाहि) जगमगा, प्रकाशित कर ।

सूर्यपक्ष में—(समाः) वर्ष (ऋतवः) वसन्तादि, (संवत्सराः) प्रभव आदि सब सूर्य की महिमा को बढ़ाते हैं ।

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते ऽअग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! विद्वन्! नायक! राजन्! तू (सं इध्यस्व च)

अग्नि के समान गुण प्रज्वलित, तेजस्वी हो। (एनम्) इस राष्ट्र को भी (प्र बोधय च) खूब जगा, प्रबुद्ध और शिष्य को गुरु के समान सोने से, या अज्ञान दशा से जगा कर ज्ञानवान् कर। तू स्वयं भी (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (उत् तिष्ठ) ऊँचे आसन पर विराज। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते उपसत्ता) तेरे समीप आनेवाला, तेरा उपासक और तेरे समीप बैठने वाला अमात्य, शिष्य, मित्र आदि (मा रिषत् च) कभी कष्ट प्राप्त न करे। हे (अग्ने) विद्वन् तेजस्विन्! (ब्रह्माणः) ब्रह्म वेद और ऐश्वर्य के ज्ञानी विद्वान्गण (ते) तेरे आश्रय रह कर (यशसः) यशस्वी (सन्तु) हों। (ये अन्ये) और ये दूसरे अर्थात् तेरे शत्रु जन (मा) कभी यशस्वी न हों। अथवा (यशसः ब्रह्माणः अन्ये मा सन्तु) यशस्वी विद्वान् ब्राह्मण तेरे विरोधी शत्रु न हो जाय।

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्म॒णा इ॒मे शि॒वो अ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः।
स॒प॒त्न॒हा नो॑ अभिमाति॒जिच्च॒ स्वे गये॑ जागृ॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! तेजस्वी पुरुष! (त्वां) तुझको (इमे ब्राह्मणाः) ये ब्रह्म के ज्ञानहार विद्वान् ब्राह्मण लोग (वृणते) वरण करते हैं, अपना नेता स्वीकार करते हैं। हे (अग्ने) अग्ने! तेजस्विन्! तू (नः) हमारे (संवरणे) वरण करलेने पर (शिवः) हमारे प्रति कल्याण और सुख का देनेहारा (भव) हो। और तू (सपत्नहा) शत्रुओं का नाशक और (अभिमाति जित् च) गर्वीले, दुष्ट पुरुषों को विजय करनेहारा होकर (स्वे गये) अपने गृह और विजित राष्ट्र में (अप्रयुच्छन्) कभी प्रमाद न करता हुआ (जागृहि) सदा सावधान होकर पहरेदार के समान जागता रह।

इ॒है॒वाग्ने॒ अधि॑ धारया र॒यिं मा त्वा॒ नि क्र॑न् पूर्व॒चितो॑ निका॒रिणः॑।
क्ष॒त्रम॑ग्ने सु॒यम॑मस्तु॒ तुभ्य॑मुपस॒त्ता व॑र्धतां ते॒ अनि॑ष्टृतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे राजन् ! तू (इह एव) यहां ही इस राष्ट्र में, या पद पर (रयिम्) धन ऐश्वर्य को (अधि धारय) धारण कर। और (पूर्वचित) तेरे पूर्व परिचित जन (निकारिणः) तेरा अपमान करने में समर्थ पुरुष भी (त्वा मा निक्रन्) तेरा निरादर न करें। अथवा—(पूर्वचित) पूर्व ही प्राप्त अधिक विज्ञानवान् पुरुष और (कारिणः) निरन्त कर्मशील, उद्योगी जन (त्वा मा नि क्रन्) तुझे नीचे न गिरादें, तुझे राजसिंहासन से न उतार दें। (तुभ्यम्) तेरी रक्षा के लिये तेरा (क्षत्रम्) वीर्य और क्षात्रबल (सुयमम्) उत्तम प्रबन्ध में व्यवस्थित (अस्तु) हो। (ते उपसत्ता) तेरे समीप बैठा हुआ मन्त्री, आदि आश्रित प्रजाजन भी (अनिस्तृत) किसी प्रकार क्षति को प्राप्त न होकर, सुरक्षित रह कर (वर्धताम्) सदा वृद्धि को प्राप्त हो।

क्षत्रेणा॑ग्ने॒ स्वायुः॒ सꣳ र॑भस्व मि॒त्रेणा॑ग्ने मित्र॒धेये॑ यतस्व।
स॒जा॒तानां॑ मध्यम॒स्था ऽए॑धि॒ राज्ञा॑मग्ने विह॒व्यो᳖ दीदिही॒ह ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! राजन् ! तू (क्षत्रेण) क्षात्र-बल, क्षत अर्थात् त्रुटि के पूर्ण करने वाले, धन और प्रजा को क्षय होने से बचाने वाले राज्य से (सु-आयु, स्व-आयुः) अपने उत्तम आयु को (संरभस्व) प्राप्त कर, अपने जीवन को सुरक्षित रख। हे अग्ने ! राजन् ! (मित्रेण) अपने स्नेही, मित्र राजा और धार्मिक विद्वान् पुरुषों से (मित्रधेये) मित्रता के बनाये रखने का (यतस्व) यत्न कर। और (सजातानाम्) कुल, शील, राज्य और ऐश्वर्य और पद में समान प्रतिष्ठा वाले पुरुषों के बीच में (मध्यमस्थाः) मध्यम राजा के रूप में सबका बल तोलने में समर्थ होकर (एधि) रह। हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! तू (राज्ञाम्) राजाओं के बीच में (विहव्य) विशेष आदर से स्तुति योग्य और विशेष आदर से बुलाये जाने योग्य होकर (इह) इस राष्ट्र में (दीदिहि) प्रदीप्त, तेजस्वी होकर चमक।

अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ सहवीरꣳ रयिं दाः॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! तू (निहः अति) प्रजा के घातकों को दबा कर, (स्रिधः अति) निन्दित व्यापार व्यवहार वालों को दबाकर, (अचित्तिम्) अज्ञानी और मूर्ख या हृदय-हीन को दबा कर और (अरातिम्) अदानशील शत्रु को दबा कर (विश्वा दुरिता) समस्त प्रकार के दुष्ट पापाचारों को (सहस्व) विजय कर। (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीरम्) वीर पुत्रों और वीर सैनिकों सहित (रयिम्) राष्ट्र और ऐश्वर्य का (दाः) प्रदान कर।

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे॥७॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! राजन्! सेनापते! तू (अनाधृष्यः) दूसरे से कभी पराजित करने एवं पराजय करने योग्य न हो। तू (जातवेदाः) विद्यावान् ऐश्वर्यवान्, (अनिष्टृतः) अहिंसित, (विराट्) विशेषरूप से तेजस्वी, (क्षत्रभृत्) क्षात्र बल को धारण और पोषण करने वाला होकर (इह) इस राष्ट्र में (दीदिहि) खूब प्रेम कर या प्रकाशमान होकर रह। और (मानुषीः भियः) समस्त प्रकार के मनुष्यों को या मनुष्यों से होने वाले भयों को (प्रमुञ्चन्) दूर कर और सबों को भी भय से मुक्त करता हुआ (नः) हमारी (विश्वाः आशाः) सब आशाओं, मनोरथों को और दिशाओं को और उनमें रहने वाली प्रजाओं को (अद्य) अब, निरन्तर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (परिपाहि) पालन कर।

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ संशितं चित्सन्तराꣳ संशिशाधि।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः॥८॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े लोकों के पालक, बड़े राज्यों और राज-कार्यों के पालक, अधिष्ठात ! बृहस्पते ! विद्वन् ! हे (सवित) सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! आचार्य ! तू (एन) इस अपने अधीन प्रजाजन और शिष्य को (सशिशम्) और अच्छी प्रकार तप, और विद्या अभ्यास द्वारा तीक्ष्ण, बुद्धिमान् करके (सबोधय) अच्छी प्रकार ज्ञानवान् कर। (सतराम् स शिशाधि) अच्छी प्रकार इसका शासन कर और उपदेश कर। (एन) उसको (महते सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य, उत्तम लक्षण, चरित्र और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (वर्धय) बढ़ा। (एनम् अनु) इसको देखकर इसके पीछे २ (देवा) समस्त विद्वान् पुरुष और उसको चाहनेवाले प्रेमी तथा विजयेच्छुजन भी (अनु मदन्तु) आनन्द प्रसन्न हों।

अमुत्र भूयादध यद्यमस्य बृहस्पते ऽअभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ९ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बृहद् राष्ट्र के पालक ! और विद्वन् ! (यत्) जो (यमस्य) राष्ट्र के नियन्ता राजा को (अमुत्र भूयात्) अमुक, दूसरे देश में होने वाले (अभिशस्ते) अपराध, अपवाद, लोक निन्दा से और (अध) और (यत्) भी जो अयुक्त बात हो उससे उसको (अमुञ्चः) छुड़ा। हे (अग्ने) राजन् ! (अश्विना) विद्या में पारगत 'अश्वी' नामक अधिकारीजन (देवानां भिषजा) विद्वान् पुरुषों में वैद्यों के समान सब राज्यगत दोषों के उपाय करने में कुशल होकर (शचीभिः) अपनी शक्तिशाली सेनाओं से (अस्मा) इस राष्ट्र में (मृत्युम्) मृत्यु या मारनेवाले दुष्ट जन को (प्रति औहताम्) यत्नपूर्वक दूर करें।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २१ ॥

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीᳪष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥

[११—१२] अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के जिस प्रकार ऊपर उठते हुए काष्ठ उज्ज्वल तेजवान् होते हैं उसी प्रकार (समिधः) प्रकाशक, उत्तम ज्ञान से उसकी बुद्धि को चमकाने वाले जन भी (ऊर्ध्वा भवन्ति) उच्चपद पर विराजमान होते हैं। और उस अग्नि रूप प्रतापशाली परमेश्वर और राजा के (शुक्रा) शुद्ध करने वाले (शोचींषि) तेज भी (ऊर्ध्वा) सबके ऊपर विद्यमान होते हैं। (सुप्रतीकस्य) सुन्दर उज्ज्वल मुख वाले उत्तम ज्ञानवान् (सूनोः) पुत्र और शिष्य के समान सौम्य स्वभाव वाले अथवा सबके प्रेरक आदित्य के समान तेजस्वी ईश्वर और राजा के तेज (द्युमत्तमानि) अति ऐश्वर्यवान् अति उज्ज्वल हों।

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

भा०—(तनूनपात्) शरीरों को न गिरने देने वाला, (असुरः) प्राणों में रमण करने वाला (देवः) शक्ति देने और ज्ञान के देने वाला आत्मा (देवेषु देवः) प्राण आदि पदार्थ तथा उपकरणों में (देवः) सबका प्रकाशक है वह (मध्वा) ज्ञान से (घृतेन) और प्रकाश से (पथः) अपने जीवन के मार्गों को (अनक्तु) प्रकाशित करे।

वायु के पक्ष में—शरीरों को न गिरने देने वाला (असुर) बलवान् (देव) दिव्य गुणवाला सर्वत्र व्यापक (देवेषु देव) अग्नि आदि पदार्थों को शक्ति देने वाला, (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल से (पथः) मार्गों को (अनक्तु) सींचे, शुद्ध करे।

राजा के पक्ष में—विस्तृत राष्ट्र का पालक, (विश्ववेदा) समस्त ऐश्वर्य वाला, (असुर) बलवान्, प्रश्रयवान् (देवषु देव) दानशीलों में सब से अधिक दानशील (देव) सबका द्रष्टा, (मध्वा वृनन) मधुर आकर्षण और तन से सौम्यता और प्रखरता दोनों से (पथ) प्रजा के व्यवस्थापक मार्गों, राजनियमों को (अनक्तु) प्रकाशित कर।

परमश्वर कपक्ष में—सब शरीरों का रक्षक होन स 'तनूनपात्' है सर्वज्ञ होन से 'विश्ववेदा', सब सूर्यादि का प्रकाशक होन स दवों का दव', सवप्रद होन से 'देव' और सबक प्राणों का और एश्वर्यों का दाता होन से [वसु र] 'असुर' है। वह (मध्वा) मधुर आनन्द स और (वृनन) प्रकाशमय ज्ञान से हमार जीवन के समस्त ऐहिक और पारलौकिक मार्गों को वेदोपदेश द्वारा प्रकाशित करे।

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो ऽअग्ने।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्न) विद्वन्! राजन्! तू (यज्ञम्) परस्पर के आदान प्रतिदान व्यवहार और प्रजा पालन-रूप यज्ञ को, (मध्वा) मधुर चित्ताकर्षक वचन स या सुन्दर मधुर रूप स (नक्षस) व्याप्त है। यदि राजा का व्यवस्था न हो तो प्रजा क परस्पर व्यवहार बड़े कड़वे और दुःखदायी हों व्यवस्था होन स व सौम्य होजाते हैं। तू (नराशंस) विद्वानों का प्रशंसक और सर्व साधारण स स्तुति योग्य, या सबको शिक्षा दन हारा और (प्रीणान) सबको तृप्त और प्रसन्न करने हारा हो। तू स्वयं (सुकृत्) शुभ कार्यों को करन वाला (सविता) सबका प्रेरक और (विश्ववार) सबका वरन या स्वीकारन वाला सब स वरन योग्य, या सबका रक्षक एवं सब बुर पदार्थों का वारण करन हारा हो।

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा।

अग्निं सुर्यो [illegible] प्रयन्तुं ॥ १४ ॥

भा०—([illegible]) [illegible] करने में समर्थ पुरुष, ([illegible]) बल से, ([illegible]) तेज से और ([illegible]) दुष्टों को [illegible] करने वाले बल से ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] है। ([illegible]) [illegible] के पालन कार्यों के प्रारम्भ होजाने पर ([illegible]) [illegible] जिस प्रकार अग्नि को [illegible] करते हैं उसी प्रकार ([illegible]) [illegible] अपने कर्मों से (अग्निम्) इस नायक को [illegible] और [illegible] करें।

स यज्ञस्य महिमानमग्ने, [illegible] सुन्दर सुंदयन्त ।
वसुर्योनिष्ठो वसुधानमग्ने ॥ १५ ॥

भा०—जो (वसुः) प्रजाओं को बसानेहारा, ([illegible]) [illegible] (वसुधानः) बसनेवाली प्रजाओं का [illegible] करने-वाला, सबका [illegible] देनेवाला है। वह ([illegible]) इस [illegible] नायक पद के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को ([illegible]) [illegible] और (स) वही ([illegible]) [illegible] पुरुष के ([illegible]) [illegible] को ([illegible]) भी प्राप्त करे।

[illegible]
[illegible]

भा०—([illegible]) [illegible] जिस प्रकार [illegible] को [illegible] और [illegible] हैं और [illegible] के [illegible] हैं उसी के [illegible] और [illegible] हैं। और ([illegible]) [illegible] जिस प्रकार [illegible] के [illegible] और [illegible] के [illegible] हैं, [illegible] करते हैं उसी प्रकार ([illegible]) इस ([illegible]) [illegible] समर्थ नायक पुरुष के ([illegible]) [illegible] ([illegible])

दिनयन्तीह मनु वारङ सनाए और (दिवे) समस्त पुरुष (व्रता) नाना सत्य भाषण आदि कर्मों का (ददत) धारण करते हैं और (उरुव्यचस) महान् व्यापक नामान्य वाले इन्द्र हो (धाम्ना) तेज, एश्वर्य से और पराक्रम या पद से व रत्न (पत्यमाना) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध हो जाते हैं ।

ते ऽअस्य यापण दिव्ये न योना ऽउषासानक्ता ।

इम यज्ञमवतामध्वरं न ॥ १७ ॥

भा०—(त) व दोनों स्त्री और लक्ष्मी घर की शोभा का आश्रय स्थान स्त्री और राज्यलक्ष्मी दोनों (उषासा नक्ता न) दिन और रात्रि के समान (दिव्य योषणा) दिव्य उत्तम गुणदाता और ज्ञानशील दो स्त्रियां हैं। वे दोनों (न इमं यज्ञम्) हमारे इस यज्ञ और राष्ट्र का (अध्वरम्) अविनष्ट रूप में (अवताम्) पालन करें ।

'श्रीश्च त लक्ष्मीश्च त पत्न्यावहोरात्रे इत्यादि २८ । यजु० ।

दैव्या होतारा ऽऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।

कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥

भा०—(दैव्या होतारा) विद्वानों आप्त प्रसिद्ध विद्या कला कौशल की शिक्षा देने में कुशल (नः अध्वरम्) हमारे हिंसा रहित (ऊर्ध्वम्) सबके ऊपर विद्यमान् उन्नत यज्ञ राज्यव्यवस्था का (अभिगृणीतम्) सब प्रकार से उपदेश करें । और वे दोनों (अग्नेः) ज्ञानवान् अग्रिम नायक पुरुष को (जिह्वाम्) सुख वाणी का अथवा (जिह्वाम्) वश करने योग्य व्यवस्था का शिक्षा दें । और (नः) हम प्रजाजनों को (सु इष्टिम्) उत्तम फल देनेवाली व्यवस्था (कृणुतम्) करें ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती ।

मही गृणाना ॥ १९ ॥

भा०—(मही) बड़ी, उत्तम गुणोंवाली, (देवी) ज्ञान की प्रकाशक, (सुप्रतीका) उत्तम पदार्थों का उपदेश देती हुई (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती, और भारती, पृथ्वी, वाणी और तत्व को धारण करनेवाली (तिस्रः) तीनों सभाएं (इदं बर्हिः) इस महान् प्रजा या राष्ट्र पर (आ सदन्तु) आकर विराजें, वे तीनों सभाएं शासन करें।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम्।
रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

भा०—(त्वष्टा) अति दीप्तिमान्, अति शीघ्रता से सर्वत्र व्यापने वाला, शीघ्रगामी। शिल्पज्ञ पुरुष (नः) हमें (तुरीपम्) वेग से पहुंचा देने और प्राप्त होनेवाले (अद्भुतम्) आश्चर्यकारक (पुरुक्षु) नाना प्रकार के पदार्थों में विविध प्रकार से विद्यमान (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य का बलयुक्त (रायस्पोषम्) धनैश्वर्य के पोषण करनेवाले ऐश्वर्य को (अस्मे नाभिम्) हमारे राष्ट्र के बीच में (वि ष्यतु) प्रदान करे।

वनस्पतेऽवसृजा रराणस्त्मना देवेषु।
अग्निर्हव्यं शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवा करने योग्य राष्ट्र के पालक! (शमिता) शान्तिदायक, राष्ट्र के उपद्रवों को शान्त करने में समर्थ, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानदायक (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य राष्ट्र आदि ऐश्वर्य को (सूदयाति) तुझे प्रदान करे। और तू (त्मना) स्वयं (देवेषु) विद्वान्, विजयशील पुरुषों के हाथों इसको (रराणः) प्रदान करता हुआ (अव सृज) इसको अपने अधीन रख।

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (जातवेद) विद्याओं में कुशल पुरुष ! तू (स्वाहा) उत्तम उपदेशप्रद वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र या राष्ट्रपति के लिये (वृषम्) स्वीकार करने योग्य स्तुति एवं राष्ट्र पदाधिकार को (कृणुहि) कर । (इदं हविः) इस स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् शासकगण (जुषन्ताम्) प्राप्त करें ।

पीवोऽअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ २३ ॥

[२३—२४] वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(नियुताम्) नियुक्त हुए शासकों को (अभि श्रीः) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य, मुख्य पुरुष (श्वेतः) उनकी वृद्धि करने वाला होकर (पीवः अन्ना) पुष्टिकर अन्नों का खानेवाले, (रयिवृधः) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुषों को (सिषक्ति) अपने साथ मिलाकर समवाय बना कर रहे । और (ते) वे (समनसः) सब एक समान चित्त होकर, (वायवे) अपने प्राण-स्वरूप वायु के समान जीवनप्रद नेता के लिये (वि तस्थुः) विविध कार्यों पर अधिष्ठाता या अध्यक्ष होकर विराजें । और (नरः) नेता लोग या सर्वसाधारण मनुष्य (विश्वा) सब अपने (सु अपत्यानि) उत्तम २ सन्तानों को (चक्रुः) बनावें ।

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥२४॥

भा०—(इमे रोदसी) पृथिवी और सूर्य के समान सम्बद्ध राजा और प्रजाएं दोनों (यं) जिस मध्यस्थान अन्तरिक्ष में व्यापक वायु के समान दोनों के धारण पोषण करने में समर्थ पुरुष को (राये) ऐश्वर्य

की रक्षा के लिये (उद्यन्तु) प्रकट होते हैं । और (विश्वाः) समस्त कर्म और विज्ञानों और अधिकारों को धारण करने वाला (देवी) की जिस प्रकार विद्वान् दाहिना हाथ [illegible] से स्वीकार करता है उसी प्रकार यह राजसभा जिस (देवम्) [illegible] पुरुष को (धर्त्रि) धारण करती [illegible] करती है । (अथ) और जिस प्रकार (निऋत) [illegible] यथार्थ [illegible] धारण करते हैं उसी प्रकार (निऋत) [illegible] द्वारा जिस (वसुम्.) प्राण और जीवनवृत्ति के द्वारा [illegible]) [illegible] वसु- ओं के समान ([illegible]) और उस (धीराम्) परम बुद्ध [illegible] पुरुष को ([illegible]) निवेद या बुद्धि से उसी [illegible] ([illegible]) [illegible] (वसु [illegible]) समस्त ऐश्वर्यों की रक्षा करने वाला बना कर ([illegible]) [illegible] करते हैं और [illegible] उसकी रक्षा करते हैं ।

[illegible] के रक्षक राजा या सभासदों को ' वसु ' पद प्रदान किया जाय ।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानाᳬसमवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५॥

भा० —(यत्) जब (बृहतीः आपः) बड़ी भारी [illegible] (अग्निम्) [illegible] [illegible], अर्थात् [illegible] (विश्वम्) सर्व में व्याप्त होने वाले परमेश्वर के समान [illegible] (गर्भम्) गर्भ [illegible] ([illegible]) धारण करती हुई (अग्निम्) अग्नि, सूर्य आदि [illegible] को प्रकट कर रही होती है (ततः) तब भी (देवानाम्) सब दिव्य शक्तियों, पृथिवी आदि पदार्थों का (एक) एक ही (असुः) [illegible] सबको [illegible] से [illegible] देनेहारा प्रवर्त्तक होता है । (कस्मै) उस [illegible]

(देवाय) सबको गति देनेवाले सर्व जगत् के प्रकाशक परमेश्वर का हम (हविषा) ज्ञान और स्तुति से (विधेम) प्रतिपादन करें ।

उसी प्रकार से राजा के पक्षमें—(बृहतीः) बड़ी भारी, बड़ सामर्थ्य वाली बुद्धिशाली (आपः) जलों के समान राष्ट्र में व्यापक आप्त प्रजाएं (यत्) जब (विश्वम्) उनमें प्रविष्ट होनेवाले व्यापक बलवान् पुरुष को (आयन्) प्राप्त होता है और (गर्भम्) ग्रहण करनेहार गर्भ को स्त्री के समान राष्ट्रैश्वर्यवान् (अग्निम्) अग्रणी नेता को अपने बीचमें (जनयन्तीः) प्रकट कर रहा होता हैं (ततः) तब वह (देवानाम्) समस्त विद्वान् शासकों का (एकः) एकमात्र (असुः) प्रवर्त्तक इन्द्रियों के प्रवर्त्तक प्राण के समान होता है । (कस्मै) उस प्रजापालक सुखकर्ता (देवाय) राजा के हम (हविषा) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य आदि से (विधेम) आदर सत्कार करें ।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

[२५-२०] हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः चित्) और जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दक्षं दधानाः) बल और क्रियावेग को धारण करती हुई (यज्ञं जनयन्तीः) सुसंगत नियमबद्ध संसार को प्रकट करती हुई (आपः) प्रकृति के सूक्ष्म तन्मात्राओं को (परि अपश्यत्) साक्षात् देखता उनपर साक्षी रूप से विद्यमान रहता है । और (यः) जो (देवेषु) समस्त क्रीड़ाशील एवं फलाकांक्षा जीवों पर और पृथिव्यादि कान्तिमान लोकों पर भी (एक देवः) एक अकेला सबको प्रकाशक सुखदाता परमेश्वर (अधि आसीत्) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान है (कस्मै) उस विश्व के कर्त्ता सुखकारक प्रजापालक परमेश्वर को हम (हविषा) ज्ञान और क्रियायोगसे (विधेम) परिचर्या करें ।

राजा के पक्ष में—(यः विभूः) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दक्ष दधाना) अपने ही बलको धारण करता हुआ, (यजम्) राष्ट्र को और राष्ट्रपति को प्रकट करता हुआ (आपः) प्रजाओं को सम्यक्रूप से (परि अपश्यत्) देखता है। और (यः देवेषु अधिदेवः एकः) जो एक अकेला ही सब विद्वानों और शासकों पर भी शासक है उसका हम ध्यानादि से सत्कार करें।

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

भा०—हे (वायो) सब के प्राण के समान जीवनाधार वायु! अधिकारिन्! तू (याभिः) जिन (नियुद्भिः) नियुक्त पुरुषों के साथ या जिन सेनाओं के साथ (दाश्वांसम्) दानशील राष्ट्र के प्रति (दुरोणे) अपने आश्रय स्थान, गृह में (इष्टये) इष्टि अर्थात् योग्य कार्य सम्पादन करने के लिये (प्रयासि) प्रयाण करता है (अच्छ) वह ठीक ही है। (नः) हमें (सुभोजसम्) उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थों से युक्त या उत्तम रक्षावाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (नि युवस्व) निरन्तर प्रदान कर। और (वीरं) वीर, (गव्यम्) गौओं और (अश्व्यम्) अश्वों से युक्त (राधः) धन को भी (नियुवस्व) प्रदान कर।

'नियुत्' शब्द अश्ववाचि, इति उवट ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान प्रचारक! वायु के समान प्रचण्ड बल से शत्रुओं को उखाड़ देने हारे और सेनापते! तू (शतिनीभिः) सैकड़ों पुरुषों से बनी और (सहस्रिणीभिः) हजारों से बनी (नियुद्भिः) शत्रुओं का छिन्न भिन्न करनेहारी सेनाओं के साथ (नः)

हमारे (अध्वरम्) रक्षा करने योग्य (यज्ञम्) प्रजापति, सबके व्यवस्थापक राष्ट्रपति को (उपयाहि) प्राप्त हो। तू (अस्मिन् सवने) इस राज्याभिषेक काल में (मादयस्व) सबको प्रसन्न कर। (यूयम्) आप सब लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी उपायों से (नः) हमारी (सदा) सदा काल (पात) रक्षा करो।

> नियुत्वान् वायवा गह्ययꣳ शुक्रो ऽअयामि ते।
> गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २९ ॥
>
> गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! सेनापते ! तू (नियुत्वान्) सेनाओं का नियन्ता होकर (आ गहि) आ, प्राप्त हो। (अयम्) यह मैं (शुक्रः) शुद्ध ज्योतिष्मान्, तेजस्वी होकर (ते) तेरे पास (अयामि) प्राप्त होता हूं। तू भी (सुन्वतः) अभिषवन या अभिषेक करनेहारे के (गृहम्) गृह अर्थात् ग्रहण करनेहारे सामर्थ्य या प्रधानता को (गन्तासि) प्राप्त हो।

> वायो शुक्रो ऽअयामि ते मध्वो ऽअग्रं दिविष्टिषु।
> आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥
>
> पुरुमीढाजमीढौ ऋषी ॥ वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवन्, सर्व प्राणाधार ! मैं (शुक्रः) शुद्ध तेजस्वी होकर (दिविष्टिषु) ज्ञान प्राप्त करानेवाले विद्वत्सभाओं में (ते) तेरे (मध्वः अग्रम्) मधु, मधुर ज्ञान के (अग्रम्) उत्तम सार भाग को (अयामि) प्राप्त होऊँ। हे (देव) राजन् ! तू (सोम-पीतये) सोम अर्थात् राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (स्पार्हः) अति स्पृहा, इच्छा या प्रेमवाला होकर (नियुत्वता) नियुक्त, शत्रु उच्छेदन में समर्थ सेनानायक सेनापति के सहित (आ याहि) आ।

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥

भा०—तू (अग्रेगाः) सबके आगे चलनेहारा, यज्ञप्री और (शिवः) कल्याणकारी होकर (यज्ञम्,) राष्ट्र को प्रजापालन अनुशासन करके स्वयं (वायु) वायु के समान बलवान् होकर (मनसा) अपने चित्त से (शिवाभिः नियुद्भिः साकम्) कल्याणकारिणी, नियुक्त सेनाओं या शक्तियों और नियुक्त पुरुषों सहित (यज्ञम् आ गहि) तू यज्ञ अर्थात् व्यवस्थित राष्ट्र या राष्ट्रपति के माननीय पद को प्राप्त हो ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

[illegible] ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् सेनापते ! (ये) जो (ते) तेरे (सहस्रिणः) सहस्रों पुरुषों से अधिष्ठित (रथासः) रथ, या रमणकारी साधन हैं (तेभिः) उनसे (नियुत्वान्) तू विशेष शक्तिशाली और सेना-सम्पन्न होकर (सोमपीतये) सोम अर्थात् राष्ट्रैश्वर्य के पालन और भोग के लिये (आ गहि) आ, प्राप्त हो ।

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥

[illegible] ॥

भा०—हे (वायो) वायो ! ऐश्वर्यवन् ! हे (स्वभूते) स्वयं ऐश्वर्यवन् ! तू (एकया दशभिः च) दस दस की एक (द्वाभ्याम् विंशती च) दो बीस २ की दो और (तिसृभिः त्रिंशता च) तीन २ की तीन (नियुद्भिः) सवारों और सेनाओं से (इष्टये) इस राष्ट्र के लिये

(ता) उन नाना अधिकारियों या अंगों का वहसे) धारण करता है तू (विमुञ्च) उनको विविध कार्यों में नियुक्त कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे स्वभूत) जगत् रूप अपनी ही विभूति से युक्त अथवा हे राजन्! तू ११ से २० से और ३३ से राष्ट्र एवं जगत् के नाना कार्यों का धारण करता है। उनको विविध कार्यों में लगा।

तवं वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत। अवा॑ꣳस्या वृणीमहे ॥३४॥

भा० हे (ऋतस्पते) सत्यपालक! नगपालक! ज्ञानपालक! सत्य राष्ट्रपालक! (वायो) बलवन्! हे (त्वष्टुः) तेजस्वी राजा के (जामातः) जमाई के समान उसका स्वयं उत्पादित सेना के पत! हे (अद्भुत) आश्चर्य कर्मकारक! अभूतपूर्व बलशालिन्! हम तेरे (अवांसि) रक्षा-साधनों का (आवृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं, चाहते हैं।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाऽइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥३५॥

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती।

भा०—हे शूरवीर पुरुष! हे परमेश्वर! हे स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! तुझे हम साक्षात् स्तुति करते हैं और तेरे लिये हम (अदुग्धा धेनवः इव) बिना दुही गायें जैसे अपने बछड़ों का दूध पिलाने के लिये सदा नमती हैं उसी प्रकार हम तेरे आगे (नोनुमः) नमते हैं। तू हमारा सारभूत ऐश्वर्य प्राप्त कर। और (अस्य जगतः) इस चराचर जगत् के (ईशानम्) ईश्वर स्वामी और इस (तस्थुषः ईशानम्) स्थावर संसार के स्वामी (स्वर्दृशम्) आदित्य के समान दर्शनीय तत्त्वदर्शी एवं सुखस्वरूप (त्वाम् नोनुमः) तेरी हम स्तुति करते हैं।

न त्वावाँ२ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

[illegible]

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावान्) तेरे जैसा (अन्यः) और कोई (दिव्यः न) द्यौलोक में सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ नहीं है। और (न पार्थिवः त्वावान् अन्यः) पृथिवी के पदार्थों में भी तेरे जैसा कोई और नहीं है। (न जातः) न अभी तक पैदा हुआ है और (न जनिष्यते) न पैदा होगा। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (इन्द्र) साक्षात् दर्शनीय 'परमेश्वर' हम (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् होकर (अश्वायन्तः) अश्व और (गव्यन्तः) गौओं के समान कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की विशेष कामना करते हुए वा उन पर वश करते हुए (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं।

राजा के पक्ष में—(न त्वावान् अन्यः दिव्यः) तेरे जैसा उत्तम गुणवान् तेजस्वी कोई न राजसभा में, (न पार्थिवः) न पृथिवी में कोई (न जातः न जनिष्यते) न पैदा हुआ है न आगे पैदा होगा। हम (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् होकर [illegible] (गव्यन्तः अश्वायन्तः त्वा हवामहे) गौओं और [illegible] तुझ राजा का आदर करते हैं।

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वं वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३७ ॥
ऋ० ६। ४६। १॥

[illegible]

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन्, राजन् ! (कारवः) उत्तम कर्त्ता और [illegible] विद्वान् पुरुष (वाजस्य सातौ) [illegible] के लिये (वृत्रेषु) विघ्नकारियों के [illegible]

जाने पर मेघों में सूर्य के समान (सत्पतिम्) सज्जनों के प्रतिपालक (त्वाम् इत् हि) तुझको ही हम उसी प्रकार (हवामहे) स्मरण करते हैं, बुलाते हैं जिस प्रकार (नर) लोग (काष्ठासु) दूर की सीमाओं और दिशाओं को पार करने के लिये (अर्वंत) अश्व को याद करते हैं ।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो ऽअद्रिव ।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ३८ ॥
ऋ० ६ । ४६ । २ ॥

स्वराड् बृहती । निषाद ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) खड्गहस्त ! शत्रुमारक शस्त्रास्त्र युक्त सेनाओं के वशकारिन् ! (अद्रिव.) प्रस्तर सेवने शस्त्रों वाले अथवा अभेद्य शिला के समान दुर्गवाले ! हे (चित्र) आश्चर्य कर्म करनेहारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (स त्व) वह तू (धृष्णुया) शत्रुओं को धर्षण करने वाले सामर्थ्य और (मह) महान् बलवान् (स्तवान॰) स्तुति किया जाकर (गाम्) गौ और (रथ्यम्, अश्वम्) रथ में लगने योग्य अश्व और (जिग्युषे) विजयशील पुरुष (सत्रा) रक्षाकारी (वाजम्) विज्ञान और ऐश्वर्य (न) भी (संकिर) प्रदान कर ।

कया नश्चित्र ऽआ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥ ऋ० ४ । ३१ । १ ॥

वामदेव ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (चित्र) अद्भुत कर्म करनेहारे वीर पुरुष ! तू (सदावृधः सखा) सदा बढ़ाने हारे पुरुष का मित्र है । तू (कया ऊती) किस रक्षण सामर्थ्य से और (कया) किस (वृता) सदा विद्यमान् (शचिष्ठया) अतिशक्तिशाली रक्षा से (न) हमारा (सदावृध) सदा वृद्धिशील (सखा) मित्र (आ भुवत्) बना रह सकता है । अथवा—(कया) सुख देनेहारी,

[illegible] (घृता) ... और (...) रक्षा द्वारा तू हमारा सदा सुहृद् के समान मित्र बना रहता है।

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ४० ॥ ऋ० ४।३१।२॥
[illegible]

भा०—हे राजन् ! 'सत्यः' (मदानां) हर्षजनक पदार्थों में से (मंहिष्ठः) सब से उत्तम (अन्धसः) अन्न आदि रस द्वारा (कः) ऐसा कौन सा विशेष अन्न का भाग (त्वा मत्सत्) तुझे सब से अधिक हर्षित और हर्षयुक्त करता है। जिससे (दृढा चित्) दृढ (वसु) धन वाले दुर्गों को भी (आरुजे) तोड़ने को समर्थ करता है, वही अन्न मुझे ज्ञात हो।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतये ॥ ४१ ॥ ऋ० ४।३१।३॥

भा०—हे इन्द्र राजन् ! तू (अभि) साक्षात् (नः) हम (सखीनाम्) मित्रों और (जरितॄणाम्) स्तुति और उपदेश करनेवाले विद्वान् पुरुषों का (सु अविता) उत्तम रक्षक है। और (ऊतये) रक्षा करने के लिये भी तू (शतं) सैकड़ों प्रकार से समर्थ (भवासि) हो जाता है।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ ४२ ॥
ऋ० ६।४८।१॥

शंयुः। अग्निः। बृहती।

भा०—हे मनुष्यो ! (यज्ञा यज्ञा) प्रत्येक यज्ञ, संग्राम और सभा में और (गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे) बलवान्, ... (अग्नये) ज्ञानी अग्रणी विद्वान् नायक राजा का (वयम्) हम लोग (अमृतम्) अविनाशी, प्रिय (जातवेदसम्) ज्ञानवान्,

ऐश्वर्यवान् (प्रियम् मित्रं न) प्रिय मित्र के समान (प्र प्र शंसिषम्) प्रशंसा करें ।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥

ऋ० ८ । ४९ । ९ ॥

गर्ग ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ज्ञानी विद्वन् ! (नः) हमें (एकया) एक शिक्षा से (पाहि) पालन कर । (उत) और (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से भी (पाहि) पालन कर (तिसृभिः गीर्भिः) तीन वाणियों से भी (पाहि) पालन कर । (ऊर्जां पते) सब अन्नों बलों और पराक्रमों के पालक ! (वसो) सबको बसानेहारे ! तू (चतसृभिः) हमें चारों वाणियों से (पाहि) रक्षा कर । (एकया) ऋग्वेदरूप प्रथम वाणी (द्वितीयया) दो ऋक् और यजुर्वेद स्वरूप, (तिसृभिः) तीन ऋग्, यजु, साम और (चतसृभिः) चारों ऋग्, यजु, साम और अथर्व से हमारी रक्षा कर ।

अथवा — साम 'दान' भेद और दण्ड इन चारों उपायों से, चारों प्रकार की आज्ञाओं से हमारा पालन कर । मित्रों में साम, लोभियों में दान, शत्रुओं में भेद और दुष्टों पर दण्ड वाणी का प्रयोग कर के राष्ट्र की रक्षा कर ।

ऊर्जो नपातᳪ स हि नायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ४४ ॥

ऋ० ६ । ४८ । २ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (सः) वह तू (उरु मघवान्) बल पराक्रम का कर्त्ता महान् ज्ञान देनेवाला, सदा बलवान् गुणज्ञ पुरुष को सदा (हित) बढ़ा, उसको पद पर स्थापित कर। (अयम्) वह (अस्मासु) हमारी ही उन्नति चाहने वाला हो। और उसके (हव्यदातये) अन्न पदार्थों के देनेवाले या स्तुति योग्य दानशील या उपदेश करने वाले अन्नादि दान के योग्य पदार्थ को (शयाम) अन्नादि पदार्थ प्रदान करें। वह (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक हो और वही (वृधे) वृद्धि के लिये हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (त्राता) रक्षक (भुवत्) हो।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताᳬ संवत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता । [illegible] । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन् ! सूर्य जिस प्रकार पांच वर्ष वाले युग में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर इन पांचों में परिवर्तित होता है इसी प्रकार तू भी (संवत्सरः असि) तेरे संग समस्त प्रजा आकर बसते हैं तुझ एक में सब [illegible] करते और स्तुति करते हैं इसलिये तू संवत्सर है। (परिवत्सरः असि) चारों ओर घर कर रह इसलिए सभी राष्ट्र में लोग आवसते हैं चारों ओर तू स्तुति और अभिवादन किया जाता है इसलिये तू परिवत्सर है। (इदावत्सरः असि) अन्न के द्वारा तू सबको बसाता है इससे तू 'इदावत्सर' है। (इद्वत्सरः असि) तू इस लोक को बसाता है इससे अथवा अन्न आदि से तू प्रजाओं का पालन करता है इससे तू 'इद्वत्सर' है। (वत्सरः असि) तू

पुत्रों के समान सब को आनन्द प्रसन्न रखता है, उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है इससे तू 'वत्सर' है। इस प्रकार राजा को संवत्सर प्रजापति के समान तुलना करके अब उसके अंगों की तुलना भी करते हैं। (ते उषस कल्पन्ताम्) वर्ष की जिस प्रकार ३६५ उषाएं होती हैं इसी प्रकार तेरी उषाएं, अर्थात् दुष्टों के दमन और राष्ट्र के व्यवहार प्रकाशक कार्य को समृद्ध करनेवाली शक्तियां नित्य बढ़ें। (अहोरात्रा ते कल्पन्ताम्) वर्ष के दिनों और रातों के समान तेरे राज्य में स्त्री पुरुषों की वृद्धि हो। (अर्ध मासा ते कल्पन्ताम्) अर्ध मासों के समान तेरे राज्य में आह्लादकारी, समृद्ध विद्वानों की वृद्धि हो। (मासा ते कल्पताम्) वर्ष के मासों के समान तेरे राज्य में आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् बढ़ें। (ऋतवः ते कल्पन्ताम्) ऋतुओं के समान तेरे राष्ट्र में राजसभा के सदस्यों की वृद्धि हो। (संवत्सर ते कल्पताम्) तेरा पूर्ण संवत्सर स्वरूप प्रजापति पद उन्नति को प्राप्त हो। (प्र इत्य) आगे बढ़कर और (आ इत्य च) पुनः लौट २ कर तू (सम् अञ्च) अपनी शक्तियों को अच्छी प्रकार प्राप्त कर और (प्रसारय च) आगे भी बढ़ा। तू (सुपर्णचित् असि) आदित्य के समान उत्तम पालन करनेवाले साधनों से युक्त, एवं उत्तम पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह करने वाला है। अथवा—सुपर्ण, उत्तम बलवान् पक्षी जिस प्रकार आकाशमार्ग को भली प्रकार तय करने के लिये अपने परों को सकोच करता और फैलाता है और सुन्दर, सुखदायी किरणों वाला सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों को नित्य नियम से फैलाता और सकुचित करता है उसी प्रकार हे अग्ने! राजन्! सेनापते! तू भी अपनी सेनाओं को (सम् अञ्च) संयुक्त कर, सकुचित कर और फिर (प्रसारय च) फैला। इस प्रकार तू (सुपर्णचित्) गरुड़ पक्षी और सूर्य के समान है। अथवा प्राण जिस प्रकार (प्र इत्य आ इत्य च) एकबार बाहर जाता फिर लौटकर आता है (सम् अञ्च,

च मारय च) इसी प्रकार तू भी अपने राष्ट्र से एकबार विदेश में प्रयाण कर एकबार पुनः अपने देश में आकर (वसुमन्त) धन को संग्रह कर और उसको राष्ट्र में विराजित कर। इस प्रकार शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के बीच में तू राष्ट्र का प्राण, जीवन होकर उसको चैतन्य किये रह। (तया देवतया) उस विद्युत्स्वरूप शरीरधारिणी देवता, आत्मा के समान रूप से तू (अङ्गिरस्वत्) अंग २ में रस रूप होकर राष्ट्र के प्रत्येक भाग में बलरूप होकर (ध्रुवः) निश्चित, स्थिर होकर (सीद) विराज, सिंहासन पर बैठ।

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमज्जयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तविंशोऽध्यायः ।

॥ अथाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

प्रजापत्यश्विनरस्वत्य ऋषय ।

॥ ओ३म् ॥ होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि । दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥ ऋग्वेद परिशिष्ट ॥

बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(होता) आहुति प्रदान करने वाला पुरुष होता जिस प्रकार (समिधा) समित् अर्थात् काष्ठ से यज्ञ करता है उसी प्रकार (इडस्पदे) पृथिवी के सर्वोच्च मान, आदर प्रतिष्ठा के पद अर्थात् केन्द्र स्थान पर (समिधा) अच्छी प्रकार चमकने वाले तेज से (इन्द्रम्) शत्रुओं के नाशक और ऐश्वर्य के वर्धक वीर पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। (पृथिव्या नाभौ) पृथिवी की नाभि अर्थात् राष्ट्र में (अधि) अधिष्ठाता होकर (दिव वर्ष्मन्) *आकाश से सुखों की वर्षा करने वाले मेघ के समान प्रजा पर* सुखों की वर्षा करने वाले पद पर (चर्षणीसहाम्) समस्त मनुष्यों को अपने पराक्रम से वश करने वालों में (ओजिष्ठ) सब में अधिक पराक्रमी, तेजस्वी पुरुष ही (समिध्यते) सब से अधिक प्रकाशित होता है। वही (आज्यस्य) विजयलक्ष्मी, ऐश्वर्य का (वेतु) भोग करे। हे (होत) *अधिकार प्रदान करने में समर्थ विद्वन्* ! तू (यज) ऐसे पुरुष को ही अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । २९ ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्। इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥

तनूनपादिन्द्रो देवता । निचृज्जगती । निषाद ॥

भा०—(होता) अधिकारों को प्रदान करने हारा विद्वान् 'होता' (तनूनपातम्) समस्त राष्ट्रवासियों के शरीरों की रक्षा करने हारे, उनको क्षति न पहुंचाने वाले (अपराजितम्) कभी भी न हारे हुए (जेतारम्) विजेता, (स्वर्विदम्) सुख समृद्धि का लाभ करने और कराने वाले, (देवम्) विद्वान्, दानशील राष्ट्र के द्रष्टा पुरुष को (इन्द्रम्) इन्द्र पद पर (यक्षत्) स्थापित करे, उसको यह पद प्रदान करे। वह (मधुमत्तमैः) अत्यन्त मधु ज्ञान और मनोहर विज्ञानों से युक्त (पथिभिः) उपायों, मार्गों और व्यवस्था-मर्यादाओं से (नराशंसेन तेजसा) समस्त नर पुरुषों को आदेश करने में समर्थ, एवं सब द्वारा स्तुति योग्य तेज से पराक्रम से (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य का (वेतु) प्राप्त करे। हे (होतः) विद्वन् ! ऐसे पुरुष को (यज) तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३० । ३१ ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

[illegible] ऋषिः । इन्द्रः ।

भा०—(होता) सर्वाधिकारप्रद विद्वान् (इडाभिः) उत्तम वाणियों से (ईडितम्) स्तुत, प्रशंसा प्राप्त (आजुह्वानम्) शत्रुओं को संग्राम में ललकारने वाले, प्रतिस्पर्धी, (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विशेष बलशाली, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। वह (देवः) विद्वान्, कान्ति और बल वाला, सबको हर्षित करने वाला, (देवैः) विजिगीषु या विजय की इच्छा करने वाले वीर पुरुषों से (सवीर्यः) वीर्यवान् होकर (वज्रहस्तः) शस्त्रों को ग्रहण हाथ में धारण करने में समर्थ (पुरन्दरः) शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ होकर (आज्यस्य वेतु) राज्य को प्राप्त करे। हे (होतः यज) विद्वन् ! तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३२ ॥

होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥

त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(होता) सबको अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान्, (निषद्वरम्) राज सभा में विराजने वालों में से सब से श्रेष्ठ, (वृषभम्) प्रतिबलवान् (नर्यापसम्) सब मनुष्य-हितकारी कार्यों के करने वाले (इन्द्रम्) *ऐश्वर्य और उत्तम गुणों वाले पुरुष को (बर्हिषि) महान्, वृद्धि युक्त, प्रजाओं* के राष्ट्र के न्यायासन पर (यक्षत्) सगत करे । वह (वसुभि) प्रजा को सुख से बसाने वाले, (रुद्रै) दुष्टों को दण्डों द्वारा रुलाने वाले (आदित्यै) आदित्य के समान तेजस्वी, उत्तम सद्गुण प्रदान करने हारे और परस्पर आदान प्रतिदान करने वाले (सयुग्भि) साथ योग देने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर अथवा वसु, रुद्र आदित्य, क्रमसे एक, दो, तीनों वेदों के अभ्यासी और योगी पुरुषों सहित (बर्हि) न्यायासन या राजसभा के ऊपर (आसदत्) विराजे और (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य, उत्तम न्याय, शासन को प्राप्त करे । हे (होतर्यज) विद्वन् योग्य पुरुष को अधिकार प्रदान कर । देखो अ० २१ । ३१ ॥

होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् । सुप्रायणाऽअस्मिन्यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो द्वार ऽइन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ५ ॥

भा०—(होता) योग्य पुरुषों को योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् (यक्षत्) योग्य पुरुषों का अधिकार प्रदान करे । (ओज) वल प्रवाह के समान वेगवान् (वीर्यम्) वीर्य और (सह) शत्रु को नाश करनेवाला बल और (द्वार) शत्रुओं को वारण करनेवाली वीर सेनाएं ये सभी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं । (द्वार) द्वार जिस

भा०—(होता) अधिकारों को प्रदान करने हारा विद्वान् 'होता' (तनूनपातम्) समस्त राष्ट्रवासियों के शरीरों की रक्षा करने हारे, उनको हानि न पहुंचाने वाले (अपराजित) कभी भी न हारे हुए, (जेतारम्) विजेता, (स्वर्विदम्) सुख समृद्धि का लाभ करने और कराने वाले, (देवम्) विद्वान्, दानशील राष्ट्र के बड़े पुरुष को (इन्द्रम्) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् पद पर (यक्षत्) सत्कार करे, स्थापित करे, उसको वह पद प्रदान करे। वह (मधुमत्तमैः) अत्यन्त मधु, ज्ञान और मनोहर विशेषता से युक्त, मधुर (पथिभिः) उपायों, मार्गों और व्यवस्था-मर्यादाओं से (नाराशंसेन तेजसा) समस्त नेता पुरुषों को आदेश करने में समर्थ, एवं सब द्वारा स्तुति योग्य तेज से, पराक्रम से (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वेतु) प्राप्त करे। हे (होतः) विद्वन्! ऐसे पुरुष को (यज) तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३० । ३१ ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(होता) सर्वाधिकारप्रद विद्वान् (इडाभिः) उत्तम वाणियों से (ईडितम्) स्तुत, प्रशंसा प्राप्त, (आजुह्वानम्) शत्रुओं को संग्राम में ललकारने वाले, प्रतिस्पर्धी, (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विशेष बलशाली, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। वह (देवः) विद्वान्, कान्ति और तेज वाला, सबका प्रकाशक, (देवैः) विजिगीषु या विजय की इच्छा करने वाले पर सैनिकों से (सवीर्यः) वीर्यवान् होकर (वज्रहस्तः) शस्त्रों को अपने हाथ में अर्थात् वश में लेकर (पुरन्दरः) शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ होकर (आज्यस्य वेतु) राज्य को प्राप्त करे। हे (होतः यज) विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३२ ॥

ये दोनो उषाए, उषासानक्ता, उषा और रात्रि हैं। दोनों समान हैं जो राज्य की दो शक्तियों का प्रतिनिधि हैं। एक विजयशालिनी और दूसरी राष्ट्र को शान्तिपूर्वक व्यवस्थित करनेवाली। अथवा एक ज्ञान विज्ञान की प्रवर्त्तक दूसरी सस्थापक।

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः। कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त ऽइन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज॥७॥

जगती। निषाद॥

भा०—(होता यक्षत्) अधिकारदाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (दैव्या) विद्वान् और विजिगीषु पुरुषों में श्रेष्ठ (होतारा) उत्तम सुख के देनेवाले (भिषजा) उत्तम रोग चिकित्सकों के समान (सखायौ) मित्र होकर (हविषा) उत्तम अन्नादि उपायों से (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा को (भिषज्यत) शारीरिक और मानसिक तथा राष्ट्र सबधी रोगों और कष्टों से निवृत्त रखते हैं। वे (कवी) उत्तम दूरदर्शी (देवौ) स्वय ज्ञान के प्रदाता, (प्रचेतसौ) उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम चित्तोंवाले होकर इन्द्राय इन्द्र, राष्ट्रपति के इन्द्रियम् ऐश्वर्य युक्त पद को (धत्त) रक्षा और पालन करते हैं वे भी (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें। हे (होत यज) विद्वन्! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती मही। इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥८॥

निचृज्जगती। निषाद॥

भा०—(होता यक्षत्) होता, सर्वाधिकारप्रद विद्वान् अधिकार प्रदान करे। शरीर में (त्रिधातवः) तीन धातुओं वाले (त्रय) तीन (अपस) सब कर्म करनेवाले पदार्थ शरीर के लिये (भेषजम्) उत्तम

रोग विनाशक होते हैं उसी प्रकार (तिस्र देवीः) तीन विद्वानों की परिषदें राष्ट्र के लिये (भेषजम्) उसके दोषों को दूर करने वाली औषध के समान हैं । वे (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती भारती, इन तीन नामोंवाली (मही) बड़े आदर योग्य हैं । वे तीनों (हविष्मती) विविध विज्ञानों से युक्त होकर, (इन्द्रपत्नी) शरीर में तीन धातुएं जैसे जीव का पालन करती हैं उसी प्रकार वे भी राष्ट्र में 'इन्द्र' के पद की पालन करनेहारी, राजा के अधिकार की रक्षा करनेहारी होती हैं । वे तीनों भी (आज्यस्य व्यन्तु) समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्य को अपने अधीन करें । हे (होत: यज) विद्वन् ! तू अधिकार प्रदान कर ।

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजं सुयजं घृतश्रियम्। पुरुरूपं सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ६ ॥

[illegible] । निषाद ॥

भा०—(त्वष्टा) शरीर में कान्ति के उत्पन्न करने वाले, (भिषज) रोग के निवारक (सुयजा) उत्तम पुष्टि बलदायक, (घृतश्रियम्) शोभा को धारण करनेवाले, (पुरुरूप) नाना रूपों में प्रकट (सुरेतसम्) उत्तम वीर्य को जिस प्रकार मनुष्य सदा धारण करे उसी प्रकार (होता) सबको अधिकार पद प्रदान करनेहारा होता नामक विद्वान् पुरुष (त्वष्टारम्) तेजस्वी, (इन्द्र) शत्रुनिवारक (देवम्) दानशील राष्ट्र निरीक्षक, देश भ्रमण करने में चतुर (भिषज) राष्ट्र की त्रुटियों को दूर करनेहारा, (सुयजम्) उत्तम मान व्यवस्था करने में कुशल, (घृतश्रियम्) समस्त राष्ट्र ऐश्वर्यों को धारण करने में समर्थ, (पुरुरूपम्) नाना प्रकार के पशु, मनुष्य भृत्यादि के स्वामी (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, (मघोनम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद के लिये (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे । (त्वष्टा) वह तेजस्वी पुरुष (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोचित [illegible]

अधिकारों को और बलों, सामर्थ्यों को (वेतु) प्राप्त करे, उनका उपभोग करे और (आज्यस्य) राष्ट्र के प्राप्त समृद्धि को वह भी भोगे । (होतर्यज) हे विद्वन् ! तू उनको अधिकार प्रदान कर ।

होता यक्षद्वनस्पतिँ शमितारँ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

स्वराट् जगती । निषादः ॥

भा०—(होता) योग्य अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान् पुरुष 'होता' (वनस्पतिम्) किरणों के पालक सूर्य के समान तेजस्वी वनों के समान या घने बसे प्रजागणों के स्वामी सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों के स्वामी, महावृक्ष के समान सबको अपने आश्रय में लाकर सुख देनेवाले, (शमितारम्) सबको शान्ति के दाता, (शतक्रतुम्) सैकड़ों विद्वानों से युक्त (धियः) प्रज्ञा और कर्म के (जोष्टारम्) सेवन करने वाले (इन्द्रियम्) इन्द्र के पद के योग्य, पुरुष को भी (यक्षत्) पदाधिकार प्रदान करे । वह (मध्वा) मधुर ज्ञान से और (सुगेभिः) सुख से गमन करने योग्य, (पथिभिः) पालन करने योग्य मार्गों और मर्यादाओं से (यज्ञम्) प्रजा के पालन करने वाले प्रजापति के राज्य को (सम् अंजन्) अच्छी प्रकार सुशोभित करता हुआ उसको (स्वदाति) सुख से भोगे । वह (मधुना) ज्ञानपूर्वक (घृतेन) तेजसे (आज्यस्य) राज्यैश्वर्य को (वेतु) प्राप्त करे । हे (होतः) दात ! (यज) तू उसको अधिकार प्रदान कर ।

होता यक्षदिन्द्रँ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाँ स्वाहा स्वाहाकृतीनाँ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥

निचृदशक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार प्रदाता पुरुष (इन्द्रं यक्षत्) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक वीर पुरुष को योग्य पद प्रदान करे। (आज्यस्य स्वाहा) 'आज्य', राज्य, अथवा संग्रामोपयोगी अधिकार उत्तम रीति से प्रदान करे। (मेदसः स्वाहा) स्नेहयुक्त अथवा हिंसा, करने और राष्ट्र की वृद्धि करनेवालों को उत्तम रीति से अधिकार दे। (स्तोकानां स्वाहा) छोटे २ पदाधिकारियों पर उसका उत्तम अधिकार हो। (स्वाहाकृतीनां स्वाहा) उत्तम वचन बोलनेवाले विद्वानों पर उसको अधिकार प्रदान करे। (हव्यसूक्तीनाम् स्वाहा) अन्नदान योग्य, उत्तम स्तुति वचनों को स्वीकार करने का उत्तम रीति से अधिकार दे। (स्वाहा) उत्तम रीति से (आज्यपाः) पूर्वोक्त राज्यैश्वर्य का पालन और वृत्ति से भोग करनेवाले सभी (देवाः) विद्वान् पुरुष और (इन्द्रः) राजा (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र को प्राप्त करें। हे (होतः यज) विद्वन् ! तू अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिरिन्द्रं सुदेवं देवैर्वीरवत् स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत्। वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतं राया। बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १२ ॥

अश्विनावृषी । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(बर्हिः) इस लोकवासिनी प्रजाएं और वैरनाशक स्वयं (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त और (वेद्याम्) इस पृथिवी पर फैल कर (देवं) दिव्य गुण वाले उत्तम दानशील, विजयी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, इन्द्र पद पर विराजमान, (सुदेवम्) उत्तम विद्वान्, दाता पुरुष को (देवैः) अन्य विद्वानों और विजयी पुरुषों द्वारा (अवर्धयत्) बढ़ावें। जिस प्रकार जंगल के कुशादि तृण दिन के समय ऊपर से काटलेने पर रात्रि के अन्तिम समय में बढ़ जाते हैं उसी प्रकार (वस्तोः) दिन के प्रकाश रूप के समान राजा के

शत्रुओं के प्रति प्रचण्डता के युद्धादि के अवसरों पर (वृनम्) काट लिया जाकर भी (अक्तो) रात्रि के समान शान्तिदायक राज्यव्यवस्था में (राया) धनैश्वर्य से (सुभृतम्) खूब अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट होकर (बर्हिष्मत) प्रजा के पालक अधिकारी राजाओं, भूपतियों से भी (अति अगात्) अधिक समृद्धिशाली होजाता है। अर्थात् ऐश्वर्य विभूति में उनका भी लाघ जाता है। तब (वसुवने) वह ऐश्वर्य वसु अर्थात् राष्ट्र के भोक्ता राजा के (वसुधेयाय) ऐश्वर्य के रखने के स्थान कोष के लिये (वेतु) प्राप्त हो। प्रजा की समृद्धि के अवसर से प्राप्त ऐश्वर्य राष्ट्रवासी जनों के हित के लिये राष्ट्र कोष में जमा हो। हे (यज) होत ! तू ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवीर्द्वार॒ इन्द्र॑ᳪ सङ्घाते वी॒ड्वीर्याम॑न्नवर्द्धयन्। आ व॒त्सेन॒ तरु॑णेन कुमा॒रेण॑ च मीव॒ता पार्वा॑णᳪ रे॒णुक॑काटं नुदन्तां वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु यज ॥ १३ ॥

भुरिक शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(देवी) जिस प्रकार कान्तिमती और पति की कामना करने वाली स्त्रियां (यामन्) उपयम अर्थात् विवाह के अवसर पर (इन्द्र) अपने इच्छानुकूल पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार विजय की कामना या इच्छा करनेवाली विजिगीषा से युक्त, (द्वार) शत्रुओं का वारण करने वाली सेनाएं (सघात वीड्वीः) सघात अर्थात् परस्पर एकत्र होकर व्यवस्था द्वारा अति बलशालिनी होकर (यामन्) राज्य के नियम व्यवस्था के कार्य में (इन्द्रम्) राजा या सेनापति का गृह द्वारों के समान बढ़ाते हैं। वे सेनाएं (वत्सेन) स्तुति योग्य, (तरुणेन) हृष्ट पुष्ट, जवान, (कुमारेण) बुरी तरह शत्रुओं को मारनेवाले या ब्रह्मचारी (मीविता) हिंसक, घातप्रतिघात में कुशल पुरुषों द्वारा शत्रुओं का (अर्वाणं)

[illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ॥ [illegible] ॥

भा०—[illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible]

भा०—([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible])

वसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को धारण करनेवाली दोनों (इन्द्रम्) राजा के (अवर्धताम्) शक्ति और ऐश्वर्य को बढ़ावें। (अन्या) दोनों में से एक (अघा) पापी (द्वेषांसि) प्रजा को दुःख देनेवाले, द्वेषसे, वर्त्ताव न करने वाले शत्रुओं को (अयावि) दूर हटावे। और (अन्या) दूसरी (वार्याणि) वरण करने योग्य (वसू) ऐश्वर्यों को (वक्षत्) धारण करे। और वे दोनों (शिक्षिते) सुशिक्षित (यजमानाय) दानशील राज्य को दृढ़ करने वाले (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) धन को (वीताम्) प्राप्त करें।

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम्। इषमूर्जमन्यावक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधाताम्। ऊर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १६ ॥

भुरिगाकृतिः। निषादः ॥

भा०—(सुदुघे पयसा) उत्तम रीति से दूध देनेवाली दो गौवें जिस प्रकार अपने स्वामी या बछड़ों को पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार दो संस्थाएँ (देवी) उत्तम अन्न आदि देने में समर्थ, (दुघे) समस्त राष्ट्र को पूर्ण करनेवाली, (ऊर्जाहुती) अन्न देनेवाली, (पयसा) पुष्टिकारक अन्न से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र को (अवर्धताम्) वृद्धि करें। उन दोनों में से भी (अन्या) एक संस्था (ऊर्जम्) राष्ट्र के अन्न को धारण करे। और (अन्या) दूसरी (सग्धिम् सपीतिम्) सब के एक समान जल आदि पान के योग्य पदार्थों को (आवक्षत्) प्राप्त करावे। वे दोनों (नवेन) नये अन्न से (पूर्वम्) पूर्व विद्यमान अन्न को और (पुराणेन) पुराने गत वर्ष के अन्न से (नवम्) नये (ऊर्जम्) अन्न को (अधाताम्) सुरक्षित रक्खे। अर्थात् नया अन्न प्राप्त करके पुराने

की रक्षा कर और पुराने अन्न का प्रयोग में लाकर उसका स्थान रूप में धर्मों में उनको कर नये अन्न को प्राप्त करें। इस प्रकार वे (ऊर्जम्) राष्ट्र को अन्न का (दधाने) प्रदान करती हुई, और रक्षा करती हुई ही (ऊर्जाहुती) राष्ट्र का अन्न सम्पत् देनेवाली होने के कारण 'ऊर्जाहुती' कहाती हैं वे दोनों (ऊर्जयमाने) अन्न द्वारा बल की वृद्धि करती हुईं (शिशिने) नाना विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके (वार्याणि वसु) प्राप्त करने योग्य नाना उत्तम ऐश्वर्यों को (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता (यजमानाय) राजा के (वसुधेयस्य) लाभार्थ धनैश्वर्य का (वीताम्) प्राप्त करें और उसकी रक्षा करें। हे (होतः यज) होत ! विद्वन् ! तू उन दोनों संस्थाओं को उत्तम अधिकार प्रदान कर।

देवी देव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। हताघशंसावाभार्ष्टी वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १७ ॥

भुरिग् जगती। निषादः।

भा०—(देवी) दो विद्वान् (देव्या) विद्वानों और राजा के हितकारी, (होतारा) उत्तम सुख और ऐश्वर्यों के देनेवाले (देवम्) विजिगीषु (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक राजा को (अवर्धताम्) पुष्ट करें। वे दोनों ही (हताघशंसौ) पाप की शिक्षा देनेवाले दुष्ट पुरुषों का नाश करके (वार्याणि) उत्तम वरण योग्य श्रेष्ठ (वसु) ऐश्वर्यों को (आभार्ष्टाम्) प्राप्त करावें। वे दोनों (शिक्षितौ) उत्तम विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके (यजमानाय वसुवने) दानशील राष्ट्र के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) कोश योग्य ऐश्वर्य का (वीताम्) रक्षा करें। (यज) हे होतः ! इन दोनों को भी अधिकार प्रदान कर।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्। अस्पृक्षद्भारती

दिव॑ᳯ रुद्रैर्यज्ञᳯसरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवी) देवियां जिस प्रकार अपने (पतिम्) पालक पति के वश की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) दिव्य गुण वाली तीन संस्थाएं भी (पतिम् इन्द्रम्) अपने पति इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा की (अवर्धयन्) वृद्धि करें। उनमें से एक (भारती) 'भारती' नामक संस्था है। (दिवम्) द्यौलोक को जिस प्रकार सूर्य रूप समस्त नक्षत्र ही नक्षत्र जगमगा देते हैं उसी प्रकार 'भारती' नामक पारिषत् (दिवम् अस्पृक्षत्) परम विद्वान् पुरुषों की बनी 'दिव' नाम सर्वोच्च राजसभा को संयोजित करती है। और (सरस्वती) सरस्वती नामक विद्वत्सभा (रुद्रैः) दुष्टों के रुलाने वाले तीव्र बलवान् ज्ञानोपदेश करने वाले पुरुषों से (यज्ञम् अस्पृक्षत्) सुव्यवस्थित राष्ट्र का प्रबन्ध करती है और तीसरी (इडा) इडा (वसुमती) वसु अर्थात् राष्ट्र के वासियों को अपने में धारण करने वाली जनपद सभा या प्रजासभा, (गृहान्) गृहों का प्रबन्ध करती है। (वसुवने) राजा के (वसुधेयस्य व्यन्तु) राष्ट्र धन की ये तीनों संस्थाएं वृद्धि या रक्षा करें। हे होतः ! (यज) तीनों सभाओं की तू योजना कर। भारती, 'विद्वत् सभा' ज्ञान की वृद्धि करती है 'सरस्वती' वह राजसभा है जो शासक पुरुषों के निमित्त उपद्रवकारी दुष्टों के दमन के उपायों का विचार करती है। तीसरी 'इडा' है जो गृहों की या जनपद वासियों की व्यवस्था करती है।

देव इन्द्रो नराशᳯसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य

होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

कृतिः । निषादः ॥

भा०—(देव) विजिगीषु, तेजस्वी (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा (नराशंसः) समस्त नेता पुरुषों द्वारा प्रशंसा योग्य होकर (त्रिवरूथः) तीनों सभारूप गृहों का स्वामी, (त्रिवन्धुरः) तीनों के नियमों को बांधने वाला होकर (देव) उत्तम गुणवान्, उदार दानशील, तेजस्वी, कान्तिमान् (इन्द्रं) इन्द्र पद को (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। वह स्वयं (शितपृष्ठानाम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाले, तीव्र बुद्धिवाले या श्यामवर्ण की पीठवाले, पीठ भाग पर श्याम रंग के काले गौन पहने (शतेन) सौ राजपुत्रों और (सहस्रेण) हज़ार अर्थात् अनेक सरदारों से (आहितः) चारों ओर से घिरा (प्रवर्त्तते) रहता है। (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण सर्वस्नेही न्यायाधीश और 'वरुण' दुष्टों का वारक पुलिस विभाग का अध्यक्ष दोनों शरीर में प्राण अपान के समान इसके (होत्रम् अर्हतः) अधिकार को प्राप्त करके कार्य सम्पादन करते हैं। (बृहस्पतिः) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् पुरुष (स्तोत्रम्) ज्ञानोपदेश का कार्य करता है। और (आध्वर्यवम्) हिंसा रहित मित्र पद या राज्य शासक के कार्य के (अश्विना) अश्विगण, (अर्हतः) योग्य सम्पादन करते हैं। वह इन्द्र (वसुवने) राष्ट्र कार्य के प्राप्त कराने हारे इन्द्र पद के (वसुधेयस्य) धन को (वेतु) भोग करे, रक्षा करे। (यज) हे होतः ! तू उसको अधिकार प्रदान कर।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

निचृदतिजगती । पञ्चमः ॥

भा०—(देव) ज्ञानद्रष्टा, विजयशील, सुखप्रद शरणप्रद, विद्वान् (वनस्पति) सर्व सेवन योग्य पदाधिकारों का पति, स्वामी, सर्वश्रेष्ठ, ऐश्वर्यों का स्वामी (हिरण्यपर्ण) सुवर्ण के समान तेजो युक्त पत्रों वाले महावृक्ष के समान (हिरण्यपर्णः) तेज और यश, पराक्रम युक्त पालन सामर्थ्यों और ज्ञानों से युक्त, (मधुशाख) मधुर, मनोहर शाखाओं के समान ब्रह्म ज्ञानमय वेद शाखाओं से युक्त, (सुपिप्पल) उत्तम ज्ञानमय फलों से भरा हुआ, विद्वान् पुरुष (देवम् इन्द्रम्) सर्वोत्तम ऐश्वर्यवान् राजा के पद की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। महावृक्ष जिस प्रकार (अग्रेण) चोटी से आकाश को छूता है उसी प्रकार अपने (अग्रेण) मुख्य पद से, (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य को, ज्ञान को (अस्पृक्षत्) धारण करता है और मध्य और चरणभाग से (अन्तरिक्षम् पृथिवीम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी अर्थात् रक्षक शासकों और प्रजाजनों को भी मध्यमवृत्ति और चरण, अर्थात् विनयवृत्ति से (अदृंहीत्) बढ़ाता है। वह (वसुवने) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के (वसुधेयस्य) राष्ट्रैश्वर्य की (वेतु) रक्षा करे। (यज) हे होतः तू ऐसे विद्वान् पुरुष को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमुन्या बर्हीःष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(बर्हि) अन्तरिक्ष अर्थात् वायु जिस प्रकार (वारितीनाम्) जलों के स्थान मेघों के बीच में (इन्द्रम् देवम् अवर्धयत्) प्रकाशमय विद्युत् को बढ़ाता है उसी प्रकार (देव बर्हि) दानशील प्रजागण, राष्ट्र (वारितीनाम्) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओं के बीच स्थित (इन्द्रम् देवम्) शत्रुनाशक राजा की वृद्धि करते हैं। वह अन्तरिक्ष के समान अधिक शक्ति सम्पन्न मुख्य प्रजागण या प्रजा के दानशील पुरुष (स्वा-

सम्पन्न) उत्तम रीति से राष्ट्र में उत्पन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा के (आयतन) अति समीप होकर उस द्वारा (अन्य महीरिव) अन्य प्रजाओं को भी (अभि अभूत्) अपने वश में कर लेते हैं। वह मुख्य प्रजाजन भी (वसुवने) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के (वसुधेयस्य) कोष योग्य धन की रक्षा करें। हे होतः! तू उनको भी (यज) अधिकार प्रदान कर।

देवो अग्नि स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अग्नि देव) अग्नि के समान तेजस्वी, यशस्वी विद्वान् पुरुष (स्विष्टकृत्) उत्तम यज्ञों या परिमित कार्यों का कर्त्ता भी (देवम् इन्द्रम् अवर्धयत्) देव, इन्द्र अर्थात् राजा की वृद्धि करता है। वह (स्विष्टम्) शुभ इष्ट इच्छानुकूल समस्त कार्यों का सम्पादन (कुर्वन्) करता हुआ ही (स्विष्टकृत्) 'स्विष्टकृत्' कहाता है। वह (नः) हम प्रजाजनों का भी (अद्य) आज (सु इष्ट करोतु) उत्तम हमारे इच्छित कार्यों को करे।

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत् पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥ २३ ॥

कृतिः। निषादः ॥

भा०—(यजमान) यजमान जिस प्रकार विद्वान् पुरुष को अपना होता वरण करता है उसी प्रकार (अयं यजमानः) दानशील राष्ट्रवासी जन भी (अग्निम्) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को (होतारम्) दानी 'होता', सर्वाधिकारों के दाता और स्वीकर्त्ता पद पर (अद्य) आज (अवृणीत)

वरण करता है। और वह (पक्ती) पाक करने योग्य क्रियाओं को (पचन्) परिपक्व करता हुआ अर्थात् जिन कार्यों के एवज में बाद में पारिश्रमिक प्राप्त हो उन क्रियाओं का (पचन्) फलरूप से पारिश्रमिक निर्धारित करता हुआ, अथवा (पक्ती) परिपक्व ज्ञान वाली संस्थाओं को (पचन्) परिपक्व, दृढ़ करता हुआ और (पुरोडाश पचन्) इसी प्रकार कार्य कर्त्ताओं के कार्यारम्भ में ही (पुराडाशं) पूर्व ही देने योग्य धनको भी (पचन्) परिपक्व अर्थात् निश्चित करता हुआ, और (इन्द्राय) इन्द्र नाम पद या ऐश्वर्यमय राष्ट्र की रक्षा के लिये शत्रुओं को काट गिराने वाले प्रधान पुरुष या सैन्यबल और सेनापति को (बध्नन्) वेतन पर बांध कर, उसको भी स्थिर करता हुआ (अग्निम् होतारम् अवृणीत) विद्वान् 'होता' नामक पुरुष को वरण करे।

(इन्द्राय छागेन) ऐश्वर्यमय राष्ट्र की रक्षा के लिये, शत्रु के काट गिरा देने वाले सैन्यबल के द्वारा (वनस्पति देव) वनस्पतियों में श्रेष्ठ महावृक्ष के समान सर्वाश्रय राजा, (अद्य) आज (सु उपस्था॰) प्रजा द्वारा उपासना करने योग्य, आश्रय प्राप्त करने योग्य है।

हे (अग्ने) मन्त्रद्रष्ट ! विद्वन् ! होतः ! (मेदस्त) स्नेह से या सार पदार्थ को स्वीकार करके अथवा हिंसनीय शत्रु से रक्षा करके (तम्) उस राष्ट्र का वह पूर्वोक्त राजा (अद्यत्) भोजन के समान उपभोग करे। उसका अपना जीवनाधार समझे। हे (अग्ने) विद्वन् ! सर्वद्रष्ट ! (पचता) परिपाक योग्य, तेरे श्रम के एवज में प्रदान करने योग्य फलस्वरूप पदार्थों का भी वह (प्रति अग्रभ त्) तुझे प्रदान करे। और (पुरोडाशेन) पुरोडाश अर्थात् प्रारम्भ में श्रद्धा और प्रेम से भी देने योग्य पदार्थों द्वारा (त्वाम् अवीवृधत्) तेरी वृद्धि करे। इसी के समान देखिये अ० २१। मन्त्र ५९-६१॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥

स्वराड् जगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार देनेवाला विद्वान् पुरुष (सम् इधानम्) स्वयं अच्छी प्रकार प्रकाशमान, (महत् यशः) बड़े यश से (सुसमिद्धं) उत्तम गुणों से विख्यात, (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, (अग्निम्) ज्ञानवान् (वयोधसम्) दीर्घ जीवन, बल, ब्रह्मचर्य को धारण करने और कराने वाले (इन्द्रम्) दुष्ट वासनाओं को दूर करने वाले आचार्य पुरुष को (यक्षत्) उस अधिकार प्रदान करे और वह (गायत्रीं छन्दः) गायत्री छन्द, (इन्द्रियं) इन्द्रोचित ऐश्वर्य अथवा उत्तम इन्द्रियों में बल, और (त्र्यविम्) मन, वाणी और देह तीनों की रक्षा करने वाले को (गाम्) वाणी को और (वयः) वीर्य और दीर्घजीवन को राष्ट्र में (दधत्) धारण करावे। और (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करें। हे (होतः यज) होतः ! विद्वन् ! तू योग्य पुरुषों को यह अधिकार प्रदान कर।

राज्य में विद्वान् आचार्यों की स्थापना की जाय। वे गुरुमन्त्र का उपदेश करें। २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य का पालन करावें, लोगों में दीर्घजीवन का साधन करें।

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम्। उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २५ ॥

भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार दाता विद्वान् (तनूनपातम्) शरीरों के न गिरने देनेवाले, शरीरों के रक्षक (उद्भिदं) ज्ञान के सारों को

(इन्द्रियम्) शरीर के भीतर (इन्द्रिय) वीर्य और (पन्चावि गां) ढाई वर्ष के बैल के समान (वय) बलको (दधत्) राष्ट्र में धारण करावे। वह उक्त विद्वान् भी (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि करे। हे (होतः यज) विद्वन्! तू उसे योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥

स्वराड्जगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार देनेवाला विद्वान् (सुबर्हिषम्) उत्तम प्रजा से युक्त, (पूषण्वन्तम्) अच्छे पोषक अन्न और भूमि से युक्त, (अमर्त्यम्) अन्य मनुष्यों से कहीं अधिक, (बर्हिषि) आसन पर (सीदन्तम्) बैठे हुए के समान (बर्हिषि सीदन्तम्) महान् राष्ट्र पर शासक रूप से विराजमान, (प्रिये) प्रिय (अमृते) अन्न और वीर्य और जल के आश्रय पर (वयोधसम्) बल और दीर्घ आयु को धारण करने वाले (इन्द्रम्) विद्वान् पुरुष को (यक्षत्) उत्तम पद पर स्थापित करे। (बृहती छन्द इन्द्रिय) बृहती छन्द के समान ३६ वर्ष का इन्द्रिय दमन या ब्रह्मचर्य पालन और (त्रिवत्सं गां वयः) तीन वर्ष के बैल के समान बल (दधत्) धारण करावे। वह (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करे। और हे (होत यज) विद्वन्! तू उस योग्य पुरुष को पद प्रदान कर।

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

स्वराट् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(होता) पदाधिकार प्रदाता विद्वान् (व्यचस्वतीः) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से गमन करने और फैलने वाली, (सुप्र-प्रयनाः) उत्तम और अच्छे पदों और अधिकारों पर स्थित, (ऋतावृधः) बल, राष्ट्र, और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली (दवा) विजयशील, रक्षाकारिणी, (हिरण्ययाः) लोह के आयुधों से तेजोयुक्त (द्वारः) युद्ध में वेग से धावन करने प्रबल वेग से आक्रमण करने और शत्रु का वारण करने वाला, सेनाओं को राष्ट्र रूप विशाल भवन में (व्यचस्वती)विविध मार्गों से लोगों के प्रवेश निर्गम के अवकाश वाला (सुप्रायणा) सुख से गुजरने योग्य, (ऋतावृधा) ऐश्वर्यवर्धक, (हिरण्यया) सुवर्ण, लोहादि से भूषित, महाद्वारों के समान (यक्षत्) राष्ट्र में सुसंगत करे और (वयोधसम्) बलधारी (ब्रह्माणम्) महान् राष्ट्र के पोषक (इन्द्रम्) सेनापति को (यक्षत्) नियुक्त कर। (इह) इस निमित्त (पंक्ति छन्द इन्द्रियम्) पङ्क्ति छन्द के समान ४० अक्षरों के समान ४० वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य को और (तुर्यवाहं गां वयः) ४ वर्ष के वृषभ के समान बल को भी (दधत्) धारण करावें। वे वीर सेना और शक्तिशाली सेनापति सब (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ऐश्वर्य का रक्षा और भोग करें। (होत. यज) हे विद्वन्! तू उनको योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥

निचृदतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—(होता) अधिकार प्रदान करने वाला पुरुष (सुपेशसा) शुभ, उत्तम स्वरूप वाली, (सुशिल्पे) उत्तम शिल्प वाली, (उभे) दोनों (नक्तोषासा न) दिन और रात्रि के समान (दर्शते) दर्शनीय,

पूर्वोक्त दोनों सन्ध्याओं को और (विधम्) उनमें प्रविष्ट (वयोधसम्) बल के धारण करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करें। (इह) इस कार्य में (त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रियम्) त्रिष्टुप् छन्द के ४४ अक्षरों के समान ४४ वर्षों के अखत वीर्य पालन या ब्रह्मचर्य और (पष्ठवाड् गाम् वयः) पीठ से बोझ उठाने में समर्थ और बैल के समान बल, उमर को (दधत्) धारण करावें। ये दोनों सन्ध्याएँ और उनका पालक इन्द्र (आज्यस्य वीताम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य का पालन, वृद्धि और उपभोग करें। हे (होतः यज) हे होतः विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

निचृद् अतिजगती। पञ्चम ॥

भा०—(होता) योग्य अधिकार के देनेवाला विद्वान् (प्रचेतसा) उत्कृष्ट कोटि के ज्ञानवाले, (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों में (उत्तम) सब से ऊँचे (यशः) यश, वीर्य, परम ज्ञान (होतारा) प्राप्त करनेवाले, (दैव्या) सर्व विद्वानों में श्रेष्ठ, (कवी) दूर तक देखने वाले, दीर्घदर्शी (सयुजा) मिल कर परस्पर सहयोग से विचार करनेहारे दो विद्वान् और (वयोधसम् इन्द्रम्) राष्ट्र के बल को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) योग्य पद पर नियत करें। (जगती छन्दः इन्द्रियम्) जगती छन्द के ४८ अक्षरों के समान अक्षय इन्द्रिय के बल वीर्य, ब्रह्मचर्य और (अनड्वाह गां वय) शकट का बोझा उठा कर चलने में समर्थ बलवान् बलीवर्द के समान बल को (दधत्) धारण करावे। ये दोनों (आज्यस्य वीताम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि,

पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् 'होता' (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान् उत्पादक बल से सम्पन्न (त्वष्टारं) कान्तिमान् तेजस्वी, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टिकारक अन्नादि सम्पत्ति के वर्धक (रूपाणि बिभ्रतम्) नाना प्रकार पशुओं का पालन पोषण करनेवाले, (वयोधसम्) पूर्ण दीर्घायु को धारण करनेवाले, (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पृथक्) पृथक् २, अलग २ नाना प्रकार के (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त समृद्धि को (यक्षत्) धारण करावे। वह रात्रु में (द्विपद छन्द) द्विपदा गायत्री के २० अक्षरों के समान २० वर्षों तक (इन्द्रिय) इन्द्रिय-संयम का पालन करावे और (उक्षाणं गां न वयः) वीर्य सेचन में समर्थ बैल के समान बल वीर्य को (दधत्) धारण करे। और (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य या वीर्य की रक्षा करे। हे (होतः यज) विद्वन्! ऐसे उत्तम पुरुष को योग्य अधिकार प्रदान कर।

अर्थात् धन, धान्य, सम्पत्ति, भूमि आदि का पृथक् अधिकार वाञ्छित होने पर दिया जाय और यह अधिकार पुरुष को (द्विपद छन्द) द्विपद छन्द अर्थात् १२ + ८=२० वर्ष के बाद प्राप्त हो। ऐसी उमर में वह ब्रह्मचारी हो, सदाचारी, कमाऊ हो, नपुंसक, निर्बल और अल्पायु न हो।

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार प्रदाता विद्वान् पुरुष (वनस्पतिम्) महा वट के समान सबको आश्रय देने में समर्थ, वन पालक के समान नाना भोग्य पदार्थों या जनों के पालक, (शमितार) शान्तिदायक, (शत-क्रतुम्) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्म सामर्थ्यों से युक्त, (हिरण्यपर्णम्) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से सबके पालन करने वाले, अथवा अति सुन्दर ज्ञान से युक्त, (उक्थिनम्) वेदोक्त गुरु-उपदेश को धारण करने वाले (रशना) राष्ट्र के या समाज के और अपने शरीर की इन्द्रियों पर दमन को (बिभ्र-तम्) धारण करने वाले, लंगोटबन्द मेखलाधारी जितेन्द्रिय, (वशिम्) पूर्णवशी, (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (वयोधसम्) बल, वीर्य और दीर्घायु के धारण करने वाले (इन्द्रम्) श्रेष्ठ पुरुष को (यक्षत्) योग्य 'वनस्पति' नामक अधिकार पद प्रदान करे। (इह) इस कार्य में वह (ककुभ छन्द) ककुप् छन्द के (८ + १२ + ८) २८ अक्षरों के समान २८ वर्ष का (इन्द्रियम्) इन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचर्य और (वेहत गाम् इव) गर्भघातिनी गौ या (वशा) वेशा, बाझ गौ के समान (वय) बल (दधत्) धारण करे। अर्थात् जिस प्रकार 'वशा' अर्थात् वध्या गाय नाना नरों का भोग करके भी विचल नहीं होती और गर्भ धारण नहीं करती, इसी प्रकार वह 'वनस्पति' नामक पदाधिकारी भी नाना भोक्ताओं के आजाने पर भी सबको वश करने में समर्थ शक्तिमान् बना रहे। और जिस प्रकार गर्भ-घातिनी गौ नाना सांडों से भोग करके भी गर्भ में आये बीज का नाश कर डालती है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर नाना भोक्ता राजाओं के आजाने पर भी और उन द्वारा राष्ट्र का क्रम से या एक ही काल में यथेच्छ भोग कर लेने पर भी उनके भोग के प्रभाव को न रहने दे प्रत्युत उनसे भुक्त राष्ट्र को भी भरा पूरा ही बनाये रक्खे। ऐसे पुरुष का 'वनस्पति' पद पर नियुक्त करे। इसी प्रकार सेना रूप जन वनों के पालक सेनापति को भी ऐसा बनावे जो वशा के समान अन्यों के भोग के प्रभाव को जमने न दे

और शत्रु राजाओं के किये एत विग्रत को स्थिर न रहने दे। प्रत्युत गर्भघातिनी गौ के समान उनको गर्भ में ही नाश करदे। यह (आज्यस्य येतु) राष्ट्र के युद्धोपयोगी बल, वीर्य, ऐश्वर्य की रक्षा वृद्धि करे। हे (होत यज) विद्वन् होत ! ऐसे पुरुष को तू उक्त अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिछन्दसं छन्दं इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार दाता विद्वान् पुरुष (स्वाहा-कृतीः) उत्तम ज्ञान, वाणियों के उपदेश करने वाली संस्थाओं को (यक्षत्) योग्य अधिकार प्रदान करे। और (अग्निम्) ज्ञानवान्, तेजस्वी (गृहपतिम्) गृह के पालक (वरुणम्) सर्व दोषों के वारण करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को (कविम्) क्रान्तदर्शी, विद्वान् (भेषजम्) रोगचिकित्सा में कुशल वैद्य और (क्षत्रम्) बल, वीर्य से सम्पन्न राज्यकर्त्ता क्षत्रिय (वयोधसम्) दीर्घायु, बल वीर्य, अन्न के धारक (इन्द्र) राजा को (पृथक्) पृथक् २ नाना पदों पर (यक्षत्) नियुक्त करे। इन पदों पर नियुक्त पुरुषों में (अतिछन्दसं छन्दः इन्द्रियम्) क्रम से 'अति' शब्द से युक्त अतिधृति, अत्यष्टि, अतिशक्वरी और अति जगती इन चार छन्दों के क्रम से ७६, ६८, ६० और ५२ अक्षरों के समान इतने २ वर्षों का (बृहत् इन्द्रिय) विशाल ब्रह्मचर्य पालन और (ऋषभं गाम्) ऋषभ बैल के समान (ऋषभ) सर्वश्रेष्ठ पद को (दधत्) धारण करे। वे ही लोग (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि और पालन करें। हे (होत, यज) विद्वन् ! उन योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षु-

रिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ३५ ॥

इन्द्रा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(देवं) दिव्य गुणवाला (बर्हिः) आकाश जिस प्रकार (इन्द्रम् देवम्) प्रकाशमान सूर्य का (अवर्धयत्) बढ़ाता है, उसके सामर्थ्य की वृद्धि करता है उसके तेज को फैलने देता है और वही प्रकाश, (इन्द्र) जीव में (चक्षु इन्द्रिय वय दधत्) चक्षु नामक तेजोमय इन्द्रिय को धारण कराता है उसी प्रकार (देवम् बर्हि) दानशील, करप्रद प्रजा (वयोधसम्) बल और ऐश्वर्य के धारण करने वाले (देव) तेजस्वी (इन्द्रम्) राजा की (अवर्धयत्) वृद्धि करती है। वह प्रजागण (गायत्र्या छन्दसा) गायत्री छन्द अर्थात् ब्राह्मण रूप बल स (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा में (चक्षु इन्द्रियम्) आँख के समान देखने वाली शक्ति को और (वय) बल को (दधत्) धारण करावे। वह प्रजारूप गायत्री (वसुवने) ऐश्वर्यवान् राजा के (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य का (वसु) पालन और भोग करे। हे होत ! (यज) तू उसको यह अधिकार प्रदान कर।

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्द्धयन्। उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(देवी द्वार) उत्तम प्रकाश से युक्त बड़े २ द्वार जिस प्रकार (वयोधसम्) दीर्घ जीवन प्रदान करनेवाली (शुचिम्) शुद्ध (इन्द्रम्) वायु को (अवर्धयन्) गृह में बढ़ा देते हैं। और वह वायु (उष्णिहा छन्दसा) अंग प्रत्यंग में व्यापक स्निग्ध पदार्थ के बल से युक्त होकर (इन्द्रियम्) जीव के हितकारी (प्राणम्) प्राण वायु को (इन्द्र) जीव में (वय दधत्) दीर्घ जीवन और बलरूप से धारण कराता है उसी प्रकार (देवी)

विनयशील (द्वार) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनाएं (वयोध सम्) अग्निशाला (शुचिम्) निष्कपट (इन्द्रम्) सेनापति और राजा को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं, उसके बल को बढ़ाती हैं। और वह (उष्णिहा) अति अधिक स्नेह से युक्त (छन्दसा) छन्द अर्थात् रक्षा सामर्थ्य से (प्राणम् इन्द्रियम्) इन्द्र प्राण के समान विशेष इन्द्र पद के उचित ऐश्वर्य और बल को (इन्द्रे दधत्) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में धारण कराता है। अतः हे होतः विद्वन्! (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) राज्य-कोष को ये विनयशील सेनाएं भी (व्यन्तु) पालन, वृद्धि और उपभोग करें। (यज) उनको तू यह अधिकार प्रदान कर।

देवी ऽउषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ २७ ॥

भुरिगनिनगती। निषादः ॥

भा०—(देवी) जिस प्रकार पतिव्रता पति प्रिया स्त्री (देवम्) अपने कामना योग्य प्रिय पति को बढ़ाती है और जिस प्रकार (देवी) प्रकाशयुक्त (उषासानक्ता) दिन और रात्रि दोनों (इन्द्रम्) सूर्य के ही महिमा और बल की (अवर्धताम्) वृद्धि करते हैं। उसी प्रकार (देवी उषासानक्ता) विजय कामना से युक्त, उत्तम व्यवहार में कुशल, तेज से शत्रुओं का दाह या संताप देनेवाली 'उषा' नामक संस्था और शान्तस्वरूप से व्यवस्था करने वाली 'नक्त' नामक राजसंस्था दोनों (वयोधसम्) बलधारी (इन्द्रम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र के (अवर्धताम्) बल की वृद्धि करती हैं। वह राजा (इन्द्रे) समृद्ध राज्य में (अनुष्टुभा) प्रजा के अनुकूल राजा और राजा के अनुकूल प्रजा के परस्पर सम्बन्ध और गुण अनुनिपुण (छन्दसा) परस्पर रक्षा व्यापार से (इन्द्रियं बलं दधत्)

राजोचित उत्तम बलको धारण कराता है। हे होत विद्वन्! (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) उक्त दोनों संस्थाएं भी ऐश्वर्य भोक्ता राजा के कोश की वृद्धि, पालन और उपभोग कर। (यज) तू उनको अधिकार प्रदान कर।

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३८ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(देवी देवम्) प्रियतमा स्त्री जिस प्रकार अपनी कामना के अनुकूल प्रिय पुरुष को सन्तानादि से बढ़ाती है और (देवी जोष्ट्री) जिस प्रकार उत्तम व्यवहार वाले, एक दूसर को प्रेम करने वाले (वसुधिती) ऐश्वर्य को धारण करने वाले नरनारी (देव) कामना योग्य (वयोधसम्) दीर्घजीवन और बलप्रद (इन्द्रम्) शुभ सन्तान का बढ़ाते हैं उसी प्रकार (देवी) उत्तम तेजोयुक्त, (जोष्ट्री) परस्पर प्रेमयुक्त, विद्या संस्थाएं (वसुधिती) राष्ट्र में बसने वाले लोकों को धारण करने में समर्थ होकर (वयोधसम्) दीर्घजीवी (देवम् इन्द्रम्) विद्वान् राजा को (अवर्धताम्) बढ़ावें। और वह (बृहत्या छन्दसा) बृहती छन्द अर्थात् बड़ी भारी वेदवाणी के बल से (श्रोत्रम् इन्द्रियम्) शरीर में श्रवण इन्द्रिय के समान (श्रोत्रम् वयः दधत्) श्रवण योग्य ज्ञानरूप बलका धारण कराता है। (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) राजा के राज्यकोष की वे दोनों संस्थाएं भी वृद्धि पालन और उपभोग करें। हे विद्वन्! (यज) तू उनको वह अधिकार प्रदान कर।

देवी ऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥

निचृत् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(देवी देवम्) पति की कामना के अनुकूल रहनेवाली उत्तम स्त्री जिस प्रकार अपनी अभिलाषा के योग्य उत्तम पुरुष को प्रेम और सम्मान से बढ़ाती है और (सुदुघे) उत्तम दूध देनेवाली दो गौएं जिस प्रकार (पयसा) अपने दूध से (पयोधसम्) अन्न देनेवाले स्वामी को बढ़ाती है और जिस प्रकार (ऊर्जाहुती पयसा) अन्न और जल को प्रदान करनेवाली द्यौ और पृथिवी दोनों (पयसा) अन्न और जल द्वारा (दुघे) समस्त मनोरथों की पूरक होकर (इन्द्रम्) जीव प्राण को (अवर्धताम्) बढ़ाती हैं उसी प्रकार (ऊर्जाहुती) उत्तम जल और अन्न को प्रदान करने वाली (देवी) विद्वानों की दो संस्थाएं (दुघे) सब कार्यों को पूर्ण करने वाली (सुदुघे) उत्तम पदार्थों को देने वाली होकर (पयसा) अन्न और जल से (पयोधसं देवम् इन्द्रम्) दीर्घजीवन धारी उत्तम व्यवहार युक्त राष्ट्र की (अवर्धताम्) वृद्धि करें। (पङ्क्त्या छन्दसा शुक्रम् इन्द्रियम्) जिस प्रकार अन्न की परिपाक क्रिया से 'शुक्र' वीर्य को बल रूप से और (वयः) दीर्घ जीवन को (दधत्) धारण करता है उसी प्रकार (पङ्क्त्या छन्दसा) पङ्क्ति छन्द या अन्न के परिपाक होने की क्रिया से (शुक्रम्) शुद्ध वीर्य के जनक (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य बलकारी (वयः) अन्न को (इन्द्रे) राष्ट्र में (दधत्) धारण करावे। (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) धन भोक्ता राजा के ऐश्वर्य की वे दोनों संस्थाएं भी पालन और उपभोग करें। हे होतः ! (यज) उनको यह अधिकार प्रदान कर।

देवी देव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्। त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥

ऋषि: पूर्ववत् । निचृद् ॥

भा०—(देवी देवम्) विद्वान् माता पिता जिस प्रकार उत्तम गुण-

वान् पुत्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (देव्या होतारा) विद्वानों में उत्तम विद्वान् (देवौ) कार्य व्यवहार में कुशल (होनारौ) योग्य पदाधिकारी या ज्ञानों के देने हारे पुरुष (वयम् इन्द्र वयोधम) ऐश्वर्य के दाता बलशाली राजा की भी वृद्धि करते हैं। (त्रिष्टुभा छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द अर्थात् क्षात्र बल से व (इन्द) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में (त्विषिम् इन्द्रिय) शरीर में प्राणापान जिस प्रकार कान्ति का धारण कराते हैं उसी प्रकार वे राष्ट्र में तेज का और (वय) बल दीर्घ जीवन का धारण कराते हैं। (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) वे भी राष्ट्र पालक राजा के धन कोश की वृद्धि पालन और उपभोग करें। (यज) हे विद्वन् ! उनका पदाधिकार प्रदान कर।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

भुरिगत्यतिजगती। निषादः ॥

भा०—(तिस्र देवी) तीनों श्रेणियों की उत्तम स्त्रियां जिस प्रकार अपने (पतिम्) पति की वृद्धि करती है उसी प्रकार (तिस्र देवी) तीनों पूर्वोक्त विद्वत्संस्थाएँ (वयोधसम्) राष्ट्र के बल को धारण करनेवाले (पतिम् इन्द्रम्) पालक राजा को बढ़ाती है। वे (जगत्या छन्दसा) जगती छन्द से अर्थात् वैश्य बल से (इन्द्रे) राष्ट्र में (शूषम्) पर राष्ट्रशोषक (इन्द्रियम्) बल और (वय) जीवन को (दधत्) धारण कराते हैं। (वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) वे भी राष्ट्रभागी राजा के कोष की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। (यज) हे होत ! उनको तू अधिकार प्रदान कर।

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्। विराजा

छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४२॥

निचृदतिजगती । निषादः ॥

भा०—(नराशंसः) सब मनुष्यों से प्रशंसित अथवा जनों का उपदेष्टा (देवः) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों का देने हारा है । (देवः) उत्तम विद्वान् जिस प्रकार (देवम्) विद्या के अभिलाषी पुरुष को ज्ञान से वृद्धि करता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी (वयोधसम् देवम् इन्द्रम् अवर्धयत्) दीर्घजीवी बलको धारण करने वाले या बलदाता राजा इन्द्र की वृद्धि करता है । (विराजा छन्दसा) विराट् छन्द, अर्थात् विशेष कान्तिजनक ज्ञान से (इन्द्रे) राजा और राष्ट्र में (इन्द्रियं रूपम् वयः दधत्) इन्द्र पद के योग्य रूप और बलको धारण कराता है । वह भी (वसुधेयस्य वेतु) लोक के भोक्ता राजा के राज्य कोष का उपभोग करे । (यज) हे दान ! विद्वन् उसका अधिकार दे ।

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥

पूर्ववत् ॥

भा०—(देवः देवम्) दानशील पुरुष जिस प्रकार धनके अभिलाषी पुरुष को धन देकर बढ़ाता है इसी प्रकार (वनस्पतिः देवः) वनों के पालक वट आदि के समान आश्रितजनों को शरण देनेवाला विद्वान् दाता पुरुष भी (वयोधसं) बल के दाता (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है । वह (द्विपदा छन्दसा) दो चरणवाले मनुष्यों के बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राजा में (इन्द्रियम्) इन्द्र पद के योग्य (भगम्) ऐश्वर्य और (वयः) बल को (दधत्) धारण कराता है । (वसुधेयस्य इत्यादि) पूर्ववत् ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्द्धयत् । ककुभा च्छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

पूर्ववत् ॥

भा०—(वारितीनाम्) जलों द्वारा अति अधिक व्याप्त नदियों का (देवं बर्हिः) उत्तम जल जिस प्रकार (देवम्) दिव्य समुद्र को बढ़ाता है उसी प्रकार (वारितीनाम्) वारण करने में समर्थ गतियों वाली सेनाओं का (बर्हिः) अति विस्तृत (देवम्) विजयशील सेना बल, (वयोधसम्) अन्नदाता, (इन्द्रं देवं) ऐश्वर्यवान् राजा के बल को (अवर्धयत्) वृद्धि करता है । (ककुभा छन्दसा) ककुप् अर्थात् दिशाओं में व्यापक या सर्वश्रेष्ठ, सर्वाच्छादक बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राजा में (इन्द्रियं) इन्द्र पद के योग्य (वयः) बल और (यशः) यश, कीर्ति (दधत्) धारण कराता है । (वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत् ।

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४५ ॥

स्वराट् अति जगती । निषादः ॥

भा०—(देवः देवम्) परमेश्वर जिस प्रकार जीव को बढ़ाता है, विद्वान् जिस प्रकार ज्ञान के इच्छुक शिष्य को बढ़ाता है उसी प्रकार (स्विष्टकृत्) समस्त राष्ट्र के सुख इष्ट धन जन को उत्पन्न करनेवाला (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष (देवः) सर्व विद्याप्रकाशक होकर (वयोधसम्) सब के अन्नदाता (इन्द्रम् देवम् अवर्धयत्) राजा और राज्य की वृद्धि करता है । और (अतिछन्दसा छन्दसा) अति बलशाली रक्षा साधन से (इन्द्रे) राज्य में (इन्द्रियं) इन्द्र पद के योग्य (क्षत्रम्) क्षात्र बल और ऐश्वर्य और (वयः) अन्न और बल (दधत्) धारण कराता है । (वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत् ।

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरो-
डाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् । सूपस्था ऽअद्य देवो वन-
स्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचता
ग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऽऋषे ॥ ४६ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी अध्याय का मन्त्र २३ ।

॥ इत्यष्टाविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार विरुदपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ।



॥ अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

[अ० २९] प्रजापतिऋषि ॥

॥ ओ३म् ॥ समिद्धोऽ अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमान । वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

[१–११] अश्व सामुद्रिः, बृहदुक्थो वामदेव्यो वा ऋषि । आप्रियः । अग्निर्जातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी विद्वान् पुरुष ! हे (जातवेदः) विद्याओं में निष्णात, ज्ञानप्रद बुद्धिमन् ! जिस प्रकार (समिद्ध) खूब प्रदीप्त हुआ अग्नि (मधुमत्) मधुर अन्न से युक्त (घृतम्) घी को (पिन्वमान) सेवन करके अर्थात् चरु और स्निग्ध पदार्थ पाकर (कृदरं अञ्जन्) सकल पदार्थों के छिन्न भिन्न करनेवाले गुण को प्रकट करता है इसी प्रकार तू भी (मधुमत् घृतम् पिन्वमान) मधुर अन्न से युक्त घृत आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन करता हुआ (मतीनाम्) मनन योग्य बुद्धियों के (कृदरम्) समस्त पदार्थों के विवेक करनेवाले गुण को (अञ्जन्) प्रकट करता हुआ (देवानां प्रियम्) विद्वानों के प्रिय (सधस्थम्) एक साथ स्थिर होने योग्य, सर्वमान्य सिद्धान्त तक (वाजिन) वीर्यवान् पुरुष को (वहन्) उठा कर जिस प्रकार (वाजी) घोड़ा स्थानान्तर को ले जाता है उसी प्रकार (आ वक्षि) पहुँचा ।

जाठराग्नि के दृष्टान्त से जैसे—(मधुमत् घृत पिन्वमान) अन्न युक्त घृत को सेवन करके जिस प्रकार जाठराग्नि (मतीनां कृदरं) मनुष्यों के उदर की शक्ति को (अञ्जन्) प्रकट करता है उसी प्रकार हे पुरुष!

मधुर घृत का सेवन करके (मनताम्) बुद्धियों के (हृदयम्) विवेक जनक रहस्य को प्रकट कर। और हे (जानवद्) बुद्धिमान् पुरुष ! (वाजिन) वेगवान् घोड़ा। जल रहे पुरुष को जिस प्रकार बलवान् अश्व उस को ले जाता है उसी प्रकार तू स्वयं (वाजी) बलवान् समर्थ बुद्धिमान् होकर (वाजिनम्) वेगवान् अश्व को (वहन्) धारण करता हुआ (देवानाम् सधस्थम्) देवों के लिये एकत्र होने के स्थान सभा भवन को (आ वक्षि) धारण कर उसका सभापति बनकर उसको चला।

अर्थात्—जैसे जठराग्नि घृतादि खाकर मनुष्यों के उदर अग्नि को प्रकट करता है और (देवानां) देव इन्द्रियों के (सधस्थ स्थानादि) एकत्र रहने के स्थान देह को धारण करता है उसी प्रकार राजा या सभापति (मधुना) मधु गुड़ या मधुर पदार्थों से युक्त (घृतेन) तेजस्वी सूर्य के पद का सेवन करता हुआ बुद्धियों के या मनुष्यों के बीच राजधानी या केन्द्र स्थान को प्रकट करता हुआ स्वयं (मनिद्र) अति दृढ़ होकर (सधस्थम्) एकत्र रहने के स्थान सभास्थल या राष्ट्र को धारण करे।

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान्। अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्तास्त्स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

भा०—हे (सप्ते) राष्ट्र में व्यापक ! हे युद्ध में सर्वव्यापक ! हे सर्वत्र या परस्पर सब पदार्थों के (घृतेन अञ्जन्) जिस प्रकार आग घी से और विद्युत् जल से प्रकट होता है उसी प्रकार तू स्वयं (घृतेन) तेज से (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ, (देवयानान्) विद्वानों के चलने योग्य समस्त विजयी पुरुषों के चलने योग्य, राजनीति, उत्तम (पथः) मार्गों मर्यादाओं या कार्यों को (प्रजानन्) भली प्रकार जानता हुआ (वाजी) संग्राम में कुशल, ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और अश्व के समान वेगवान् होकर

(देवान्) विद्वानों और विजयशील राजाओं को (अपि एतु) प्राप्त हो। हे (सखे) मित्र बना लेने में कुशल ! समवायकारिन् ! (त्वा अनु) तेरे अनुकूल ही (प्रदिशः) उत्तम विद्वान् पुरुष अथवा (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं के वासीजन (सचन्ताम्) संघ बनाकर, सुव्यवस्थित होकर रहें। और तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील, करप्रद माण्डलिक पुरुष को (स्वधाम् धेहि) अपने राष्ट्र धारण करने के बल, अधिकार आदि प्रदान कर। अथवा हे राष्ट्र ! तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील या संगतिकारक सुव्यवस्थापक राजा को (स्वधाम् देहि) अपने शरीर, बल, राष्ट्र के धन आदि के धारण करने के बल आदि प्रदान कर।

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! संग्रामजयशील ! तू (ईड्यः च असि) स्तुति के योग्य है। और तू (वन्द्यः च असि) अभिवादन करने योग्य है। (आशुः च असि) अति शीघ्र कार्यकारी, वेगवान् भी है। और (मेध्यः च) सत्संग करने योग्य है। (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् (जातवेदाः) विद्वान् प्रज्ञावान् पुरुष, (वसुभिः देवैः) प्रजाओं को बसाने वाले विद्वानों या स्वयं राष्ट्र में बसने वाले व्यवहारकुशल प्रजाजनों के साथ (सजोषाः) समान भाव से प्रेमयुक्त होकर (प्रीतं त्वा) अति प्रसन्न तुझ (वह्निं) राष्ट्र के वहन करने में समर्थ पुरुष को (वहतु) प्राप्त हो, तेरे प्रिय पदों को धारण करे।

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में-हम लोग (स्तीर्णम्) आच्छादित, सुरक्षित, (बर्हिः) प्रजा लोक को (सु स्तरीम) उत्तम रीति से विस्तृत करें।

और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (उरु) बहुत बड़े रूप में (पृथु) और विस्तृत रूप में (प्रथमानम्) स्वयं फैलनेवाला (देवेभिः युक्तम्) और विजयी विद्वान्, व्यवहारकुशल तेजस्वी, रक्षाशील पुरुषों से युक्त प्रजा जन का, (मनोता) अति प्रसन्न युक्त होकर (अदितिः) अखण्ड शासन व्यवस्था, (स्योनं कृण्वाना) सुखदायी करती हुई (सु इत) उत्तम रीति से सञ्चालित मार्ग में (दधातु) रक्खे, उसका पालन करे।

विद्युत्पक्ष में—(स्तीर्णम्) आच्छादित साङ्गोपाङ्ग यानादि यन्त्रों को और (पृथु प्रथमानम्) विस्तृत, विख्यात एवं फैले हुए (बर्हिः) आकाश या जल में भी व्यापक (देवेभिः युक्तम्) दिव्य पदार्थ अग्न्यादि से युक्त सबको (जुषाणा) प्राप्त और सबको (स्योनं कृण्वाना) सुखकारी करती हुई (अदितिः) अखण्ड शक्ति विद्युत् आदि (सुइते) उत्तम गतिशील यन्त्रादि में बल (दधातु) धारण कराय।

एताऽउ वः सुभगा विश्वरूपा विपक्षोभिः श्रयमाणाऽउदातैः।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

भा०—(एताः) वे नाना उत्तम (द्वारः) गृह के द्वार और (देवीः) देवियों दोनों समान रूप से बड़ी लिखे प्रकार की हों। द्वारों के पक्ष में—(एताः द्वारः) ये द्वार (देवीः) प्रकाशयुक्त, (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम रीति से सेवन योग्य, सुखकारी, सुकर, (विश्वरूपाः) नाना रूपों के (वः) आपको बसाने वाले, मान जनेवाले (विपक्षोभिः) विविध प्रकार के पक्षों से (उत् श्रयमाणाः) खूब ऊंचे तक विस्तृत (ऋष्वाः) बड़ी (सतीः) होकर भी (कवषः) उत्तम शब्द करनेहारे, (शुम्भमानाः) सुशोभित (सुप्रायणाः) सुख से आने जाने योग्य (भवन्तु) हों।

स्त्रियों के पक्ष में—(एताः) वे (देवीः) स्त्रियां (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य और भग सौन्दर्य से युक्त, उत्तम भाग्यवती हों, दुर्भगा न हों, वे

(विश्वारूपा) नाना रूपों और नाना रुचिकर गुणोंवाली, (विपक्षोभि) नाना ग्राह्य पदार्थों से और (विश्रयमाणा) विविध प्रकार से सेवन करने वाली और (व्रातैः) नाना प्रकार के पाचार व्यवहारों से (उत् श्रयमाणा) उत्तम पद को प्राप्त होती हुई (ऋष्वा) बड़ी (सती) सदाचारिणी (कवष) उत्तम मधुर शब्द बोलनेहारी, (शुम्भमाना) सुशोभित, आभूषित, (सुप्रायणा) उत्तम चाल चलनेवाली सुख से गमन करने योग्य अथवा उत्तम गृह स्थान आदि से सम्पन्न होकर (भवन्तु) रहें।

शत्रुवारक सेनाओं के पक्ष में—(द्वारः दवी) विजयशील, शत्रुओं के वारण करने में समर्थ सेनाएं (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवाली (पक्षोभि) पक्षों बाजुओं से (व्रातैः) नाना चालों से (विश्रयमाणा) विविध रूप धारण करने वाली (उत् श्रयमाणा) उत्तम रूप को धारण करने वाली (ऋष्वा) शत्रुनाशक (सती) होकर (कवष) नाना शब्द करती हुई, (शुम्भमाना) चमचमाती हुई, (सुप्रायणा भवन्तु) उत्तम २ अयन, पदों और स्थानों से युक्त हों।

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाᳬ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

भा०—(अन्तरा) शरीर के भीतर जिस प्रकार (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, प्राण और उदान, विचरते हैं और जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सूर्य और वायु विचरते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के बीच में (मित्रावरुणौ) 'मित्र' अर्थात् प्रजा के प्रति स्नेहवान् और उनको मृत्यु से बचाने वाला और 'वरुण' दुष्टों का वारक अर्थात्, न्यायाधीश और दुष्टों का दमनकारी दो विभाग (उषासा) दिन और रात्रि के समान न्याय प्रकाशक और प्रजा-पालक, (यज्ञानां) समस्त श्रेष्ठ व्यवहारों, परस्पर की सुसंगत व्यवस्थाओं, या प्रजा के पालनरूप यज्ञ के (मुखम्) मुख्य पुरुष, राजा के साथ (अभि

संविदाने) सलाह करते हुए, (सुहिरण्यैः) उत्तम तेज से युक्त या उत्तम ऐश्वर्यवान् (सुशिल्पे) उत्तम शिल्पों के उत्पादक, कार्य साधन में चतुर हैं । उनको (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (योनौ) पद या अधिकार पर (सादयामि) स्थापित करता हूँ ।

दिन रात्रि के पक्षमें—शरीर में जिस प्रकार (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान समस्त परस्पर संगत, शरीर के कार्यों को व्यवस्थित करते हैं इसी प्रकार (उषासानक्ता) दिन और रात्रि दोनों सन्ध्याकाल (यज्ञानां मुखम् अभि संविदाने) यज्ञों के मुख अर्थात् आरम्भकाल की सूचना देते हैं । उत्तम प्रकाश से युक्त, सुन्दर हैं उनको (ऋतस्य योनौ) यज्ञ के निमित्त स्थिर करता हूँ ।

स्त्री पुरुष के पक्षमें—शरीर में प्राण उदान के समान गृहस्थ में स्त्री पुरुष समस्त (यज्ञाना) यज्ञों, परस्पर मिलकर करने योग्य गृहस्थ के उचित श्रेष्ठ कार्यों के (मुखम्) मुख्य भाग पर परस्पर सहमति करते हुए (सुहिरण्ये) परस्पर उत्तम रीति से हितकर और रमणीय, (सुशिल्पे) उत्तम कार्य कुशल होकर रहें । उन दोनों को (ऋतस्य योनौ) परस्पर सत्यव्यवहार एक दूसरे के प्रति निष्कपट और अनन्य होकर रहने के (योनौ) निमित्त इस गृहस्थाश्रम कार्य में (सादयामि) स्थापित करता हूँ ।

प्रथमा वां सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

भा०—हे उपदेशक और अध्यापक जनो ! (वां) तुम दोनों (प्रथमा) सबसे प्रथम, सबसे श्रेष्ठ, (सरथिना) समानरूप से रथों पर विराजमान, (सुवर्णा) उत्तम वर्ण वाले, (विश्वा भुवना पश्यन्तौ) समस्त लोकों को देखते हुए सूर्य चन्द्र के समान वर्तमान (देवौ) ज्ञानशील, दृष्टा, एवं प्रकाशक होकर रहो । (वां) तुम दोनों को (अपिप्रयम्) मैं नित्य तृप्त कर प्रसन्न

रखें। आप दोनों (चोदना मिमाना) नाना वेदानुकूल कर्त्तव्य कर्मों को जानते हुए (होतारा) उपादेय पदार्थों का ग्रहण करते हुए (प्रदिशा) उत्तम ज्ञान से (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (दिशन्तौ) उपदेश करते रहें।

स्त्री पुरुष के पक्षमें—दोनों स्त्री पुरुष, पति पत्नी, (सरथिनौ) एक रथ पर चढ़े हुए, (सुवर्णा) उत्तम वर्ण के, (देवौ) एक दूसरे को चाहने वाले, (विश्वा भुवनानि पश्यन्तौ) समस्त लोकों को देखते हुए, (चोदना मिमानौ) उत्तम कर्मों को करते हुए, (होतारा) सुखों को परस्पर लेते हुए (प्रदिशा) उत्कृष्ट मार्ग से (ज्योति दिशन्तौ) ज्ञान-ज्योति प्रदान करते हुए रहो। (वा आपिप्रयम्) तुम दोनों को मैं पुत्र आनंदित करूँ।

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्न ऽआवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

भा०—(भारती) भारती, नाम सभा (आदित्यैः) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों से (नः यज्ञं वष्टु) हमारे यज्ञरूप सुसंगत राष्ट्र को उज्ज्वल करे। (सरस्वती) सरस्वती, नाम विद्वत्सभा (रुद्रैः सह) रुद्र अर्थात् उपदेश करनेवाले विद्वानों सहित या दुष्ट पुरुषों को रुलानेवाले वीर पुरुषों सहित (नः) हमें (आवीत्) प्राप्त हो, या रक्षा करे। (इडा) इडा नाम संस्था (सजोषा) समान प्रीतियुक्त होकर (वसुभिः सह) बसनेहारे राष्ट्र के प्रतिनिधियों सहित (उपहूता) आदर पूर्वक बुलाई जाकर हमें प्राप्त हो। (देवीः) ये तीनों देवियें, उत्तम व्यवहारज्ञ संस्थाएँ या मार्गप्रदर्शक, सर्वदर्शी संस्थाएं, (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (अमृतेषु) नाशरहित आधारों पर (धत्त) स्थापित करें।

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥ ९ ॥

भा०—(त्वष्टा) कान्तिमान्, वीर्यवान् पुरुष (देवकामम्) विद्वानों के प्रिय (वीर) चार पुत्र को (जनयति) उत्पन्न करता है। (त्वष्टा) त्वष्टा के शिल्पों से ही (अर्वा) गतिशील यन्त्र भी (आशुः) वेगवान् (अश्व) अश्व के समान मार्ग तय करने वाला (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वष्टा) समस्त विश्व का रचयिता विश्वकर्मा परमेश्वर (विश्वं भुवनम्) समस्त भुवन, जगत् को पैदा करता है। इस कारण ह (होतः) होत 'विद्वन्' (बहो कर्त्तारम्) बहुत से वीर कार्यों और वीर पुरुष उत्पन्न करनेवाले बहुत से पदार्थों के रचनेवाले और बहुत बड़े विश्व के रचने वाले, उत्तम गृहस्थ और राजा, उत्तम शिल्पी और महान् परमेश्वर को (इह) इस महान् यज्ञ, अश्वमेध या राष्ट्रकार्य में और उपासना में (यक्षि) क्रम से अधिकार प्रदान करता, नियुक्त करता एवं उपासना करता है। अर्थात् धीर्यवान् गृहस्थ को गृहस्थ यज्ञ अर्थात् पुत्रजनन कार्य में नियुक्त कर, शिल्पवान् पुरुष को राष्ट्र में नियुक्त कर के देवोपासना में परमेश्वर उपासक नियुक्त कर।

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२॥ ऋतुशः पाथ एतु। वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥ १० ॥

भा०—(अश्व) सूर्य जिस प्रकार (घृतेन त्मन्या) अपने तेज से (समक्तः) युक्त होकर (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (देवान्) किरणों के द्वारा (पाथ एतु) जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार (अश्व) राष्ट्र का भोक्ता राजा (त्मन्या) स्वयं (घृतेन सम् अक्तः) तेज से सम्पन्न होकर (ऋतुशः) प्रति ऋतु, (पाथः) अपने पालन कार्य के निमित्त (देवान् उप एतु) देवों, विद्वानों को प्राप्त हो। (वनस्पतिः) मनुष्यों या सेवनीय पदार्थों का पालक (देवलोकं प्रजानन्) विद्वान् जनों को जानता हुआ, (अग्निना स्वदितानि हव्यानि) अग्निद्वारा स्वदित,

स्वीकृत, सुपक्व अन्नों को (वक्तन्) प्राप्त करे। अर्थात् अन्नों को प्रथम यज्ञाग्नि में देकर उसके बाद स्वयं अन्न को ग्रहण करे। अथवा (अग्नि) अग्रणी पुरुष द्वारा प्रथम उपयुक्त शेष अन्न को धारण करे।

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी पुरुष ! राजन् ! विद्वन् ! तू (प्रजापते) प्रजा के पालक राजा पद के (तपसा) तप से प्रभाव से (वावृधान) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (सद्यः जातः) शीघ्र ही राजा बनकर (यज्ञम्) राष्ट्र रूप सुव्यवस्थित कार्य को (दधिषे) धारण कर। तू (स्वाहाकृतेन) स्वाहा द्वारा अग्निमें आहुति किये हुए (हविषा) अन्न से अथवा (सु आह-कृतेन) उत्तम कीर्ति के जनक, उत्तम रीति से सम्पादित (हविषा) उपाय से (पुरोगा) सबको अग्रगामी होकर (याहि) प्रयाण कर। और (साध्याः) उत्तम रीति से साधन सम्पन्न (देवाः) देव, विद्वान्गण और विजयी वीर जन (हविः अदन्तु) अन्न और उपादेय राष्ट्र का उपभोग करें।

जिस प्रकार अग्नि में आहुति किया चरु भस्म होकर अन्य दिव्य पदार्थों में लीन हो जाता है इसी प्रकार राजा द्वारा प्राप्त किया, कर रूप में अन्नादि पदार्थ विद्वानों और वीर, विजेता सेना पुरुषों को प्राप्त होता है।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १२ ॥
ऋ० १ । १६३ । १ ॥

[१२-२४] जमदग्निर्दीर्घतमाश्च ऋषी। अश्वस्तुतिः। त्रिष्टुभः। धैवतः ॥

भा०—हे (अर्वन्) वेग से प्रयाण करनेहारे राजन् ! (यत्) जब तू (समुद्रात् उद्यन्) समुद्र से ऊपर उठते हुए सूर्य या मेघ के समान

उदय को प्राप्त होकर (प्रथमं जायमान) पहले २ उत्पन्न होकर राजा बनाया जाकर समस्त जन सागर में (वा) और (पुरीषात्) ऐश्वर्यमय पदार्थों के बीच में से ऊपर उठता हुआ, उन्नत राजपद पर विराजता हुआ (अक्रन्द) शब्द करता है, आज्ञा प्रदान करता है या गर्जना या अपनी राजा होने की घोषणा करता है उस समय तेरी (पक्षा) दोनों बाजू (श्येनस्य) बाज पक्षी के समान अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ दायें बायें दो सेनाओं के दस्ते (Wings) और (हरिणस्य) हरिण की (बाहू) अगली टांगों के समान अति शीघ्रगामी दो सेनादल (बाहू) बाहुओं के समान शत्रु पीड़न में समर्थ आगे को होते हैं और उस समय (ते) तेरा स्वरूप (महि) बहुत अधिक (उपस्तुत्यं जातम्) वर्णन करने योग्य हो जाता है।

यमेन दुत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूराद्श्वं वसवो निरतष्ट ॥ १३ ॥

ऋ० १। १६३। २ ॥

भा०—(त्रित) तीनों वेदों का विद्वान् त्रि विध शक्तियों से सम्पन्न पुरुष, (यमेन) नियम करने वाले पद द्वारा (दत्तम्) प्रदत्त, स्वीकृत (एनम्) इस राष्ट्र को (आयुनग्) नियुक्त करता है। (इन्द्र) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष (एनम्) इस राष्ट्र को (प्रथम) सबसे प्रथम (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता रूप से विराजता है। (गन्धर्वः) गौ, पृथिवी या आज्ञारूप वाणी के धारण करने में समर्थ पुरुष (अस्य) इस राष्ट्र रूप अश्व की (रशनाम्) रस्सी, राज्यशासन की बागडोर को (अगृभ्णात्) धारण करता है। (वसवः) हे वसुगणो ! प्रजाजनो ! विद्वानो ! (सूरात्) सबके प्रेरक सूर्य के तेज से (अश्वम्) इस व्यापक राज्य को (निर् अतष्ट) निर्माण करो। बनाओ, सुव्यवस्थित करो।

अध्यात्म में—(यमेनदत्तं) प्राण वायु से धारण किये हुए इस शरीर को (त्रितः) तीन धातुओं से युक्त अन्न या आत्मा (आयुनक्) युक्त करता है । (इन्द्र) जीव इसका अधिष्ठाता है । गन्धर्व मन इसकी रशना बागडोर को सम्भालता है । (वसव) वसनेवाले चक्षु आदि इन्द्रिय (सूरात्) प्रेरक प्राण से ही इसको निर्माण करते हैं ।

असि युमो ऽअस्यादित्यो ऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समया विपृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥

ऋ० १ । १६३ । ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (यमः असि) स्वयं प्राण वायु के समान राष्ट्र का नियामक है । (आदित्यः असि) तू सूर्य के समान सब कार्यों का प्रकाशक, सूर्य के समान प्रजा से कर लेनेहारा है । तू ही (अर्वन् असि) शीघ्र गतिवाला होकर (गुह्येन व्रतेन) रक्षा करने योग्य हम से (त्रितः) तीनों लोकों में व्यापक वायु के समान उत्तम मध्यम और अधम, व राजा, शासक और प्रजा तीनों में व्यापक है और (सोमेन) ऐश्वर्य मय राष्ट्र से (समया विपृक्त) सदा संयुक्त रहता है । (ते) तेरे (दिवि) राजसभा में (त्रीणि बन्धनानि) तीनों प्रकार के बंधन के (आहुः) बतलाते हैं । सूर्य लोक को बांधने वाले तीन बंधन, आकर्षण प्रकाश और प्राण है । परस्पर समाज के तीन बंधन शरीररक्षा, वाणी की प्रतिज्ञा और मानस प्रेम । राजा इन तीनों से बंधा रहे । वह आचार में पवित्र रहे, वाणी में सच्चा रहे और मन में प्रजा के प्रति प्रेमी रहे । सूर्य के द्यौ लोक मे तीन बांधने के साधन हैं आकर्षण, तेज और गति या चेतन सामर्थ्य । इसी प्रकार उत्पन्न जीव के भी ज्ञानमय जीवन में तीन बंधन हैं देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण जिनके प्रतिनिधि यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं ।

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त ऽआहुः परमं जनित्रम् ॥ १५ ॥

ऋ० १।१६३।५

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! हे भाग्यवन्! (दिवि) द्यौ लोक में जिस प्रकार सूर्य के (त्रीणि बन्धनानि) तीन बांधनेवाले बल हैं और (त्रीणि अप्सु) तीन ही बंधन जलों में हैं, अन्न, स्थान और बीज। और इसी प्रकार (त्रीणि अन्तः समुद्रे) तीन ही बंधन अन्तरिक्ष में वृष्टि के उत्पादक हैं मेघ, विद्युत् और गर्जन। इसी प्रकार हे राजन्! (दिवि) ज्ञान प्रकाश करनेवाली राजसभा में (ते त्रीणि बन्धनानि) तेरे तीन प्रकार के बंधन या मर्यादाएं हैं। (त्रीणि अप्सु) तीन बंधन आप्तजनों या प्रजाओं के बीच में हैं और (त्रीणि अन्तः समुद्रे) समुद्र के समान अपार अनन्त सुखजनक पदार्थों के उत्पादक, राष्ट्र या सेना समुदाय में भी तीन प्रकार के बंधन कहे जाते हैं। हे (अर्वन्) अर्वन्! राजन्! विद्वन्! (उत इव) और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ होकर तू (मे) मुझ शिष्य जन को (छन्त्सि) सन्मार्ग का उपदेश कर (यत्र) जहां जिस कार्य में (ते) तेरा (परमं) परम, सब से उत्कृष्ट (जनित्रं) जन्म या विकास हुआ (आहुः) बतलाते हैं।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाᳬ सनितुर्निधाना। अत्रा ते भद्रा रशना ऽअपश्यमृतस्य या ऽअभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

भा०—हे (वाजिन्) संग्रामशील, ऐश्वर्यवान्! राजन्! (ते) तेरे (इमा) ये (अवमार्जनानि) राष्ट्र के कण्टक शोधन करने के उपाय हैं। और (सनितुः) राष्ट्र का विभाग करनेहारे तेरे (शफानां) चरणों या खुरों के ये (निधाना) रखने के स्थान या (शफानां निधाना) खुरों के समान आश्रयभूत राजपादों या अधिकार पदों के लिये सजाये हैं।

और (अत्र) यहां (ते) तेरे निमित्त (भद्रा) कल्याण करनेवाली (गोपाः) रक्षण करनेवाली (रशनाः) रस्सियों के समान बांधनेवाली मर्यादाएँ हैं (याः) जो (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, यज्ञ, राष्ट्र की (अभिरक्षन्ति) रक्षा करती हैं।

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो ऽअपश्यम्पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

भा०—मैं (दिवा) दिन के समय आकाश मार्ग से (पतयन्तं) जाते हुए (पतङ्गम्) सूर्य के समान (ते आत्मानम्) हे राष्ट्रपते! तेरे आत्मा, स्वरूप को (मनसा) मन से, ज्ञानपूर्वक (आरात्) सदा निकट में ही (अजानाम्) जानता हू, समीप ही विचारता हू। और (अरेणुभिः) धूलि आदि से रहित (सुगेभिः) सुगम, सरल (पथिभिः) मार्गों से (जेहमान) जाते हुए (पतत्रि) नित्य गमन करते हुए (शिरः) तेरे शिर अर्थात् मुख्य भाग को, मुख्य पद पर स्थित व्यक्ति को (अपश्यम्) देखूं। अर्थात् राजा स्वयं साक्षात् आकाश में सूर्य के समान तेजस्वी होकर रक्षा कार्य में रहे। उसका शिर, मुख्य भाग उत्तम विशुद्ध मार्गों से गमन करे। वह सात्विक सन्मार्ग पर चले।

आत्मा के पक्ष में—हे जीव! तेरे आत्मा को मैं आकाश में जाते सूर्य के समान जानूं। (सुगेभिः) सुखदायी (अरेणुभिः) राजस तामस विकारों से रहित (पथिभिः) मार्गों से जाते हुए (शिरः) मुख्य, मनको जाता हुआ देखूं। अर्थात् आत्मा को सूर्य के समान तेजस्वी जानूं और मस्तक को सद्विचारों से युक्त स्वच्छ मार्ग में जाता पाऊं।

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष ऽआ पदे गोः।
यदा ते मर्त्तो ऽअनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठ ऽओषधीरजीगः ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन्! (अत्र) इस (गोः पदे) पृथ्वी के शासनाधिकार पद पर विराजमान (इषः) अन्नादि पदार्थों या सेनाओं को (जिगीषमा-

याम्) विजय करने की इच्छा वाले (ते) तेरे (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को (अपश्यम्) देखता हूं। और (यदा) जब (ते) तेरे अधीन रहने वाला (मर्त्तः) मनुष्यजन, (भोगम् अनु आनट्) भोग-योग्य सम्पत्ति प्राप्त करता है (आत् इत्) तभी तू (ग्रसिष्ठः) बहुत खाने वाला जीव जिस प्रकार (ओषधीः) अन्नादि पदार्थ खाता है उसी प्रकार तू भी (ग्रसिष्ठः) शत्रुओं के राज्यों और धनों को सब से अधिक ग्रसन में समर्थ होकर (ओषधीः) सन्ताप देने वाले शत्रुओं को, (अजीगः) ग्रस लेता है।

आत्मा के पक्ष में—हे आत्मन्! (गो: पदे) वाणी के या गमन योग्य, प्राप्तव्य अपने (पदे) ज्ञानमय स्वरूप पर विजय चाहने वाले तेरे (रूपम्) सुन्दर रूप को मैं देखूं। (ते मर्त्तः) तेरा मरणधर्मा शरीर जब (भोगम् अनु आनट) भोग को चाहता है तभी (ग्रसिष्ठ) बहुत खाने वाला भोक्ता होकर (ओषधीः अजीगः) जीवनाग्नि देनेवाले अन्नादि ओषधियों और उनके समान तापदायी भोगों को ग्रसता है।

अनु त्वा रथोऽ अनु मर्यो ऽअर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम्।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यन्ते ॥ १९ ॥

भा०—हे (अर्वन्) ज्ञानवन्, व्यापक! राष्ट्र! हे राष्ट्रपते! जिस प्रकार अश्व के पीछे (रथ, मर्य, गाव) रथ, मनुष्य और अन्य पशु आदि रहते हैं उसी प्रकार (त्वा अनु) तेरे पीछे २ (रथ:) रथ आदि यान, एवं रमण योग्य पदार्थ, (अनु मर्यः) तेरे पीछे समस्त मनुष्य, (अनु गावः) तेरे पीछे, समस्त गौ आदि दुधार पशुगण, (अनु कनीनां भगः) तेरे पीछे २ तेरे अधीन कन्याओं का सौभाग्य, (अनु व्रातासः) तेरे अधीन समस्त मनुष्य गण (सख्यम् ईयुः) तेरे अधीन होकर ही मित्रता को प्राप्त होते हैं (देवा) देवगण, (ते वीर्यम्) तेरे ही बल का (अनु ममिरे) तेरे अनुकूल

निर्माण करते हैं। राजा के सुव्यवस्था कारी रहने पर रथ जन, पशु, स्त्रियों की रक्षा, मनुष्य सब, उनके परस्पर मैत्री भाव आदि स्थिर हैं।

हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ऽअस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ अव॑रऽ इन्द्र॑ऽ आसीत्। दे॒वाऽ इद॑स्य हवि॒रद्य॑मा॒य॒न्योऽ अर्व॑न्तं प्रथ॒मोऽअ॒ध्यति॑ष्ठत् ॥२०॥

भा०—(य) जो (प्रथम,) सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ, सब से मुख्य होकर (अर्वन्तम्) व्यापक शक्ति वाले, अतिवेगवान् इस राष्ट पर (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता होकर विराजता है (देवा) देव, विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुष भी (अस्य) इसके (हविरद्यम्) अन्न के समान भोग्य वस्तु (आयन्) बन जाते हैं। (हिरण्यशृङ्ग) लोह के बने हिंसा साधनों, हथियारों से युक्त (इन्द्र) इन्द्र, शत्रुनाशक सेनापति भी (अस्य अवर) इसके अधीन नीचे पद पर (आसीत्) होता है। और (अस्य) इसके (मनोजवा पादा) मनके समान अति वेग वाले पैरों के समान इसके शेष अङ्ग अर्थात् नीचे के पदाधिकारी भी (मनोजवा) इसके मन को अनुकूल वेग से कार्य करने वाले और (अयः) सुवर्णादि वेतन से बद्ध हैं।

ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमासः॒ सꣳ शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ऽअत्याः॑। हꣳसाऽइ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑ ॥ २१ ॥

भा०—(ईर्मान्तास) ईर्म अर्थात् बाहुरूप से पृथ्वी के परले अन्त को विजय करनेवाले, (सिलिकमध्यमास) कृश पद वाले, अथवा अपने बीच मुखिया को रखनेवाले एवं (शूरणास) शीघ्र युद्धविजयी, (दिव्यास) तेजस्वी (अत्याः) नित्य गतिशील, वेगवान्, (अश्वाः) अश्वारोहीगण (यद्) जब (दिव्यम्) विजय करने योग्य (अज्मम्) संग्राम (सम् आक्षिषु) प्राप्त करते हैं तब (हंसा इव) पङ्क्तिबद्ध सारस पक्षियों के समान (श्रेणिश) श्रेणि, दल या दस्ता बना २ कर (यतन्ते) युद्ध करते हैं।

अभ्यास योगियों के पक्षमें—(ईर्मान्तासः) अन्ति प्राप्त भाग वाले, सिद्धान्त के विज्ञ, या उद्देश्य तक पहुँचे हुए, (सिलिकमध्यमासः) मध्यम भाग जिनके क्षीण, कृश हो गये हैं ऐसे (शूरणासः) अति वीर, (अत्याः) नित्य गतिशील या सदा, (अथाः) ज्ञानी होकर सदा (दिव्यम्) दिव्य (अज्मम्) 'अजनि' अर्थात् मार्ग को (समाशिषुः) प्राप्त होते हैं तब (हंसा इव) हंसों के समान (श्रेणिशः) श्रेणि बना २ कर एक दूसरे के पीछे सन्मार्ग पर चलने का अभ्यास करते हैं।

'ईर्मान्तासः'—ईर्मौ इति बाहू। समीरितान्ताः पृथ्वन्ता वा (निरु०)। 'सिलिकमध्यमासः'—संसृत मध्यमाः, शीर्षमध्यमाः (निरु०) सङ्कृश मध्यमा इति दया०। मध्ये निविडा इति सायणः। सङ्कुचितोदरा, निरुदरा इति उवटः। कृशोदरा इति महीधरः।

'हंसाः'—'अन्नपायान' इति (निरु०)।

'अज्मम्'—अजनिम् आजिम् (निरु०)। अजन्ति गच्छन्ति यम् मार्गम् इति दया०। अज्मम् संग्रामम् इति मही०।

'श्रेणिशः'—पङ्क्तिशः इति दया०। शीघ्रधावनाय श्रेणिशः पंक्तीभूय। इति सा०।

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् तव चित्तं वातऽइव ध्रजीमान्।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

भा०—हे (अर्वन्) वीर पुरुष ! (तव शरीरम्) तेरा शरीर (पतयिष्णु) वेग से जाने में समर्थ हो। (तव चित्तं) तेरा चित्त (वात इव) वायु के समान (ध्रजीमान्) बहुत अधिक वेग से युक्त हो। तेरे (शृङ्गाणि) सींगों के समान हिंसा करने वाले सेना दल (अरण्येषु) जंगलों में (पुरुत्रा) नाना स्थानों पर (विष्ठिता) विविध स्थलों में स्थित होकर (जर्भुराणा) खूब परिपुष्ट होते हुए अथवा राष्ट्र का निरन्तर धारण पालन करते हुए (चरन्ति) विचरें।

उप प्रागात्सुसर्नं धायरा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अज. पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

भा०—(वाजी अर्वा) बलवान् अश्व के समान तीव्र गति होकर बलवान् पुरुष (देवद्रीचा) देव अर्थात् विजयशील पुरुषों और विद्वानों से प्राप्त होनेवाले (मनसा) ज्ञान से (दीध्यान) स्वयं प्रकाशित, तेजस्वी होता हुआ (शसनम्) शासन कार्य पर (उप प्र अगात्) नियुक्त होता है। (अज) शत्रुओं को दूर हटाने वाला और उन पर शर वर्षा करने वाला वीर पुरुष (नाभि) राष्ट्र का बांधने या व्यवस्थित करने में समर्थ होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (पुर) आगे, मुख्य पद पर (नीयते) लाकर बैठाया जाता है। (पश्चात्) पीछे उसके पोषक रूप से (रेभा) विद्याओं के उपदेश करने में कुशल (कवय) मेधावी विद्वान् पुरुष (अनु यन्ति) अनुगमन करते हैं उसका साथ देते हैं।

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२॥ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

भा०—(अर्वान्) ज्ञानी बलवान् पुरुष, (यत्) जब (परमम्) सब से उत्तम (सधस्थम्) एकत्र रहने के स्थान, सभा भवन देश या स्थान को (उप प्र अगात्) प्राप्त होता है और जब (पितरं मातरं च) पालक पिता और माननीय माता को भी साक्षात् करता है। (अद्य) तब वह (जुष्टतम) अति प्रेमयुक्त होकर (देवान्) देव, विद्वान् पुरुषों को (गम्या) प्राप्त होता है। (अथ) और (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिये (वार्याणि) उत्तम २ पदार्थों को (आशास्ते) प्रदान करता है।

अध्यात्म में—जीव ज्ञानी होकर (परम सधस्थ) परम एकत्र होने के स्थान, मोक्ष को प्राप्त होता है, वहां वह पिता परमेश्वर और माता

प्रकृति का भी सत् ज्ञान करता है। देव, दिव्य पदार्थों और भोगों को भी पाता है। दानशील परमेश्वर से नानाविध योग्य पदार्थ प्राप्त करता है।

समिद्धो ऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २५ ॥
ऋ० १० । ११० । १ ॥

[२५–३६] जमदग्नी रामो वा जामदग्न्य ऋषिः । आप्रिय समित्तनूनपादादयो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (जातवेदः) अग्ने ! ज्ञानवन् ! जातप्रज्ञ ! विद्वन् ! (अद्य) आज तू (समिद्धः) अच्छी प्रकार ज्ञान से अग्नि के समान प्रकाशित एवं प्रज्वलित, तेजस्वी, स्वयं (देवः) दानशील राजा के समान, सर्वद्रष्टा होकर (मनुषः दुरोणे) मनुष्यों के दुःख से रक्षा करने योग्य गृह के समान इस राष्ट्र में (देवान् यजसि) विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुषों को (यजसि) आदरपूर्वक सुसंगत कर। और (मित्रम्) मित्र राजा को भी (आ वह च) प्राप्त कर। (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (त्वं) तू (दूतः) शत्रु को उपताप देने में समर्थ, (कविः) क्रान्तदर्शी और (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् (असि) होकर रह।

सामान्य विद्वान् के पक्ष में—वह ज्ञानवान् होकर मनुष्य के गृह में अग्नि के समान (देवान्) विद्वानों और प्रेमी पुरुषों का सत्कार करे, मित्र को प्राप्त करे। क्रान्तदर्शी, ज्ञानी बने।

दूत के पक्ष में—स्वयं तेजस्वी होकर राजाओं को (यजसि) संगत करे, मित्र राजा को प्राप्त करे।

तनूनपात्पथ ऽऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २६ ॥
ऋ० १० । ११० । २ ॥

भा०—हे (तनूनपात्) विस्तृत राष्ट्र को पतन न होने देने वाले, उसके रक्षक ! हे (सुजिह्व) उत्तम वाणी वाले ! तू (ऋतस्य) सत्य के (यानान् पथः) आचरण करने योग्य, चलने योग्य मार्गों को (मध्वा) मधुर उपदेश रस से (सम् अञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित करता हुआ (स्वदय) सबके लिये रुचिकर बना। अर्थात् धर्म के कार्यों को उत्तम आकर्षक भाषा में लोगों के सामने रखकर उन पर उनको चलने की प्रेरणा कर। और (धीभिः) अपनी बुद्धियों से (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञातव्य विषयों को (उत) और (यज्ञम्) परस्पर संगत राष्ट्र को, समाज को, अथवा उपास्य देव को (ऋन्धन्) अति समृद्ध, सुशोभित, करता हुआ, (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा से रहित या अविनाशी यज्ञ, राष्ट्रपालन के कार्य को (देवत्रा च) देवों, विद्वानों, कार्यकुशल, व्यवहार श्रेष्ठ पुरुषों के आधार पर (कृणुहि) सम्पादन कर।

नराशंसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२७॥

भा०—(यज्ञैः) सत्संग आदि उत्तम, आदर सत्कार के कार्यों से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य, (नराशंसस्य) समस्त पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय, प्रजापालक या विद्वान् उत्तम पुरुष के (महिमानम्) महिमा, महान् सामर्थ्य की हम (एषाम्) इन प्रजाजनों के बीच (उपस्तोषाम) वर्णन करें। (ये) जो (सुक्रतवः) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (शुचयः) शुद्ध, निष्कपट (धियन्धाः) बुद्धिमान्, उत्तम कर्मशील, (देवाः) विद्वान् अभिलाषुक होकर (उभयानि) शरीर और आत्मा के सुखकारी अथवा राजा और प्रजा दोनों के हितकारी (हव्या) प्राप्त करने योग्य पदार्थों या पदाधिकारों का (स्वदन्ति) भोग करते हैं।

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥
ऋ० १० । ११० । ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (आजुह्वान) सब अपने समान बल वालों से स्पर्द्धा किया जाता है या दूसरों से पुकारा जाता है अथवा सबको स्वयं अपने राष्ट्र में या स्पर्द्धा में बुलाने द्वारा, (ईड्य) सबके आदर योग्य, (वन्द्य) सबके अभिवादन करने योग्य, (वसुभिः सजोषाः) राष्ट्रवासी प्रजाजनों का समान रूप से प्रेम पात्र, (देवानां) विद्वानों, राजाओं में से (यह्वः) महान् (होता) सबको योग्य अधिकार, मान, पद और धन का दाता, (यजीयान्) सबको उत्तम सुसंगत करने वाला, होकर (एतान्) इन सब पुरुषों को (इषितः) प्रेरित या स्वयं अभिलाषा युक्त होकर (यक्षि) सुसंगत कर।

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते ऽअग्रे ऽअह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो ऽअदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

ऋ० १० । ११० । ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में वेदि पर विद्वानों के लिये पूर्वाभिमुख आसनार्थ कुशा बिछाई जाती है उसी प्रकार (अस्याः पृथिव्याः) इस पृथिवी की (प्रदिशा) समस्त उत्तम दिशाओं में या उत्तम शासन से (प्राचीनं) उत्कृष्ट दिशा में जाने वाला उन्नतिशील उत्तम ज्ञानवान् प्रजाजन (वस्तोः) बसने के लिये (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (वस्तोः) सूर्य के आच्छादक, विस्तृत प्रकाश के समान (वृज्यते) लाया जाता है। वह (देवेभ्यः) विजयी, वीर पुरुषों विद्वानों और (अदितये) आदित्य के समान तेजस्वी राजा के लिये भी (वितरं) विस्तृत (स्योनम्) सुखकारी (वरीय) धन ऐश्वर्य को (वि प्रथते उ) विविध प्रकार से फैलाता है।

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।

देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणा' ॥ ३० ॥

ऋ० १० । ११० । ५ ॥

देवीर्द्वारो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (पतिभ्य) अपने पतियों के लिये (जनय) स्त्रियें, (देवी) गृहदेवियें (व्यचस्वती·) विविध प्रकार से गमन करने वाली (उर्विया) सब प्रकार से आश्रय लेती है और उसके प्रति अपने को समर्पण कर देती हैं, उसके प्रति अपने अङ्गों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार (द्वार) गृह के द्वार भी (व्यचस्वती) विविध प्रकार के आवागमन करने वाले, (उर्विया) अपने दो बड़े बड़े कपाटों को खोलें। हे (देवी) पतियों की कामना करने वाली गृह देवियो ! आप (बृहती) विशाल हृदयवाली, (विश्वमिन्वा) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली हो। अत. (देवेभ्य) तुमारी अभिलाषा करने वाले पुरुषों के लिये ही तुम (सुप्रायणा) सुख पूर्वक प्राप्त होने वाली होकर सुखप्रद उत्तम अयन अर्थात् गृह बनाकर (भवत) रहो। इसी प्रकार हे (द्वार देवी) प्रकाश वाले द्वारो ! तुम (बृहती) बड़े २ और (विश्वमिन्वा) सबको अपने भीतर गुज़ारनेहारे हो। तुम (देवेभ्य) उत्तम विद्वान् पुरुषों के लिये (सु प्र अयना भवन) सुख से आने जाने के साधन होवो।

सेनाओं के पक्षमें—जैसे स्त्रियें अपने पतियों के प्रति अपने को खोलती हैं उसी प्रकार (व्यचस्वती) विविध देशों में जानेवाली, अथवा विविध प्रकार की चालों और व्यूहों में जानेवाली, आप सेनाएँ (पतिभ्य) अपने सेनापतियों के प्रति (उरु विश्रयन्ताम्) अपने विशाल स्वरूप को प्रकट करें। हे (देवी) विजयेच्छु (द्वार) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओ ! (बृहती) बड़ी भारी (विश्वमिन्वा) पूर्ण राष्ट्र या शत्रु-देश में और युद्धभूमि में व्यापने वाली होकर भी (देवेभ्य) विजिगीषु

पुरुषों के लिये (सुसादना भवत) सुख से बसने २ उत्तम सदन अर्थात् नियत स्थान में स्थित रहो ।

'सुसादना'—'सदनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिता' । गीता ।

आ सुष्वयन्ती यजतेऽ उपाकेऽ उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥३१॥

उषासानक्ता देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष (उपाके) परस्पर एक दूसरे के पास आकर (यजते) सुसंगत होकर (सुष्वयन्ती) लेटते हुए, (दिव्ये) परस्पर की कामना करके (योषणे) परस्पर संगत होनेवाले दोनों (बृहती) प्रजा की वृद्धि करने वाले, (सुरुक्मे) सुख पूर्वक एक दूसरे को चाहने वाले, कान्तिमान्, होकर (श्रियम्) लक्ष्मी को और (शुक्रपिशं) वीर्यों को (दधाने) स्थापन और धारण करते हुए (योनौ) एक ही गृह में (आ निसदताम्) विराजें (२) इसी प्रकार राष्ट्र में दिन रात्रि के समान उषा और नक्त नाम की दो सस्थाएं (यजते उपाके) परस्पर मिल कर रहने के स्थान में सर्वत्र २ आकर (सुरुक्मे) अति शोभन स्वरूप धारण करती हैं और (शुक्रपिश दधाने) राष्ट्र के शुद्ध स्वरूप को धारण करती हैं। इसी प्रकार राजा प्रजा परस्पर एक ही राष्ट्र में लक्ष्मी, धारण करके रहें ।

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥

भा०—(दैव्या) विद्वानों में उत्तम, (होतारा) उत्तम शिक्षा के देनेहारे, (सुवाचा) शुभ वाणियों के बोलने वाले, (मनुषः यजध्यै) मनुष्यों को परस्पर सुसंगत करने के लिये (यज्ञं मिमाना) यज्ञ, सुव्य-

व्यवस्थित राष्ट्र का निर्माण करते हुए (विदथेषु) उत्तम विज्ञानों और लाभ के कार्यों में (प्र चोदयन्ता) भली प्रकार प्रेरणा करते हुए (कारू) क्रिया कुशल होकर (प्राचीनं ज्योतिः) प्राचीन, पुरातन, सनातन से प्राप्त वेदमय, ज्ञानमय ज्योति को (प्रदिशा) अपने उपदेश से (दिशन्ता) उपदेश करते हुए दो विद्वान् रहे।

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३॥

भा०—(भारती) भारती, (इडा) इडा, और (सरस्वती) सरस्वती (तिस्रः देवीः) ये तीनों दिव्यगुण वाली, ज्ञान प्रकाश से युक्त संस्थाएं (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के समान (चेतयन्ती) ज्ञान का प्रकाश करनेवाली और (स्वपसः) उत्तम ज्ञानों और कर्मों को सम्पन्न करने वाली होकर (इह) यहां (नः यज्ञम्) हमारे यज्ञ और राष्ट्र को (तूयम्) शीघ्र (एतु) प्राप्त हों। (इदं बर्हिः) इस लोक को (स्योनं) सुखपूर्वक (आ सदन्तु) आसन के समान सुशोभित करें।

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (जनित्री) संसार को उत्पन्न करने वाले (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी या सूर्य और पृथिवी (इमे) इन दोनों को और (विश्वा भुवना) समस्त लोकों, और प्राणियों को (रूपैः) नाना रूपों और रुचिकर पदार्थों से (अपिंशत्) प्रत्येक अवयव अवयव में बनाता है। हे (होतः) ज्ञानप्रद ! तू (इषितः) प्रेरित होकर (यजीयान्) नाना पदार्थों को सुसंगत करने में कुशल होकर (तम् त्वष्टारम्) उस निर्माणकर्त्ता, विधाता (देव) देव, परमेश्वर की (अद्य) आज, सदा, (इह) इस राष्ट्र, या संसार में (विद्वान्) सबको भली प्रकार जान

कर (यजि) उपासना कर, उसके बनाये पदार्थों की रचना के अनुसार इस राष्ट्र में भी नाना कौशल के पदार्थों को सुसम्पन्न कर और बना।

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथऽऋतुथा हवींषि।
वनस्पतिः शमिता देवोऽअग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

भा०—हे विद्वन्! (देवानां) विद्वानों के (पाथः) पान, भोजन करने योग्य जल, दुग्ध और (हवींषि) अन्नों को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (त्मन्या) स्वयं अपनी बुद्धि से (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (उप अवसृज) प्रदान कर। इसी प्रकार (हव्य) हवन करने योग्य चरु को (मधुना) मधुर गुण युक्त (घृतेन) घृत से (समञ्जन्) मिला कर (उप अवसृज) आहुति प्रदान कर जिसमें (वनस्पतिः) किरणों का पालक सूर्य, और (शमिता देव) शान्तिदायक मेघ और (देव अग्नि) तेजस्वी, आग, तीनों (स्वदन्तु) ग्रहण करें।

राष्ट्र और गृहस्थ में—विद्वान् पुरुष मधुर घृत आदि से अन्नों को मिला कर ऋतु २ के अनुसार अन्नों का प्रदान करे। (वनस्पति) वनस्पति के समान सर्वाश्रय राजा, या गृहपति (शमिता) शान्तिप्रद ब्राह्मण विद्वान् और (अग्नि देव) अग्रणी सेनापति आदि प्रमुख पुरुष उन सब पदार्थों को यथावत् उपभोग करें। उन मुख्य पुरुषों का भोजन विद्वान् वैद्य के निरीक्षण में हो, वह ऋतु अनुसार पुष्टिकारी पदार्थों के साथ मिलाकर उनको भोजन दे।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (सद्यः [illegible] व्यमिमीत) यज्ञ [illegible] में प्रकट होता है। और वह अग्नि ही (देवानां पुरोगाः अभवत्) सबका वायु आदि दिव्य पदार्थों का अग्रगामी है। और (अस्य

वाचि स्वाहा कृते हविः देवाः अदन्ति) इस अग्नि के ज्वालाओं में स्वाहा किये हुए हविष् को अन्य वायु, जल आदि भी प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी ज्ञानवान् पुरुष जो (देवानाम्) विद्वानों और विजय की कामना करने वाले और व्यवहार कुशल पुरुषों का (पुरोगाः) अग्रगामी, नेता (अभवत्) हो जाता है। वह (सद्यः जातः) शीघ्र ही सामर्थ्यवान् होकर (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित, प्रजापालन करने वाले राष्ट्र का (वि अमिमीत) विशेष २ रूप से और विविध प्रकारों में निर्माण कर लेता है। (अस्य होतुः) सबको यथा योग्य पदाधिकार प्रदान करनेवाले इस विद्वान् के (प्रदिशि) उत्कृष्ट शासन में और (ऋतस्य वाचि) सत्य व्यवहार, या ज्ञान, शासन विधान की वाणी, या आज्ञा के अधीन रहकर (देवाः) समस्त सुख चाहने वाले विद्वान् शासक सैनिक और प्रजागण, (स्वाहाकृतं) उत्तम रीति से न्यायानुकूल या आदर से प्रदान किये (हविः) अन्न और भोग्य पदार्थ को (अदन्तु) भोग करें।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥३७॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (उषद्भिः) दाहकारी किरणों के सहित उदित होता है उसी प्रकार जो (मर्याः) मनुष्य (अकेतवे) अज्ञानी पुरुष को (केतुम्) ज्ञान प्रदान करते हैं और जो (अपेशसे) धन हीन पुरुष को (पेशः) धन प्रदान करते हैं उन (उषद्भिः) अज्ञान और दारिद्र का नाश करने वाले तेजस्वी पुरुषों के साथ २ तू भी हे राजन्! (अकेतुम्) प्रज्ञाहीन पुरुष के (केतुं कृण्वन्) प्रज्ञा प्रदान करता हुआ और (अपेशसे) सुवर्णादि से रहित पुरुष को (पेशः कृण्वन्) सुवर्ण प्रदान करता हुआ तू (अजायथाः) प्रसिद्ध हो।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।

अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥३८॥

ऋ० ६ । ७५ । १ ॥

पायुर्भारद्वाज ऋषिः । [illegible] देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (वर्मी) कवच पहने हुए योद्धाजन (समदाम्) संग्रामों के (उपस्थे) समीप (याति) जाता है तब (प्रतीकम्) सेना का मुख (जीमूतस्य) मेघ के (इव) समान होता है । अर्थात् जिस प्रकार मेघ निरन्तर बिजुलियों, गर्जनाओं और बराबर पड़नेवाली धाराओं से भयकर होता है उसी प्रकार आग्नेयास्त्रों की लपट, शस्त्रों की चमक, उनके गर्जन और शस्त्रों की वर्षा से सेना का मुख भी बड़ा विकट भयकर होता है । अथवा (प्रतीक) उस कवचधारी वीर का ही स्वरूप मेघ के समान होता है । शरीर पर मेघ के समान श्याम कवच और हाथ में बिजुली के समान तीक्ष्ण तलवार और धारण करने की शस्त्रास्त्र होते हैं । हे वीर पुरुष ! (त्वम्) तू ऐसे रण संकट में भी (अनाविद्धया) बिना चोट खाये, सुरक्षित (तन्वा) शरीर से, या अनष्ट विस्तृत सेना से (जय) विजय कर । (वर्मणः) कवच का (स महिमा) वह महान् सामर्थ्य ही (त्वा पिपर्तु) तेरी रक्षा करे ।

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥

ऋ० ६ । ७५ । २ ॥

भा०—(धन्वना) धनुष से हम (गाः जयेम) गौओं और भूमियों को विजय करें । (धन्वना आजिम्) धनुष के बल से हम संग्राम का (जयेम) विजय करें । (धन्वना) धनुष के बल से (तीव्राः) अति तीव्र चलनेवाली (समदः) मद और हर्ष से भरी शत्रु सेनाओं का (जयेम) विजय करें । (धनुः) धनुष (शत्रोः) शत्रु के (अपकामम्)

मन चाहे फल का नाश (कृणोति) कर देता है। और (धन्वना) धनुष से हम (सर्वाः प्रदिशः) समस्त दिशाओं का (जयेम) विजय करें।

<u>व</u>क्ष्यन्ती<u>वे</u>दा गनीगन्ति कर्णं प्रि॒यꣳ सखा॑यं परिषस्वजा॒ना।
योषे॑व शिङ्क्ते वित॒ताधि॒ धन्व॒न् ज्या इ॒यꣳ सम॑ने पा॒रय॑न्ती ॥४०॥

ऋ० ६ । ७५ । ३ ॥

भा०—(योषा इव) स्त्री जिस प्रकार (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानों कुछ कहती हुई सी (कर्णम् आगनीगन्ति) कान के समीप आती और (प्रियं सखायम्) अपने प्यारे सखा, पति को (परि-सस्वजाना) आलिंगन करती हुई (समने पारयन्ती) एक चित्त हो करने योग्य गृहस्थोचित कृत्य पुत्रोत्पत्ति आदि कार्यों के पार लगा देती है उसी प्रकार (इयम् ज्या) यह धनुष की डोरी, (अधिधन्वन्) धनुष पर (वितता) कसी हुई (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानो कुछ कहती हुई सी (कर्णम् आगनीगन्ति) कान के पास तक आती है। और अपने (सखायं प्रियं परि सस्वजाना) मित्र के समान प्रिय धनुर्दण्ड को आलिंगन करती हुई, (शिङ्क्ते) ध्वनि करती है वही (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार पहुंचा देती है या पालन करनेवाला या पूर्ण सामर्थ्यवान् करती है।

तेऽ आ॒चर॑न्ती॒ सम॑नेव॒ योषा॑ मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृतामु॒पस्थे॑। अप॒ शत्रू॑न्विध्यतां॒ꣳ संविदा॒नेऽ आर्त्नी॑ऽ इ॒मे वि॑ष्फु॒रन्ती॑ऽ अ॒मित्रा॑न् ॥४१॥

ऋ० ६ । ७५ । ४ ॥

भा०—(समना योषा इव) एक चित्त होकर रहने वाली प्रियतमा स्त्री अपने पति की और (माता इव) माता दोनों (स विदाते) परस्पर मिलकर अपने उस ही प्रेमपात्र (पुत्रं) पुत्र को (उपस्थे) अपनी गोद या कोड़ में आलिंगन कर (बिभृताम्) धारण करती है। उसी प्रकार (इमे आर्त्नी) ये दोनों धनुष की टोरियां भी धनुर्दण्ड को अथवा

(पुत्रं) पुत्रों की रक्षा करने वाले वीर सेनापति को (बिभृताम्) पोषण करती है । और (ते) वे दोनों (आचरन्ती) उसके दोनों तरफ पत्नी और माता के समान रक्षक और सेवक रूप से आचरण करनेवाली होकर (तान् शत्रून् अपविध्य) उन शत्रुओं को दूर से ही ताड़न करके और (अमित्रान्) शत्रुओं को (विष्फुरन्ती) विविध प्रकारों से विनष्ट करती हुई राजा की (बिभृताम्) रक्षा करें । इसी से धनुर्युद्ध की दोनों सेनाओं का भी वर्णन कर दिया है ।

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२॥

भा०—(बह्वीनां पिता) बहुतसी कन्याओं का पिता और जिसके (बहु पुत्र) बहुत से पुत्र भी हों वे सब बच्चे मिल कर जिस प्रकार (समना अवगत्य) एकत्र होकर मिलने के स्थान में आकर (चिश्चा कृणोति) ची चा करते हैं उसी प्रकार (इषुधिः) बाणों को धारण करने वाला तूणीर या तरकस (बह्वीनां पिता) बहुत से तीरों का 'पिता' पालक है । (अस्य पुत्रः बहुः) इसके गर्भ से निकलने वाले पुत्र भी बाणरूप (बहु) संख्या में बहुत से हैं । वे सब (समना अवगत्य) युद्ध स्थान में आकर (चिश्चा कृणोति) च, चा, इत्यादि ध्वनि करता है । वह (इषुधिः) तरकस (सर्वाः) समस्त (सङ्काः) सब बना कर लाई हुई (पृतनाः) समस्त शत्रु सेनाओं को (पृष्ठे निनद्धः) पीठ पीछे बंधा रह कर भी (प्रसूतः सन्) जब अपने गर्भ से बाणों को पैदा करता है तब शत्रु का (जयति) विजय कर लेता है ।

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

भा०—(सु-सारथि) उत्तम सारथि, कोचवान्, रथका चलाने वाला,

(रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ भी (यत्र यत्र कामयते) जहां जहां भी चाहता है वहां २ (वाजिन) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) अपने आगे २ लेजाता है। (मनः) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार (रश्मयः) रासें (पश्चात्) घोड़ों को पीछे से (अनु यच्छन्ति) नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (अभीशूना) इन मन की प्रवृत्तियों के समान वेग से सब तरफ लेजाने वाली रासों के ही (महिमानम्) महान् सामर्थ्य की (पनायत) स्तुति करो उनका ही बड़े महत्व का जानो। उन्हीं के वश करने के कार्य को बड़ा आवश्यक जानो।

अध्यात्म में—मन रासें रूप है। उसकी ही सब महिमा है कि वह इन्द्रियों को वश करता है। इन्द्रियों का वश करने के लिये भी मनको वश करना बड़ा आवश्यक कार्य है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥
कठोपनिषत् वल्ली ३। ३ ४ ॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः॥८॥
ऋ० ६। ७५। ७॥

भा०—(वृषपाणयः) शस्त्रों के वर्षण करने वाले, धनुषों को हाथ में लिये वीर पुरुष (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र, कर्णकटु शब्दों को करते हैं। इसी प्रकार (रथेभिः सह) रथों के साथ २ (वाजयन्तः) वेग से जाने हारे (अश्वाः) घोड़े भी (अवक्रामन्तः) मारते २ भी

(प्रपदैः) अपने पादों से (अनपव्ययन्तः) स्वामी का अपव्यय न करते हुए अथवा-स्वयं दूर न भागते हुए, खड़े रहकर भी, या स्वयं नष्ट न होते हुए भी (अमित्रान् शत्रून्) मित्रों से भिन्न द्वेषी शत्रुओं को (क्षिणन्ति) विनाश करते हैं।

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुपशग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः॥४५॥

ऋ० ६ । ७५ । ८ ॥

भा०—(यत्र) जिस रथ पर (रथवाहनम्) रथ को चलाने योग्य उपकरण (हविः) खाने पीने, पहनने का वस्त्रादि सामग्री, (नाम) शत्रुओं का नमाने वाला (आयुध) शस्त्र अस्त्र और (अस्य) इस वीर सेनापति, रथी का (वर्म) कवच भी (निहितम्) रखा जाता है (तत्र) उस (शग्मम्) सुखदाता (रथम्) रथ को (वयम्) हम सब (सुमनस्यमानाः) उत्तम मन वाले, शुभ चित्त होकर (विश्वाहा) सब दिनों (उपसदेम) प्राप्त हों।

अध्यात्म में—(रथम्) रस स्वरूप इस आत्मा को हम प्राप्त हों जो (रथवाहनम्) रस का प्राप्त कराने हारा है। जिसमें (आयुधम्) सब प्रकार के आनन्द (वर्म) परम रक्षा स्थान और (हविः) परम उपादेय ज्ञान भरा है।

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥४६॥

ऋ० ६ । ७५ । ९ ॥

भा०—(स्वादुषंसदः) स्वादु रसवान्, उत्तम पदार्थों को सब मिलकर या बांट कर ग्रहण करने हारे, अथवा स्वादु कर्म ? युद्ध में एक साथ पर बैठे हुए, (पितरः) राष्ट्र पालन करने में समर्थ, (वयोधाः) अन्न वीर्य के धारण करने वाले, (कृच्छ्रेश्रितः) संकट समय में विपत्तियों में रहकर

भी (शक्तिवन्त) शक्तिमान्, सदा बलवान्, या शक्ति नाम अष्टचक्रा तोपों को धारण करने वाले (गभीरा) गम्भीर स्वभाव वाले (चित्र सेना) नाना प्रकार की सेनाओं के स्वामी (इषुबला) अस्त्रों द्वारा फेंकेजाने वाले बाण आदि क बल से युद्ध करने में कुशल, (अमृध्रा) अहिंसनीय, दृढ़ शरीर, (सतोवीरा) विद्यमान सेनाके बीच में विद्यमान, अथवा अति विस्तृत, बलवान्, वीर पुरुषों से युक्त, (व्रातसाहा) वीर समूहों भी पराजय करन में समर्थ (उरव) विशाल बाहुओं और शरीर वाले हों ।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी ऽअनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो ऽअघशंऽसऽ
ईशत ॥ ४७ ॥ ऋ० ६ । ७५ । १० ॥

भा०—(ब्राह्मणास) ब्रह्म के जाननेहारे वेदज्ञ विद्वान् और (पितर) पालकजन क्षत्रिय लोग (सोम्यास) सोम अर्थात् राष्ट्र के हित कारी और सोम्य स्वभाव के हों । वे दोनों (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि या सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाशक और सब के आश्रय (शिव) कल्याणकारी, (अनेहसा) निष्पाप, बुरे कर्मों से रहित हों । (पूषा) सर्व पोषक राजा और (ऋतावृध) सत्य व्यवहार और यथार्थ, ज्ञान 'ऋत' सत्य ज्ञान के प्रतिपादक, या वेद के धर्म के बढ़ानेहारे जन (न) हम (दुरिताद्) दुष्ट आचरणों से (पातु) बचावें और (रक्ष) पालन करे । (अघशंस) पाप की शिक्षा देनेवाला जन (न माकि ईशत) हम पर कभी स्वामी न हो, वह कभी अधिकार प्राप्त न करे ।

सुपर्णं वस्ते मृगो ऽअस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥४८॥
ऋ० ६ । ७५ । ११ ॥

भा०—(मृग) तीव्र मृग के समान गति शील बाण (सुपर्णं)

शोभन परों को (दधते) धारण करता है। और (अस्याः दन्तः) इस बाण का मुख या फला वराह-दन्त के समान हो काटने वाला होता है। अथवा— यह (सुपर्णं वस्ते) पक्षी के परों को धारण करता और (अस्य दन्तः मृगः) इसका काटने का साधन मृग अर्थात् व्याघ्र के दांत के समान तीक्ष्ण होता है। यह बाण (गोभिः) गो चर्म की बनी तांतों से (संनद्धा) खूब कसी जकड़ी हुई और (प्रसूता) धनुष द्वारा प्रेरित होकर (पतति) बड़ी दूर जा पड़ता है (यत्र) जहां (नरः) मनुष्य (सं द्रवन्ति) परस्पर एक दूसरे के साथ वेग से भागते हैं और (विद्रवन्ति च) एक दूसरे के विपरीत होकर दौड़ते हैं। (तत्र) उस युद्ध काल में भी (इषवः) बाण (अस्मभ्यम्) हमें (शर्म) सुखप्रद आश्रय (यंसन्) प्रदान करते हैं।

'सुपर्ण', 'मृग', 'गो', इत्यादिशब्दा इषुवचननिगमा भवन्ति इति यास्कवचनात् तद्विकारवाचका भवन्ति।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ ४९ ॥
ऋ० ६।७५।१२॥

निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल, सीधे मार्ग से जाने वाले बाण! (नः परिवृङ्धि) तू हमें आघात करने से छोड़ दे, या हमें बचा। अथवा—हे राजन्! (ऋजीते) सरल व्यवहार में हमें (परि वृङ्धि) बचा। (नः तनूः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा भवतु) पत्थर के समान कठोर हो। (सोमः) सबका प्रेरक विद्वान् राजा हमें (अधि ब्रवीतु) उत्तम मार्ग का उपदेश करे। और (अदितिः) अखण्ड राजनीति या पृथिवी (नः) हमें (शर्म) शरण, सुख (यच्छतु) प्रदान करे।

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।

अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

ऋ० ६ । ७५ । १३ ॥

[illegible] अनुष्टुप् [illegible] ।

भा०—(प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् पुरुष (एषां) इन अश्वों के (सानु) [illegible] पर और (जघनान्) जाघों के भागों पर (आजंघन्ति) थोड़ा २ मारते हैं और (उप जिघ्नते) [illegible] हैं, तब हे (अश्वाजनि) अश्वों के प्रेरणा देनेवाले [illegible] करने वाले [illegible] तू (अश्वान्) अश्वों को (समत्सु) संग्रामों में (चोदय) प्रेरित कर ।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

ऋ० ६ । ७५ । १४ ॥

भा०—(हस्तघ्नः) हाथ में [illegible] ताड़ित होनेवाला हाथबन्द [illegible] (बाहुं) बाहु को (अहि इव भोगैः) साँप के समान अपने [illegible] से (बाहुं परि एति) बाहु पर चारों ओर से लिपट जाता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेतिम्) आघात को (परिबाधमानः) दूर से ही [illegible] करता है उसी प्रकार (हस्तघ्नः) [illegible] कुशल वीर पुरुष (भोगैः) अपने पालन करनेवाले [illegible] (अहिः इव) मेघ के समान (परि एति) नगर को चारों ओर से घेर लेता है (बाहुं) बाधा, पीड़ा देनेवाले शत्रु को और (ज्यायाः हेतिम्) डोरियों से फेंके गये बाणों को (परि बाधमानः) दूर से ही नष्ट करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब [illegible] के ज्ञानों और युद्ध कौशलों को [illegible] द्वारा (विद्वान् पुमान्) ज्ञानी पुरुष (पुमांसं) नगरवासी जन को (विश्वतः) सब प्रकारों से (परि पातु) रक्षा करे ।

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥

ऋ० ६ । ४७ । २६ ॥

भरद्वाज ऋषिः । वनस्पतिर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य, जलों के पालक मेघ के समान मुख्य सेना पुरुषों के पालक सेनापते ! तू (अस्मत्सखा) हमारा मित्र, (प्रतरणः) युद्ध आदि संकटों के अवसरों से रथ के समान नदी पर नाव के समान पार कराने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीर योद्धाओं से युक्त, एवं स्वयं भी वीर होकर (वीड्वङ्गः) दृढ़ अंगों वाला (भूयाः) होकर रह । तू (गोभिः) रथ जिस प्रकार गोचर्म से ढका एवं तांतों से बंधा हुआ होता है उसी प्रकार तू भी (गोभिः) भूमि के बने नाना पदार्थों से या अपने सुव्यवस्थापक की आज्ञाओं से (सन्नद्धः असि) उसी प्रकार बद्ध है । तू (वीडयस्व) दृढ़ पराक्रम कर । (ते आस्थाता) तेरे आश्रय पर रहने वाला तेरा अधिष्ठाता भी रथी के समान (जेत्वानि) विजय करने योग्य सभी पदार्थों को (जयतु) जीते ।

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥५३॥

ऋ० ६ । ४७ । २७ ॥

निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(दिवः) सूर्य या द्यौलोक, आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से सब प्रकार का (ओजः) बल और पराक्रम (परि उद्भृतम्) प्राप्त किया जाता और उत्पन्न किया जाता है । और (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वृक्षों से भी (सहः) शत्रुओं के विजय करने में समर्थ बल को (परि आभृतम्) संग्रह किया जाता है । इसी प्रकार (अपाम्) जलों

के (ओजमान) बल को (परि) सब तरफ से एकत्र करके प्राप्त कर। (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभि) किरणों से (आवृतम्) घिरे हुए (वज्र) प्रकाशमय तीक्ष्ण ताप रूप वज्र को भी (हविषा) उसके ग्रहण करने वाले उपाय द्वारा (रथम्) रथ या रस, या सार रूप से (यज) प्राप्त कर।

राष्ट्र पक्ष में—(दिव) आकाश से जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश रूप ओज प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषों से विज्ञान का प्राप्त करो। पृथिवी से जिस प्रकार अन्न उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार पृथिवी निवासी प्रजा से अन्न संग्रह करो। वनस्पतियों से जिस प्रकार औषध संग्रह किया जाता है उसी प्रकार प्रजाओं के पालक माण्डलिक राजाओं से शत्रुओं के पराजयकारी सेनाबल का संग्रह करो। जलों से जिस प्रकार नहर आदि एवं यन्त्रों के चलाने का बल प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आप्त प्रजाओं का संगृहीत पुरुषबल प्राप्त किया जाय। सूर्य की किरणों से जिस प्रकार आतसी शीशे द्वारा तेज प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) सेनापति के (गोभि) आज्ञाओं द्वारा (आवृतम्) उनके भीतर छिपे (वज्र) बल वीर्य को (रथ) रथ, साररूप रस के समान या शिल्पी जिस प्रकार रथ के नाना अंगों को जोड़ कर रथ बनाता है उसी प्रकार (यज) संगत कर, उन सब बलों को प्राप्त करके (हविषा) उपाय से, ज्ञान से संयोजित कर।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥ ४४ ॥

ऋ० ६ । ४७ । ४८ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(इन्द्रस्य वज्र) सेनापति या राजा का जल वर्षक मेघ के

विद्युत् के समान प्रखर (वज्र) शत्रु निवारक बल वीर्य, और (मरुताम्) प्रचण्ड वायुओं के समान तीव्र बलवान् एवं शत्रुमारक सेनापतियों का (अनीकम्) मुख्य है और (मित्रस्य गर्भः) सूर्य के समान तेजस्वी, स्नेही मित्र का सहायक सामर्थ्य और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष दुष्ट निवारक बलवान् राजा का (नाभिः) प्रबन्ध करने वा बांधने वाला है (सः) वह सब (त्वम्) राजन् तू ही है । हे (रथ) रथ के समान वेग से जाने वाले तथा प्रयाण में दृढ़ एवं रमणीय गुणों से युक्त ! वह तू (नः) हमारे (हव्यदातिं) यज्ञादि के दान को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (हव्या) समस्त ग्राह्य पदार्थों को (प्रति गृभाय) ग्रहण कर ।

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ ५५ ॥

ऋ० ६ । ४७ । २९ ॥

गर्ग ऋषिः । दुन्दुभिः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) नगारे के समान गम्भीर ध्वनि करनेहारे एवं गम्भीरों का निनाद करनेहारे अथवा शत्रु बल के वध के समान और नगारे वादन के समान ताड़ने वाले तू (पृथिवीम्) पृथिवी निवासिनी प्रजा को (द्याम्) आकाश के समान उन्नत पुरुषों की राज सभा को भी (उप श्वासय) आश्वासन दे, उनको आश्वस्त कर । (जगत्) समस्त जगत् (विष्ठितम्) विविध पदार्थों से स्थित सुरक्षित होकर (ते) तुझे (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (मनुताम्) जाने । (सः) वह तू (इन्द्रेण) राजा के और सेनापति के साथ (देवैः) और दूसरे विद्वान् पुरुषों के साथ (सजूः) मिलकर (दूरात् दवीयः) दूर से भी दूर के (शत्रून्) शत्रुओं को (अप सेध) परे मार कर । जिस प्रकार दुन्दुभि अपना भयंकर नाद से दूर से ही शत्रुओं को भयकारक नाद करता है उसी प्रकार राजा भी

अपनी भेद नीति, गर्जना और मन्त्र बल से अपने राष्ट्र की रक्षा करे और पर बल का नाश करे।

'दुन्दुभि'—' दुन्दुभिरिति शब्दानुकरण। द्रुमो भिन्नमिति वा दुंदुभ्यतेर्वा स्याद् वधकर्मण ॥ निरु०।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६॥

ऋ० ६। ४७। ३०॥

त्रिष्टुप्। धवतः।

भा०—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभे! भेरी के समान भैरव गर्जन करने हारे, शत्रुओं को पशु के समान काट डालने और भेदने हारे नीतिमान्! तू (बलम् आक्रन्दय) अपने सैन्य-बल को सब तरफ से बुलाकर तैयार रख। (नः) हम प्रजाओं में भी (ओजः) पराक्रम को (आधा) सब प्रकार से धारण करा (नि स्तनिहि) खूब गर्जना कर या सेना बल की वृद्धि कर। और (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ (दुच्छुनाः) पागल कुत्तों के समान दुःखदायी पुरुषों को (इतः) हमारे राष्ट्र से (अप प्रोथ) दूर भगा। तू (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) इन्द्र अर्थात् राजा के प्रहार करने वाले मुक्के के समान प्रबल प्रहार करने वाला (असि) है। तू (वीडयस्व) सदा अपने को दृढ बनाये रख।

दुन्दुभि के पक्ष मे—दुन्दुभि बल को एकत्र करे। सेना बल में बल फूंक दे, बुरे भावों को बाधकर वीर भाव संचारित करे। सैनापति के मुक्के के समान दुःखदायी शत्रुओं के दिलों को धुन डाले।

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

ऋ० ६। ४७। ३१॥

भुरिक् पङ्क्तिः। पञ्चमः।

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! सेनापते! (अमूः) इन पराई शत्रु सेनाओं को (आभज) सम्मुख से परे फेंक दे। (इमाः प्रति आवर्तय) इनको लौटा डाल। (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा वाला नगारा जिस प्रकार बड़े ज़ोर से शब्द करता है, उसी प्रकार यह (केतुमत्) प्रज्ञावान्, शत्रु-हिंसक, सेनापति (वावदीति) बराबर आज्ञाएं देता चला जाय। और (नः) हमारे (अश्वपर्णाः) अश्वों से दौड़ने वाले, घुड़सवार (नरः) वीर सैनिक पुरुष (चरन्ति) गति करें, वेग से चलें, और (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) रथारोही वीर गण (जयन्तु) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

भा०—राष्ट्र के भिन्न २ अधिकारियों के अधीन निपुण पुरुषों के भिन्न २ लक्षण दर्शाते हैं। (कृष्णग्रीवः आग्नेयः) अग्नि नामक प्रधान अग्रणी पुरुष गर्दन में कृष्ण वर्ण का चिन्ह रखें। (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक सभा के विद्वान् पुरुष मेषी अर्थात् भेड़ी के समान श्वेत वस्त्र वाले अथवा ऊन का वस्त्र धारण करें। (सौम्यः बभ्रुः) 'सोम' नाम पदाधिकारी पुरुष 'बभ्रु' अर्थात् भूरे रंग की पोशाक पहने। (पौष्णः श्यामः) पूषा अधिकारी के पुरुष श्याम रंग की पोशाक पहनें। (बार्हस्पत्यः शिति-पृष्ठः) बृहस्पति के अधीन पुरुष पीठ पर काले रंग की पोशाक धारण करें। (वैश्वदेवः शिल्पः) विश्वेदेव अर्थात् सामान्य प्रजा के सेवक जन नाना वर्णों की पोशाक वाले हों। (ऐन्द्रः अरुणः) 'इन्द्र' सेनापति के लाल केसरिया। (मारुतः कल्माषः) मरुत्, तीव्र वेगवान् सेना के सैनिक जन कल्माष,

---

५८, ५९, ६०—[illegible]

चितकबरे या खाकी रंग की पोशाक पहने। (ऐन्द्राग्न सहित) इन्द्र और अग्नि दोनों के समान रूप से कर्ता जन, मिले हुए पोशाक पहनें। (सावित्र अधोराम) 'सविता' के नीचे से श्वेत हों, (वारुण कृष्ण) वरुण के भृत्य काले पोशाक के हों, परन्तु (पेत्व) अति वेग से जाने वाले का या पूरे सवारी में (एकशितिपात्) एक पैर काले रंग का हो।

ये चिह्न भिन्न २ विभागों के कार्यकर्त्ताओं के नियत किये जाय अथवा उन २ विभाग के चिह्नों पर इस २ प्रकार के पशु का चित्र हो।

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष ऽआग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥ ५६ ॥

भा०—(अनीकवते अग्नये रोहिताञ्जि अनड्वान्) अनीकवान्, सेना मुख के स्वामी, अग्रणी पुरुष का लक्षण लाल वर्ण का वृषभ हो। अर्थात् जिस प्रकार लाल रंगोंगी का बैल शकट को ढोता है उसी प्रकार वह अग्रणी पुरुष सेना व्यूह के अग्र में रह कर सेना व्यूह को मार्ग पर लेजाता है। इसी से उस अग्रणी नेता का व्यंग्य लक्षण लाल चिन्ह का शकटवाही बैल है। (अधोरामौ सावित्रौ) सविता अर्थात् पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री पुरुष अपने अधो भाग, इन्द्रियों से रमण करते हैं इससे उनके प्रतिनिधि चिह्न 'अधोराम'—नीचे को शुक्र वाले या अधो भाग में शुक्र = श्वेत भाग वाले बकरे नियत जानो। (पौष्णौ) प्रजाओं के पालन पोषण करने वाले धनाढ्य स्त्री पुरुष दोनों (रजतनाभी) मानो सबको सुवर्ण, चान्दी, धन से अपने साथ बांध लेने में समर्थ होते हैं। इसलिये उनके लक्षण नाभि में स्थित श्वेत वर्ण वाले दो पशु कल्पित हैं। (वैश्वदेवौ पिशङ्गौ) विश्वदेव, सामान्य प्रजा के स्त्री पुरुष निःशस्त्र होने से (तूपरौ) विना सींग के पशु ही उनके चिह्न हैं। (मारुत कल्माष) वायु जिस प्रकार वेग से आकाश को धूलिधूसरित या नाना मेघावृत कर देता

है उसी प्रकार मरुत् के समान तीव्र वेगवान् सेना के जन युद्धस्थल को नाना वर्णों से रंग देते हैं इसलिये उनका निदर्शक चिह्न चितकबरा या सारंगी पशु है । (आग्नेय कृष्ण अज) अग्नि अग्र आदि के विभाग का चिह्न श्याम अज है, क्योंकि उनके अग्नि-अस्त्र में श्याम अथवा काला बारूद, मसाला और अन्न अर्थात् गोले आदि के दूर फेंकने के लिये वह प्रयुक्त होता है इस दर्शन से उनका निदर्शक 'कृष्ण अज' है । (सारस्वती मेषी) भेड़ जिस प्रकार सिर झुका कर चलती है और भेड़ जिस प्रकार माथे से प्रहार करता है उसी प्रकार सरस्वती के उपासक विद्वान् विनय से रहते हैं और मस्तक से विज्ञान द्वारा स्पर्धा करते हैं, इसलिये उनकी सभा सरस्वती का लक्षण मेषी है । (याम्य पेत्व) अज जिस प्रकार अति तीव्रगामी है और जिस प्रकार दुष्टों का वारक दमनकारी नियन्ता भी अति नाशकारी है उसका का चिह्न भी (पेत्व) तीव्रगन्ता अज है ।

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

भा०—(गायत्राय) गायत्री छन्द से जाने गये प्रकाश बल से युक्त और (राथन्तराय) रथ, बल या आत्मज्ञान से तरण करने वाले (अग्नये) अग्नि अर्थात् अग्रणी, प्रधान पुरुष के लिये (अष्टाकपाल) आठ कपालों में परिष्कृत विभाग आवश्यक है । वह अपने अधीन विभागार्थ आठ विभागवान् पुरुषों को नियुक्त करे । (त्रैष्टुभाय) क्षात्र बल से युक्त (पञ्चदशाय) पन्द्रह अंगों से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (एकादश

कपाल) ११ कपालों अर्थात् विद्वान् पुरुषों से परिपक्व विचार आवश्यक है। (जागतेभ्य) जागत अर्थात् वैश्यों से समृद्ध (वैरूपेभ्य) नाना प्रकार की रुचि वाले (विश्वेभ्य देवेभ्य) समस्त दानशील पुरुषों के लिये (द्वादशकपाल) १२ कपालों अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित परिपक्व विचार आवश्यक है। (मैत्रावरुणाभ्याआनुष्टुभाभ्या एकविंशाभ्या वैराजाभ्या पयस्या) प्राण और अपान के समान मित्र और वरुण, दोनों आनुष्टुभ अर्थात् इस सामान्य जनों के हितकारी २१ अधिकारियों से युक्त विशेष कान्ति दोनों को 'पयस्या' चरु हो अर्थात् दूध जिस प्रकार शुद्ध सात्विक एवं पुष्टिप्रद है उसी प्रकार शुद्ध सात्विक और पुष्टिप्रद पुरुष ही प्रजा के न्याय निर्णय और दुष्ट दमन के कार्यों का विधान करें। (पाङ्क्ताय त्रिनवाय, शाक्वराय बृहस्पतये चरु) पांचों जनों के हितकारी २७ विभागों से युक्त शक्तिशाली बृहस्पति के लिये (चरु) अन्नमात्र भोग्य पदार्थों की व्यवस्था होनी चाहिये। (सवित्रे) प्रजोत्पत्ति करने वाले (औष्णिहाय) अति अधिक स्नेहवान् (त्रय' त्रिंशाय) तेतीस विभागों से युक्त, (रैवताय) धनधान्यवान् के लिये (द्वादशकपाल) १२ कपालों में संस्कृत अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित (प्राजापत्य) प्रजा पालक पिता माता के निमित्त (चरु) विधान होना चाहिये। (अदित्यै विष्णुपत्न्यै चरु) राजा की अखण्ड पालक शक्ति के लिये भी परिपक्व विचार होना आवश्यक है। (वैश्वानराय अग्नये द्वादशकपाल) समस्त नरनारी के हितकारी नेता के लिये द्वादश कपाल अर्थात् उसके अधीन १२ विद्वान् विचारक हों। (अनुमत्या अष्टाकपाल) अनुमति नाम सभा के लिये आठ कपाल अर्थात् आठ विद्वान् आवश्यक हैं।

कपाल शब्द केवल विभागप्रदर्शक है।

इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

[अ० १०, ११] नारायण ऋषिः । *

॥ ओ३म् ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥१॥

सविता देवता । निचृत् । धैवतः ॥

भा०—हे (सवितः) सब जगत् के उत्पादक ! हे (देव) सब के द्रष्टा और प्रकाशक परमेश्वर ! एवं विद्वन् ! (यज्ञं) परस्पर संगति से होने वाले कार्य का (प्रसुव) भली प्रकार संचालन कर। और (भगाय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (यज्ञपतिम्) यज्ञ, प्रजापालक, राष्ट्र के पालक राजा का (प्रसुव) उत्तम रीति से अभिषेक कर। (दिव्यः) ज्ञान और प्रकाशक गुणों से युक्त होकर (गन्धर्वः) गौ, वाणी और पृथ्वी का धारण करने वाला परमेश्वर, विद्वान् और राजा (केतपूः) अपने ज्ञान से सब को पवित्र करने हारा होकर (नः केतं) हमारे ज्ञान और चित्त को (पुनातु) पवित्र करे। और वह (वाचस्पतिः) समस्त वाणियों का पालक प्रभु, विद्वान्, समस्त आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी (नः) हमारी (वाचं) वाणी को (स्वदतु) स्वादयुक्त, मधुर करे, अथवा स्वयं स्वीकार करे। शत० १३।६।२।९ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सब के प्रकाशक

---

* अथ पुरुषमेधः । श० १३।६।२।१—२० ॥

प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाले, एवं सबों से वरण करने योग्य, सर्वोत्तम (भर्ग) पापों के भून डालने वाले तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं। (य) जो (न) हमारे (धिय) बुद्धियों, कर्मों और स्तुति-वाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग में प्रेरित करे। शत० १३।६।२।९ ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ ३ ॥

श्यावाश्व ऋषि । सविता देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (देव सवित) सर्व प्रकाशक ! सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (विश्वानि) सब प्रकार के (दुरितानि) दुष्ट आचरणों और दुःखदायी, बुरे व्यसनों को (परासुव) दूर करो। (यत् भद्रम्) जो सुखदायक, कल्याणकारी है (तत्) उसे (न) हमें (आसुव) प्राप्त कराइये ॥ शत० १३।६।२।९॥

वि॒भ॒क्तार॑ᳪ हवामहे॒ वसो॑श्चि॒त्रस्य॒ राध॑सः ।
स॒वि॒तार॑ं नृ॒चक्ष॑सम् ॥ ४ ॥

मेधातिथिर्ऋषि । सविता । देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(चित्रस्य) विचित्र, (वसो) इस पृथ्वी पर बसने वाले चराचर जीवससार रूप ससार के बसाने वाले प्रभु के (राधस) धन के (विभक्तारम्) विभाग करने वाले, उनको नाना वर्गों, श्रेणियों और कर्मों में विभक्त करने वाले, (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के द्रष्टा, सर्व साक्षी, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक 'सविता' नाम विद्वान् और परमेश्वर की (हवामहे) हम स्तुति करते हैं।

ब्रह्म॑णे ब्राह्म॒णं क्ष॒त्राय॑ राज॒न्यं᳖ म॒रुद्भ्यो॒ वैश्यं॒ तप॑से॒ शूद्रं॒ तम॑से॒
तस्क॑रं नार॒काय॑ वीर॒हणं॑ पा॒प्मने॑ क्ली॒बमा॑क्र॒याया॑ ऽअ॒योगूं॑

कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

भा०—(१) (ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) ब्रह्म, परमेश्वर की उपासना, ब्रह्म ज्ञान, वेदाध्ययन, अध्यापन इन कार्यों के लिये 'ब्राह्मण' ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् को नियुक्त करो।

(२) (क्षत्राय राजन्यम्) प्रजा को विनष्ट होने से बचाने, राज्य पालन और वीर्य पराक्रम के कार्य करने के लिये 'राजन्य' अर्थात् श्रेष्ठ राजा को नियुक्त कर।

(३) (मरुद्भ्यः वैश्यम्) मनुष्यों के हित के लिये, उनके अन्न आदि उत्पन्न करने, गो पालन और प्रदान और अन्य नाना व्यवसाय बढ़ाने के लिये (वैश्यं) वैश्य को नियुक्त करो।

(४) (तपसे) श्रम के कार्य के लिये (शूद्रम्) शीघ्रता से द्रुत गति से जाने वाले, श्रमशील पुरुष को नियुक्त करो।

(५) (तमसे) अन्धकार के भीतर कार्य करने के लिये (तस्करम्) उसमें जो पुरुष कार्य करने में समर्थ है उसको ही नियुक्त करो।

(६) (नारकाय वीरहणम्) नरक की योनि के कष्ट भोगने के लिये (वीरहणम्) पुत्रों और अपने ही वीर्यवान् पुरुषों के नाश करने वाले को पकड़ो।

(७) (पाप्मने क्लीबम्) पाप को नष्ट करने के लिये कार्य में 'क्लीब' अर्थात् ऐसे शक्तिहीन पुरुष को नियुक्त करो कि वह पाप कर ही न सके। अथवा, उसका अनुकरण करो, पाप के प्रति सदा नपुंसक के समान उदासीन होकर रहो।

(८) (आक्रयाय अयोगूम्) सब प्रकार के पदार्थों के क्रय विक्रय करने के लिये 'अयोगू' अर्थात् चांदी सोने आदि के परिमाण सिक्कों की गणना और व्यवहार किए पुरुष को नियुक्त करो।

(५-१०) [illegible] ([illegible]) [illegible] ।

(९) (कामाय पुंश्चलूम्) काम के उपभोग में गिरने के निमित्त पुरुषों में अति चंचल स्वभाव की पुरुष या स्त्री को दोष युक्त कंस्या जानो।

(१०) (अतिक्रुष्टाय मागधम्) अति राग से आलाप करने के लिये 'मागध' को उपयुक्त जानो। शत० १३।६।२।१०॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभध्ं हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदं कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्य्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

निचृदष्टि । मध्यम ॥

भा०—(११) (नृत्ताय) नाट्य के लिये (सूतम्) दूसरे से प्रेरित होने वाले अथवा नाट्य के पात्रों के प्रेरक पुरुष को नियुक्त करो।

सूतम् क्षत्रियाद् ब्राह्मण्या जातम् इति दयानन्दस्ताचिन्त्यम्।

(१२) (गीताय शैलूषम्) गीत कर्म के लिये 'शैलूष' अर्थात् ऐसे नट को उपयुक्त जानो जो नाना भाव विकारों को दर्शाते हुए गा सके।

(१३) (धर्माय सभाचरम्) धर्म, अर्थात् स्मृति शास्त्र रात नियम या विधान के निर्णय के लिये 'सभाचर' अर्थात् धर्मसभा में कुशल पुरुष को उपयुक्त जानो।

(१४) (नरिष्ठायै) नेता के पद पर स्थिति प्राप्त करने के लिये (भीमलम्) भयङ्कर, भीतिप्रद पुरुष को नियुक्त करो जिसके भय से प्रजाजन उस पद का मान करें।

(१५) (नर्माय) कोमल वचनों के प्रयोग करने के कार्य में (रेभम्) सुन्दर वचनों का प्रयोग करने वाले स्तुति करने में चतुर पुरुष को प्राप्त करो।

(१६) (हसाय) आनन्द विनोद और उपहास के काम में (कारिम्) नकल उतारने वाले को चतुर जानो।

(१७) (आनन्दाय) आनन्द, गृहसुख प्राप्त करने में (स्त्रीसखम्) अपनी स्त्री के साथ मित्र रूप से रहने वाले पति को योग्य जानो।

(१८) (प्रमदे) अति अधिक हर्ष, काम वेग के उत्पन्न करने के कार्य में (कुमारीपुत्रम्) कुमारी दशा में व्यभिचार से उत्पन्न कानीन बच्चे को जानो। अर्थात् कुमारी दशा में बिना विवाह के जो नाजायज पुत्र पैदा होते हैं वे अपुष्ट काम व्यसनों में फंसकर प्रायः दुराचारी होते हैं इसलिये उनको दूर करने का यत्न करो।

(१९) (मेधाय) बुद्धि के कार्य में (रथकारम्) रथकार को दृष्टान्त के रूप से जानो। रथकार जिस प्रकार नाना कौशल से रथ के नाना प्रकार के अवयवों को जिस बुद्धिमत्ता से लगाता है उसी प्रकार बुद्धिपूर्वक कार्ययोजना के लिये रथकार शिल्पी का अनुकरण करना चाहिये।

(२०) (धैर्याय) धैर्य की शिक्षा के लिये (तक्षाणम्) तरखान को दृष्टान्त रूप से जानो। जिस प्रकार श्रम से तरखान अपने छोटे से औज़ार से बड़ी धीरता से अपने हाथ पांवों को बचाते हुए लकड़ी को गढ़ कर उत्तम कपाट, मेज़, कुर्सी आदि बना देता है उसी प्रकार हम धैर्य से अपने साधनों का प्रयोग करके श्रम से पदार्थों को तैयार करें। अधीर होकर जल्दबाज़ी से कार्य बिगड़ जाते हैं अपने ही औज़ार अपना नाश करते हैं।

तपसे कौलालं मायायै कर्मारं रूपाय मणिकारः शुभे वपः शरव्याया इषुकारः हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥ ७॥

भा०—(२१) (तपसे कौलालम्) अग्नि से तपाने के कार्य में (कौलालम्) कुलाल अर्थात् घड़े के बनाने वाले कुम्हार का अनुकरण करो। वह जिस प्रकार कच्चे भाण्डों को बड़ी विधि से रख कर अग्नि से उनको

तपाता है इसी प्रकार हम भी माँ बाप आचार्य अपने शिष्यों और राजा अपने प्रजा और राष्ट्र के कार्यों की रक्षा करते हुए उनको परिपक्व करें।

(२२) (मायायै कार्मारम्) बुद्धि और आश्चर्य के कार्य करने के लिये लोहकार का अनुकरण करो। जैसे वह बुद्धिमत्ता से लोहे आदि पदार्थों के नाना द्रव्य बनाता है वैसे ही बुद्धिपूर्वक नाना पदार्थों को उत्पन्न करने का कौशल उससे सीखना चाहिये।

(२३) (रूपाय मणिकारम्) रुचिकर, सुन्दर जडाऊ पदार्थ को बनाने के लिये 'मणिकार' का अनुकरण करो। मणिकार, मणियों के आभूषण बनाने वाले जिस प्रकार सूक्ष्मता से मणियों को धैर्य से जडता है वह सुन्दर आभूषण बन जाता है उसी प्रकार धैर्य से पदार्थों को सुन्दर बनाने का यत्न करो।

(२४) (शुभे) मुख की शोभा के लिये (वपम्) केश दाढ़ी के काटने वाले नाई को लो। इसी प्रकार राष्ट्र की समृद्धि के लिये (वपम्) बीज वपन करने वाले किसान को लो। सुन्दरता को पैदा करने के लिये जिस प्रकार नाई अपने औज़ारों से मुख पर की शोभा के विघातक बालों को छाट कर सुन्दर बना देता है उसी प्रकार राजा भी राष्ट्र के उत्तम पदार्थों की शोभा के नाशक कारणों को दूर करे। महामारी दुर्भिक्षादि को दूर करने के लिये कृषकों को भी नियुक्त करे। या कृषक के समान ही मनुष्य अपनी शोभा, शुभ सन्तान के लिये धैर्य से स्त्री रूप भूमि में बीज वपन करे और उसके समान ही सन्तानों की रेख देख करे।

(२५) (शरव्यायै) बाणों को प्राप्त करने के लिये (इषुकारम्) बाण बनाने वाले को प्राप्त करो, उसे राष्ट्र में बसाओ।

(२६) (हेत्यै धनुष्कारम्) दूर फेंकने वाले अस्त्रों के लिये धनुष आदि बनाने वाले शिल्पि को प्राप्त करो।

(२७) (कर्मणे) अधिक देर तक युद्ध कार्य करने के लिये (ज्याका-

रम्) डोरा के बनाने वाले को प्राप्त करो। अधिक कार्य में डोरी बार २ टूटना सम्भव है, इसलिये उसके बनाने वाले से बराबर डोरियां प्राप्त हो सकेंगी।

(२८) (दिष्टाय) बहुत लम्बी रस्सा करने के लिये (रज्जुसर्जम्) लम्बी रस्सी बनाने वाले का अनुकरण करो। वह जिस प्रकार छोटे २ सूतों से भी लम्बा रस्सा बना लेता है उसी प्रकार राजा अल्प शक्ति वाले मनुष्यों की भी लम्बी और दृढ़ सेना बनावे। और उनको उसके समान पुनः आवर्त्तन या अभ्यास द्वारा परिपक्व करे।

(२९) (मृत्यवे मृगयुम्) मृत्यु अर्थात् दुष्ट प्राणियों के वध के लिये (मृगयुम्) व्याध को उपयुक्त जानो। दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये राजा व्याध का अनुकरण करे। उसी के समान खोज २ कर दुष्ट पुरुषों को नाना उपाय से प्रलोभन आदि के जाल में फंसा कर मार दे और उनसे निर्दय होकर मृत्युदण्ड दे।

(३०) (अन्तकाय श्वनिनम्) दुष्ट प्राणियों का अन्त करने के लिये 'श्वनी' अर्थात् कुत्ते पालने वाले शिकारी को नियुक्त करो। अथवा—जिस प्रकार कुत्तों को साथ लेकर शिकारी अपने शिकार को चारों ओर से घेर कर व्याघ्र आदि को भी मार डालता है उसी प्रकार राजा भी शत्रु और दुष्ट पुरुषों को घेर २ कर नष्ट करे।

'दिष्टाय रज्जुसर्पम्' और 'अन्तकाय श्वनिनम्' ऐसा पाठ मान लेना भी प० श्री पाद दामोदर भट्टजी का असंगत है। वह उन्हीं के प्रकाशित शुद्ध यजुर्वेद के पाठ से विपरीत भी है।

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्ध-
र्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदम-
येभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो बिदलकारीं यातु-
धानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

(३१) (नदीभ्य) नदीयों के पार करने के लिये (पौञ्जिष्ठम्) काष्ठखण्डों के पुञ्जों पर बैठ कर नदी पार करने वाले या बड़े पशुओं की खालों की मशक बना कर उस पर तैरने वाले पुरुषों को नियुक्त करें ।

(३२) (ऋक्षीकाभ्य नैषादम्) ऋच्छ जाति के वनचारी जन्तुओं के लिये नैषाद, अर्थात् निषाद या जंगली जाति के पुरुषों को नियुक्त करें । वे ऋक्ष आदि को सुगमता से वश कर लेते हैं । अथवा—(ऋक्षीकाभ्य) कुटिल चालों को चलने वाली स्त्रियों को वश करने के लिये (नैषादम्) नीच धर्म से रहने वाले पुरुषों को ही नियुक्त करें ।

(३३) (पुरुषव्याघ्राय) पुरुषों में व्याघ्र के समान शूरवीर पुरुषों के पद के लिये (दुर्मदम्) दुर्दान्त, अदम्य पुरुष को नियुक्त करें ।

(३४) (गन्धर्वाप्सरोभ्य) युवा पुरुष और युवति स्त्रियों की रक्षा के लिये (व्रात्यम्) व्रात अर्थात मनुष्यों के हितकारी विद्वान् को नियुक्त करो ।

(३५) (प्रयुग्भ्य) उत्कृष्ट योगाभ्यासों के लिये प्रवृत्त, (उन्मत्तम्) उत्तम कोटि के हर्ष से युक्त योगी को जानो ।

(३६) (सर्वदेवजनेभ्य अप्रतिपदम्) सर्व, राष्ट्र भर में गुप्तचर के काम करने के लिये और 'देवजन' अर्थात् युद्ध के विजय करने निमित्त सैनिक के कार्य करने के लिये (अप्रतिपदम्) अर्थात् अज्ञात पुरुष को प्राप्त करे अर्थात् जिसको कोई जान न सके ऐसे को चर बनावे और जो किसी को कुछ नहीं समझे ऐसे को सिपाही बनावे ।

(३७) (अयेभ्य) पासों के खेलने के लिये (कितवम्) ज्वारी पुरुष को दोषी जाने ।

(३८) (ईर्य्यताये अकितवम्) दूसरों को सन्मार्ग पर ले चलने के लिये छल कपट से रहित सज्जन पुरुष को नियुक्त करे ।

(३९) (पिशाचेभ्य) कच्चे मांस पर गीध की तरह रूप भोग पर पड़ने वाले पुरुषों को वश करने के लिये (विदलकारीम्) विरुद्ध

छल कपट करा देने वाली मांसपिण्ड पर गीधों के समान आक्रमण में फोड़ डाल देने वाली नीति का प्रयोग करे।

(४०) (यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्) कुटिल मार्गों से धन प्राप्त करने वाले और प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, ठगों, चोर लुटेरों के नाश करने के लिये कण्टकी अर्थात् हिंसा करने वाली नीति को अपने व्यवहार में लाने वाली सेना को अथवा उन पर रोक रखने की नीति का प्रयोग करे।

कण्टकः कन्तपो वा कृन्ततेर्वा कण्टतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। निरु० ॥ कण्टति चरयति परान् इति स्कन्दस्वामी।

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

भा०—(४१) (संधये) परस्त्रीगमन के लिये आने वाले (जारम्) जार, व्यभिचारी पुरुष को राष्ट्र से दूर करे। अथवा—(संधये) परराष्ट्र से संधि करने के लिये (जारम्) उत्तम रीति से बात कहने वाले, वाक्य-कुशल विद्वान् को या वृद्ध पुरुष को नियुक्त करे।

(४२) (गेहाय) घर में विद्यमान स्त्री के प्रति दुर्बुद्धि से (उपपतिम्) पति के समान भोग करने में प्रवृत्त उपपति पुरुष को राष्ट्र से दूर करे।

(४३) (आर्त्यै) आर्ति अर्थात् क्षुधा आदि पीड़ा को दूर करने के लिये (परिवित्तम्) परोक्ष धनवान् पुरुष को प्राप्त करो।

(४४) (निर्ऋत्यै) निर्ऋति अर्थात् भूख, महामारी आदि कष्टों को दूर करने के लिये (परि-विविदानम्) सब तरफ से साधनों को प्राप्त करने वाले को नियुक्त करो।

(४५) (अराध्यै) कार्य में सिद्धि न होती हो तो उसको या दरि-

द्वता को दूर करने के लिये (एदिधिषु. पतिम्) पूर्व ही धारण करने योग्य सम्पत्ति के पालक स्वामी को प्राप्त करो ।

परिवित्त, परिविविदान और एदिधिषु पति इन शब्दों का लौकिक संस्कृत में अर्थ इस प्रकार है । छोटे भाई के विवाहित होजाने पर जो बडा अविवाहित है वह 'परिवित्त' कहाता है । और वह छोटा भाई 'परिविविदान' कहाता है । इसी प्रकार बडी बहिन के विवाह के पूर्व ही छोटी बहिन विवाह करे तो वह 'एदिधिषु' या 'अग्रे दिधिषु' है उसका पति 'एदिधिषूपति' कहाता है । महर्षि के मत में—(आर्त्यै) काम पीडा में प्रवृत्त हुए (परिवित्तम्) विवाहित छोटे भाई के अविवाहित बडे भाई को दूर करो । अर्थात् उसका भी विवाह करो । या राजा ऐसा नियम बनावे कि बडे भाई के पहले छोटे भाई का विवाह न हो । इससे स्त्री की अभिलाषा के कारण गृह कलह न होवे । (निर्ऋत्यै परिविविदानम्) निर्ऋति अर्थात् पृथिवी के लेने के लिये प्रवृत्त परिविविदान बडे भाई की उपेक्षा करके दाय भाग लेने वाले छोटे भाई को दूर करो । अर्थात् राजा नियम बना दे कि बडे भाई की उपेक्षा करके छोटे भाई को जायदाद न मिले ।

इसी प्रकार (अराद्ध्यै एदिधिषु पतिम्) बडी कन्या के अविवाहित रहते हुए भी छोटी कन्या को विवाह करने वाले पुरुष को 'अराधि' अर्थात् अविद्यमान सिद्धि में प्रवृत्त जान कर उसे दूर करो । इसका तात्पर्य यह है कि बडी कन्या के विवाह योग्य होजाने पर यदि कोई पुरुष अप्राप्तकाला छोटी कन्या से ही विवाह करने में प्रवृत्त हो तो राजा उसको दूर करे । अर्थात् राजा ऐसा नियम बना दे कि प्राप्तकाला बड़ी कन्या के होते हुए अप्राप्तकाला छोटी कन्या को कोई विवाह न करे ।

(४६) (निष्कृत्यै) निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित्त, संताप आदि द्वारा मलशोधन करना 'निष्कृति' है उसके लिये (पेशस्कारीम्) सुवर्ण को तपा २ कर शुद्ध करने की शैली का प्रयोग करो । महर्षि के मत से—प्राय-

मिस के लिये (प्रकृत) 'पेशस्कारीं' अर्थात् रूप बनाकर ठगने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो । अभिप्राय स्पष्ट नहीं है । अथवा—(निष्कृत्यै) प्रायश्चित्त द्वारा मानसिक मलों को दूर करने के लिये (पेशस्कारीम्) रूप बना कर लुभा लेने वाली व्यभिचारिणी स्त्रियों को दूर करें अर्थात् उनके प्रलोभनों से बचें ।

(४७) (संज्ञानाय स्मरकारीम्) ज्ञान को भली प्रकार प्राप्त करने के लिये (स्मरकारीम्) स्मरण, अनुचिन्तन, पुनः २ ध्यान, मनन कराने वाली क्रिया का अभ्यास करो । कठिन बातों का बार २ अभ्यास और मनन करने से उत्तम ज्ञान हो जाता है ।

महर्षि के मत में—(संज्ञानाय प्रणाम् स्मरकारीं परासुव) भली प्रकार काम चेष्टा को जगाने में लगी स्मरकारी अर्थात् काम जगाने वाली दूती को दूर करो । इससे काम प्रबोध न होगा ।

(४८) (प्रकामोद्याय) उत्तम कामनाओं से कार्य करने में उद्यत पुरुष के लिये (उपसदम्) जो उसके निकट गत स्थित हो उसको ही लगाओ ।

अथवा—(प्रकामोद्याय = प्रकाम उद्याय) उत्तम इच्छाओं के कथन या यथेष्ट विषयों पर विवाद या कथनोपकथन द्वारा निर्णय करने के लिये (उपसदम्) सर्वत्र २ स्थित होकर विचार करने वाली उपसमिति को प्रयुक्त करो । अथवा—यथेष्ट बात चीत करने के लिये निकटतम मित्र को प्राप्त करो ।

(४९) (वर्णाय) किसी बात को स्वीकार करा देने के लिये (अनुरुधं) अनुरोध करने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

(५०) (बलाय उपदाम्) बल अर्थात् सैन्य बल की वृद्धि के लिये उसमें अधिक उत्साह बढ़ाने के लिये (उपदाम्) भेंट पुरस्कार देने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामथं स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायां अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

(५१) (उत्सादेभ्य) विनाशकारी कार्यों के लिये (कुब्जम्) कुत्सित मार्ग से चलने वाले पुरुष को दण्डित कर।

(५२) (प्रमुदे) विनोदकारी कार्यों के लिये (वामनम्) बौने पुरुष को नियुक्त करो।

(५३) (द्वार्भ्यः) द्वारों की रक्षा के लिये (स्राम) जिसकी आँखों से सदा जल बहता हो ऐसे चक्षु दोष के रोगी पुरुष को मत रक्खो। द्वारों की रक्षा के लिये तीव्र दृष्टि और प्रभावजनक चक्षु वाला चाहिये।

(५४) (स्वप्नाय) सुखपूर्वक शयन करने के लिये (अन्धम्) अन्धे, नेत्रहीन पुरुष को मत नियुक्त करो। प्रत्युत अच्छे देखने वाले को पहरेदार बनाओ। अथवा जिस प्रकार अंधे को रूप का ज्ञान न होने से उसको रूप के स्वप्न नहीं आते इसी प्रकार स्वप्नदोष से बचने के लिये (अन्धम्) अन्धे, लोचनहीन पुरुष का अनुकरण करो। बुरे पदार्थों और व्यसनों के लिये अन्धे के समान बने रहो, उनकी तरफ दृष्टि न करो।

(५५) (अधर्माय बधिरम्) अधर्म के कार्यों के लिये बधिर, बहरे कान से न सुनने वाले का अनुकरण करो। अर्थात् अधर्म की बात पर कान मत दो। अथवा अधर्माचरण के लिये बहरा कर दो।

(५६) (पवित्राय भिषजम्) शरीर और राष्ट्र को पवित्र करने रोग और मलों से रहित करने के लिये 'भिषग्' अर्थात् रोग निवारक, और रोग कारी मैले पदार्थों को दूर करने वाले पुरुष को नियुक्त कर।

अथवा—पदार्थों को स्वच्छ पवित्र रखने के लिये वैद्य या भिषग् को स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष नियत करो।

(५७) (प्रज्ञानाय) दूर के पदार्थों का ज्ञान करने के लिये (नक्ष-

नक्षत्रदर्शम्) नक्षत्रों को देखने वाले या नक्षत्रों को दिखा देने वाले दूरवीक्षण यन्त्र के समान दूरदर्शी विद्वान को नियुक्त करो।

(५८) (आशिक्षायै) सब प्रकार की विस्तृत शिक्षा के लिये (प्रश्निनम्) प्रश्न करने वाले अध्यापक को नियुक्त करो। जितने ही प्रश्न प्रतिप्रश्न उठाए जावेंगे उतना ही विस्तृत ज्ञान प्राप्त होगा।

(५९) (उपशिक्षायै अभि प्रश्निनम्) गम्भीर स्थित विद्यार्थियों की शिक्षा या अति सूक्ष्म विषयों की शिक्षा के लिये उनके सन्मुख नाना प्रश्न करने वाले विद्वान् को नियुक्त करो।

(६०) (मर्यादायै) मर्यादा, न्याय अन्याय की व्यवस्था के निर्णय के लिये (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों को विविध प्रकार से कहने वाले विवेचक पुरुष को नियुक्त करो।

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

भा०—(६१) (अर्मेभ्यः) बड़ी सवारियों के लिये (हस्तिपम्) हस्तिपालन् को नियुक्त कर।

(६२) (जवाय अश्वपम्) वेग से देशान्तर पहुंचने के लिये अश्वों के पालक पुरुष को नियुक्त करो।

(६३) (पुष्ट्यै) अन्न, गोदुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थों के प्राप्त करने के लिये (गोपालम्) गौओं के पालक पुरुष को रक्खो।

(६४) (वीर्याय अविपालम्) वीर्य की वृद्धि के लिये भेड़ों के पालने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

(६५) (तेजसे अजपालम्) तेज, स्फूर्ति की वृद्धि के लिये बकरियों के पालक पुरुष को नियुक्त करो।

यहां पशु-पालन के अनुभवी पुरुषों की यह अनुभवसिद्ध बात है कि

भैंस का दूध सुस्ती बढाता है, गौ का दूध पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक है और बकरी का दूध कान्ति और स्फूर्ति पैदा करता है।

धन्वन्तरि के मत से गोदुग्ध—

पथ्य रसायन बल्य हृद्य मेध्यं गवां पय ॥

अजादुग्ध—छाग कषाय मधुर शीत ग्राहितरं लघु ।

अविदुग्ध—आविक तु पय स्निग्ध कफपित्तहर परम् ।

स्थौल्यमेहहर पथ्य लोमदा गुरुवृद्धिदम् ॥

(६६) (इरायै) अन्न की वृद्धि के लिये (कीनाशम्) किसान को नियुक्त कर ।

(६७) (कीलालाय) अन्न ओषधि के सार भाग को प्राप्त करने के लिये (सुराकारम्) सुरा विधि से भपके द्वारा चुवाने वाले पुरुष को नियत कर ।

(६८) (भद्राय गृहपम्) सुख और कल्याण की वृद्धि के लिये गृह के पालक पुरुषों को नियुक्त करे ।

(६९) (श्रेयसे वित्तधम्) सबके कल्याण के लिये धर्म कार्य करने के निमित्त वित्तधारण करने वाले धनाढ्य पुरुषों को प्रेरित कर ।

(७०) (आध्यक्ष्याय) अध्यक्ष के कार्य के लिये (अनुक्षत्तारम्) क्षत्ता अर्थात् अश्वों को चलाने वाले सारथि या कोचवान के समान अपने अधीन पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

भायै दार्वाहारं प्रभाया ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारᳬं सर्वेभ्यो लोकेभ्य ऽउपसेक्तारमव ऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

भा०—(७१) (भायै) अग्नि के लिये (दार्वाहारम्) लकड़हारे

को नियुक्त करो। पञ्जाब के पश्चिम प्रान्त मुल्तान आदि स्थानों में अग्नी-नढ 'भा' अग्नि का वाचक है।

(७२) (प्रभायै अग्न्येधम्) और अधिक तीव्र अग्नि के लिये अग्नि को और अधिक प्रदीप्त करने वाले पुरुष को नियुक्त कर।

(७३) (ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के विशेष तापकारी पद या तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये 'अभिषेक्ता' अर्थात् राज्य अभिषेक करने वाले विद्वान् को प्राप्त कर। अथवा सूर्य के विशेष ताप को दूर करने के लिये जल से स्नान कराने वाले को नियुक्त कर। अथवा, पथ के मार्ग पर जल सेचने वाले को नियुक्त कर (दया०)

(७४) (वर्षिष्ठाय) अति अधिक सर्वश्रेष्ठ (नाकाय) दुःखरहित परमसुख प्राप्त करने के लिये (परिवेष्टारम्) सर्वत्र व्यापक या सब गुणों के द्वारा परमेश्वर की उपासना कर।

(७५) (देवलोकाय) विद्वान् जनों के कार्य के लिये (पेशितारम्) प्रत्येक अवयव २ के ज्ञान करने वाले को प्राप्त करो। अथवा-(देवलोकाय) विजयेच्छु पुरुषों या विद्वानों के लिये (पेशितारम्) शत्रुओं को पीस डालने वाले सेना को नियुक्त कर। पिश अवयवे। तुदादिः।

(७६) (मनुष्य लोकाय) मनुष्यों को अपने वश करने के लिये (प्रकरितारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले को अथवा (मनुष्यलोकाय) मनुष्यों के हित के लिये उत्तम ज्ञान आदि पदार्थों के प्रदान करने वाले को नियुक्त कर।

(७७) (सर्वेभ्यः लोकेभ्यः उपसेक्तारम्) समस्त प्राणियों के हित के लिये मेघ के समान या माली के समान जल और गुणों का सेचन करने वाले उदार पुरुष को नियुक्त करो, अथवा समस्त लोकों और प्राणियों की सन्तति वृद्धि के लिये वीर्य सेचन में समर्थ, नर जीवों को प्राप्त करो।

(७८) (अव कृत्यै) नीचे की ओर, दुष्टाचरणों की तरफ जाने और (वधाय) प्राणि-वध को रोकने के लिये (उपमन्थितारम्) दुष्टाचरण करने वालों और वधकारी पुरुषों को दण्ड देने वाले प्रबल पुरुष को नियुक्त कर। स्पष्टता के लिये देखो 'भक्ति' अधिकारी का वर्णन। अ० ७।१७॥

(७९) (मेधाय) ताडना करने या दण्ड देने के लिये (वास: पल्पूलीम्) वस्त्र को धोने वाली धोबिन का अनुकरण करो। अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र को धोने वाला तभी तक वस्त्र को छाटता, कूटता है जब तक उसमें मल रहता है उसी प्रकार अपराधियों को राजा उतनी ही ताड़ना करे जिससे उनके मलिन आचार भ्रष्ट हो जाय। इसी बात का अध्यापक और माता पिता भी अपने शिष्य और पुत्रों की ताडना के समय ध्यान रक्खें।

अथवा—(मेधाय) बुद्धि की वृद्धि या सत्सग लाभ के लिये (वास: पल्पूलीं) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली धोबिन उसकी क्रिया का अनुकरण करे। जिस प्रकार खार लगाने से वस्त्र शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार सत्सग लाभ करके मनुष्य सदाचारी होजाय।

अथवा—सग के वस्त्र के समान स्वच्छ अपने उपसेवनीय अंगों और पदार्थों को भी स्वच्छ रखने वाली स्त्री को प्राप्त करो।

वास उपसेवायाम्। चुरादिः। पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयोः। पल्पूल लवनपवनयोः। चुरादिः॥

(८०) (प्रकामाय) उत्तम कामना, काम्य गृहस्थ सुख को प्राप्त करने के लिये (रजयित्रीम्) हृदय को रंगने वाली अर्थात् अनुराग, प्रेम करने वाली, शुभ स्त्री को प्राप्त करो।

अथवा—उत्तम अभिलाषा के लिये (रजयित्रीम्) रंगने वाली स्त्री का अनुकरण करो। जिस प्रकार रंगने वाली वस्त्र को स्वच्छ कर के रंग में रंग देती है इसी प्रकार हृदय को स्वच्छ करके मनुष्य कामना करे तो उसकी अवश्य सिद्धि होती है।

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्या-
यानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनम-
रिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय
परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

(८१) (ऋतये) अर्थात् 'ऋति' हत्या आदि के कार्य के लिये (स्तेनहृदयम्) स्तेन चोर-चोर के समान और हृदय को पकड़ लेना चाहिये। हत्यारे आदि दण्ड से भागते हैं। उसको दिल से प्रेम कर पकड़ना चाहिये।

अथवा—(ऋतये) शत्रु नाश करने के लिये (स्तेन-हृदयम्) चोर के हृदय के समान अप्रकट, छुपे आकार विचार के पुरुष को नियुक्त करे।

(८२) (वैरहत्याय) वैर से हत्या के कर्म को रोकने के लिये (पिशुनम्) उन अपराधों को तुरन्त सूचित करने वाले पुरुषों और साधनों को नियुक्त करे।

(८३) (विविक्त्यै) विवेक के लिये (क्षत्तारम्) सारथि के समान इन्द्रियों को सन्मार्ग में चलाने वाले मन एवं मनुष्यों को सन्मार्ग में चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करे।

(८४) (औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षत्तारम्) सूक्ष्मता सब पदार्थों को दिखाने वाले के कार्य के लिये मार्गदर्शक एवं अश्वों के समान उच्छृंखल वृत्तियों को नियम में रखने वाले, तपस्वी पुरुष को नियुक्त करे। महाभारत काल में धृतराष्ट्र का सञ्जय और दुर्योधन का विदुर 'क्षत्ता' पद पर नियुक्त थे। दशरथ का 'क्षत्ता' सुमन्त्र था। यह भी एक आवश्यक पद था जो राजा को संदिग्ध कार्यों में सलाह देने और सूक्ष्म बातों का विवेचन करने और मोहादि के समय में ज्ञानप्रदर्शन करने का काम करता था। यह कार्य संजय,

विदुर और सुमन्त्र ने अच्छी प्रकार किया था। जाति जन्मादि का इसमें कोई विचार नहीं है।

(८५) (बलाय अनुचरम्) अपने बल बढाने के लिये अपने आज्ञा में चलने वाले पुरुषों को स्वीकार कर।

(८६) (भूम्ने परिष्कन्दम्) बहुत से प्रजा को उत्पन्न करने के लिये सर्वत्र वीर्य सेचन में समर्थ पुरुषों को आज्ञा करे। अर्थात् यह राज-नियम हो कि नपुंसक, निर्वीर्य पुरुष गृहस्थ में प्रवेश न करें उनको विवाह करने का हक न हो। अथवा—(भूम्ने) बहुतसे सेनाबल के लिये (परिस्कन्दम्) विशेष छावनी, स्कन्धावार को नियुक्त करे।

(८७) (प्रियाय प्रियवादिनम्) अपने प्रिय कार्य के लिये मधुर-भाषी पुरुष को नियुक्त करे।

(८८) (अरिष्ट्यै अश्वसादम) राष्ट्र को नाश न होने देने और उसमें शान्ति स्थापन और कुशल क्षेम करने और विघ्न नाश करने के लिये अश्वारोही सैन्य को नियुक्त करें।

(८९) (स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्) विशेष सुख प्राप्त करने और लोक के हित के लिये कररूप में राजा के भाग को एकत्र करने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

(९०) (वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्) सबसे उत्तम सुख, आनन्द को प्राप्त करने के लिये विज्ञान को सर्वत्र प्रदान करने वाले विद्वान् और ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य को नियुक्त करो।

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥

भा०—(९१) (मन्यवे) मन्यु अर्थात् राष्ट्र के भीतरी क्रोध को शान्त करने के लिये (अयस्तापम्) लोहे को तपाने वाले लोहार को दृष्टान्त

के रूप में हो। वह जिस प्रकार तपे लोहे को एक दम शीतल जल में डालता है या वह उसको संडासी से पकड़ कर उस पर चोटें मार कर यथेष्ट वस्तु बना देता है उसी प्रकार राजा क्रोधान्ध पुरुषों को भी उपाय से वश करे और शान्ति के उपचार करे।

(१२) (क्रोधाय निसरम्) राष्ट्र के बाह्य क्रोध को शान्त करने के लिये (निसरम्) नियमपूर्वक शत्रु के प्रति अभिसरण या चढ़ाई करने वाले को नियुक्त करे।

(१३) (योगाय योक्तारम्) योग अर्थात् चित्त वृत्ति के निरोध के अभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करने वाले पुरुष की आराधना करे।

(१४) (शोकाय) 'शोक' अर्थात् तेजस्वी होने के लिये (अभिसर्तारम्) शत्रुओं के प्रति मुकाबले पर अभिसरण या प्रयाण करने हारे पुरुष को नियुक्त करो।

(१५) (क्षेमाय विमोक्तारम्) रक्षण आदि कुशल प्राप्ति के लिये दुःखों और कष्टों से मुक्त करने वाले को नियुक्त करो।

(१६) (उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्) ऊंचे नीचे स्थानों और अवसरों के लिये तीनों प्रकार के ऊंचे, नीचे और सम एवं तीनों प्रकार के कार्यों में स्थिति करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

(१७) (वपुषे मानस्कृतम्) शरीर के हित के लिये विचारपूर्वक कर्म करने वाले को नियुक्त करो।

(१८) (शीलाय आञ्जनीकारीम्) शील स्वभाव की रक्षा के लिये आदर्श–अञ्जन लगाने वाली सुशील, सुरूप स्त्री का अनुकरण करो।

(१९) (निर्ऋत्यै कोशकारीम्) विपत्ति आदि दूर करने के लिये (कोशकारीम्) कोश संग्रह करने वाली स्त्री या संगति का अनुकरण करो।

अथवा (निर्ऋत्यै) भूमि के प्राप्त करने के लिये (कोशकारीम्) कोश-धनैश्वर्य की वृद्धि करने वाली भूमि को प्राप्त करो।

(१००) (यमाय असूम्) यम अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुष के लिये (असूम्) जिसने अभीतक पुत्र न जना हो ऐसी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री को प्राप्त कराओ। अथवा—(यमाय) नियन्ता राजा के लिये या नियन्त्रण के लिये (असूम्) शत्रुओं पर शस्त्रादि फेंकने वाली सेना को प्राप्त कर।

यमार्य यमुसूमर्थर्वभ्योऽवतोका^ऽसंवत्सुराय पर्य्यायिर्णीं परिवत्सुरायाविजातामिदावत्सुरायातीत्वरीमिद्वत्सुरायातिष्कद्वरीं वत्सुराय विजर्जरा^ऽ संवत्सुराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसुंध^ऽ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

(१०१) (यमाय) नियन्ता पुरुष के लिये (यमसूम्) यम, नियन्त्रण करने वाले नियमों को बनाने वाली या, नियामक पुरुषों को आज्ञा चलाने वाली राजसभा प्राप्त हो।

(१०२) (अथर्वभ्य) प्रजापालक विद्वान् पुरुषों के लिये (अवतोका) शत्रुओं को अपने नीचे दबा कर दुःख देने वाली सेना प्राप्त हो।

(१०३) (संवत्सराय पर्यायिणीम्) संवत्सर ज्ञान के लिये 'पर्याय' अर्थात् क्रम से कालों का ज्ञान कराने वाली यन्त्रकला या गणितविद्या को प्राप्त करो।

(१०४) अथवा जो स्त्री 'अवतोका' है अर्थात् जिसका बालक गर्भ में नष्ट हो जाते हैं उस स्त्री को 'अथर्वा' नामक उन विद्वानों के पास चिकित्सार्थ लेजाय जो बालक के प्राणों को नष्ट न होने दें। अथवा 'अवतोका' वह स्त्री है जिसका बालक प्रसवकाल में नीचे की ओर बाहर को आने को हो ऐसे प्राप्तप्रसवा स्त्री को बालरक्षा के लिए विद्वानों के सुपुर्द करे। (यमाय यमसूम्) जो स्त्री जोड़ा जनती है उसको 'यम' अर्थात् संयमी पुरुष के व्रत पालन के लिये अधीन रक्खो।

(१०५) (संवत्सराय पर्यायिणीम्) एक बार नर और एक बार

ज्यादा सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को (संवत्सराय) एक वर्ष के लिये संयम से रक्खे । उसका यह दोष नष्ट हो जायेगा ।

(१०६) (अविजाताम् परिवत्सराय) किसी कारण से सन्तान को न उत्पन्न करती हो तो उसको 'परिवत्सर' अर्थात् द्वितीय वर्ष में वैद्य की चिकित्सा करानी उचित है ।

(१०७) (अतित्वरीं इदावत्सराय) अति अधिक परिगमन करने वाली—अति कामिनी स्त्री को पुत्र लाभ के निमित्त तीसरे वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

(१०८) (अतिष्कद्वरीं इद्वत्सराय) अति अधिक रज स्राव करने वाली स्त्री की सन्तान के निमित्त पांचवें वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

(१०९) (वत्सराय विजर्जराम्) विशेष रोगादि कारण से कृश या जर्जर शरीर की स्त्री को (वत्सराय) एक वर्ष के लिये संयम से रहने दे ।

(११०) (संवत्सराय पलिक्नीम्) जिस स्त्री के उमर से पहले ही पलित आजाय ऐसी स्त्री का सन्तान के निमित्त ४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

(१११) (अजिनसंधं ऋभुभ्यः) शिल्पी लोगों के कार्य के लिये 'अजिन संध' अर्थात् चर्म के पदार्थों को सीने जोड़ने वाले कारीगर को नियुक्त करो । अथवा विद्वान् पुरुषों या 'ऋभु' अर्थात् राष्ट्र से चमकने वाले राजाओं के कार्य के लिये ऐसे पुरुष को नियुक्त करो जो (अजिनसंधं) अजय राष्ट्रों को भी चर्मों के समान परस्पर संधि या मेल कराने में समर्थ है । इससे राजाओं और विद्वान् शिल्पी पुरुषों की ईर्ष्या न होकर परस्पर सहयोग से शिल्प कला कौशल और व्यापार, राज्य, ऐश्वर्य की उन्नति होती है ।

(११२) (साध्येभ्यः चर्मम्नम्) साध्य अर्थात् वश लाने योग्य पशुओं को जिस प्रकार चमड़े पैठने वाला रगड़ २ कर सुगमता कर लेता है इसी प्रकार (साध्येभ्यः) वश करने योग्य उद्दण्ड पुरुषों के वश करने के लिये उसपर कठोर दण्ड का प्रयोग करने वाले पुरुष को नियुक्त करे ।

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वला-भ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दं विर्षमेभ्यो मैनालं स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

भा०—(११३) (सरोभ्य) सरोवरों के स्वच्छ रखने के लिये (धैवरम्) धीवर को नियुक्त करो । अथवा (सरोभ्य) उत्तम ज्ञानों के प्रास और शिक्षण के लिये (धीवरम्) बुद्धि से श्रेष्ठ पुरुष को नियुक्त करो ।

(११४) (उपस्थावराभ्य दाशं) उपवन में लगे छोटे २ स्थावर वृक्षों की वाटिकाओं के कार्य के लिये या उपस्थित तुच्छ कार्यों के लिये (दाशं) वेतन बद्ध भृत्य को नियुक्त कर लो ।

(११५) (वैशन्ताभ्य) छोटे २ ताल तलैयों के प्रबन्ध और रक्षा के लिये (बैन्दम्) बैन्द अर्थात् उससे लाभ लेने वाले पुरुष को नियुक्त करे । उन ताल तलैयों को वे ही अच्छा रक्खें जो उससे कुछ फ़ायदा उठाते हैं ।

(११६) (नड्वलाभ्य शौष्कलम्) जिन भूमियों में नड, सरकण्डे आदि उत्पन्न हों उन दल्दल वाली भूमियों को बसाने के लिये (शौष्कलम्) शोषण करने या उनके सुखा डालने वाले उपायों से विज्ञ पुरुष को नियुक्त करे ।

(११७) (पाराय मार्गारम्) परले पार या दूर के देशों को जाने के लिये जल जन्तुओं के शत्रु, उनके नाशक पुरुष को नियुक्त कर । और—

(११८) (अवाराय केवर्त्तम्) उरले पार आने के लिये जल के भीतर रहने वाले, उसी में आजीविका करने वाले को नियुक्त करो ।

(११९) (तीर्थेभ्य आन्दम्) तीर्थ, जलों के भीतर उतरने की सीढ़ियों के या घाटों के बनाने के लिये बांध लगाने में चतुर, जो किनारा दृढ़ता से बांध दे ऐसे पुरुष को नियुक्त करो ।

(१२०) (विषमेभ्यः मैनालम्) ऊंचे नीचे विषम संकटमय स्थानों के लिये भी हिंसक जन्तुओं के नाश करने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

(१२१) (स्वनेभ्यः) नाना प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करने के लिये (पर्णकम्) जो पुरुष रक्षा और युद्धादि कार्य में कुशल हो ऐसे को नियुक्त कर ।

(१२२) (गुहाभ्यः किरातम्) पर्वतों की गुहाओं की रक्षा और प्रबन्ध के लिये, दुर्ग कर देने वाले पुरुषों को लगावें । वे उन स्थानों में रहें ।

(१२३) (सानुभ्यः जम्भकम्) पर्वत शिखरों के प्रबन्ध के लिये हिंसक जन्तुओं के नाशक पुरुष को नियुक्त करे ।

(१२४) (पर्वतेभ्यः) पर्वतों में बसने के लिये (किम्पुरुषम्) अल्प शक्ति और व्यवसाय वाले अथवा पुरुष प्रमाण से भी छोटे कद वाले पुरुषों को बसावे ।

बी॒भ॒त्सायै॑ पौल्कस॒ꣳ वर्णा॑य हिरण्यका॒रं तु॒लायै॑ वाणि॒जं प॑श्चादो॒षाय॑ ग्ला॒विन॒ꣳ विश्वे॑भ्यो भू॒तेभ्यः॑ सिध्म॒लं भूत्यै॑ जागर॒णमभू॑त्यै स्वप॒नमार्त्यै॑ जनवा॒दिन॒ं व्यृद्ध्या अपग॒ल्भꣳ स॑ꣳश॒राय॑ प्र॒च्छिद॑म् ॥ १७ ॥

भा०—(१२५) (बीभत्सायै) बीभत्स क्रियाओं के लिये (पौल्कसम्) पुक्कस नाम घृणित पदार्थ के व्यवहारी पुरुष को लगावे ।

(१२६) (वर्णाय हिरण्यकारं) उत्तम वर्ण या सुन्दर वर्ण करने योग्य पदार्थ के लिये (हिरण्यकारम्) सुवर्णकार को नियुक्त करो ।

(१२७) (तुलायै वणिजम्) तुला, तराजू के व्यवहार के लिये वणिक् व्यवसाय में कुशल पुरुष को लगावे ।

(१२८) (पश्चादोषाय ग्लाविनम्) पीछे से दोष देने के लिये ग्लानियुक्त पुरुष, जिसको ग्लानि होजाय वही पीछे से दोष दिया करता है ।

(१२९) (विश्वेभ्य भूतेभ्य) समस्त प्राणियों के सुख के लिये (सिध्मलम्) त्वचा रोग के रोगी पुरुष को सदा दूर रक्खे । अथवा समस्त प्राणियों के सुख के लिये सुखसाधक पदार्थों से युक्त पुरुष को नियुक्त करो ।

(१३०) (जागरणभूत्यै) जागना, सावधान रहना भूति, ऐश्वर्य वृद्धि के लिये आवश्यक है ।

(१३१) (स्वपनम्) सोना, आलस्य करना (अभूत्यै) ऐश्वर्य के नाश के लिये है ।

(१३२) (आर्त्यै, जनवादिनम्) पीडा को दूर करने और उससे खबरदार करने के लिये सर्वसाधारण जनों के प्रति स्पष्ट रूप से बतला देने और उनको सूचित कर देने वाले पुरुष को नियुक्त कर ।

(१३३) (व्यृद्ध्यै अपगल्भम्) ऋद्धि सम्पत्ति के नाश करने के लिये प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) बुरे प्रकार के ढीठ पुरुष को दमन करे । अथवा (व्यृद्ध्यै) सम्पत्ति समृद्धि के नाश या विपरीत गुण वाली समृद्धि से बचने के लिये (अपगल्भम्) दुरभिमानी को दमन कर । और विनीत पुरुष को नियुक्त कर ।

(१३४) (सशराय) अच्छी प्रकार शरों या बाणों का प्रयोग करने के लिये (प्रच्छिदम्) दूर तक छेदन भेदन में कुशल पुरुष को नियुक्त कर ।

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

भा०—(१३५) (अक्षराजाय) पासों से खेलने वाले पुरुषों के बीच राजा, सबका मुख्य होने के लिये (कितवं) कितव, बड़े भारी जूआ

स्वेर धूर्त को, या चतुर पुरुष को जानो। अथवा अक्षों अर्थात् इन्द्रियों के बीच में उनका स्वामी होने के लिये (कितव) अति चतुर, चेतना युक्त मन या आत्मा जिस प्रकार है उसी प्रकार 'अक्ष' अर्थात् अध्यक्ष पुरुषों के बीच में राजा पद के लिये भी 'कितव' अर्थात् विशेष ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष, अथवा सबका स्वामी होनेसे प्रत्येक को यह कहने वाला कि 'किं तव' तेरा क्या कार्य है? इस प्रकार प्रत्येक के कार्य का निरीक्षण करने वाला सूक्ष्म विवेचक पुरुष को सबका निरीक्षक रखना चाहिये।

(१३६) (कृताय) किये कर्म के निरीक्षण के लिये या उसकी और अधिक उन्नति के लिये (आदिनवदर्शम्) किये कर्म में विद्यमान दोष या त्रुटियों को देख लेने में चतुर पुरुष को नियुक्त करे।

(१३७) (त्रेतायै कल्पिनम्) भूत, भविष्यद् और वर्त्तमान तीनों कालों में होने वाले कार्यों को देखने के लिये सामर्थ्यवान् या कल्पनाशील, दूरदर्शी, विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो।

(१३८) (द्वापराय अधिकल्पिनम्) करने वाले और देखने वाले दोनों के करने और निरीक्षण से परे के और भी उत्तम कार्य को करा लेने के लिये और भी अधिक कल्पनाशील चतुर मस्तिष्क को नियुक्त करो।

(१३९) (आस्कन्दाय) सब तरफ से राष्ट्र के रसों को सूर्य के समान शोषण या चूस लेने के कार्य व्यवस्था के लिये (सभास्थाणुम्) सभा के बीच में स्थिर मुख्य पदाधिकारी को नियुक्त करना चाहिये।

(१४०) (मृत्यवे गोव्यच्छम्) गौ आदि पशुओं पर विविध कष्टदायी विकार या चेष्टा करने वाले को मृत्युदण्ड के लिये दे दो।

(१४१) (अन्तकाय गोघातम्) गौ को मारने वाले पुरुष को अन्त कर देने वाले जल्लाद के हाथ सौंप दो।

(१४२) (ये) जो (भिक्षमाणाः) अन्न की भीख मांगता हुआ प्रजाजन (उपतिष्ठन्ति) उपस्थित हो तो उनकी (क्षुधे) भूख की निवृत्ति

के लिये (रा विवृन्तन्तं) भूमि को खोदने, हल चलाने वाले कृषक को नियुक्त करो।

(१४३) (दुष्कृताय चरकाचार्यं) दुष्कर्म के दूर करने के लिये (चरकाचार्यम्) भोज्य पदार्थों के ऊपर आचार्य को नियुक्त कर जो सबको उत्तम पुष्टिकारक भोजन करने का उपदेश करे। और बुरे २ भोजनों के दुर्व्यवहार और हानियों को बतलाता रहे। इससे लोग बुरे आचार व्यवहारों को छोड़ कर उत्तम आहार विहार करना सीखेंगे।

(१४४) (पाप्मने) पाप कार्य को रोकने के लिये (सैलगम्) दुष्टों के वश करने वाले को नियुक्त कर। अथवा (पाप्मने) पापाचरण के लिये दुष्ट पुरुषों के सन्तानों और शिष्यों, साथियों को भी दण्डित कर। उनको पकड़।

प्रतिश्रुत्कार्यावर्तनं घोषाय भुषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकछ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्मम्वरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥१६॥

भा०—(१४५) (प्रतिश्रुत्काय) प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये (अर्त्तनम्) ऐसे व्यक्ति को नियत कर जो लोकों से प्रतिज्ञा निभवा सके। उसके लिये वह उनको दबा भी सके।

(१४६) (घोषाय भषम्) घोषणा करने के लिये बड़ी आवाज से बोलने वाले को नियुक्त कर।

(१४७) (अन्ताय बहुवादिनम्) सिद्धान्त प्रतिपादन, या मर्यादा निर्णय करने के लिये बहुत अधिक कहने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

(१४८) (अनन्ताय मूकम्) अनन्त अर्थात् जिस वाद विवाद की मर्यादा न हो उसको दूर करने के लिये 'मूक' गूंगे का अनुसरण करे। मौन रहे।

(१४९) (शब्दाय आडम्बराघातम्) शब्द करने के लिये आडम्बर पूर्वक वाद्यों को बजाने वाले को नियुक्त करो। अथवा भयंकर शब्द के लिये कोलाहल करने वाले को दण्डित करो।

(१५०) (महसे वीणावादम्) महत्त्व पूर्ण कार्य के लिये वीणा बजाने वाले को नियुक्त करो।

(१५१) (क्रोशाय तूणवध्मम्) सैन्य बल और जन समूह को निमन्त्रण देकर बुलाने के लिये (तूणवध्मम्) तूणव नामक बाजे या डंका बजाने वाले को नियुक्त करो।

(१५२) (अवरस्पराय शङ्खध्मम्) आस पास और दूर के लोगों को बुलाने के लिये शंख बजाने वाले को नियुक्त करो।

(१५३) (वनाय वनपम्) वन की रक्षा के लिये वनपाल को नियुक्त करो।

(१५४) (अन्यतः अरण्याय) जिस देश में एक तरफ वन हो ऐसे देश की रक्षा के लिये (दावपम्) जंगल में लगने वाली आग से देश की रक्षा के रक्षा करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

नर्माय पुंश्चलूं१ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

भा०—(१५५) (नर्माय) कोमल, मन लुभाने वाले वचनों को बोलने में लगी (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो।

(१५६) (हसाय) उपहास के लिये (कारिम्) मज़ाक उड़ाने वाले को दण्डित कर। अथवा शोभाजनक पदार्थों को बनाने के लिये कारीगर शिल्पी को नियुक्त कर।

(१५७) (यादसे शाबल्याम्) जल जन्तुओं की रक्षा के लिये

'शबल' वर्ण अर्थात् मलिन कार्य करने वाली जाति को दूर करो। वे उनका विनाश न करे।

(१५८–१५९) (महसे) बड़े कारबार, या राज्य प्रबन्ध के लिये (ग्रामण्यम्) ग्रामनायक, (गणकम्) गणक, हिसाब में चतुर और (अभिक्रोशकम्) सबको बुलाने वाले (तान्) इन तीन को नियुक्त करे।

(१६०–१६१) (नृत्ताय) नृत्य के लिये (वीणावादं) वीणा बजाने वाले, (पाणिघ्नम्) हाथ से तबले आदि बजाने वाले और (तूणवध्मम्) तुरही बजानेवाले को नियुक्त करो।

(१६२) (आनन्दाय तलवम्) आनन्द, प्रसन्नता के लिये करताल-बजाने वाले को नियुक्त करो।

अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिण॑ᳬ॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय वᳬशन॒र्तिनं॑ दि॒वे ख॑ल॒तिᳬ सूर्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः किर्मि॒रं च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षᳬ रात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥२१॥

भा०—(१६३) (अग्नये पीवानम्) अग्रणी पद के लिये, प्रबल हृष्ट पुष्ट पुरुष को नियुक्त करो।

(१६४) (पृथिव्यै) पृथिवी के शासन के लिये (पीठसर्पिणम्) सिंह-आसन या मुख्य आसन पर विराजनेहारे तेजस्वी पुरुष को नियुक्त कर।

(१६५) (वायवे चाण्डालम्) वायु के समान तीव्र बल से शत्रु के अंग भंग करने के लिये चण्डता से युद्ध करने वाले, प्रचण्डपुरुष को नियुक्त कर।

(१६६) (अन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम्) अन्तरिक्ष में रहने के लिये वंश या बांस पर नाचने वाले का अनुकरण करो। वह व्यायाम से बहुत चुस्त शरीर होकर कूदने फांदने में समर्थ होता है, वह निरवलम्ब स्थान में भी भयभीत नहीं होता।

(१६७) (दिवे) द्यौलोक के ज्ञान के लिये (खलतिम्) नक्षत्रों और ग्रहों के संचालन के जानने वाले को नियुक्त करो।

खलत्यर्थस्य स्फुटत्वे खल्वतिरिति औणादिको निपातः ॥ खलति सञ्चलति इति खल्वतिः। उपधारात् खल्वतिरिति ॥ खल्वतं ग्रहगतिर्भ्रंशो वा।

(१६८) (सूर्याय हर्यक्षम्) सूर्य के समान तेजस्वी पद के लिये हरि अर्थात् सिंह के समान या सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले प्रभावशाली पुरुष को नियुक्त करो। अथवा—(सूर्याय) सूर्य के दुष्प्रभाव को रोकने के लिये या उससे बचने के लिये (हर्यक्षम्) हरे रंग के कांच के बने देखने के यन्त्र का प्रयोग करो।

(१६९) (नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम्) नक्षत्रों के ज्ञान के लिये 'किर्मिर' अर्थात् चित्र विचित्र, काले पर श्वेत चित्र का प्रयोग करो।

(१७०) (चन्द्रमसे किलासम्) चन्द्रमा के प्रकाश का आनन्द लेने के लिये 'किलास' अर्थात् श्वेत वर्ण के पदार्थों पर दृष्टि करो।

(१७१) (अह्ने शुक्ल-पिङ्गाक्षम्) दिन का स्वरूप श्वेत, पीले सूर्य रूप चक्षु को धारण करने वाला जानो।

(१७२) (रात्र्यै कृष्ण-पिङ्गाक्षम्) रात्रि का स्वरूप श्याम और पीली आंख वाला जानो, अर्थात् रात में काला अन्धकार में पीत वर्ण का अग्नि प्रकाश ही चक्षु है।

अथैतानष्टौ विरूपानालभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ २२ ॥

भा०—(अथ) और (एतान्) इन (अष्टौ) आठ (विरूपान्) विरूप रूप वाले पुरुषों को (आलभते) राजा अपने अधीन रखे। (अतिदीर्घं) बहुत अधिक लम्बा, (अतिह्रस्वं च) बहुत छोटा, बौना, (अति

कृश च) बहुत दुबला, पतला, (अतिशुक्ल च) बहुत श्वेत, अति गौर, (अति कृष्ण च) बहुत ही काला (अति लोमश च) बहुत अधिक लोम वाला। ये आठ विचित्र होने से संग्रह करने योग्य हैं। यदि ये (अशूद्रा) शूद्र कर्म करने वाले न हों और (अब्राह्मणा) ब्राह्मण के काम करने वाले विद्वान् भी न हों तो (त) वे (प्राजापत्या) प्रजापालक राजा क ही अधीन उसकी सम्पत्ति पुत्र भरण पोषण याग्य जीव समझ जाय। इसी प्रकार (अशूद्रा अब्राह्मणा) शूद्र और ब्राह्मण के कामके अयोग्य (मागध) स्तुति पाठक, या नृशंस घोर लोभी (पुंश्चली) पुरुषों के भीतर व्यभिचार का जीवन बिताने वाली, चञ्चल नारी, (कितव) जूआखोर और (क्लीव) नपुंसक (ते) ये चारों भी (प्राजापत्या) प्रजापालक राजा के ही अधीन रहें।

अर्थात् यदि ये ब्राह्मण का ज्ञान, सदाचार का जीवन और शूद्र आदि की पराधीनता का जीवन बिता सकें तो राजा इनको अपने अधीन न लेवे क्षत्रियों में रह नहीं सकते क्योंकि वहां वीर चाहियें। स्तुति पाठक, खुशामदी जुआचोर, व्यभिचारी पुरुषों से क्षात्र कर्म नहीं हो सकता। किसी व्यापार में ये लग नहीं सकते। व्यभिचारी जूआखोरों से असत्य व्यवहार और दुराचार बढ़ता है इसलिये ऐसों को राजा अपने नियन्त्रण में रक्खे। मागध को बन्दी बनाकर स्तुति पाठ के लिये रक्खे। 'कितव' को क्रीड़ा के लिये, पुंश्चली को सेवा के लिये, क्लीव को अन्त पुर की भृत्यता के लिये रखे। अथवा ऐसे व्यक्तियों को सबसे अलग कैदखाने में रक्खे जिससे ये दुराचारादि न फैला सकें।

इति त्रिंशोऽध्याय ।



अथैकत्रिंशोऽध्यायः

१—१६] नारायण ऋषिः पुरुषो देवता । पुरुष सूक्तम् । १—१५ अनुष्टुप् गान्धारः ।

॥ ओ३म् ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

भा०—(सहस्रशीर्षा) हजारों शिरों वाला, (सहस्राक्षः) हजारों, अनन्त आंखों वाला, (सहस्रपात्) हजारों, अनन्त पैरों वाला (पुरुषः) 'पुरुष' सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है । वह (भूमिम्) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को भी (सर्वतः) सब प्रकार (स्पृत्वा) व्यापकर (दशाङ्गुलम्) और भी दश अंगुल अर्थात् दश अंग-विकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का (अति-ष्ठत्) अति क्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर उनसे भी अधिक शक्तिमान् होकर विराजता है ।

(१) 'सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्'—सहस्रशब्दस्य उपलक्षणत्वाद् अनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षत्वं सहस्रपादत्वं चेति सायणो ऋग् भाष्ये ।

अर्थ—'सहस्र' शब्द केवल उपलक्षण है । वह अनन्त शिरों से युक्त है, यह अभिप्राय है । सब प्राणियों के सिर उसी महान् पुरुष के देह के भीतर समा जाने से वे सब उसी के हैं । इससे उसके हजारों सिर हैं । इसी प्रकार उसकी हजारों आंखें और हजारों पैर भी हैं । सायण ऋ० भाष्य ।

[१—१६]—श० १३ । ६ । २ । १२ । ऋग्वेद १० । ९० ॥ अथर्ववेद १९ । ६ ॥

जैसे गीता में भी—'अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं'। अनादिमध्यान्तमनन्त-वीर्यमनन्तबाहुम्। 'रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं। इत्यादि। गी० ११॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।

ऋ० १०।८१।३॥

इस मन्त्र के अनुसार अनन्त पदार्थों का द्रष्टा होने से वह सहस्राक्ष आदि है।

(२) 'भूमिम्' भूगोलम् इति दयानन्दः। ब्रह्माण्डगोलकरूपान् इति सायण। भुवनकोशस्य भूमिरिति उवट।

(३) 'दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्।'—'दशाङ्गुलम्' इत्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद् बहिरपि सर्वतो व्याप्यस्थित इत्यर्थः। इति सायणः॥ 'दशा-गुल' यह उपलक्षण भर है। अर्थात् ब्रह्माण्ड को व्याप कर और दश अंगुल बाहर तक भी वह व्याप्त है, अभिप्राय यह है कि ब्रह्माण्ड से बाहर भी सर्वत्र व्याप कर विराजता है।

दश च तानि अगुलानि दशाङ्गुलानीन्द्रियाणि। केचिदन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणं हृदयस्थानम्। अपरे तु नासिकाग्रं दशागुलम्। इत्युवट॥

दश अंगुल दश इन्द्रिय हैं। आत्मा उनसे परे, उनको विषय गोचर नहीं है। कइयों के मत में हृदय दश अगुल प्रमाण है वह उसमें विराजता है। कोई नासिका-अग्र के आगे दश अंगुल मापते हैं। यह उवट का मत है।

पञ्चस्थूलसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यंगानि यस्य तत् जगत्। इति दया०। पाच स्थूलभूत और पाच सूक्ष्मभूत, इन दस अगों वाला जगत् 'दशाङ्गुल' कहाता है वह परमेश्वर इस समस्त जगत् को व्याप कर विराजता है। जैसा लिखा है—

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। उप०। यह महर्षि दयानन्द का मत है।

पुरुषः—सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुष इति सायणः। नारायणाख्य इत्युवटः। सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वर इति दयानन्दः।

सायण के मत से—सब प्राणियों का समष्टि रूप, ब्रह्माण्ड देह के समान धारण करने वाला विराट् नामक पुरुष है। उवट के मत से नारायण नामक पुरुष है। म० दयानन्द के मत से—सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर पुरुष है। पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा पूरयति अन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्। यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥ निरु० प० अ० १। ख० १॥

इमे वै लोकाः पूः। अयमेव पुरुषो योऽयं पवते। सोऽस्यां पुरि शेते। तस्मात् पुरुषः। इति शत०॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

भा०—(पुरुष एव) यह जगत् में पूर्ण व्यापक परमेश्वर ही (यत् भूतम्) जो जगत् उत्पन्न है (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और (यत्) जो (अन्नेन) भोग्य अन्न के समान भोग्य कर्म फल से स्वयं (अतिरोहति) बढ़ता, स्थावर जंगम रूप पृथिव्यादि पर उत्पन्न होता (इदं सर्वम्) इस सबका (उत) और (अमृतत्वस्य) अमृतत्व, मोक्ष या नाश, अविनाशी स्वरूप का (ईशानः) स्वामी, परमेश्वर है। वही सब कुछ रचता है।

सायण के मत में—भूत और भव्य सब वही पुरुष है। वही अमृत स्वरूप का स्वामी भी है। वही भोग्य अन्न के निमित्त से जगत् रूप में प्रकट होता है।

'अन्नेनातिरोहति'—भोग्येन अन्नेन निमित्तभूतेन स्वकीयकारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति। तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वम्। इति सायणः॥
भोग्य अन्न के कारण अपनी कारण-दशा से पार होकर पुरुष दृश्य-जगत्

का रूप प्राप्त करता है। फल भोग के लिये वह जगत् की दशा में आता है। वह वैसा है नहीं।

सायण के मत में ब्रह्म परिणामी हो जाता है। जीवों के कर्म फल भोग के लिये जीव शरीर धारण करे, सो युक्तियुक्त है ईश्वर ही स्वयं ब्रह्माण्ड शरीर में बधे यह अनुचित है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) इतना ये सब दृश्य, ब्रह्माण्डमय जगत् (महिमा) महान् सामर्थ्य का स्वरूप है। (पूरुषः) इस जगत् में परिपूर्ण परमेश्वर (अतः) इससे (ज्यायान् च) कहीं बड़ा है। (विश्वा भूतानि) समस्त उत्पन्न होने वाले पृथिवी आदि लोक (अस्य पादः) इसका एक पाद, एक अंश अथवा उसका ही ज्ञान कराने वाले कार्यरूप ज्ञापक हैं। और (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप (दिवि) तेजोमय अपने स्वरूप (अमृतम्) अमृत, नित्य, अविनाशी रूप से विद्यमान है।

यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्याम्नातस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं। तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षया अल्पम् इति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः। इति सायणः ॥

इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं जगत् परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्य वधिं प्राप्नोति। नानेन कथनेन तस्यानन्तत्वं हन्यते। किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्त्वं जगतो न्यूनत्वं च ज्ञाप्यते। इति दया० 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ज्ञानस्वरूप और अनन्त है ऐसा कहा है। इसका परिमाण नहीं है। इसलिये उसके चार पाद नहीं कहे जा सकते। तो भी जगत् ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षया बहुत छोटा है इस अभिप्राय से 'पाद' रूप से कहा है। (सायण)

सूर्य चन्द्रादि लोक लोकान्तर वाला चर अचर समस्त जगत् परमेश्वर के एक चौथाई अंश में स्थित है । अर्थात् उसके चौथाई अंश के भी बराबर नहीं है । ऐसा कहने से परमेश्वर की अनन्तता नहीं खण्डित होती । परन्तु जगत् की अपेक्षा उसका बड़प्पन और जगत् की अपेक्षा न्यूनता ही कही गई है । (म० दया०)

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

भा०—(त्रिपात् पुरुषः) तीन अंशों वाला पुरुष (ऊर्ध्वः उत् ऐत्) सबसे ऊंचा, संसार से पृथक् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप होकर रहता है । और (अस्य पादः) उसका एक अंश (पुनः) बार बार (इह अभवत्) इस संसार में व्यक्त रूप में विद्यमान रहता है । (ततः) उस एक अंश से ही वह परमेश्वर (साशनानशने अभि) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़, दोनों प्रकार के चराचर लोकों को (विष्वङ्) सब प्रकार से व्याप्त होकर (वि-अक्रामत्) विविध प्रकारों से उनको उत्पन्न करता है ।

'उदैत्'—'दर्शत्स्वमानतिष्ठति' इति उवट । सूर्य के समान स्वयं उत्पन्न होकर सबको प्रकाशित करता हुआ विराजता है ।

'साशनानशने'—साशनमशनादिव्यवहारोपेतम् । प्राणिजातम् । अनशनं तद्रहितम् चेतनं गिरिनद्यादिकम् । इति सायणमहीधरदयानन्दाः । साशनं स्वर्गं अनशनं मोक्ष इति उवट ॥

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

भा०—(ततः) उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (विराट् अजायत) 'विराट्' अर्थात् विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । (विराजः अधि) उस विराट् के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से

१—विराजोऽधि इति काण्व० ।

(पूरुष) पुरमें बसने वाले स्वामी के समान उस ब्रह्माण्ड को पूर्ण करने हारा व्यापक परमेश्वर ही था। (स) वह (पुर) सबसे पूर्व विद्यमान रह कर (जात) कार्य-जगत् मे शक्ति रूप से प्रकट होकर भी (अति अरिच्यत) उससे भी कहीं अधिक बड़ा है। (पश्चात्) पीछे से वह (भूमिम्) प्राणियों और वृक्षादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को उत्पन्न करता है। अथवा—(स जात अतिअरिच्यत) वह प्रादुर्भूत होकर भी उस जगत् से पृथक् रहा। और (स पश्चाद्) वह पीछे (भूमिम् अथो पुर) भूमि और जीवों के शरीरों को उत्पन्न करता है। विशेष विवरण देखो अथर्ववेदालोकभाष्य, का० १८। ६। ९॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒: सम्भृ॑तं पृषदा॒ज्यम्।
प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे वाय॒व्याना॑र॒ण्या ग्राम्याश्च॒ ये॥ ६॥

ऋ० १०। ९०। ८॥

भा०—(तस्मात्) उस (सर्वहुत) सर्वपूज्य, सर्वसम्मत (यज्ञात्) सर्वोपास्य, सबको प्राण आदि सब कुछ देने हारे परमेश्वर प्रजापति से (पृषद्-आज्यम्) दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुआ। और वह ही (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान गुण वाले, तीव्र वेगवान् अथवा (वायव्यान्) वायु से जीने हारे (पशून्) पशुओं के (ये) जो (आरण्या) जंगल के सिंह, शूकर आदि और (ग्राम्या च) ग्राम के गौ, अश्व आदि सबको (चक्रे) उत्पन्न करता है।

अथवा—(पृषदाज्यं सम्भृतम्) (पृषत् आज्यम्) शरीर में पालक और पूरक रूप से विद्यमान वीर्य या शुक्र को व्यक्त रूप में प्रकट करने वाला अथवा जिस वीर्य से प्राणियों के नाना देह यथाक्रम सन्तान रूप मे बराबर उत्पन्न होते हैं वह वीर्य भी उसी परमेश्वर की शक्ति से उत्पन्न होता है।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऽऋच॒: सामा॑नि जज्ञिरे।
छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत॥ ७॥

भा०—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय, सर्वोपास्य एवं सब के दाता, (सर्वहुतः) सर्वसमर्थ, सब कुछ के त्यागने के पात्र अथवा समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लेने हारे उस परमात्मा से ही (ऋचः) ऋग्वेद, ऋचाएं, मन्त्र, (सामानि) सामवेद, साम के समस्त गायनों के ज्ञान (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (छन्दांसि) 'छन्द' अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (यजुः अजायत) यजुर्वेद उत्पन्न होता है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥

भा०—(अश्वाः) घोड़े (ये च के च) और जो भी कोई गधे आदि (उभयादतः) दोनों जबाड़ों में दांत वाले जीव हैं और (गावः) गौएं भी (तस्मात् ह) उससे ही (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) (अजावयः) बकरी, भेड़ें भी (जाताः) पैदा हुई हैं।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

भा०—(तं) उस (यज्ञं) पूजनीय, (अग्रतः जातम्) सबसे आगे, प्रादुर्भूत जगत् के कर्त्ता, (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (अग्रतः) सृष्टि के पूर्व (बर्हिषि) विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में (प्र औक्षन्) सब अभिषिक्त करते हैं। (तेन) उसी ज्ञानमय परम पुरुष से (साध्याः) योगाभ्यास आदि के साधना वाले ज्ञानी और (ऋषयः च) ऋषिगण (ये च) और जो भी हैं वे (अयजन्त) परमेश्वर की उपासना करते हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष (पुरुषम्) उस महान् पूर्ण, पुरुष का (वि अदधुः) विविध प्रकारों से विचार करते हैं, वर्णन

करते हैं, उसके महान् सामर्थ्य का प्रतिपादन करते हैं, वे उसको (कतिधा) कितने प्रकार से (वि अकल्पयन्) विभक्त करते या कल्पना करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इसका मुख भाग क्या है? (बाहू किम्) बाहुएं क्या हैं (ऊरू किम्) जांघे क्या पदार्थ हैं? (पादौ उच्यते) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳩ शूद्रोऽअजायत ॥११॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर की बनाई सृष्टि में (ब्राह्मण मुखम् आसीत्) ब्राह्मण, वेद और वेदज्ञ और ईश्वरोपासक जन मुख रूप हैं। (बाहू राजन्य कृत) राजन्य, क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान बाहु के समान बनाये हैं। (यत् वैश्यः) जो वैश्य हैं (तत्) वह (अस्य ऊरू) उसके जंघा हैं। और (पद्भ्या) पैरों से (शूद्र अजायत) शूद्र को प्रकट किया जाता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

भा०—प्रजापति के ब्रह्माण्डमय विराट् शरीर का वर्णन करते हैं। (चन्द्रमाः) चन्द्र (मनसः) मन रूप से (जातः) कल्पना किया गया है। अर्थात् चन्द्र मानो प्रजापति का मन है। जैसे शरीर में मन वैसे विराट् शरीर में चन्द्र। (सूर्य चक्षो अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया जाता है। मानो उसकी आंख सूर्य है। (श्रोत्रात् वायु च प्राण च) श्रोत्र से वायु और प्राण प्रकट किये जाते हैं। मानो श्रोत्र वायु और प्राण हैं। (मुखात्) मुख से (अग्नि अजायत) अग्नि को प्रकट किया जाता है, मानो अग्नि मुख है।

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षᳬ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन् ॥१३॥

भा०—(नाभ्या अन्तरिक्षम् आसीत्) नाभि-भाग से अन्तरिक्ष

भाग कल्पित है । (द्यौः) आकाश (शीर्ष्णः सम् अवर्तत) सिर भाग से कल्पित हुआ । (पद्भ्याम् भूमिः) पैरों से भूमि और (दिशः श्रोत्रात्) श्रोत्र से दिशाएं तथा (लोकान्) लोकों को (अकल्पयन्) कल्पित किया गया है । उस विराट् के अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्यौ है, भूमि पैर हैं, कान दिशाएं तथा लोक हैं ।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥

भा०—(यत्) जब (हविषा) स्वीकार करने योग्य, साक्षात् करने योग्य, परम ध्येय, (पुरुषेण) पूर्ण परमेश्वर से (देवाः) विद्वान् गण (यज्ञम्) उपासनामय ज्ञानयज्ञ का (अतन्वत) सम्पादन करते हैं तब (अस्य) इस यज्ञ का (वसन्तः) वर्ष के प्रारम्भ काल, वसन्त ऋतु के समान सौम्य भाग दिन का पूर्वाह्न भाग (आज्यम्) अग्नि को घृत के समान आत्मा के बल वीर्य की प्राप्ति कराता है । (ग्रीष्मः इध्मः) वर्ष में ग्रीष्म ऋतु के समान दिन का मध्याह्न भाग, अग्नि को इंधन के समान आत्मा की ज्ञानाग्नि को अधिक प्रखर कर देता है । (शरद् हविः) वर्ष के शरद् भाग के समान शीतल, शान्तिदायक रात्रि काल आत्मा के समस्त प्राणों को पुनः आत्मा में आहुति देने वाला होने के कारण यज्ञ में हवि के समान वह भी 'हवि' है ।

इसी प्रकार प्रारम्भ में बाल्यकाल वसन्त, यौवन, ग्रीष्म और वृद्धता शरद् है । उपासकों के मत में—वसन्त सत्व । ग्रीष्म रजस् और शरद् तमो गुण है ।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्गण (यद्) जिस (यज्ञं) यज्ञ का (तन्वानाः) करते हुए (पुरुषं) पूर्ण पुरुष को (पशुम्) सर्वद्रष्टा रूप

से (अबध्नन्) ध्यान सूत्र में बांधते हैं (अस्य) उसके (सप्त) सात (परिधयः) परिधि अर्थात् धारक सामर्थ्य हैं। और (त्रिःसप्त) २१ (समिधः) उसके प्रकाशक सामर्थ्य (कृताः) विधान किये गये हैं।

'सप्त परिधयः'—सात परिधियें, सात छन्द। अध्यात्म में—जीवन यज्ञ को कहते हैं। (पशुम्) जिस द्रष्टा पुरुष आत्मा को (देवाः) दिव्य शक्तियें, चक्षु आदि इन्द्रियें बांध रही हैं उसके सात परिधियें सात शीर्षस्थ प्राण और २१ समिधें, प्राकृतिक २१ विकार अहङ्कार आदि हैं। अथवा—सात समिधें, शरीर की सात धातुएं। 'त्रिःसप्त समिधः'-प्रकृति, महत्, अहङ्कार, ५ तन्मात्राएं, ५ स्थूलभूत, ५ इन्द्रिय और तीन गुण। अथवा ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और मन (अन्तःकरण चतुष्टय)। संवत्सर यज्ञ में १२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक, १ आदित्य ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

भा०—(यज्ञेन) पूर्वोक्त मानस यज्ञ से (देवाः) विद्वान् जन (यज्ञम्) उस प्रजापति पुरुष को (अयजन्त) उपासना करते हैं। (तानि धर्माणि) वे सब धारक सामर्थ्य (प्रथमानि आसन्) प्रथम ही विद्यमान रहे। (ते ह) वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले, ईश्वरोपासक जन, (नाकम्) उस सुखमय परमेश्वर को ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं, उसी में विराजते हैं, (यत्र) जिसमें (पूर्वे) पूर्व के (साध्याः) साधनाशील, (देवाः) *विद्वान् ब्रह्मानन्द-ज्ञान के साक्षात् द्रष्टा लोग* (सन्ति) नित्य विराजते हैं।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

भा०—(अद्भ्यः) जलों से और (पृथिव्यै) पृथिवी, (विश्वकर्मणः) समस्त संसार के कर्त्ता परमेश्वर के (रसात्) प्रेरक बल से (अग्रे)

सब से प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ । (त्वष्टा) वह निर्माता है। (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) एवं विविध रूपों में धारण करता हुआ (एति) प्राप्त होता है। (मर्त्यस्य) मरण धर्मा पुरुष के (तत्) उस (आजान) समस्त जनों के करने योग्य कर्म और (देवत्वम्) दर्शन करने योग्य ज्ञान को (अग्रे) सबसे पूर्व (एति) स्वयं धारण करता और प्राप्त कराता है।

सोऽकामयत । बहु स्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा । इदं सर्वमसृजत । यदिदं किंच । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तैत्ति० उप० ।

अथवा—जल और पृथिवी से विश्वकर्मा जगत्-स्रष्टा ने जगत् को बनाया। रूप बनाने वाला 'त्वष्टा' तदनुरूप हो गया। यही उस (मर्त्यस्य) मरण धर्मा विनाशी पदार्थ का भी (अग्रे) पहले से ही (आजानम् देवत्वम्) जन्म से ही देव अर्थात् स्वतः देव रूप है। वह स्वतः ईश्वर की शक्ति की दिव्य शक्ति का मूर्त्तिमान् अंश है।

'देवत्वम्, आजानम्'—मर्त्ये देवत्वं मुख्यं, आजानम् आजाम् इत्यर्थं (उवट)। पुरुषस्य विवाहान्तस्य सम्बन्धि, तत् विश्वं प्रतिष्ठं देवमनुष्यादिरूपं सर्वं जगत् अग्रे सृष्ट्यादौ आजानं सर्वतः उत्पन्नम्। इति सायण ॥ देवत्वं विद्वत्त्वम्। आजान समन्तात् जनानां मनुष्याणामिदं कर्त्तव्यं कर्म इति दयानन्दः । आजानदेवत्वं, मुख्यं देवत्वम्। द्विविधा देवाः । कर्मदेवा आजान देवाश्च। उत्कृष्टेन कर्मणा देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः । सृष्ट्यादावुत्पन्ना आजान देवाः। ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः। ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दः । बृ० । उव० । इति श्रुतेः सूर्यादय आजानदेवाः ॥ इति महीधरः ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(अहम्) मैं (एतम्) उस (महान्तम्) बड़े भारी (पुरुष) ब्रह्माण्ड भर में व्यापक पूर्ण परमेश्वर को (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान तेजस्वी और (तमसः) अन्धकार के (परस्तात्) दूर विद्यमान (वेद) जानता और साक्षात् करता हूं । (तम्) उसको ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम् अति एति) मृत्यु को पार कर जाता है । (अन्यः) दूसरा (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) कोई अभीष्ट मोक्ष स्थान को प्राप्त करने के लिये (न विद्यते) नहीं है ।

प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

भा०—(प्रजापतिः) वह समस्त प्रजा का पालक (गर्भे अन्तः) गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा में भी अथवा—हिरण्यगर्भ के भीतर, व्यापक होकर (चरति) विचरता है, विद्यमान है । वह (अजायमानः)स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विविध रूपों से प्रकट होता है । (तस्य) उसके (योनिम्) परम कारणस्वरूप को (धीराः) धीर, ध्याननिष्ठ योगिजन ही (परिपश्यन्ति) भली प्रकार देखते, साक्षात् करते हैं । (तस्मिन् ह) उस सबके मूलकारण परमेश्वर में ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन, नाना ब्रह्माण्ड एवं सूर्यादि लोक (तस्थुः) स्थित हैं । वे सब उसी के आश्रय पर ठहरे हैं ।

यो देवेभ्य ऽआतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥
अनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—(यः) जो (देवेभ्यः) दिव्य गुण वाले पृथिवी, अग्नि, जल, तेज आदि के उत्पन्न करने के लिये स्वयं (आतपति) सब प्रकार तप करता है । और (यः) जो (देवानां) पृथिव्यादि लोकों, पञ्चभूतों में से भी (पुरः हितः) सब से पूर्व उनके बीच में उनको मूल कारणों को

धारण करने वाला होकर विद्यमान रहा। और (यः) जो (देवेभ्यः) देवगण सूर्यादि पदार्थों से भी (पूर्वः) प्रथम (जातः) हिरण्यगर्भ रूप से प्रकट होता है। उस (ब्राह्मये) ब्रह्म अथवा वेद द्वारा प्रतिपादित, (रुचाय) परम प्रकाशमान् परमेश्वर को (नमः) नमस्कार है। सूर्य के पक्ष में—(यः) जो सूर्य पृथिव्यादि लोकों के लिये तपता है, जो सब के बीच (पुरोहितः) पुरोहित, उनके मध्यांश के समान प्रकाशक है, जो उनसे पहले उत्पन्न हुआ उस ब्रह्म, परमेश्वर के सम्मान प्रकाशमान् सूर्य से (नमः) अन्नादि उत्पन्न होता है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥ २१॥

भा०—(देवाः) विद्वान् गण, (ब्राह्मं) पर ब्रह्म सम्बन्धी, (रुचं) तेज, या ज्ञान को अथवा (रुचं ब्राह्मं) तेजस्वी ब्रह्म के विज्ञान, को (जनयन्तः) उत्पन्न करते हुए, शिष्योपदेशादि के द्वारा, प्रकट करते हुए (अग्रे) सबसे प्रथम (तत्) उस परमेश्वर का ही (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं। (एवं) इस प्रकार से ब्रह्मचर्य, तपस्या द्वारा (यः) जो ब्राह्मण, वेदवेत्ता, विद्वान् (विद्यात्) उस परमेश्वर के विज्ञान को प्राप्त करता है (तस्य) उसके (वशे) अधीन समस्त (देवाः) देव, विद्वान् गण, एवं उत्तम व्यवहार और दिव्य आत्मिक और भौतिक शक्तियां (असन्) रहती हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥२२॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे परमेश्वर (श्रीः च) सबको आश्रय देने वाली और (लक्ष्मीः च) सबके बीच में सुखको व्यापक और दर्शनीय दिखाने वाली, दोनों

२२— [illegible]

शक्तियां (ते) तेरी (पत्न्यौ) समस्त संसार को पालन करने हारी होने से तेरी दो स्त्रियों के समान हैं। (अहोरात्रे पार्श्वे) दिन और रात्रि ये दो जिस प्रकार सूर्य से उत्पन्न किये जाते हैं, जब वह प्रत्यक्ष होता है तब दिन और जब वह नहीं प्रत्यक्ष हो तब रात्रि होती है इसी प्रकार हे परमेश्वर! दिन रात के समान तुम्हारे दो पार्श्व या पासे हैं। जब तुम साक्षात् होते हो तब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाने से दिन के समान हो जाता है। तामस आवरण से जबतुम प्रत्यक्ष नहीं होते तब रात्रि के समान अन्धकार हो जाता है। जिस प्रकार (नक्षत्राणि रूपम्) समस्त नक्षत्र सूर्य के ही रूप हैं, वे सब सूर्य हैं, उसी प्रकार नक्षत्रों के समान सब तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के ही अंश हैं।

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्व मम तेजोंशसम्भवम्। गीता॥

अत वे सब (रूपम्) उसी के रूप अर्थात् कान्ति हैं।

तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति। कठो प०॥

(अश्विनौ व्यात्तम्) आकाश और पृथिवी, वे दोनों मानो खुले मुख के समान हैं। अथवा (अश्विनौ) प्राण और अपान, दो जबाड़ों के या खुले मुख के समान है। तू ही (इष्णन्) समस्त जगत् को प्रेरणा कर रहा है। तू सबको (इषाण) प्रेरित कर। (अमुम्) उस परम प्राप्तव्य मोक्ष पद को (मे इषाण) मुझे प्राप्त करा। और (मे) मुझे (सर्वलोकं इषाण) समस्त लोक, समस्त प्रकार के दर्शन, ज्ञान और समस्त लोकों का भोग्य सुख (इषाण) प्रदान कर।

इस प्रकार ब्रह्मपरक पुरुष सूक्त का विवरण किया गया है। महर्षि दयानन्द इसके उपसंहार में लिखते हैं—अत्रेश्वरसृष्टिराजगुणवर्णना-देतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्ति इति वेद्यम्। अर्थात् इस अध्याय में ईश्वर की सृष्टि, राजगुणों का भी वर्णन किया है। इसी से

इस अध्याय की पूर्व अध्याय से संगति है। पश्चात् इस अध्याय की योजना राजा के पक्ष में नीचे लिखे प्रकार से जाननी चाहिये—

(१) (*सहस्र०*) वह राजा रूप पुरुष हज़ारों सिरों वाला, हज़ारों आंखों वाला, हजारों पैरों वाला है। वह समस्त भूमि को अधीन करके दस अंगुल ऊंचा होकर विराजे, अर्थात् सहस्रों मस्तिष्क उसके अधीन राजसभा के सभासद् रूप उसी के सिर हैं। वे उसी की आंखें हैं एवं नाना स्थानों पर उसकी सहस्रों आंखें हैं और सहस्रों भृत्य, सैनिकादि उसके सहस्रों पद हैं। वह अपनी राजसत्ता से भूमि को व्याप कर अपने राष्ट्र के दसों अंगों पर दस दिशाओं पर अधिष्ठाता रूप से विराजे।

(२) जो भूत और भव्य अर्थात् सब राष्ट्र का उत्पन्न और भावी सम्पत्ति है वह सब राजा की ही है। (अमृतत्व) जीवन प्रद पदार्थ अन्न और अन्न का भी वही स्वामी है। जो पदार्थ भी अन्न के रूप में उगता है उसका भी वही स्वामी है।

(३) यह उसका बड़ा सामर्थ्य है। वह उससे भी अधिक शक्तिशाली होकर रहे। समस्त राष्ट्र के प्राणी उसका एक भाग हों और (दिवि) राजसभा आदि दिव्य, तेज सामर्थ्य में उसके तीन भाग सुरक्षित रहें।

(४) वह उस तीन गुणा अधिक सामर्थ्य को स्वयं धारण करके ही सब से ऊंचा रहे। एक अंश से राष्ट्र में रहे। चर अचर, स्थावर जंगम सबकी विविध व्यवस्था करे।

(५) वह स्वयं विराट् सभा को बनावे, उसपर स्वयं अधिष्ठाता होकर रहे। वह सब से अधिक सामर्थ्यवान् हो। वह भूमियों और पुर गढ़ और दुर्ग आदि भी बनावे।

(६) वह सब से पूज्य होकर सुसज्ज (पृषदाज्यम्) शस्त्र, सेना-

बल को भी धारण करे। अन्नादि भी संग्रह करे। ग्राम और जंगल की पशु सम्पत् को भी बढ़ावे।

(७) वह ऋक्, साम, अथर्व और यजु सब वेदों का ज्ञान करे, और उनकी रक्षा करे। उनके अध्ययनाध्यापन के द्वारा उनको प्रचारित और प्रकाशित करे।

(८) अश्व, गौ, भेड़, बकरी सबकी वृद्धि करे।

(९) पुरुषोत्तम को विद्वान् लोग (बर्हिषि) महान् राष्ट्र प्रजाजन पर (प्रौक्षन्) अभिषिक्त करें। उसके बल पर साधनसम्पन्न, बलवान् और ऋषि ज्ञानी पुरुष सब (अयजन्त) सगत होकर, परस्पर मिल कर कार्य करें।

(१०) यह जो महान् राष्ट्ररूप पुरुष है इसको कितने विभागों में विद्वान् कल्पना करते हैं? उसका मुख, बाहु, जाघ और पैर क्या हैं?

(११) उस महान् राष्ट्रमय पुरुष के एवं पुरुष रूप राजा के भी, ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय लड़ने वाले बाहु, व्यापारी वैश्य जंघाएं और शूद्र, सेवक जन चरण हैं।

(१२) उसका मन चन्द्र के समान आह्लादक हो। आंख सूर्य के समान तेजस्वी हो। कान वायु के समान व्यापक और मुख अग्नि के समान तेजस्वी हो।

(१३) अन्तरिक्ष के समान उसका नाभि अर्थात् केन्द्रस्थ राजधानी सर्वाश्रय हो, आकाश के समान शिर तेजस्वी नाना नक्षत्रों के समान विद्वानों से मण्डित राजसभा हो। पैर भूमि के समान स्थिर, प्रतिष्ठित हों। लोक सब श्रोत्र के समान एक दूसरे के दुख श्रवण करने हारे हों।

(१४) यह पुरुष ही राज्याधिकार के लिये स्वीकार करने योग्य 'हवि' है। उससे राष्ट्रयज्ञ विस्तृत करते हैं। उसका राज्य, बल, ऐश्वर्य वसन्त के समान शोभाजनक और प्रजाओं का बसाने वाला हो। इध्म अर्थात्

तेज अग्नि के समान प्रखर असह्य हो। ग्रहण करने वाला सेना बल 'हरस्' अर्थात् वज्र, काल के समान भयजनक, शत्रुनाशक और कंपाने वाला हो।

(१५) उसके ७ परिधि, सप्त राज्य हों, २१ 'समिध्' २१ महामात्य हों। देव, विद्वान् गण राष्ट्रयज्ञ को विस्तृत करते हुए पशु अर्थात् सर्व साक्षी, द्रष्टा, पुरुष को राज्य कार्य में बद्ध या दृढ़ता से स्थापन करें।

(१६) उस सर्व पूज्य राजा से प्रजापालक राष्ट्र यज्ञ का सम्पादन करते हैं। वे नाना राष्ट्र धारक प्रथम नियम, स्थिर हों। वे महान् सामर्थ्यवान् शासक जन उस सुखमय राष्ट्र पर (नाकम्) समवाय बनाकर रहें। उसी में साधनों से सम्पन्न विद्वान् और विजयी लोग रहें।

(१७) राजा अग्नि, पृथिवी और विश्वकर्मा, शिल्पी विद्वानों के बल से नाना प्रकार के साधनों से सम्पन्न हो। शिल्पी जन या स्वयं प्रजापति राज्य का दर्शनीय स्तम्भ बनाता है। इसी से उस श्रेष्ठ मनुष्य को भी 'देवत्व' प्राप्त होता है। वह राजा देव कहाता है।

(१८) मैं उसी तेजस्वी, शोक, अज्ञान से परे निर्दोष, निष्पाप सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करूं। उसको बिना पाये प्रजा को दूसरा शरण नहीं।

(१९) प्रजापालक राजा सब राज्य-कार्यों के भीतर व्यापक रहे। वही स्वयं उत्पन्न होकर नाना प्रकार के राज्य कार्यों को प्रकट करता है। धीर पुरुष उसके राजपद को साक्षात् करते हैं। उसी में समस्त राष्ट्र-निवास और जन आश्रित रहते हैं।

(२०) वह विजयी, शासकों के लिये उग्र होकर सूर्य के समान तपता है। वह विद्वानों के समक्ष गुरु के समान व्यवस्थापक है। वह उन द्वारा ही राजा बनाया जाता है। वह ब्रह्म, वेद और ब्राह्मण-बल से उत्पन्न होकर तेजस्वी है। उसको (नमः) सब आदर करें।

(२१) ब्राह्म अर्थात् ब्राह्मणों से उत्पन्न हुए (रुचे) तेजस्वी राजन्य को

उत्पन्न करते हुए विद्वान् लोग प्रथम ही उसको उपदेश करें। जो प्रसन्न पुरुष इस प्रकार के पद का लाभ करता है सब उसके अधीन रहें।

(२२) सबको आश्रय देने वाली श्री, राष्ट्र-सम्पत्, शोभा और लक्ष्मी उसको राजा रूप से दिखावे, ऐसी राज्यलक्ष्मी वैभव ये दोनों उसकी पत्नी के समान हैं। सूर्य के जिस प्रकार दिन रात दो स्वरूप हैं इसी प्रकार राजा के दो स्वरूप दिन और रात्रि हैं, सर्व प्रकाशक दिन, और सर्व प्राणियों को सुख से रमाने वाली राज्यव्यवस्था रात्रि है। (नक्षत्राणि) युद्ध में न भागने वाले वीर और क्षत्र से भिन्न दूसरे प्रजागण ये सब राज्य के रूप हैं। अश्विनी नामक दो मुख्य पदाधिकारी राजा के मुख हैं। वह सबको प्रेरणा करता हुआ सबका सञ्चालन करे। दूर के भोग्य पदार्थों को भी राष्ट्र में प्राप्त करावे। समस्त प्रकार के लोकों को वह प्राप्त करे, उनका सञ्चालन करे। और सबका अधिपति होकर रहे।

इत्येकत्रिंशोऽध्याय.।

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डित जयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥



अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

[१—१२ । १४] स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । आत्मा देवता ।

॥ ओ३म् ॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ १ ॥

१, २ अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—(तत्) वह, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सनातन सच्चिदानन्द नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, न्यायकारी दयालु, जगत्-स्रष्टा, जगत्-धर्त्ता, जगत्-नियन्ता परमेश्वर ही (अग्नि) स्वयंप्रकाश, सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक, सबके आगे विद्यमान होने से 'अग्नि' है । (तत् आदित्यः) वह ही परमेश्वर, समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर ग्रहण कर लेने वाला होने और सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'आदित्य' है । (तत् वायु) वह ही अनन्त बलवान्, सर्वप्राण, सर्वकर्त्ता एवं व्यापक होने से 'वायु' है । (तत् उ चन्द्रमा) वह ही आह्लादजनक, आनन्दमय होने से 'चन्द्रमा' है । (तत् एव शुक्रम्) वह ही शुद्धस्वरूप और जगत् के सब कार्यों को अति शीघ्रता से, बिना विलम्ब के यथाविधि करने और सबका प्रकाशक एवं स्वयं देदीप्यमान होने से 'शुक्र' है । (तत् ब्रह्म) वह ही सबसे महान्, सबसे बड़ा, सबको बढ़ाने वाला होने से ब्रह्म है । (ता आपः) वही सब में व्यापक होने से 'आप' है । (स प्रजापतिः) वही समस्त प्रजाओं का पालक होने से प्रजापति है ।

राजा के पक्ष में—अग्नि के समान शत्रुतापक और अग्रणी, सूर्य के समान तेजस्वी, वायु के समान बलवान्, प्रजा का प्राण, चन्द्र के समान

१—अथात्र [illegible] (११ । १४) [illegible] । [illegible] '[illegible]' ।

बलधारक, अन्न के समान सबको पोषक, जलों के समान प्राणप्रद, प्रजा पालक होने से वह राजा ही आदित्य, वायु चन्द्र, शुक्र ब्रह्म, आप, प्रजापति आदि नामों से कहा जाता है। अन्यत्र भी—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥ २॥

भा०—(विद्युत) विद्युत् से जिस प्रकार (निमेषा) निमेष उत्पन्न होते हैं, अर्थात् मेघस्थ विद्युत् जिस प्रकार सहस्रों बार चमकती और सहस्रों बार फिर छिप २ जाती है, वे सब विलास उसी से उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार (विद्युत) विशेष तेजस्वी सूर्य से (निमेषा) दिन और रात्रि उत्पन्न होते हैं, *अथवा जिस प्रकार सूर्य के (निमेषा) नियम से बराबर* 'मेष' आदि राशि प्रवेश या मेष, वृष आदि राशि के संक्रमण से मास और वर्ष उत्पन्न होते हैं अथवा निमेष त्रुटि, काष्ठा, विपल, पल, घड़ी, होरा, याम, दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि सभी उत्पन्न होते हैं, अथवा— (विद्युत) विशेष तेजस्वी सूर्य से (निमेषा) निरन्तर वर्षणशील मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार (विद्युत पुरुषात्) विशेष द्युति से प्रकाशमान् एवं समस्त जगत् के प्रकाशक उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (सर्वे निमेषा) समस्त निमेष, अध्यात्म में आत्मा के द्वारा नेत्रादि इन्द्रियों के निमीलन, उन्मीलन, सूर्य से, कला, काष्ठा आदि काल के अवयव और जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, तथा निरन्तर होने वाला उत्पाद और विनाश सब (अधिजज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। कोई भी (एनम्) उसको (न तिर्यञ्चं) न तिरछे, (न ऊर्ध्वम्) न ऊपर से और (न मध्ये) न बीच में से (परिअग्रभत्) ग्रहण करता है, अर्थात् उसको किसी विशेष अंग से भी पकड़ा नहीं जा सकता, उसका पूर्ण ज्ञान नहीं किया जा सकता।

स एष नेति नेत्यात्मा अगृह्यो नहि गृह्यते । बृहदारण्यकोप० ॥

राजा के पक्ष में—विशेष तेजस्वी पुरुष से राष्ट्र के समान विशेष, छोटे बड़े कार्य उत्पन्न होते हैं । उसको कोई ऊपर से, बीच में से, या तिरछे भी नहीं पकड़ सकता । कोई उसको वश नहीं कर सकता ।

न तस्य॑ प्रति॒मा अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑ । हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इत्ये॒ष मा मा॑ हि॒ꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त इत्ये॒षः ॥ ३ ॥

निचृत् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यस्य) जिसका (महत्) बड़ा भारी (नाम) नाम, स्वरूप और जगत् को वश करने का सामर्थ्य है और जिस का (महद् यशः) बड़ा भारी यश है । अथवा—जिसका (नाम) प्रसिद्ध (महत् यशः) बड़ा यश है (तस्य) उसकी (प्रतिमा न अस्ति) कोई मापक साधन, परिमाण, प्रतिकृति नहीं है । (हिरण्यगर्भ इति) 'हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे०' यह अनुवाक (अ० २५ । १०–१३) (यस्मान्न जात इति एषः) 'यस्मान्न जात०' [अ० ८ । ३६] इत्यादि कथा और (मा मा हिंसीदित्येषा) 'मा मा हिंसीत्०' इत्यादि अनुवाक में (१२ । १०२) (यस्य महद् यशः) जिसका बड़ा यशोगान है ।

अथवा—(एष हिरण्यगर्भः इति) यह परमेश्वर ही अपने भीतर सूर्यादि लोकों को धारण करने वाला होने से 'हिरण्यगर्भ' इस प्रकार कहाता है । (मा मा हिंसीत् इति एषा) मुझे मत मार इस प्रकार की प्रार्थना उसी से की जाती है । (यस्मात् न जातः) जिससे बढ़ कर कोई नहीं पैदा हुआ ऐसा जो प्रसिद्ध है ।

राजा के पक्ष में—जिसका प्रभावकारी बल और यश बड़ा हो उसका (प्रतिमा) मुकाबले का कोई नहीं । उसका 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि सूक्तों से भी वर्णन किया जाता है ।

एषो ह॑ देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे॑ अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥४॥
४-७ त्रिष्टुप्। धैवत ।

भा०—(एष देव) निश्चय से यह ही सब पदार्थों का द्रष्टा और प्रकाशक (सर्वा प्रदिश) समस्त दिशाओं को (अनु) व्यापे हुए है। (ह) वही निश्चय से (पूर्व) सबसे पूर्व (जात) प्रथम प्रकट होता है। (स उ) और वह ही (अन्त गर्भे) भीतर गर्भ में आत्मा और हिरण्यगर्भ में परमात्मा विद्यमान रहता है। |(स एव) वह (जात) समस्त लोकों में शक्ति रूप से प्रकट होता है। (स) वह ही (जनिष्यमाण) भविष्य में भी प्रकट होगा। हे (जना) पुरुषो ! वह (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होकर (सर्वत मुख) सब ओर उसके मुख आदि अवयवों के समान सब प्रकार के करने की शक्ति वाला है।

सर्वत पाणिपाद तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। गीता। १३। १३॥

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥५॥

भा०—(यस्मात् पुरा) जिससे पहले (किञ्चन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ। और (य) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों, भुवनों को (आबभूव) व्याप्त होरहा है। वह (प्रजापति) प्रजा पालक परमेश्वर राजा और पिता के समान (प्रजया) अपनी समस्त उत्पन्न प्रजा सृष्टि के साथ (सरराण) उसमें ही रमण करता हुआ (त्रीणि ज्योतींषि) तीन ज्योति अग्नि, विद्युत्, सूर्य या सत्, चित्, आनन्द इनको (सचते) प्राप्त है, इनमें व्यापक है, इन तीन रूपों से स्मरण किया जाता है। और (स) वह ही (षोडशी) १६ कलावान् चन्द्र के समान, आह्लादक १६ कला अर्थात् शक्तियों से सम्पन्न है। प्राण,

श्रद्धा, आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक ये १६ कला या कलाएं समष्टि रूप से परमात्मा में और व्यष्टि रूप से जीवात्मा में भी विद्यमान होने से वह षोडशी है। इसी प्रकार १६ राज्याङ्गों से युक्त राजा भी षोडशी है। वह भी प्रजा से ही रमण करता है। उसी में आनन्द प्रसन्न रहता है। 'प्रजापति त्वां दुहितरम्' इत्यादि अर्थवाद भी इसी बात को दर्शाते हैं।

अध्यात्म में तीन तत्त्व, आत्मा, इन्द्रिय और मन समाज में ब्राह्म-बल, क्षात्र-बल और प्रजाबल यहां परमेश्वर के। 'विराट्' या 'त्रीणि पदानि' है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥
ऋ० १०।१२१।५।

भा०—(येन) जिस परमेश्वर ने (द्यौः) आकाश को (उग्रा) उग्र, तीव्र प्रकाशादि और वृष्ट्यादि वाला बना कर उसको धारण किया और (येन) जिसने (दृढा च पृथिवी) पृथिवी को दृढ़ बना कर उसको भी धारण किया। (येन) जिसने (स्वः स्तभितम्) स्वः अर्थात् समस्त सुख या समस्त तेजोमय आदित्य को भी धारण किया है। (येन नाकः) जिसने समस्त आनन्दमय सब दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है। (यः) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः) समस्त लोकों का और (विमानः) विविध रूप से बनाने और मापने हारा है (कस्मै) उस प्रजापति स्वरूप, आनन्दमय, परमेश्वर की (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति उपासना करें।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
आपो ह यद् बृहतीर्यश्चिदापः ॥ ७ ॥

भा०—(यम्) जिसको अपनी रक्षा (क्रन्दसी) शब्द गुणों से

युक्त आकाश और पृथिवी (अवसा) व्यापक सामर्थ्य और रक्षा सामर्थ्य से अथवा—(यं अवसा) जिसको बल, सामर्थ्य से (तस्तभाने) समस्त जगत् को थाम रही हैं और स्वयं थमी खडी हैं। और (मनसा) मन से या जिसके ज्ञानबल या स्तम्भन सामर्थ्य से वे दोनों (रेजमाने) कांपती हुई या चलती हुई (अभि ऐक्षेताम्) दोनों एक दूसरे के सन्मुख देख रही हैं अथवा दिखाई दे रही हैं। (यत्र अधि) जिसके बलपर (सूर) सूर्य (उदित) उदय को प्राप्त होकर (विभाति) प्रकाश करता है (कस्मै) उस सुखस्वरूप जगत् के कर्त्ता (देवाय) सब के प्रकाशक, परम देव की हम (हविषा) भक्ति से (विधेम) उपासना करें।

(आपो हयद् बृहती० इत्यादि) और (यश्चिदाप ० इत्यादि) दोनों ऋचाएं भी उसी परमेश्वर का वर्णन करती हैं।

'आपोह यद् बृहती' यह ऋचा देखो (२७।२५) 'यश्चिदाप ०' यह ऋचा देखो २७।२६ ॥

वे॒नस्तत्प॑श्य॒न्निहि॑तं॒ गुहा॒ सद्यत्र॒ विश्वं॒ भव॒त्येक॑नीडम्। तस्मि॑न्नि॒दꣳ सं च॒ वि चै॑ति॒ सर्व॒ꣳ स ओत॒: प्रोत॑श्च वि॒भूः प्र॒जासु॑ ॥८॥

[८-१२] त्रिष्टुप्। धैवत ।

भा०—(वेन) विद्वान् मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष (तत्) उस परम ब्रह्म को (गुहा निहितम्) गुहा अर्थात् बुद्धि में स्थित, अथवा गूढ कारण रूप में विद्यमान (सत्) सत रूप से (पश्यत) देखता है, साक्षात् करता है। (यत्र) जिसमें (विश्वम्) समस्त विश्व, (एकनीडम्) एक ही स्थान में धरे के समान, एक आश्रय पर स्थित (भवति) होता है। (तस्मिन्) उसमें (इदं) यह दृश्य जगत् (सम् एति च) समा जाता, प्रलयकाल में लीन हो जाता है और पुन सृष्टि के अवसर में (वि एति च) विविध रूप में प्रकट हो जाता है। (स) वह परमेश्वर (प्रजासु विभूः)

८—०'कनीळम्' इति काण्व० ।

उत्पन्न होने वाले समस्त सृष्टियों और प्राणियों में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है। उसीमें पिरोया हुआ है।

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ ९ ॥

अथर्व० २।१।२ ।

भा०—(गन्धर्वः) गौ अर्थात् वेदवाणी को धारण करने वाला, वेदज्ञ (विद्वान्) विद्वान्, आत्मज्ञान का साक्षात् लाभ करनेहारा पुरुष (सत्) उस (अमृतम्) अमृत स्वरूप (गुहा) बुद्धि में, गुहास्थान में (विभृतं) विशेष रूप से विद्यमान (धाम) सब को धारण करने वाले, परम तेजो-मय, सर्वमय, परमेश्वर के स्वरूप का (प्रवोचेत् नु) हमें प्रवचन करे, उसका उपदेश करे। (अस्य) उस परमेश्वर के (त्रीणि पदानि) तीन पद, जानने योग्य तीन स्वरूप (गुहा निहितानि) बुद्धि में स्थित हैं। (यः) जो (तानि) उनको (वेद) साक्षात् कर लेता है (सः) वह (पितुः पिता) हमारे पिता से भी बढ़कर (पिता) पालक (असत्) होने योग्य है।

'त्रीणि पदानि'—विराट्स्वराट्सम्राट् इति । त्रीणि पदा विचक्रमे । त्रिपस्त्य । त्रिधात्व । ऋ० ८।१२।२८ ॥ त्रिमूर्धानं । ऋ० ३।५६।३ ॥ त्रि रुपस् । त्रिनाभिचक्र । ऋ० १०।१११।१ ॥ त्रिषधस्थ । ऋ० ५।४।८ ॥ त्रिविष्टप, त्रिककुत्, त्रिधातु, त्रिवृत् इत्यादि नाना चिह्न जैसे योग्य हैं।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥

अथर्व० २।१।३ ।

भा०—(सः) वह (नः) हमारा (बन्धुः) बन्धु, भाई के समान सहायक एवं सबको हृदयों में बांधने वाला है। (जनिता) वह उत्पन्न करने वाला पिता है। (सः विधाता) वह विविध पदार्थों को धारण

पोषण करने हारा है। वह (विश्वा) समस्त (धामा) धारण सामर्थ्यों, स्थानों और (भुवनानि) लोकों को भी (वेद) जानता है। (यत्र) जिस परमेश्वर में (देवा) विद्वान्गण, एवं सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ (अमृतम्) अमृत, मोक्ष-सुख और कभी नाश न होने वाले सत् तत्व को (आनशाना) प्राप्त करते हुए उस (तृतीये) परम, सबसे पर विद्यमान, जीव और प्रकृति से भी विलक्षण (धामन्) परम तेज में (अधि-ऐरयन्त) स्वच्छन्दतया विचरते हैं।

'तृतीये धामनि'—तृतीय रजस्, तृतीय नाक, तृतीय पृष्ठ, तृतीय लोक ये सब रचना एकार्थक हैं। 'तृतीय' तीर्णतमम् इति निरु०। सर्वोच्च लोक।

परीत्यं भूतानि परीत्यं लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थायं प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥

भा०—(भूतानि परीत्य) पाचों भूतों को व्याप्त होकर, (लोकान् परीत्य) समस्त लोकों को व्याप्त होकर, (सर्वाः प्रदिशः दिशः च) सब दिशाओं और उपदिशाओं को व्याप्त होकर, (ऋतस्य) अभिव्यक्त हुए इस संसार के भी (प्रथमजाम्) प्रथम विद्यमान प्रकृति को (उपस्थाय) प्राप्त होकर, उसके साथ (आत्मना) अपने स्वरूप से (आत्मानम्) आत्मा अर्थात् अपने को स्त्री के साथ पुरुष के समान (अभि संविवेश) सब प्रकार से संयुक्त करता है। अध्यात्म में—आत्मवित् ज्ञानी भूतों को, लोकों को और दिशा उपदिशाओं को जान कर (ऋतस्य प्रथमजाम् उपस्थाय) सत्य परमात्मा को प्रथम उत्पन्न वाणी का सेवन, ज्ञान करके वह (आत्मना) परमात्मा के साथ (आत्मानम् अभि संविवेश) अपने को उसके साथ जोड़ देता है।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। गी० १४।३॥

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) द्यौ, आकाश, पृथिवी (परि इत्वा) सब प्रकार से व्याप्त कर (लोकान् परि इत्वा) समस्त लोकों को व्याप्त कर (दिशः परि) समस्त दिशा और (स्वः परि) परम आनन्दमय सुख को व्याप्त कर (ऋतस्य) महान् संसार के (विततं) व्यापक (तन्तुं) परम आश्रय, सूत्रात्मा प्रकृति तत्व को (विचृत्य) विशेष रूप से खोल कर (तत्) उसको (अपश्यत्) देखा। और (तत् अभवत्) उसी तत्व के साथ संयुक्त हुआ और (तत् आसीत्) इस ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत् रूप में उत्पन्न हुआ।

अथवा अध्यात्म में—आत्मयोगी (द्यावापृथिवी सद्यः परि इत्वा) द्यौ और पृथिवी दोनों को शीघ्र प्राप्त कर (लोकान् दिशः) समस्त लोकों को और दिशाओं को (परि) प्राप्त कर, (स्वः) परम सुखमय मोक्ष को प्राप्त करके (ऋतस्य) सत्यमय परमेश्वर के ज्ञानमय प्रजापति के (विततं) विस्तृत (तन्तुम्) व्यापक सत्य के सूत्र को (विचृत्य) खोल कर, मुक्त होकर (तत् अपश्यत्) उस आत्मस्वरूप को साक्षात् करता है (तत् अभवत्) वही 'तत्' अर्थात् तन्मय हो जाता है (तत् आसीत्) वैसा हो, या उसमें ही रहता है।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥ १३ ॥

ऋ० १। १८। ६

भा०—(सदसः) सबके विराजने योग्य, सभा स्वरूप के समान इस सर्वमय ब्रह्माण्ड के (पतिम्) पालक, (अद्भुतम्) आश्चर्यकारी, (इन्द्रस्य) जीव के (काम्यम्) कामनायोग्य, (प्रियम्) अति प्रिय (सनिम्) भजन करने योग्य, दान योग्य, (मेधाम्) बुद्धिरूप, शुद्ध ज्ञान

को अपने में धारण करने वाले परमेश्वर को (स्वाहा) उत्तम स्तुति से ही मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊं ।

यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते ।
तया॒ माम॒द्य मे॒धया॑ग्ने मे॒धावि॑नं कुरु॒ स्वाहा॑ ॥ १४ ॥

भा०—(याम्) जिस (मेधाम्) आत्मज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि को (देवगण) देव, विद्वान् गण (पितर) पालक जन पूर्व के विद्वान् (च) भी (उपासते) उपासना करते हैं (तया मेधया) उस परम प्रज्ञा से हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! या गुरो ! (माम्) मुझको भी (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा (मेधाविनं कुरु) मेधवान् प्रज्ञावान् कर ।

मे॒धां मे॒ वरु॑णो ददातु मे॒धाम॒ग्निः प्र॒जाप॑तिः ।
मे॒धामिन्द्र॑श्च वा॒युश्च॑ मे॒धां धा॒ता द॑दातु मे स्वाहा॑ ॥१५॥

भा०—(वरुण) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा, प्रज्ञा का प्रदान कर । (अग्नि) ज्ञानस्वरूप (प्रजापति) प्रजा का स्वामी, आचार्य और परमेश्वर (मेधाम्) मेधा प्रदान करे । (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और (वायु च) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे । (धाता) सबका पोषक परमेश्वर (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी द्वारा (मे मेधा दधातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे ।

इ॒दं मे॒ ब्रह्म॑ च क्ष॒त्रं चो॒भे श्रिय॑मश्नुताम् ।
मयि॑ दे॒वा द॑धतु॒ श्रिय॒मुत्त॑मां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥ १६ ॥

भा०—(ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मण विद्वान् जन और क्षत्रिय लोग (उभे) दोनों (मे) मेरे (श्रियम्) लक्ष्मी का (अश्नुताम्) उपभोग करें । (देवा) देव, विद्वान् गण या ईश्वरप्रदत्त दिव्य गुण (मयि)

७—राजा और प्रजावर्ग उसके रक्षण-बल से सुव्यवस्थित होकर चित्त से उसका भय मानें। वह सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो।

८—विद्वान् जन उस राजा को राष्ट्र के मध्य भाग में स्थित देखना है, समस्त राष्ट्र उस पर एकाश्रय होकर रहता है। वह उसी के आश्रय पर बढ़ता घटता है। वह विशेष सामर्थ्यवान् होकर प्रजाओं में बरने योग्य व्यवस्थाओं से ओत प्रोत हो जाता है।

९—विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेज के धारण करने वाले उस अमर, अखण्ड शासन का उपदेश करे। जिसमें तीन पद उसी में विराजमान हैं। जो उस राज्य तत्त्व को जानता है वह पालकों से बढ़ कर पालक है।

१०—वह समस्त प्राणियों, लोकों, देशों और दिशाओं को प्राप्त करके 'प्रथमजा' अर्थात् भूमि को प्राप्त कर स्वयं अपने बल से उसमें जमकर बैठता है।

११—वह राजा प्रजावर्ग और समस्त लोकों और (स्व) राज सभा को प्राप्त कर, वश कर (ऋतस्य) राष्ट्र की सत्य व्यवस्था, कानून सूत्र को बांध कर राष्ट्र पर आंख रखता है और तन्मय हो जाता है और राष्ट्रस्वरूप होकर रहता है।

१२—मैं प्रजाजन 'सदसस्पति' अर्थात् राष्ट्रपति, सभापति, दण्डपति, अद्भुत, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के कामना योग्य, जिसको सब कोई चाहे, ऐसे आश्चर्यजनक वीर, प्रिय राजा को प्राप्त करूं और (सनिम्) सेवनीय, सुखप्रद और (मेधाम्) मुझ राष्ट्र प्रजा के धारक पोषक या शत्रुनाशक शक्ति को प्राप्त करूं।

१३—जिस (मेधाम्) संगतिकारक शक्ति को या शत्रुनाशक शक्ति को देव, विजेता राजा लोग और राष्ट्र के पालक लोग उपासना करते, उसका आश्रय लेते हैं, हे अग्रणी नेता! तू उससे मुझ युक्त कर।

१४—शत्रुओं का धारक, अग्रणी, प्रजापालक, शत्रुनाशक पृथ्वी-पति, वायु के समान उग्र, वशी पुरुष मुझे वह 'मेधा' शक्ति प्रदान करे।

१६—मेरी राष्ट्र सम्पत्ति का ब्राह्मण, क्षत्रिय, विद्यावान् और बलवान् पुरुष भोग करें। विजेता लोग और विद्वान् लोग मुझ में श्री, सम्पत्ति को धारण करें, (तस्यै ते स्वाहा) उसको वे उत्तम पात्र में प्रदान करें।

इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

१—१७ अग्निर्देवता।

॥ओ३म्॥ अस्याजरासो दमामरित्रा॑ अर्चद्धूमासो अग्नय॑ पावकाः।
श्वितीचय॑ श्वात्रासो॑ भुरण्यवो॑ वनर्षदो॑ वायवो॒ न सोमा॑ ॥१॥

ऋ० १० । ४६ । ७ ॥

वत्सप्रा ऋषि । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(अस्य) इस राजा के राज्य और परमेश्वर की सृष्टि में (अग्नय) अग्रणी, नेता पुरुष और अग्नि, विद्युत् आदि अति तीव्र ताप के पदार्थ (पावका) दूसरों को पवित्र करने वाले (दमाम्) गृहों को (अरित्रा) शत्रुओं और रोगादि से रक्षा करने वाले और (अर्चद् धूमास) उज्ज्वल, दीप्ति युक्त धूम वाले अग्नि के समान तेजस्वी, बलशाली हों। वे (श्वितीचय) श्वेत पदार्थ चान्दी, रत्न, मुक्ता आदि ऐश्वर्यों के, यश के और शुक्ल अर्थात् शुभ चरित्रों के सञ्चय करनेहारे (श्वात्रास) अति धनवान्, अथवा आलस्यरहित शीघ्रता से कार्य करने वाले (भुरण्यव) प्रजाओं के धारण पोषण करने वाले, (वनर्षद) वन में रहने वाले, तपस्वी, सेवनीय, सुविभक्त धर्मों ऐश्वर्यों या गृहों में निवास करनेवाले या रश्मियों में स्थित, सूर्य के समान तपस्वी या जलों से अभिषिक्त, (वायव न) वायुओं के समान, बलवान् तीव्र (सोमा) प्रेरक, जीवनप्रद, राष्ट्र के प्राणस्वरूप, एवं ऐश्वर्यप्रद (अजरास) जरारहित युवा, बलवान् हों।

हर॑यो धूमके॑तवो वात॑जूता उप॒ द्यवि॑।
यत॑न्ते वृथ॑गग्नय॑ः ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ४३ । ४ ॥

विश्वरूप ऋषि । गायत्री । षड्ज ॥

१-१७ आग्निदेवत्य पुरोरुच ॥

भा०—जिस प्रकार (पृथक्) नाना प्रकार के (अग्नयः) अग्नियें (हरय) पीत वर्ण के अति तेजस्वी (धूमकेतव.) धूमरूप ध्वजा से दूरसे ही जानने योग्य, (वातजूता) वायु द्वारा अति प्रदीप्त होकर (द्यवि) प्रकाश के निमित्त (उप यतन्ते) जला करते हैं, उसी प्रकार (अग्नय) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष (हरय) ज्ञान का धारण करने हारे (धूमकेतव.) धूम के समान चतुर्दिगन्त में फैलने वाले ज्ञान से युक्त और (वातजूता) वायु के समान सबके प्राणप्रद, परमेश्वर की उपासना से तेजस्वी, अथवा प्राणायाम से बलवान्, अथवा वायु के बल के समान बल से बलवान् होकर (द्यवि) प्रकाश और ज्ञान के निमित्त (उप यतन्ते) सदा यत्न किया करते हैं।

यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ२ऽ ऋ॒तं बृ॒हत्।
अग्ने॒ यक्षि॒ स्वं दम॑म् ॥ ३ ॥ ऋ० ५ । ७५ । ५ ।

गोतम ऋषि ।

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्, अग्रणी नेतः ! तू (नः मित्रावरुणा) हमारे मित्र, स्नेही पुरुषों और 'वरुण', श्रेष्ठ और दु खनिवारक पुरुषों का (यज) सत्कार कर, आदर कर। तू (देवान् यज) विद्वान् पुरुषों का सत्संग कर, उनको दान दे। और (स्व) अपने (दमम्) दमन करने हारे राष्ट्र को (यक्षि) सुसंगत, सुव्यवस्थित कर।

यद्वा॒ हि दे॒वहू॑तमाँ२ऽ अश्वाँ॒२ऽ अग्ने॑ र॒थीरि॑व।
नि होता॑ पू॒र्व्यः सदः॑ ॥ ४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १२ । ३७ ॥

द्वे विरू॑पे चरतः॒ स्वर्थे॑ऽ अ॒न्यान्या॑ व॒त्समुप॑ धापयेते।
हरि॑र॒न्यस्यां॒ भव॑ति स्व॒धावा॑ञ्छु॒क्रो अ॒न्यस्यां॑ ददृशे सु॒वर्चाः॑ ॥५॥
ऋ० १ । ९५ । १ ॥

भा०—जैसे (द्वे) दो (विरूपे) भिन्न २ रूप रंग वाली स्त्रियें

(सु अर्थे) शुभ प्रयोजन में लगी हुई (चरत) भिन्न २ प्रकार का आच रण करती हैं और भिन्न २ प्रकार से आहार विहार करती हैं। और (अन्या अन्या) वे दोनों पृथक्, २ या एक दूसरे के (वत्सम्) बालक को (उप धापयेते) दूध पिलाती हैं। (अन्यस्या) एक में से तो (हरि) श्याम वर्ण का, मनोहर (स्वधावान्) उत्तम, शान्ति आदि गुणों वाला पुत्र (भवति) हो और (अन्यस्याम्) दूसरी में से (शुक्र) शुचि कर, शुद्ध, (सुवर्चा) उत्तम, तेजस्वी पुत्र (ददृशे) प्रकट हुआ दिखाई दे इसी प्रकार रात्रि और दिन (द्वे विरूपे चरत) दोनों प्रकाश और अन्धकार के कारण भिन्न २ रूप होकर विचरते हैं। दोनों (अन्या अन्या वत्सम् उपधापयेते) पृथक् २ एक दूसरे के बालक के समान चन्द्र और सूर्य को पोषित करते हैं। अथवा वे दोनों एक दूसरे से मिल कर (वत्सम्) बसे हुए संसार को पालते पोसते हैं। एक में (हरि) ताप आदि हरने से हरि, मनोहर, (स्वधावान्) अन्नादि औषधि के पोषक रसों एवं जल, अन्न आदि से युक्त चन्द्र उत्पन्न होता है और (अन्य स्याम्) दूसरी, दिन वेला में (शुक्र) कान्तिमान् (सुवर्चा) उत्तम तेजस्वी सूर्य (ददृशे) दिखाई देता है। अथवा—दिन वेला रात्रि से उत्पन्न हुए सूर्य को अधिक तेजस्वी करती है और रात्रि वेला दिन के अन्तिम प्रहर में उत्पन्न अग्नि को अधिक उज्वल कर देती है। जलादि रस के शोषण करने से सूर्य हरि है और कान्तिमान् होने से अग्नि शुक्र है।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ ६ ॥
ऋ० ४। ७। १॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३। १५॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥
ऋ० ३। ९। ९॥

स्वराट् पंक्ति । पञ्चम ॥ विश्वामित्र ऋषि । विश्वेदेवा देवता ।

भा०—(त्रीणि शता, त्री सहस्राणि, त्रिंशत् च नव च) तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ इतने (देवाः) विजयशील सैनिक (अग्निम्) अपने अग्रणी सेनापति की (असपर्यन्) आज्ञा मानें। वे उसको (घृतैः) जलों से (औक्षन्) अभिषेक करें। और (अस्मै) उसके लिये (बर्हिः) बड़ा, वृद्धिसूचक आसन, पद भी (अस्तृणन्) प्रदान करें। और (आत् इत्) उसके पश्चात् उसको ही (होतारम्) सबका होता, दाता, एवं वेतन और अधिकार देने वाला बना कर (नि-असादयन्त) मुख्य आसन पर बैठावें।

मूर्द्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽआ जातम्ग्निम्।
कविर्ठं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥
ऋ० ६। ७। १॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ७। २४॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्‌द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र ऽआहुतः ॥ ९ ॥ ऋ० ६। १६। ३४॥

भारद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री। षड्जः॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य और वायु (वृत्राणि) आकाश को घेरने वाले मेघों को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (द्रविणस्युः) यश और धनैश्वर्य का इच्छुक (अग्नि) अग्रणी, दुष्ट संतापक, विद्वान्, नेता और राजा (विपन्यया) विविध प्रकार के व्यवहारों से युक्त नीति से स्वयं (समिद्धः) अति तेजस्वी (शुक्रः) शीघ्रकारी होकर (आहुतः) शत्रुओं से ललकारा जाकर, या दुःखी प्रजाओं से कष्ट निवारणार्थ पुकारा जाकर (वृत्राणि) प्रजा के नगरों के घेरने वाले शत्रुओं को और सदाचार नाश करने वाले पापाचारों को (जंघनत्) नाश करे।

अथवा—यश का अभिलाषी नेता राजा (विपन्यया समिद्धः) प्रजाओं

की विविध प्रकार की स्तुतियों प्रार्थना से प्रेरित, उत्तेजित होकर (शुक्र) तजस्वी (आहुत) सर्व स्वीकृत होकर (वृत्राणि) कदाचारियों और राज्य के विघ्नों को नाश करे ।

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू (वायुना) वायु के समान अपने आक्रमण के प्रबल वेग में शत्रुओं को हिला देने वाले (इन्द्रेण) शत्रुघातक सेनापति और (विश्वेभिः) समस्त विजयशील वीर नेता पुरुषों के साथ मिल कर (मित्रस्य धामभिः) मित्र, स्नेही राजा के पदाधिकारियों सहित (सोम्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य रूप (मधु) मधुर, भोग्य ऐश्वर्य को (पिब) स्वीकार कर । अग्नि या सूर्य का ताप जिस प्रकार रसधारक वायु के साथ अपने किरणों से जल को पान कर लेता है उस प्रकार राजा अपने मित्रों सहित सेनापति के बल से राष्ट्र का भोग्य अन्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करे ।

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ११ ॥

ऋ० १ । ७१ । ८ ॥

पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (नृपतिम्) नर रूप नायक पति अर्थात् पुरुष को (इषे) कामनापूर्त्ति या निषेक करने के निमित्त (तेजः) तेज, वीर्य (आनट्) प्राप्त होता है तभी वह (शुचि) शुद्ध, दीप्तियुक्त (रेतः) पुत्रादि का उत्पादक वीर्य (द्यौः अभीके) कामना युक्त स्त्री में (निषिक्तम्) निषिक्त हो तो (अग्निः) वह तेजस्वी पुरुष (शर्धम्) बलवान्, (अनवद्यम्) निर्दोष, अनिन्द्य, सुन्दर (स्वाध्य) उत्तम विचारानुसार (युवान)

प्रवान, दीर्घायु हृष्ट पुष्ट सन्तान को (जनयत्) उत्पन्न करता है। और (सूदयत् च) इसी के निमित्त वीर्य निषेक करता है उसी प्रकार (यत्) जब (इषे) वर्षा के निमित्त या अन्नादि के उत्पन्न होने के लिये राजा के समान नेतृ शक्तियों के पालक या सब मनुष्यों के पालक राजा का (तेजः) तेज (आ आनट्) सर्वत्र व्याप्त होता है तब और (द्यौ अभीके) आकाश में सर्वत्र (शुचि रेतः निषिक्तम्) शुद्ध जल सूक्ष्मरूप से गर्भित हो जाता है। तब भी (अग्नि) वह सूर्य (शर्धम्) बलकारी (अनवद्यम्) निर्दोष (युवानम्) यौवन या बल के वर्धक परस्पर मिश्रित, (स्वाध्यं) सुख से स्मरण या धारण करने योग्य, उत्तम पोषक जल को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत् च) भूमि पर बर्षाता है।

इसी प्रकार राजा के पक्ष में—(यत्) जब (इषे) अन्नादि के वितरण के लिये (नृषदि तेजः आनट्) नरों के नायक वीरों के पालक राजा का तेज फैलता है तब वह (द्यौरभीके) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा में अपने (शुचि रेतः) विशुद्ध सामर्थ्य को प्रदान करता है। और तब (अग्निः) अग्रणी नेता (अनवद्यम्) दोष रहित, स्तुतियोग्य, (युवानं) राष्ट्र के यौवन को बनाने वाले (स्वाध्यं) उत्तम ध्यान या धारण करने योग्य (शर्धम्) बलकारी सामर्थ्य को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत् च) उसको पुनः प्रजा पर ही वर्षा कर देता है।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघु० ।

अग्ने यद्द्य महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यꣳ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महांसि ॥५०॥

ऋ० ५।२८।३॥

विश्ववारा ऋषिका। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! विद्वन्! राजन्! तू (महते)

त्वे ऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥
ऋ० ७ । १६ । ७ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (स्वाहुत) अग्नि के समान उत्तम २ पदार्थों और ज्ञानों को प्राप्त करने हारे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ये) जो (सूरय) सूर्य के समान तेजस्वी, विद्वान् (यन्तार) स्वयं जितेन्द्रिय, अथवा (जनानां यन्तारः) मनुष्यों को नियम में रखने वाले (मघवान) धन ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी (गोनां ऊर्वान्) गौ आदि पशुओं के नाश करने वालों को (दयन्त) नाश करते एवं दण्ड देते हैं वे (त्वे) तेरे (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो ऽअर्यमा प्रातर्यावाणो ऽअध्वरम् ॥१५॥
ऋ० १ । ४४ । १३ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती । मध्यम. ॥

भा०—हे (श्रुत्कर्ण) अभ्यर्थना करने वाले के वचनों को श्रवण करनेवाले, अथवा (श्रुत्कर्ण) गुरुओं द्वारा बहुश्रुत कर्णों वाले ! अथवा बहुत विद्वानों को अपने अधीन रखने हारे ! (अग्ने) अग्रणी, विद्वन् ! राजन् ! तू (सयावभि) सदा साथ जाने वाले, सहयोगी(वह्निभि) राज-कार्यों को भली प्रकार निर्वाहने वाले (देवै.) विद्वानों के साथ मिल कर (श्रुधि) प्रजा के व्यवहारों को सुना कर । और (बर्हिषि) इस आसन पर, अथवा इस महान्, राष्ट्र व राजसभा में (मित्र) सबको स्नेह से देखने हारा (अर्यमा) स्वामी के समान मान करने योग्य होकर तू और (प्रातर्यावाण) प्रातः काल ही राज कार्यों पर जाने वाले अधिकारी जन (अध्वरम्) अहिंसनीय, अनाश्य, उल्लंघन न करने योग्य राज्यकार्य में (आसीदन्तु) आ २ कर बैठें ।

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्।
अग्निर्देवानामव॑ऽआवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः॥१६॥
ऋ० ३ । १ । २० ॥

गतम ऋषि । अग्निजातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(विश्वेषाम्) समस्त (यज्ञियानाम्) पूजनीय, राष्ट्रपालन रूप यज्ञ के सम्पादक पुरुषों में (अदिति) अखण्ड ज्ञान और आज्ञा वाला (विश्वेषाम्) और समस्त (मानुषाणाम्) मनुष्यों में से (अतिथि) सबसे अधिक पूज्य, सर्वोपरि स्थित और (देवानाम्) विद्वान्, विद्या और धन के दानशील एवं विजयेच्छु पुरुषों में से (जातवेदा) ज्ञानवान् (अग्नि) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् राजा (अव) रक्षण कार्य और अन्न आदि को (आवृणान) प्रदान करता हुआ (सुमृडीक भवतु) उत्तम सुख देने वाला हो।

महो ऽअग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो ऽअद्या वृणीमहे॥१७॥
ऋ० १० । ३६ । १२ ॥

लुशा धानाक ऋषि । त्रिष्टुप् । धैवत । अग्निर्देवता ।

भा०—हम लोग (समिधानस्य) अति तेजस्वी, (अग्ने) सन्तापकारी, दुष्ट-संहारक, अग्रणी, नायक राजा के (महः) बड़े भारी (शर्मणि) शरण में रह कर (मित्रे) स्नेहवान् मित्र और (वरुणे) श्रेष्ठ पुरुष के आश्रय पर, उनके प्रति (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अनागा) अपराध रहित होकर (स्याम) रहें। और (सवितु) सबके प्रेरक परमेश्वर और राजा के (श्रेष्टे) परम कल्याणमय, सर्वोत्तम (सवीमनि) शासन या आज्ञा में (स्याम) रहें। और (देवानाम्) विद्वान्, ज्ञानप्रद और विजयेच्छु पुरुषों के (तत्) उस (अव) रक्षण और ज्ञान को (अद्य) आज, एवं सदा (वृणीमहे) प्राप्त करें।

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र। याहि
वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वꣳ हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥

ऋ० ७ । २३ । ४ ।

वामदेव ऋषिः इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् धैवतः ।

भा०—(आपः न) जल जिस प्रकार (ऋतम्) जीवन को (पिप्युः) वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (आपः) आप्त जन (ऋतं) सत्य ज्ञान को (पिप्युः) वृद्धि करें। और हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे विद्वन् ! (गावः न) वेदवाणियां जिस प्रकार (ऋतं नक्षन्) यज्ञ, पूजनीय ब्रह्म और सत्य तत्व को व्यापती हैं उसी प्रकार (ते जरितारः) तेरे स्तुति करने हारे एवं तेरे अधीन यथार्थ तत्व का उपदेश करने वाले गुरुजन (ऋतं) सत्य ज्ञान को (नक्षन्) प्राप्त करें, उसी में रमें। हे विद्वन् ! राजन् ! (वायुः न) वायु जिस प्रकार (नियुतः) अपने तीव्रता आदि विशेष गुणों को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार तू वायु के समान प्रचण्ड बलशाली होकर (नियुतः) निरन्तर युद्ध करने हारी सेनाओं को अथवा निरन्तर संयोग विभाग करने वाली शक्तियों को (याहि) प्राप्त कर। और (त्वं हि) तू ही (धीभिः) अपने कर्म और विज्ञानों द्वारा (वाजान्) नाना ऐश्वर्यों और अन्नों को (नः) हमें (अच्छ) भली प्रकार (वि दयसे) विविध प्रकार से प्रदान और ग्रहण करता है।

गावऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १९ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १२

भा०—(गावः) सूर्य की किरणें जिस प्रकार (यज्ञम्) इस महान् ब्रह्माण्डमय यज्ञ की रक्षा करती हैं उसी प्रकार हे (गावः) गौओ ! तुम (यज्ञं) राष्ट्र के शुभगुण यज्ञ को (उप अवत) अच्छी प्रकार रक्षा करो। हे (मही) बड़ी सूर्य और पृथिवी (रप्सुदा) रूप शोभा प्रदान करने वाले तुम दोनों जिस प्रकार प्रजापालन रूप व्यवहार को (अवतम्)

रक्षा करते हो उसी प्रकार हे (मही) बड़ी शक्ति वाली (रप्सुदा) रूप शोभा को देने वाली राजा प्रजाओ ! तुम दोनों (यज्ञस्य अवतम्) परस्पर के सुसंगत व्यवहार की, गृहस्थ धर्म की स्त्री पुरुषों के समान (अवतम्) रक्षा और पालन करो। और जिस प्रकार (उभा) दोनों स्त्री पुरुष (हिरण्यया) सुवर्ण के आभूषण और हित और प्रिय वचनों से युक्त कानों वाले होकर (यज्ञस्य अवतम्) मैत्री उत्पन्न करने वाले प्रेम वचन को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (हिरण्यया) हित और रमणीय आचरणशील (कर्णा) करने वाले होकर (यज्ञस्य) परस्पर के मित्रता के प्रेम व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करो। उसी प्रकार राजा प्रजा ये दोनों भी (हिरण्यया) धनैश्वर्य से सम्पन्न होकर (कर्णा) एक दूसरे के कार्य करने वाले, उपकारक बन कर (यज्ञस्य) राष्ट्र रूप सुसंगत व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करें।

'उभा कर्णा हिरण्यया' अर्थात् 'दोनों कान सोने वाले' इस शब्द से कानों में स्वर्ण के आभूषण पहनना एवं उनका यत्न का रक्षण अर्थात् शरीर की रक्षा करने का तत्व भी स्फुट होता है।

अथवा—(यथा मही रप्सुदा यज्ञस्य अवतम् तथा उभा हिरण्यया कर्णा यज्ञस्य अवतम्। यथा च गाव मही अवन्ति तथा गाव उभा कर्णा अवत।) जैसे नाना रूप वाली बड़ी द्यौ और पृथिवी यज्ञ प्रजापति विराट् पुरुष को प्राप्त हैं, उनमें दोनों सूर्य, चन्द्र दो कुण्डल के समान हैं। उसी प्रकार दोनों सुवर्ण से भूषित कान यज्ञ आत्मा या पुरुष पुरु को प्राप्त हों। और जिस प्रकार किरणें आकाश पृथिवी को व्यापती हैं उसी प्रकार वाणियें दोनों कानों को व्यापें।

अथवा—(गाव. उपावत) जब किरणें व्यापती हैं, तब (मही यज्ञस्य रप्सुदा अवतम्) ब्रह्माण्ड को रूप देने वाली बड़ी आकाश और पृथिवी। प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार (गाव उपावत) हे वेदवाणियो ! तुम प्राप्त

हो अतः (उभौ कर्णौ) हमारे दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण से मण्डित होकर जैसे शरीर की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ज्ञान श्रवण से सुशोभित होकर (यशस्व अवतन्) वे दोनों कान गुरूपदेश श्रवण से मण्डित होकर यश, अर्थात् आत्मा की रक्षा करें।

यद्द्य सूर उदितेऽनागा मित्रो ऽअर्य्यमा।
सुवाति सविता भर्गः ॥ २० ॥ ऋ० ७ । ६६ । ४ ॥

वामदेव ऋषिः । राजा देवता । गायत्री । षड्जः ।

भा०—(यत्) जब (मित्रः) सबका स्नेही, मित्र के समान (अर्यमा) स्वामी रूप से अभिमत न्यायकारी, (सविता) सबका प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्वी, (भग) सर्वैश्वर्यवान् (सुवाति) राज्य करता है तब (सूर उदित इव) सूर्य उग आने पर जैसे कोई पुरुष अपराध, चोरी आदि नहीं करता कहीं अन्धकार नहीं रहता, समस्त प्रजागण उसी प्रकार (अद्य) आज (सूर उदिते) तेजस्वी सूर्य समान राजा के उदय होने पर प्रजाजन (अनागाः) पाप से दूर रहें।

आ सुत सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम्।
रसा दधीत वृषभम् ॥ ऋ० ८ । ६१ । १३ ।

गुनानन्द ऋषिः । रसा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! तुम (रसा) सारवान्, बलवान् एवं वीर्य अंग से अन्न धान्य उत्पादकों के समान बलवान् होकर (रोदस्योः अभिश्रियम्) आकाश और पृथिवी के बीच सबसे शोभाजनक (वृषभम्) वर्षणशील सूर्य या मेघ के समान राजवर्गों और प्रजावर्गों या दो बड़े राज्यों के बीच (अभिश्रियम्) अति अधिक शोभा पाने वाले आश्रय करने योग्य, उस (वृषभम्) अति बलवान् पुरुष को (सुत) राष्ट्र के पद में (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी (आसिञ्चत) प्रदान करके अभिषेक करें। और वह राज्य श्री (दधात) धारण करे।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥ २१ ॥

भा०—'त प्रत्नथा०' और 'अयं वेन.०' ये दोनों (अ० ७।१२) और (२६) मन्त्रों की प्रतीक मात्र हैं । उनकी व्याख्या वहीं देखो ।

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥२२॥
ऋ० ३ । ३८ । ४ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(तिष्ठन्तं) एकत्र स्थिर हुए राजा को (विश्वे) सब लोग (परि) चारों ओर से (अभूषन्) घेर कर खडे होते हैं । और वह (स्वरोचि) स्वयंप्रकाश, सूर्य के समान तेजस्वी (श्रियः) शोभाजनक ऐश्वर्यों को (वसानः) धारण करता हुआ (चरति) विचरता है । (वृष्णः असुरस्य) वर्षा करने वाले मेघ के समान (असुरस्य) समस्त प्राणियों को प्राण दान करनेवाले उसका (महत् नाम) नमाने का बडा भारी सामर्थ्य है कि वह (विश्वरूप) विश्वरूप होकर अर्थात् समस्त पदाधिकारियों का स्वरूप धर कर (अमृतानि) अविनश्वर ऐश्वर्यों पर (तस्थौ) शासक होकर विराजता है ।

विद्युत् पक्ष में—वर्षाशील मेघ में वह बड़ा भारी बल है जो नाना रूप होकर जलों में व्याप्त है ।

प्र वो मुहे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णञ्च रोदसी सपर्यतः॥२३
ऋ० १० । ५० । १ ॥

सुचीक ऋषि. । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्

२१—'त प्रत्नथाय वेनश्चोदयत्' इति काण्व० ।

परमेश्वर और राजा का (सुमन्न) उत्तम यश, (सहः) शत्रु के पराजयकारी बल, (महि श्रवः) बड़ा भारी यश और (नृम्णं च) धन इन पदार्थों को (रोदसी) द्यौ और पृथिवी ज्ञानी अज्ञानी और राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों (सपर्यत.) उपहार में प्रदान करते हैं। उस (विश्वानराय) समस्त नरों और राजा की नेताओं के उत्पादक (विश्वशुचे) समस्त विश्व के उत्पादक, सर्व विश्वव्यापक (अन्धसः) अन्न के दान करने वाले (मंहे) महान् (मन्दमानाय) सबको आनन्द देने वाले, स्वयं आनन्दस्वरूप उस परमेश्वर की (वः) तुम लोग (अर्च) अर्चना और स्तुति आदर करो।

> बृहन्निदिध्म ऽएषां भूरिं शुस्तं पृथुः स्वरुः ।
> येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २४ ॥ ऋ० ८ । ४५ । २ ॥
>
> त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(येषाम्) जिनका (सखा) मित्र (बृहन्) महान् (इध्म) तेजस्वी, (पृथुः) विस्तीर्ण राज्य वाला (स्वरुः) शत्रुओं का नाशक, सूर्य के समान तेजस्वी (युवा) युवा पुरुष के समान सदा बलवान् उत्साही हो, (एषां) उन प्रजाओं का (भूरि) बहुत (शस्तम्) उत्तम, प्रशंसा योग्य फल होता है।

> इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
> मुहाँ२ऽअभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥ ऋ० १ । ९ । १ ॥
>
> मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (सोमपर्वभिः) सोम, राजपद या राज्य के पालन करने वाले पुरुषों सहित (अन्धसः) अन्न या राज्यैश्वर्य से (मत्सि) तृप्त हो और (ओजसा) बल पराक्रम से तू स्वयं (महान्) बड़ा (अभिष्टिः) आदर सत्कार करने योग्य है।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥२६॥
ऋ० ३ । ३४ । ३ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(शर्धनीति) बल अर्थात् सेनाबल को अग्रणी होकर ले चलने वाला (इन्द्र) शत्रुसंहारक सेनापति (वृत्रम् अवृणोत्) नगर-रोधी शत्रु को रोक ले और (वर्पणीति) नाना रूपों के व्यूहों के करने और चलाने में चतुर सेनापति (मायिनाम्) मायावी पुरुषों को भी (अमिनात्) विनाश करे । (वनेषु) वनों में लगा (उशधग्) अग्नि जिस प्रकार सबको भस्म कर देता है । उसी प्रकार (उशधग्) पराये धन के लोभी चोर डाकू आदि को संतप्त या पीड़ित करने में कुशल राजा (वनेषु) वनों में स्थित (व्यंसम्) अपने पराये धनों के हरने वाले चोर को उसके बाहुएं या कन्धे काट करके (अहन्) मारे । और (राम्याणाम्) प्रसन्न करने वाले स्तुति पाठकों की (धेना) वाणियों को (आविः अकृणोत्) प्रकट करे ।

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किन्त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥
ऋ० १ । १६५ । ३ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! (त्वम्) तू (माहिन) अति पूज्य और महान् सामर्थ्यवान् होकर (एकः) अकेला (यासि) प्रयाण करता है, सो (कुतः) क्यों किस प्रयोजन से ? (ते) तेरा (इत्था) इस प्रकार के कार्य करने में (किम्) क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार (समराणः) ठीक रास्ते पर जाता हुआ तू (शुभानैः) शुभ, मङ्गल-कामना करने वाले हितैषी पुरुषों से (सम्पृच्छसे) पूछा जावे ।

(न) हमें (तत्) उस सब कारणों को (वोचः) बतला, हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन्! यतः क्योंकि (अस्मे) हम (ते) तेरे ही हितैषी हैं।

महाँ२ऽ इन्द्रो य ओजसा०। कुदा चुन स्तरीरसि०॥
कुदा चुन प्रयुच्छसि॥ २७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् इन्द्र। (ओजसा महान्) तू बल पराक्रम से महान् है। यह मन्त्र प्रतीक देखो ७। ४०॥ (कदाचन स्तरीः असि) तू कभी प्रजा का नाश नहीं करता। यह मन्त्र प्रतीक देखो ८। २ (कदा च न प्रयुच्छसि) तू कभी प्रमाद नहीं करता। यह मन्त्र प्रतीक देखो अ० ८। ३॥

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि य ऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन्॥ २८॥
ऋ० १०। ७४। ४॥

गौरिवीतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (ये) जो लोग (ऊर्वं) हिंसक, दुष्ट, (गोमन्तम्) भूमि के मालिक को (तितृत्सान्) मरना चाहते हैं और जो (पुरुपुत्राम्) बहुत से पुत्रों वाली, (सकृत्स्वम्) एक ही बार बहुत अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ, (महीम्) भूमि को और (सहस्रधाराम्) सहस्रों को धारण पोषण करने वाली भूमि या सहस्रों धाराओं से वर्षण करने वाली, (बृहतीम्) विशाल गौ को (दुदुक्षन्) गौ के समान दोह लेना चाहते हैं अर्थात् जो उस के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेने के इच्छुक हैं वे (आयवः) मनुष्य (ते) तेरे (तत्) उस विजय और प्रजापालन के कार्य की (पनन्त) निरन्तर स्तुति करते हैं।

(ये ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्) जो आंगिरस लोग प्राप्त हुए गो सब को मारना चाहते हैं, यह सायणकृत अर्थ असंगत है।

(ये गोमन्तं उदकवन्तं ऊर्वं मेघं तितृत्सान् हिंसितुमिच्छन्ति) जो

पानी वाले अन्न अर्थात सोम को मारना चाहते हैं। यह अर्थ उव्वट और महीधर का है।

आचार्य पक्ष में—हे इन्द्र ! आचार्य ! (ये) जो (गोमन्तम् ऊर्वम्) वाणी के स्वामी अर्थात् विद्वान् होकर भी हिंसक या दुष्ट पुरुष हैं उसको जो नाश करना चाहते हैं और बहुत से शिष्य रूप पुत्रों वाली सहस्रों ज्ञानों का धारण और प्रदान करने वाली, बड़ी (सकृत्त्व) एक ही वार समस्त ज्ञान प्रकट करने वाली, (बृहती) वेद वाणी को दोहना चाहते हैं वे (ते आपन्नन्त) तेरी शरण आते हैं।

इमान्ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तं ऽआनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२६॥

ऋ० १ । १०२ । १ ॥

कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! मैं (महत) महान् सामर्थ्य वाले (ते) तेरे लिये (इमां) इस (धियम्) धारण योग्य कर्म और ज्ञान को (प्र भरे) धारण करता हूं। (अस्य) इस तेरे सेवक की (स्तोत्रे) स्तुति करने में (यत् धिषणा) जो बुद्धि या वाणी है वह (ते आनजे) तेरे ही महान सामर्थ्य को प्रकट करती है। (तम्) उस (सासहिम्) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को (देवास) वीर विजिगीषु लोग शवसा बल के कारण (उत्सवे) उत्सव और (प्रसवे) ऐश्वर्य प्राप्ति और उत्तम शासन के कार्य में प्राप्त करके उसके (अनु अमदन्) आनन्द के साथ २ स्वयं भी आनन्दित, हर्षित होते हैं।

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्।
वातजूतो यो ऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥३०॥

ऋ० १० । १७० । १ ॥

विभ्राड् ऋषिः । सूर्यो देवता ।

भा०—(विभ्राट्) विविध दिशाओं में विशेष रूप से प्रदीप्त, तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (बृहत्) बड़ा है। वह (सोम्य मधु) सोम अर्थात् जीवन के हितकारी, मधु अर्थात् जल को किरणों से पान कर लेता है। (वातजूत) वायु से किरणों द्वारा युक्त होकर वह स्वयं समस्त प्रजाओं को पालता और पोषता है और बहुत सी प्रजाओं और लोकों को धारण करता हुआ विविध रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार (विराट्) विशेष तेज से देदीप्यमान तेजस्वी राजा (बृहत्) बड़े भारी (सोम्यम्) ऐश्वर्य-जनक सोम अर्थात् राजपद के योग्य (मधु) अन्न, ज्ञान और शत्रुनाशक राष्ट्र-स्तम्भक बल और मान को (पिबतु) भोग करे और वह (यज्ञ-पतौ) यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसंगत व्यवस्था और पूज्य पदों के पालन करने वाले पुरुष में (अविहृतम्) अखण्डित, सम्पूर्ण (आयुः दधत्) दीर्घ जीवन धारण करता हुआ, अथवा (यज्ञपति) राष्ट्रपति के पद पर (अविहृतम् आयुः दधत्) अपने सम्पूर्ण अखण्डित, जीवन को धारण करता हुआ या प्रदान करता हुआ (यः) जो (वातजूत०) वायु के समान प्रचण्ड वेग वाले बलवान् सेनापति के बल से स्वयं वेगवान्, बलवान् होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (प्रजा अभि रक्षति) प्रजाओं की रक्षा करता है और (पुपोष) उनको पुष्ट और समृद्ध करता है वह (वि राजति) इस प्रकार स्वयं विशेष रूप से प्रकाशित होता है।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ५० । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो (७ । ४१)

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२॥ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥ ऋ० १ । ५० । ६ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३१—'दक्षता जनै०' इति काण्व० ।

भा०—हे (वरुण) सब पापों के निवारक ! सर्वश्रेष्ठ वरुण ! परमेश्वर ! राजन् ! हे (पावक) सूर्य और अग्नि के समान पवित्रकारक, नर्नों के तीक्ष्ण दण्ड आदि से निष्पापकारक ! (येन) जिस (चक्षसा) दर्शन या प्रकाश से मार्गदर्शक, प्रकाशक ज्ञान (भुरण्यन्तम्) सबके पालक पुरुष को (पश्यसि) देखता है उसी से (त्व) तू अन्य मनुष्यों का भी (अनु पश्यसि) देख, उनको ज्ञान प्रदान कर और मार्ग दिखा। राजा छोटे बड़े सबको एक समान दृष्टि से देखे और एक समान दृष्टि से उन पर शासन कर।

देव्यावध्वर्यू ऽआ गतᳬ रथेन सूर्यत्वचा ।
मध्वा यज्ञᳬ समञ्जाथे ॥

भा०—हे (दैव्यौ अध्वर्यू) देवों, विद्वानों और दिव्य गुणों के निमित्त कुशल अध्वर अर्थात यज्ञ, अहिंसा युक्त राज्यपालन में कुशल दो पदाधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (सूर्यत्वचा) सूर्य के समान चमकने वाले बाह्य आवरण से मढ़े (रथेन) रथ से या तेजस्वी, रक्षा के साधन शस्त्रास्त्र बल और रथारोही सैन्य सहित (आ गतम्) आओ। और (यज्ञम्) राष्ट्र यज्ञ को (मध्वा) अन्न, यश और मधुर भोग्य पदार्थों से (सम्-अञ्जाथे) युक्त करो।

तं प्रत्नथा० । अयं वेन ० । चित्रं देवानाम्० ॥ ३३ ॥

भा०—तं प्रत्नथा० यह प्रतीक है। व्याख्या देखो अ० ७ । १२ ॥ अयं वेन ० यह मन्त्र प्रतीक देखो ७।१६ ॥ 'चित्रं देवानाम्०' यह प्रतीक देखो ७ । ४२ ॥

आ न ऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव ऽएतु । अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

ऋ० १ । १८६ । १ ॥

३३— देव्या अध्व०' इति काण्व० । वेनश्चोदयत् इति काण्व० ।

३४—इळा० इति काण्व० ।

अगस्त्य ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । धैवतः ॥

भा०—(विश्वानर) सबका नेता, नायक, अग्रणी, सबका स्वामी, (सविता) सबका प्रेरक, उत्पादक एवं सूर्य के समान (देवः) उत्तम ज्ञान प्रकाशों का दिखलाने हारा, उत्तम पदार्थों का दाता, विद्वान् (नः) हमारे (विदथे) संग्राम कार्य, एवं ज्ञानमय संगम स्थान में (सुशग्मि) उत्तम उपदेश करने वाली (इडाभिः) वाणियों सहित (नः) हमें (आ एतु) प्राप्त हो। हे (युवानः) युवा, तरुण, बलवान् पुरुषो ! तुम लोग (अभिपित्वे) अपने आगे आने वाले (नः) हमारे (विश्व जगत्) समस्त पुत्र पशु आदि संसार को (यथा) जिस प्रकार से (अपि मत्सथ) आनन्द प्रसन्न एवं भोजन वस्त्रादि से तृप्त करते रहो ऐसा (मनीषा) उत्तम बुद्धि से काम करो ।

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ अ॒भि सू॑र्य ।
सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥ ३५ ॥ ऋ० ८ । ९३ । ४ ॥

श्रुतकक्ष सुकक्षश्च ऋषी । सूर्यो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त ऐश्वर्य के उत्पादक ! हे (वृत्रहन्) मेघ के नाशक, सूर्य के समान विघ्नकारी शत्रुओं के नाशक ! तू (अभि उद् अगाः) सब प्रकार से, सबके समक्ष उदय को प्राप्त हो, उन्नत पद पा। (अद्य) आज दिन (यत् यत्) जो कुछ भी है (तत् सर्वम्) वह सब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते वशे) तेरे ही वश में है ।

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्यो॒ति॒ष्कृद॑सि सूर्य ।
विश्व॒मा भा॑सि रोच॒नम् ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ५० । ४ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—तू (तरणिः) सब कष्टों से पार तराने वाला (विश्वदर्शतः) सबसे दर्शन करने योग्य है । (ज्योतिः कृत्) तू समस्त सूर्यादि तेजस्वी लोकों को बनाने वाला है । हे (सूर्य) समस्त जगत् के प्रेरक और सञ्चालक !

तू (रोचनम्) तेजस्वी, दीप्तिमान् (विश्वम्) समस्त संसार को (आभासि) प्रकाशित करता है।

इसी प्रकार हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! तू प्रजाजनों को पार लगाने वाला होने से 'तरणि' है, तू सबमें दर्शनीय है, तू ज्योति अर्थात् ज्ञान प्रकाश का करने वाला है, समस्त रुचिकर पदार्थों का प्रकट करने वाला है।

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततथ्ं स जभार।
यदेदयुक्त हुरितः सुधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥

ऋ० १। ११५। ४॥

[३७, ३८] कुत्स ऋषि । सूर्यो देवता । निचृत् । धैवत ॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य सब के प्रेरक सञ्चालक और उत्पादक परमेश्वर का (तत् देवत्वम्) वही अवर्णनीय 'देवत्व' अर्थात् सर्व शक्तिप्रद स्वरूप है और (तत्) वही अलौकिक (महित्वम्) महान् सामर्थ्य है कि वह (विततं) इस नाना प्रकारों से बने, फैले विस्तृत संसार को (कर्त्तोः) बनाने में समर्थ है और वही (मध्या) बीच में व्यापक है और वही (सं जभार) इसका संहार करता है। (यदा इत्) जब भी वह (सधस्थात्) एकत्र होने के केन्द्रस्थान से (हरित) अपनी तीव्र गतिदायिनी शक्तियों को और विस्तृत दिशाओं को भी, समस्त किरणों को सूर्य के समान (अयुक्त) एकत्र कर लेता है (आत्) तभी (रात्री) रात्रि के समान ही प्रलयकाल की रात्रि (सिमस्मै) इस समस्त ब्रह्माण्ड के ऊपर (वासः तनुते) आवरण सा छा देती है।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा का यही देवत्व और महत्व है कि वह (मध्या) समस्त राष्ट्र के बीच में रहकर विस्तृत राष्ट्र को बनाने और बिगाड़ने में समर्थ है। वह जब एक ही मुख्य पद से समस्त (हरित) दिशाओं अर्थात् देशों को या समस्त विद्वानों और वीर पुरुषों को (अयुक्त) रथ में अश्वों के समान, राष्ट्र के कार्य में नियुक्त करता है तभी (रात्री)

सबको आनन्द सुख देने वाली राज्य-व्यवस्था सबके लिये वस्त्र के समान गर्मी, सर्दी, दुःख, पीड़ा विपत् से बचाने वाली होकर रक्षा प्रदान करती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ ३८ ॥

ऋ० १ । ११५ । ५ ॥

भा०—(सूर्य) सूर्य जिस प्रकार (द्यो: उपस्थे) आकाश के बीच में रहकर (मित्रस्य) वायु और (वरुणस्य) जल के (तत् रूपं कृणुते) उस रूप प्रकट करता है जिसे (अभिचक्षे) समस्त जगत् का प्राणी देखता है। इसी प्रकार (सूर्य) सबका प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर भी (द्यो) प्रकाशमय, ज्ञानमय स्वरूप में (उपस्थे) विद्यमान रह कर (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुण, सब में विद्यमान प्राण और उदान इन दोनों का ऐसा (रूपं कृणुत) रुचिकर स्वरूप उत्पन्न करता है (अभिचक्षे) जिसे यह मनुष्य भी देखता है। अथवा—[मित्रम् अहः वरुणः रात्रिः] मित्र अर्थात् दिन और वरुण अर्थात् रात्रि इन दोनों का ऐसा रूप उत्पन्न करता है जिस से यह जन या यह स्वयं सबको देखता है। (अस्य) इसका भी (रुशत्) तेजो युक्त सूर्य के समान (अनन्तम्) अनन्त (पाजः) बल, सामर्थ्य (अन्यत्) एक प्रकार का है। और (अन्यत् कृष्णम्) दूसरा, एक और सामर्थ्य 'कृष्ण' अर्थात् काला है। अर्थात् सूर्य के जिस प्रकार दो सामर्थ्य हैं एक चमकने वाला, दिन करने वाला दूसरा कृष्ण, काला, रात्रि करने वाला, उसी प्रकार परमेश्वर के दो सामर्थ्य हैं एक (रुशत् पाजः) तेजो युक्त अर्थात् सबको प्रकाशमय, चेतनामय करने वाला उत्पादक सामर्थ्य और दूसरा 'कृष्ण' सब संसार को 'कर्षण' करने वाला या हनन, विनाश करने वाला, प्रलयकारी बल है जिस प्रकार सूर्य के दोनों प्रकार के सामर्थ्यों को (हरितः) दिशाएं धारण करती हैं उसी प्रकार इस परमेश्वर के भी दोनों सामर्थ्यों को (हरितः) अविरोध कार्य

शक्तियां (संभरन्ति) भरण पोषण करती हैं और वे ही (सभरन्ति) संहार करती हैं।

अध्यात्म में—सूर्य सब का प्रेरक आत्मा (द्यो उपस्थे) सर्व प्रकाशमय चेतनामय मस्तक के बीच रहकर मित्र प्राण और वरुण-अपान दोनों का ऐसा रूप करता है कि यह देह देखता है। इसका अनन्त सामर्थ्य एक (रुशत्) रोचक है जो इस को सात्विक कर्म कराता है, चेतन रखता है। दूसरा 'कृष्ण' तामस बल है जो समस्त प्राणों को कर्षण करता है जिसको (हरित) इन्द्रियें धारण करती हैं। [२] *इसी प्रकार राष्ट्र में सूर्य के समान तेजस्वी राजा* मित्र और वरुण के रूप धारण करता है, अर्थात् वह सज्जनों पर अनुग्रह और दुष्टों पर निग्रह करने वाले दो विभाग करता है। एक उसका तेजस्वी रूप है, दूसरा 'कृष्ण' अर्थात्, भयानक, शत्रु नाशकारी बल है। जिसे *संहारकारी वीर सेनाएं और प्रजाएं धारण करती हैं।*

बण्म॒हाँ२॥ अ॑सि॒ सूर्य्य॒ बडा॑दित्य म॒हाँ२॥ अ॑सि।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ२ऽ अ॑सि ॥ ३६ ॥

ऋ० ८। ६०। ११॥

[३६, ४०] जमदग्नि ऋषि। सूर्यो देवता। सतो बृहती। मध्यम ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (बट्) सच मुच (महान् असि) महान् है। हे (आदित्य) सबको अपने में ग्रहण करने हारे तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। (सत) सत्, नित्य, सबके कारण रूप में विद्यमान तेरा (मह महिमा) महान् सामर्थ्य (पनस्यते) कहा जाता है (अद्धा) सचमुच हे (देव) देव! तू सचमुच (महान् असि) महान् है। सब पक्षों में समान है।

बट् सू॑र्य्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ२ऽ अ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ२ऽ अ॑सि।
म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्यः पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥ ४० ॥

ऋ० ८। ६०। १२॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! सर्व प्रेरक प्रभो ! राजन् ! (श्रवसा) श्रवण करने योग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान और यश से तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। हे (देव) सबके प्रकाशक हे सर्वत्र दानशील कान्तिमय ! तू (सत्रा) सत्य ही अथवा सत्य के द्वारा (महान् असि) महान् है। (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (देवानाम्) समस्त दानशील पुरुषों या पृथिव्यादि लोकों के बीच, सूर्य के समान (असुर्यः) प्राणियों का हितकारी है। तू (पुरोहितः) दीपक के समान विवेक से मार्ग चलने के लिये (पुरः हितः) आगे के मुख्य अग्रणी पद पर स्थापित किया जाता है। तू (विभु) विविध सामर्थ्यों से युक्त (अदाभ्यम्) अविनाशी (ज्योतिः) ज्योति, आनन्दमय, तेज स्वरूप है।

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ४१ ॥
ऋ० ८। ८८। ३ ॥

नृमेध ऋषिः । सूर्यो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः ।

भा०—हे मनुष्यो ! तुम लोग (सूर्यम्) सबके प्रेरक सर्वोत्पादक परमेश्वर का (श्रायन्त इव) आश्रय लेते हुए हो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् आत्मा के (विश्वा वसूनि) समस्त देह में बसने से प्राप्त करने योग्य आनन्दों का (भक्षत) भोग करो। हम लोग (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) आगे उत्पन्न होने वाले संसार में जिस प्रकार (भागं न) अपने कमाये धन को प्रदान करते हैं उसी प्रकार (ओजसा) बल पराक्रम से कमाए हुए (भागं) सेवन करने योग्य कर्म-फल को (जाते जनमाने) अबतक उत्पन्न और आगे उत्पन्न होने वाले जन्म या देह में (दीधिम) धारण करते हैं, प्राप्त करते हैं।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा का आश्रय लेकर ही

हम ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के धनों का भोग करें और उत्पन्न और आगे होने वाले प्रजा आदिक में अपने पराक्रम से कमाये सेवनीय पदार्थ को प्रदान कर।

अद्या देवा ऽउदि॑ता ऽसूर्य॑स्य निरᳪहंसः पिपृता निर॑वद्यात्। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्तामदि॑तिः सिन्धुः पृथि॒वी ऽउ॒त द्यौः ॥४२॥

कुत्स ऋषिः । सया देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवाः) सब अर्थों के प्रकाश करने वाले, प्रिय, विद्वान् पुरुषो ! आप (सूर्यस्य) सूर्य के उदय हो जाने पर जिस प्रकार किरण अन्धकार को दूर कर देती है उसी प्रकार आप लोग (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्म ज्ञान के हृदय में उदित हो जाने पर और राष्ट्र में तेजस्वी राजा के उदय हो जाने पर आप लोग हमें (अहसः) पाप से और (अवद्यात्) कहे जाने के अयोग्य, निन्दनीय कर्म से भी (पिपृत) बचावें। पापों से पृथक् करें। और (मित्रः) सबका स्नेही न्यायाधीश, (वरुणः) दुष्टों का वारक, सर्वश्रेष्ठ, (अदितिः) अखण्ड शासनाज्ञा वाला, (सिन्धुः) नदी के समान वेगवान्, बलवान् अथवा, राष्ट्र को बांधने वाला, प्रबन्धक (पृथिवि) पृथिवी के समान सर्वाश्रय, उत (द्यौः) आकाश के समान विशाल पुरुष (नः) हमारे (तत्) उस सङ्कल्प का (मामहन्ताम्) सत्कार करें।

भौतिक पक्ष में—सूर्य के उदय होने पर (देवाः) सूर्य की किरणें हमें बुरे कर्म (अहसः) पाप और रोग से दूर कर। हम स्वच्छ नीरोग, शुभ सङ्कल्पवान् हों (मित्रः) सूर्य, (वरुणः) जल, (अदितिः) आकाश, (सिन्धुः) सागर या विशाल जल प्रवाह, (पृथिवी) पृथिवी और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (नः तत् मामहन्ताम्) हमारे इस शरीर को उत्तम बनावे।

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च। हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥ ४३

ऋ० १। ३५। २॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (कृष्णेन रजसा) परस्पर आकर्षण करने वाले लोक समूह के साथ सर्वत्र भ्रमण करता हुआ मर्त्य, नाशवान् प्राणियों और अनाशवान् भौतिक तत्वों को अपने २ स्थान पर स्थिर करता है और (हिरण्ययेन रथेन) तेजस्वी स्वरूप से सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ जाता है उसी प्रकार (कृष्णेन) शत्रुओं को काट गिरा देने वाले (रजसा) सैन्य-बल से (आवर्त्तमान:) सर्वत्र विद्यमान रहता हुआ (सविता) सबका शासक राजा (अमृतम्) अमृत, अमृण्ड, अविनाश्य स्थिर पदार्थों को और (मर्त्यं च) मरने वाले सामान्य जनों को (निवेशयन्) यथा स्थान स्थापित करता हुआ (देवः) विजिगीषु राजा (हिरण्ययेन) स्वर्ण या लोह के बने (रथेन) रथ से अथवा धनैश्वर्यादि रमणसाधन रथ आदि से (भुवनानि) समस्त प्राणियों को (पश्यन्) देखता, उनका निरीक्षण करता हुआ (याति) प्रयाण करे ।

प्र वा॑वृजे सुप्र॒या ब॒र्हिरे॑षा॒मा वि॒श्पती॑व॒ बीरि॑ट इयाते ।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षस॑: पू॒र्वहू॑तौ वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् ॥ ४४ ॥
ऋ० ७ । ३९ २ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । वायुः पूषा च देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुप्रया: वायुः) जिस प्रकार उत्तम वेग से चलने वाला वायु (एषाम्) इन लोकों में से (बर्हिः) जल को (प्र वावृजे) उत्तम रीति से ले लेता है और जैसे (पूषा) सबका पोषक सूर्य (एषाम्) इन लोकों में से (बर्हिः प्र वावृजे) किरणों द्वारा जल के अंश को पृथक् कर लेता है। अथवा (सुप्रयाः वायुः यथा बर्हिः प्र वावृजे) उत्तम वेग से चलने वाला वायु जिस प्रकार अन्न को भली प्रकार तुषों से पृथक् कर देता है उसी प्रकार यह राजा (वायुः) वायु के समान प्रचण्ड वेग से जाने वाला, एवं प्रजा का प्राणस्वरूप, (सुप्रयाः) उत्तम अन्न

आदि सामग्री से सम्पन्न अथवा (सुप्रया) उत्तम रीति से प्रयाण करने वाला बलवान् होकर (एषाम्) इन मनुष्यों में से (बर्हि) प्रबल जन सघ को (प्र वावृन) पृथक कर लेता है। इसी प्रकार (पूषा) सर्व पोषक पूषा, भागदुघ नामक अधिकारी भी (एषाम्) इन प्रजा जनों के (बर्हि) वृद्धिकर अन्न का उत्तम रीति से संग्रह करता है। और जिस प्रकार (वायु पूषा) वायु और सूर्य दोनों (विरिटे इयात) अन्तरिक्ष मार्ग से जाते हैं उसी प्रकार ये दोनों भी (विश्पती इव) प्रजा जनों के पालक राजा और पोषक होकर (विरिटे) भयभीत शत्रु पर और अधीन प्रजा के बीच (नियुत्वान्) अश्वारोहिगण से युक्त होकर (इयात) गमन करते हैं। और (अक्तो) रात्रि के और (उषस) दिन के (पूर्वहूतौ) पूर्व ही बुलाये वायु और सूर्य के समान वे दोनों (विशा स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये होते हैं।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ४५ ॥ ऋ० १ । १४ । ३ ॥

[४५, ४६] मेधातिथ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(इन्द्र वायू) विद्युत्, वायु, (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के पालक सूर्य, (मित्राग्निम्) मित्र, प्राण और अग्नि, (पूषणम् भगम्) पुष्टिकारक, अन्न और सेवन योग्य ऐश्वर्य (आदित्यान्) सूर्य की किरणों या १२ मासों और (मरुतां गणम्) वायुओं के समूह का ज्ञान करके उत्तम उपयोग करो।

राष्ट्र-पक्ष में—(वायू) इन्द्र राजा, वायु के समान प्रचण्ड सेनापति, (बृहस्पति) विद्वान् पुरुष (मित्राग्निम्) सर्वस्नेही न्यायकारी, अग्नि, अग्रणी नेता, (पूषण) पोषक, पृथ्वी या भागदुघ, (भग) ऐश्वर्यवान् (आदित्यान्) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष,

(मारुतं गणम्) मनुष्यों के गण इन सबको अपने २ पद पर नियुक्त करो। जैसे अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ४६ ॥ ऋ० १ । २३ । ६ ।

भा०—(वरुण) सब दुष्ट पुरुषों का निवारण करने हारा, एवं प्रजा द्वारा वरण करने योग्य मुख्य पदाधिकारी और (मित्र) प्रजा को मरने से बचाने हारा, सबका स्नेही पदाधिकारी पुरुष ये दोनों शरीर में उदान और प्राण के समान (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपने समस्त रक्षा के कार्यों से (प्र अविता) उत्तम रक्षक (भुवन्) हों और (नः) हमें (सुराधसः) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (करताम्) करें।

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् ।
इता मरुतो अश्विना । ऋ० ८ । ७२ । ७ ॥

गृणादिऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक शक्ति वाले ! हे (मरुतः) शत्रु के मारने हारे वीर भटो ! हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत राष्ट्र में व्यापक अधिकार के स्वामियो! आप सब यथाधिकार (नः) हमारे और (एषां) इन (सजात्यानाम्) हमारे ही समान धन, मान और कुल में प्रसिद्ध पुरुषों के बीच में (अधि) अधिकारी रूप से (इत) मान प्रतिष्ठा को प्राप्त करो।

तम्प्रत्नथा० । अयं वेन० । ये देवासः० । आ न इडाभिः० । विश्वेभिः सोम्यं मधु० । ओमासश्चर्षणीधृतः० ॥ ४७ ॥

भा०—ये सब प्रतीक मात्र हैं। 'तम् प्रत्नथा'० अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेन'० ७ । १६ ॥ 'ये देवास.'० ७ । १९ ॥ 'आ न इडाभिः'०

४७—१-५ पञ्चाददद । आ न इळाभि० इत्यस्य० ।

३३ । ३४ ॥ 'विश्वेभिः सोम्यं मधु' ० ३३ । १० ॥ 'ओमासश्चर्षणीधृत' ० ७ । ३३ ॥ इनकी व्याख्या वहां देखो ।

अग्न॒ इन्द्र॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ देवाः॒ शर्द्धः॒ प्र य॑न्त॒ मारु॑तो॒त वि॑ष्णो ।
उ॒भा नास॑त्या रु॒द्रो ऽअध॒ ग्नाः पू॒षा भगः॒ सर॑स्वती जुषन्त ॥४८॥
ऋ० ५ । ४६ । २ ॥

प्रतिक्षत्र ऋषिः । इन्द्रादयो विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ज्ञानवन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! हे (मित्र) सर्वस्नेहिन् ! हे (मारुत) मनुष्यों शत्रुहन्ता लोगों के समूह ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! (देवाः) आप सब देव, विद्वान्गण बल और ज्ञान देने हारे आप (शर्द्धः) शरीर और आत्मा के बल का (प्रयन्त) प्रदान करो । (उभा नासत्या) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले दोनों (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला या ज्ञानों का उपदेष्टा, और (ग्नाः) गमन योग्य स्त्रियें और ज्ञान करने योग्य वाणियें, (भगः) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री या राजसभा, ये सब (जुषन्त) प्रेम से राष्ट्र का सेवन करें । प्रेम से वर्त्ताव करें ।

इ॒न्द्रा॒ग्नी मि॒त्रावरु॒णादि॑ति॒ꣳ स्वः॑ पृथि॒वीं द्यां म॒रुतः॒ पर्व॑ताँ२ऽ अ॒पः । हु॒वे विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॒ भगं॒ नु शꣳस॑ꣳ सवि॒तार॑मू॒तये॑ ॥ ४९ ॥ ऋ० ५ । ४६ । ३ ॥

वत्सार ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । जगती । मध्यमः ॥

भा०—मैं (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुण, (अदितिम्) अदिति, अखण्ड शासन करनेवाली राजसभा या अन्तरिक्ष, (स्वः) शत्रुओं का तापकारी, ज्ञानोपदेष्टा और सुखकारी, आकाश, (पृथिवीम्) पृथिवी, भूमि (द्याम्) सूर्य, (मरुतः) वायुगण और मरुद्गण, (पर्वतान्) पर्वतों, मेघों और पालनसामर्थ्य से युक्त

स्थिर राज्य कर्त्ताजन, (अप) जलों, और आप्त पुरुषगण, (विष्णु) व्यापक सामर्थ्यवान्, (पूषणम्) पुष्टिकारक अन्न, पशु आदि या भाग दुध, (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड और वेद के पालक परमेश्वर और आचार्य (भगम्) ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् धनकुबेर, (शंसम्) स्तुति योग्य या विद्याप्रदाता (सवितारम्) उत्पादक, पिता या आचार्य को मैं (ऊतये) रक्षा ज्ञान, क्रियाचरण आदि विविध प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिये (हुवे) स्तुति करूं, उनको प्राप्त करूं, उनका अन्यों को उपदेश करूं।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः । यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२ऽअवन्तु देवाः ॥५०॥

ऋ० ८।५२।१२।

प्रगाथ ऋषिः । रुद्रा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्मे) हममें से (यः) जो (शंसते) उत्तम २ उपदेश करता, (स्तुवते) और परमेश्वर की स्तुति करता है एवं ज्ञान से सत्य गुणों का वर्णन करता है। और (यः पज्रः) जो धनादि ऐश्वर्यों का कमाने द्वारा, ऐश्वर्यवान् पुरुष (धायि) नाना प्रजाओं को धारण पोषण करता है। उसको अथवा यह (रुद्राः) उपदेश करने वाले विद्वान् और शत्रुओं को रुलाने वाले वीर गण, (मेहना) प्रजाओं पर मेघों के समान सुख समृद्धियों के वर्षण करने वाले (पर्वतासः) पालक २ अर्थात् नाना दुष्टवृत्तियों से मन को सताने वाले, अथवा पर्वतों के समान अभय और अप्रकम्प्य गम्भीर, अथवा मेघों के समान शत्रुओं पर बाण वर्षण करने वाले, अथवा पर्वतों पर पहुंचने वाले, उत्सवों वाले (सजोषाः) परस्पर समान प्रीति से युक्त, (इन्द्र-ज्येष्ठाः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को अपना सर्वोपरि श्रेष्ठ स्वामी स्वीकार करके (देवाः) अपने नायक के अधीन रहकर (देवाः) विजय के इच्छुक सैनिक गण और विद्वान् पुरुष (भरहूतौ) संग्राम के लिए आह्वान या युद्ध के अवसर आ जाने पर (अस्मान्) हम प्रजाजनों की (अवन्तु) रक्षा करें।

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा ऽआ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥

ऋ० २। २९। ६॥

कूर्मा गात्समद ऋषि । विश्वेदेवा देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (यजत्रा) अभय दान करने और राष्ट्रों को सुसंगत करने वाले वीर, युद्ध यज्ञ के सम्पादक एवं पूज्य, सत्संग योग्य पुरुषो ! (अद्य) आज आप लोग (अर्वाञ्च) हमारे सम्मुख, हमें प्राप्त (भवत) होवो। (व) आप लोगों के (हार्दि) हृदय में स्थित भीतरी भाव को (आ वि-अयेयम्) भली प्रकार जानूं। मैं प्रजाजन (भयमान) शत्रुगण से भय करता हुआ आपकी शरण हूं। हे (देवा) विजयशील विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (न) हम (निजुर) सब प्रकार सर्वथा विनाश करने वाले, (वृकस्य) हमारा सर्वस्व अपहरण करने वाले चोर, डाकू तथा भेडिये के समान क्रूर पुरुषों और जीवों से भी (त्राध्वम्) हमारा रक्षा करो। और हे (यजत्रा) सुसंगत, संघ बना कर रहने वाले सेनाजनो ! आप लोग (अव पद) गढे के समान गिरने के स्थान, संकट और विपत्ति रूप गहरे (कर्त्तात्) गडे से, अथवा (अवपद कर्त्तात्) विपत्ति के जनक पुरुष से अथवा राष्ट्र को नीचे गिरा देने वाले हिंसा कार्य, शस्त्रादि वध से (त्राध्वम्) रक्षा करो।

वृक'—वृक आदाने। भ्वादि। श्वापि वृक उच्यते विकर्त्तनात्। निरु० ५। ४। २॥ 'अवपद कर्त्तात'—यत्र अवपद्यन्ते पतन्ति तत कर्त्तात् कूपात् इति उवटमहीधरदयानन्दा। विपद कर्त्तुरिति सायण। हिंसार्थस्य वा करोत कर्तस्तस्मात्। अथवा गर्त्तो वा कर्त्त। करत छान्दसम्।

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवा ऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥५२॥

ऋषीधानाक ऋषि । विश्वे देवा देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० १८ । ३१ ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ । ये
अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥५३॥

ऋ० ६ । ५२ । १३ ॥

सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे (विश्वेदेवा) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मे) मेरे (इम) इस (हवम्) स्तुति, आह्वान या विद्योपदेश को (शृणुत) श्रवण करो । (ये) जो आप लोग (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के समान सबके पालक और (द्यवि) सूर्य के समान सर्वप्रकाशक पद पर (उपस्थ) सदा हमारे समीप विद्यमान रहते हो (उतवा) और जो (अग्निजिह्वा) जिह्वा के समान अग्नि अर्थात् ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को मुख्य पद या उपदेशक और ज्ञानप्रद गुरु पद पर स्थापन करने वाले (यजत्रा) परस्पर सत्संग करने एवं पूजा करने योग्य हैं वे आप लोग भी (अस्मिन् बर्हिषि) इस महान् आसन के समान उत्तम राष्ट्र, प्रजा या पदासनों पर (आसद्य) विराज कर (मादयध्वम्) समस्त प्रजाओं को आनन्द और हर्षयुक्त करो ।

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥५४॥

ऋ० ४ । ५४ । २ ॥

वामदेव ऋषिः । सविता देवता । जगती । निषादः ।

भा०—हे (सवितः) सूर्य के समान समस्त पदार्थों के प्रकाशक और उत्पादक परमेश्वर ! तू (हि) जिस कारण (यज्ञियेभ्यः) आत्मा और परमात्मा के उपासक एवं ज्ञान यज्ञ के करने वाले (देवेभ्यः) ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों को (प्रथमम्) सबसे प्रथम, सर्वश्रेष्ठ और (उत्तमम्)

५४—[illegible]

उत्तम (भागम्) सेवन करने योग्य (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप मोक्ष का (सुवति) प्रदान करता है (आत्) और (दामानम् इव) सब सुखों और ज्ञानों के देने वाले अपने प्रकाशस्वरूप को भी (व्यूर्णुते) विविध प्रकार से फैलाता है। इसीसे (मानुषेभ्य) मनुष्यों को हितार्थ (अनूचीना) उनके अनुकूल सुख प्राप्त कराने वाले (जीवितानि) जीवनों और जीवनों के उत्पादक कर्मों को भी (वि ऊर्णुते) विविध प्रकार से प्रकट करता है, उपदेश करता है।

राजा के पक्ष में—हे तेजस्विन् ! राजन् ! तू (यज्ञियेभ्य देवेभ्य) प्रजा के सुव्यवस्थित राष्ट्र के सञ्चालक एव विजयी स्त्री पुरुषों को प्रथम (अमृतत्वम्) जीवनोपयोगी अन्न जल और उत्तम सेवन योग्य पदार्थ प्रदान करता है और दानशील पुरुष को प्रकट करता है। और मनुष्यों को नाना अनुकूल जीवनोपयोगी साधन भी प्रदान करता है।

प्र <u>वा</u>युमच्छा बृह<u>ती</u> म<u>नी</u>षा बृहद्र<u>यिं</u> <u>वि</u>श्ववा<u>र</u>ꣳ र<u>थ</u>प्राम्।
द्यु<u>त</u>द्या<u>मा</u> <u>नि</u>युत॰ पत्य॑मानः <u>क</u>विः <u>क</u>विमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

ऋ० ६ । ४९ । ४ ॥

[५५—अ० ३४ । ५८] आद्यन्या याज्ञवल्क्यऋषा । अनारभ्याधीतमन्त्रा ॥ महायज्ञाद्य । तत्र प्रवायुम् इति ऋजिष्वा ऋषि । वायु देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (प्रयज्यो) उत्तम रीति से यज्ञ करने हारे, उत्तम उपासक एवं उत्तम सगति, परस्पर सगठन करने में कुशल विद्वन् ! तू (नियुत) निश्चित, नियुक्त पुरुषों अथवा निश्चित पदार्थों को प्राप्त होकर (बृहती) बडी भारी (मनीषा) प्रज्ञा, बुद्धिबल या मानस प्रेरणा से स्वय (कवि) क्रान्तदर्शी होकर (बृहद्रयिम्) महान् ऐश्वर्यों के स्वामी, (विश्ववारम्) सबको वरण करने वाले, सबके रक्षक, (रथप्राम्) रथों से रणाङ्गण को भर देने वाले, (द्युतद्यामा) तेजस्वी अग्नि को प्राप्त कर उसको और भी

५५—इत आरभ्य ६९ अङ्कोभारपन्त पुरारुच॰ ॥

अधिक तेजस्वी बनाने वाले, (वायुम्) वायु के समान तीव्र, वेगवान्, बल-शाली (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, विद्वान् (वायुम्) प्राणवायु के समान सबके जीवनाधार पुरुष का (इयक्षसि) आदर कर और उससे सगति लाभ कर।

अथवा (द्युतद्-यामा कविम् कवि-इयक्षसि) समस्त याम अर्थात् आठों पहरों को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का तू विद्वान् पुरुष ही आदर कर। अथवा, तू (द्युतद्-यामा) देदीप्यमान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होकर स्वयं (कविः कविम् इयक्षसि) मेधावी होकर विद्वान् पुरुष का आदर करें।

परमेश्वर के पक्ष में—सबका जीवनाधार होने से परमेश्वर 'वायु' है। महान् ऐश्वर्यवान् होने से 'बृहद्रयि' है, सबका रक्षक होने से 'विश्ववार' है। उसकी नियमव्यवस्था सर्वत्र प्रकाशित होने से 'द्युतद्-यामा' है। रमणसाधन, परम आनन्द रस से पूर्ण करने हारा होने से 'रथप्रा' है, क्रान्तदर्शी होने से 'कवि' है। उस परमेश्वर को (नियुतः पत्यमानः) प्राणों द्वारा ऐश्वर्यवान् होकर तू साधक (इयक्षसि) उसकी उपासना करे।

आचार्यपक्ष में—आचार्य, ज्ञानवान् होने से वायु, दूसरों वेद वाणी के ऐश्वर्य से युक्त होने से 'बृहद्रयि' ज्ञानरस से शिष्य को पूर्ण करने वाला होने से 'रथप्रा' है। प्रकाशमान ज्ञान का प्रकाश करने हारा होने से 'द्युतद्-यामा' है उसको विद्वान् पुरुष विभिन्नसिद्धान्त तत्वों को प्राप्त होता हुआ अपने विद्वान् गुरु का विद्वान् पुरुष सदा आदर सत्कार करे।

अथवा—(वायुम्) वायु के समान सबके जीवनाधार (बृहद्-रयिम्) बड़े ऐश्वर्यवान्, (विश्ववारम्) सबके वरण करने योग्य या सब कष्टों के निवारक (रथप्राम्) रथ को धनों, ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे वीर पुरुष को (पुरन्धी मनीषा) बड़ी मानसिक शक्ति, बुद्धि (अच्छ) प्राप्त हो। और हे (प्रयज्यो) उत्तम पूजनीय पुरुष! वह (द्युतद्यामा) अति

उज्वल मान वाला होकर (नियुत॰ पत्यमान) समस्त नियुक्त अधीन पुरुषों और अश्वों को वश कर उनका स्वामी एवं (कवि॰) विद्वान् होकर भी (कविम्) कान्तदर्शी विद्वान् पुरुष का (इयक्षसि) सत्कार करे।

इन्द्रवायू ऽइमे सुता ऽउप प्रयोभिरा गतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ५६ ॥

भा०—व्याख्या देखो। अ० ७। ८॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥ ५७ ॥ ऋ० १। २। ७॥

भा०—मैं प्रजाजन (पूतदक्षं) पवित्र ज्ञान और बल से युक्त (मित्रम्) सुहृद्, स्नेही पुरुष को और (रिशादसम्) हिंसा करने वाले शत्रुओं को भी दण्ड देने वाले उनके विनाश, (वरुणं च) सर्वश्रेष्ठ धार्मिक राजा को (हुवे) स्वीकार करूं। और वे दोनों (घृताचीम्) घृत को ग्रहण करने वाली अतितीक्ष्ण अग्निज्वाला के समान पाप दहन करने वाली उग्र शक्ति तथा शीतल जल को धारण करने वाली रात्रि के समान सबको सुख देने वाली शान्तिकारिणी शक्ति को (साधन्ता) साधन करने वाले हों। जिस प्रकार प्राण, उदान शुद्ध प्रज्ञा को उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार सूर्य चन्द्र सुखद रात्रि को साधते हैं उसी प्रकार मित्र और वरुण, सुहृद् वर्ग वयस्य और शक्तिशाली पुरुष स्नेह और तीक्ष्णता मधुर और तेजस्विनी वृत्ति वाली राजशक्ति की वृद्धि करें।

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातꣳ रुद्रवर्त्तनी ॥ ५८ ॥ ऋ० १। ३। ३॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। अश्विनौ देवते। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (दस्रौ) वैद्य जिस प्रकार रोगों का नाश करते हैं उसी प्रकार

५६—क्वचित् पुस्तकेषु "उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वा। एष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा।" इत्यधिकं पठ्यते॥

राज्य की प्रजाओं के दुःखों के विनाश करने वाले (नासत्यौ) कभी असत्य भाषण और असत्य आचरण न करने वाले पूर्वोक्त दोनों विद्वान् पुरुषो! आप दोनों (रुद्रवर्त्तनी) शत्रुओं के रुलाने वाले या न्यायाधीश के वीर सैनिकों के मार्गों से चलने में समर्थ होकर (आयातम्) आओ। ये (सुताः) उत्पन्न हुए पदार्थ एवं नाना पदों पर अभिषिक्त उत्तम जन भी (युवाकवः) तुम दोनों को चाहने वाले और (वृक्तबर्हिषः) प्रजा या वृद्धि अर्थात् प्रजा को बढ़ाने वाले हैं। पदार्थों के पक्ष में—(वृक्तबर्हिषः) यज्ञादि से पृथक् भोजनार्थ प्राप्त पदार्थ तुम्हारे लिये हैं उनको ग्रहण करो।

तं प्रत्नथा० । अयं वेन० ॥ ५८ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' देखो अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेन०' देखो ७ । १६ ॥ 'विदद्यदी'—

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥
ऋ० ३ । ३१ । ६ ॥

कात्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

भा०—सेना पक्ष में—(यदि) यदि (सरमा) वार विजयी योद्धाओं को एकत्र रमाने अर्थात् युद्ध क्रीड़ा कराने वाली सेना (अद्रेः) मेघ के समान प्रजा पर सुखों के और शत्रुओं पर बाणों के वर्षण करने वाले एवं शत्रुओं द्वारा न दीर्ण होने वाले पक्ष, अर्थात् राजबल को (रुग्णम्) टूटा हुआ (विदत्) जाने तो वह (महि) बड़े भारी (पूर्व्यम्) पूर्व सञ्चित (पाथः) अपने पालनकारी सामर्थ्य को (सध्र्यक्) एक ही स्थान पर एकत्र (कः) करे। वह (सुपदी) उत्तम रीति से पग चलाने वाली (अक्षराणाम्) कभी नाश न होने वाले पुरुषों के (अग्रम्) अग्र, अर्थात् मुख्य भाग को (नयत्) आगे लेजावे और वह (प्रथमा) स्वयं सबसे प्रथम होकर (रवं) उत्तम आह्वान को (जानती) जानती हुई

५९—'विदद् यदी' इति काण्व० ।

जानती हुई (अच्छा गात्) भली प्रकार आगे बढे । उत्तम सेना जब अपने बल को मग्न हुआ जाने तो वह अपने उत्तम पालक बल को एकत्र करले और उत्तम दृढ पुरुषों को आगे बढावे और स्वयं सेनापति के आदेशों को भली प्रकार जानती हुई आगे बढ़े ।

अथवा, (यदि) जब (सरमा) साथ रमण करने वाली स्त्री (रुग्णम् विदत्) दुःखों के भंग करने वाले पति को प्राप्त करे तब (सध्यक्) साथ रहने वाला, सहचारी पति (पूर्व्यम्) पूर्व से ही प्राप्त (अद्रेः) मेघ से उत्पन्न होने वाले (महि पाथः कः) बहुत अन्न, धन अथवा मेघ के समान ज्ञानप्रद आचार्य के श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करे । वह स्त्री जो (सुपदी) उत्तम चरण वाली, (प्रथम) प्रथम (अक्षरणां खं जानती) अक्षर अर्थात् अविनाशी वेदवचनों के उपदेश को (जानती) जानती हुई (अग्रं) आगे २ स्वय होकर अपने पीछे पति को लेती हुई (अन्वगात्) पति को प्राप्त हो । अर्थात् स्त्री प्राप्त करने के पूर्व पुरुष धन संग्रह करे अथवा ब्रह्मचर्य पालन करे, वह स्त्री भी ज्ञान प्राप्त करे। स्वयं ज्ञानवती होकर आगे स्वयं प्रदक्षिणा कर पति को प्राप्त करे ।

वाणी के पक्ष में—(यदि) यदि (सरमा) जब समान रूप से विद्वानों को आनन्दित करने वाली, स्त्री के समान सुखदायिनी वेदमयी वाणी, (अद्रेः) न विदीर्ण होने वाले अज्ञान के (रुग्णम्) विनाशक उपाय को (विदत्) ज्ञान करती है । तब (सध्यक्) उसके सहयोग से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष (पूर्व्यम्) पूर्व से चले आये (महि-पाथ) बड़े भारी ज्ञान को (कः) प्राप्त करता है । और (सुपदी) उत्तम ज्ञान कराने वाली (प्रथमा) सबसे प्रथम विद्यमान वेद वाणी (अक्षराणां) अक्षर, अविनाशी सत्य सिद्धान्त तत्वों के (खं जानती) उपदेश को जनाती हुई (गात्) प्रतीत होती है (अग्रं नयत्) हमें आगे, सर्वश्रेष्ठ, सबसे पूर्व विद्यमान परमेश्वर तक पहुंचाती है ।

स्त्री के पक्ष में—(यदि) जब (सरमा) पति के साथ रमण करने हारी प्रियतमा स्त्री (प्रथमा सुपदी) सर्व प्रथम, सुविख्यात उत्तम ज्ञान और आचरण वाली और (अक्षराणां ध्वं जानती) अक्षरों के यथार्थ उच्चारण, ध्वनि आदि को जानने हारी होकर (रुग्णं) दुःखी, पीड़ित जन को (विदत्) जाने, तब (सध्र्यक्) वह सदा साथ रह कर (पूर्व्यम्) पूर्व प्राप्त किये हुए (अद्रेः महि पाथः) मेघ से प्राप्त महान् प्रभूत अन्न को उत्पन्न करे। वह स्त्री (पतिम् अच्छ गात्) उत्तम पति को प्राप्त हो। भाव स्पष्ट नहीं है।

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुरऽएतारमग्नेः ।
एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥

विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्मात्) इस (वैश्वानरात्) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्ने) अग्नि, सूर्य या दीपक के समान प्रकाशस्वरूप तेजस्वी राजा, विद्वान् के (अन्यम्) अतिरिक्त दूसरे किसी को (देवाः) विद्वान् और विजयी पुरुष भी (पुरः एतारम्) अपने आगे २ चलने वाले नायक रूप (स्पशं न अविदन्) दूत या द्रष्टा को नहीं जानते। वे (अमृताः) स्वयं दीर्घ, शतायु जीवन वाले होकर इस (अमर्त्यं) अन्य मनुष्यों से अधिक उच्च कोटि के (वैश्वानरम्) सर्वजन-हितकारी पुरुष को ही (क्षैत्रजित्याय) क्षेत्र, भूमि विजय करने के लिये (ईम् एनम्) इसको (आ अवृधन्) बढ़ाते हैं।

अध्यात्म में—समस्त देहों में विद्यमान समस्त प्राणों के पुरोगामी इस आत्मा के सिवाय (नहि स्पशम् अविदन्) किसी दूसरे को नहीं पाते। वे (अमृता) अमर (देवाः) विद्वान् पुरुष भी (क्षैत्रजित्याय) क्षेत्र, देह या बन्धन को विजय करने के लिये (अमर्त्यं वैश्वानरम् अवृधन्) मरण रहित वैश्वानर, सर्वात्मा की शक्ति को बढ़ाते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—सर्वप्रकाशक परमेश्वर के सिवाय विद्वान् जन

किसी दूसरे को (स्पशम् नहि अविदन्) सर्वद्रष्टा नहीं जानते । अपने फल भोगों की प्राप्ति के लिये कर्म रूप बीजों के वपन के लिये एकमात्र क्षेत्र रूप इस देह के बन्धन को विजय करने के लिये ही (अमृतास देवा) *अमृत, ज्ञानी, एवं अमर परमात्मा में लीन, अविनाशी विद्वान्, मुमुक्षु जन* इसी अभय परमेश्वर की महिमा को स्तुतियों से बढ़ाया करते हैं ।

उग्रा विघनिना मृध॑ इन्द्राग्नी ह॑वामहे ।
ता नो॑ मृडात ई॒दृशे॑ ॥ ६१ ॥ ऋ० । १० । ६० । ५ ॥

भरद्वाज ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(उग्रौ) उग्र, तेजस्वी, (मृधे) संग्राम करने हारे शत्रुओं को (विघनिना) विविध प्रकारों से शत्रुओं को मारने और दण्ड देनेवाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी नायक, सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष हों । (ता) वे दोनों (नः) हमें (ईदृशे) इस प्रकार के संग्राम आदि के अवसर मे (मृडात) सुखी करें, हम पर सदा दया करें ।

मृडतिरपदयाकर्मा इति सायण ॥

उपा॑स्मै गायता नरः पव॑मानायेन्द॑वे ।
अ॒भि दे॒वाँ२ऽ इय॑क्षते ॥ ६२ ॥ ऋ० ६ । ११ । १ ॥

भा०—हे (नरः) नायक नेता विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पवमानाय) सदाचार एवं व्रताचरण द्वारा अपने को पवित्र करने वाले (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान्, सोम्य स्वभाव के एवं (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों का आदर सत्कार करने वाले गुरुजनों के प्रति विद्यार्थी के समान विनीत पुरुष को (उप गायत) उपदेश करो ।

ये त्वा॑हिह॒त्ये॑ मघव॒न्नव॑र्धन्ये शा॑म्ब॒रे ह॑रिवो॒ ये गवि॑ष्टौ । ये त्वा॑ नू॒नम॑नु॒मद॑न्ति॒ विप्राः॒ पिबे॑न्द्र॒ सोम॑ꣳ स॒गणो॑ म॒रुद्भिः॑ ॥ ६३ ॥
ऋ० ३ । ४७ । ४ ॥

६१—०मृडात० इति काण्व० । ६३—ये ग इष्टौ' इति काण्व० ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (अहिहत्ये) मेघों के आघात करने और उनको छिन्न भिन्न करने के कार्य में वायु और सूर्य के समान तेजस्वी प्रचण्ड और (शाम्बरे) मेघ के साथ संग्राम करने के कार्य में तीव्र ताप वाले सूर्य के समान अति प्रखर और (गविष्टौ) किरणों के प्रकट रखने के कार्य में उनके स्वामी रूप सूर्य के समान इन्द्रियों के वश करने, भूमियों को अपने अधीन रखने और गौ आदि पशु सम्पत्ति को प्राप्त करने के कार्य में (ये) जो विद्वान् और बलवान् प्रजास्थ पुरुष (त्वा) तुझको (अवर्धन्) बढ़ाते हैं, तेरी शक्ति की वृद्धि करते हैं और (ये विप्राः) जो विद्वान् मेधावी पुरुष (नूनम्) निश्चय से (त्वा अनुमदन्ति) तेरे ही हर्ष के साथ स्वयं हर्षित होते हैं, हे (हरिवः) किरणों के स्वामी सूर्य के समान, तीव्र अश्वों और अश्वारोहियों और प्रजाओं के दुःखों, अज्ञान अन्धकारों के हरण करने वाले आप्त पुरुषों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) सेनापते ! राजन् ! तू (मरुद्भिः) वायु के समान तीव्र सैनिक और शत्रुओं को मारने वाले एवं प्रजा के प्राणों के समान प्रिय अधिकारी पुरुषों के साथ (सगणः) गण, अर्थात् दलसहित (सोमम्) ओषधि रस के समान अति बलकारी राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पिब) पान कर, उपभोग कर, उसको प्राप्त कर।

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रम्मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरन्दधनद्धनिष्ठा ॥ ६४ ॥

ऋ० १० । ७३ । १ ॥

गौरिवीतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (मन्द्रः) समस्त प्रजा को हर्षित करने हारा, (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, (बहुलाभिमानः) बहुत अधिक आत्माभिमान से युक्त, सहस्रों पुरुषों (तुराय) अपने शीघ्र करनेवाले

गुण, चुस्ती, आलस्य रहितता, कार्यदक्षता अथवा शत्रुओं के नाशकारी (सहसे) और शत्रुओं के पराजय करने वाले बल के कारण ही (उग्र) उग्र, प्रचण्ड, शत्रुओं के लिये भयकर, (जनिष्ठा) होवे। (मरुत) वायुओं के समान प्रचण्ड बलवान्, शत्रुरूप वृक्षों को जड मूल से उखाड फेंकने वाले शूरवीर उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को सूर्य को वायुओं के समान (अवर्धन्) बढावे, प्रखर और प्रचण्ड करें। और (अत्र) ऐसे वीरता और राज्यपालन के कार्य के लिये ही (यत्) जब (वीरम्) वीर पुत्र को (दधत्) धारण करती है, तभी वह (धनिष्ठा) धन्य उत्तम गर्भ धारण करने वाली, ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती कहाती है। अथवा, (माता) पृथिवी, जब ऐसे वीर को धारण करती है तभी वह (धनिष्ठा) ऐश्वर्यवती, धन्य, वसुधरा या धरा कहाती है।

आ तू न॑ इन्द्र वृत्रहन्नस्माक॑मर्धमा ग॑हि ।
म॒हान्म॒हीभि॑रू॒तिभि॑ः ॥ ६५ ॥ ऋ० ४ । ३२ । १ ॥

वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने हार ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र भाग को (आगहि) प्राप्त कर। हे राजन् ! तू (महीभि) बड भारी (ऊतिभि) रक्षा साधनों से (महान्) बडा बलशाली होकर (न) हमें भी पुष्ट कर।

'अर्धम्'—अर्धो हरतेर्वा विपरीतात्। धारयतेर्वास्यादुद्धृत भवति, ऋध्नो तेर्वा स्यादृद्धतमो विभाग। समीप इति सा०। निवासदेशमिति (म०) पक्षमिति (उ०) वर्धनमिति (द०)

त्वमि॑न्द्र प्र॒तूर्ति॑ष्व॒भि विश्वा॑ ऽअसि॒ स्पृध॑ः ।
अ॒श॒स्ति॒हा ज॑नि॒ता वि॑श्व॒तूर॑सि॒ त्वं तू॑र्य्य तरुष्य॒त॑ः ॥ ६६ ॥
ऋ० ८ । ८८ । ५ ॥

नृमेध ऋषि । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती ।

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (भूरिषु) खूब अधिक हिंसा वाले, या खूब अधिक हनन करने के स्थानों, संग्रामों में तू (विश्वा स्पृधः) अपने समस्त स्पर्धा करने वाले द्वेषालु शत्रु-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करता है। तू (जनिता) सब सुखों का उत्पादक और (अभिमातिहा) सब दुष्ट पुरुषों और अभिमानियों का विनाशक होकर (विश्वतूः) समस्त शत्रुओं का हो नाश करने हारा (असि) हो। हे राजन् ! सेनापते ! (त्वं) तू (तरुष्यतः) हमें मारना चाहने वाले एवं मारने का उद्योग करने वाले शत्रुओं का (तूर्व) विनाश कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६७ ॥
ऋ० ८। ८८। ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (मातरा शिशुं न) माता और पिता जिस प्रकार शिशु बालक के (अनु ईयतुः) पीछे २ प्रेम से चलते हैं उसी प्रकार (क्षोणी) अपने और शत्रु के राष्ट्र दोनों (ते) तेरे (तुरयन्तम्) शत्रु के विनाशकारी (शुष्मम्) बल, पराक्रम के (अनु ईयतुः) अनुकूल होकर चलते हैं। और (यत्) जब तू (वृत्र) अपने राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को (तूर्वसि) मार गिराता है तब (विश्वाः स्पृधः) समस्त शत्रुगण भी (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (श्नथयन्त) शिथिल होजाय, निर्बल हो जावें।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ६८ ॥

भा०—व्याख्या देखो। अ० ८। ४ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ६९ ॥
ऋ० ६। ७१। ३ ॥

६९—०ऋ२५०३ इति काण्व० ।

भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (अदब्धेभिः) नष्ट न होने वाली सुखकारी (वायुभिः) पवित्रकारी, पालन में समर्थ किरणों से हम (गयम्) गृह, प्राण और देह की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि (हिरण्यजिह्व नव्यसे) सुवर्ण के समान दीप्ति वाली जिह्वा, अर्थात् ज्वाला से सदा नये २ सुख प्रदान करता है। हे (सवितः) सबके प्रेरक, उत्तम कर्मों और राज्य प्रबन्धों के उत्पादक, सूर्य के समान तेजस्विन् विद्वन्! राजन्! तू (अदब्धेभिः) अखण्डित, स्थिर, जिनको कोई भग न कर सके ऐसे (शिवेभिः) कल्याणकारी (पायुभिः) रक्षण, पालन करने के उपायों से (अद्य) आज और अब के समान सदा, (नः गयम्) हमारे गृह, पुत्र, कलत्रादि की भी (परिपाहि) सब प्रकार से रक्षा कर। तू (हिरण्यजिह्व) हित और हृदय को उत्तम लगने वाली वाणी से युक्त अथवा हिरण्य के समान सदा उज्वल, खरी, सत्य वाणी बोलने हारा होकर (नव्यसे) सदा नये से नये मनोहर (सुविताय) उत्तम ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये (रक्ष) हमारी रक्षा कर, हमें पालन कर। (नः) हम पर (अघशंसः) पापकर्म का उपदेश करने वाला (माकिः ईशत) कोई शासन या स्वामित्व न करे।

'हिरण्यजिह्व'—हिरण्यं, हितरमणं भवतीति वा, हृदयरमणं भवतीति वा निरु० २। १०॥ जिह्वेति वाङ्नाम। निघ० १। ११॥ हिरण्यवर्दविचला जिह्वा यस्य। सत्यवाक्। यद्वा हिरण्या हिता रमणीया जिह्वा ज्वाला यस्येति। म० द०। सत्यवाक्। उ०।

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥७०॥

ऋ० ७। ९०। १॥

वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजा और प्रजाजनो ! (वाम्) तुम दोनों के परस्पर सहयोग से बनी (वीरया) वीर, बलवती सेना के बल से ही (शुचयः) शुद्ध पवित्र आचारवान्, निष्कपट पुरुष, (मधुमन्तः) ज्ञान और बलों से युक्त (सुतासः) माता पिता दोनों से व वीर माता से उत्पन्न, मधुर सौम्य गुणों वाले पुत्रों के समान (सुतास) उत्तम विद्या और आचार शिक्षा से सम्पन्न, एवं उत्तम पदों पर अभिषिक्त राजपुरुष (अध्वर्युभिः) परस्पर हिंसा, घात प्रतिघात से रहित, राष्ट्र यज्ञ के सञ्चालक विद्वान् पुरुषों से मिलकर (प्रदर्दिरे) शत्रुओं की सेनाओं और उनके दल बल का विदारण करें अथवा उनको भयभीत करें । हे (वायो) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ने हारे बलवन् ! सेनापते ! तू (नियुतः) नियुक्त अपने अधीन समस्त सेनाओं को, या अश्वों को, वायु के तीव्रता आदि गुणों को (वह) स्वयं धारण कर, उनको अपने वश कर, (अच्छ याहि) शत्रुओं पर भली प्रकार चढ़ाई कर । और (मदाय) हर्ष और प्रजा के सुख, तृप्ति के लिये (अन्धसः) अन्न के और (सुतस्य) नाना प्रकार के भोग्य पदार्थ, ऐश्वर्य और अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य को ओषधि रस के समान अपने शरीर, मन आदि की शक्ति वृद्धि करने और आत्मसुख और राष्ट्र के हर्ष के लिये (पिब) पान कर, उपभोग कर ।

गाव ऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ७१ ॥

भा०—इस ऋचा की व्याख्या देखो अ० २१ । १९ ॥ तथापि, हे (गावः) सूर्य की रश्मियों के समान प्रकाशवान् तेजस्वी ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग (उप अवत) आओ, हमारी रक्षा करो । और (यज्ञस्य) यज्ञ अर्थात् सबको एकत्र मिलाये रखने वाले, राष्ट्र यज्ञ के (रप्सुदा) उत्तम रूप प्रदान करने वाले सूर्य पृथिवी के समान राजा और प्रजाजन (मही) दोनों पूज्य हैं । और (उभा) दोनों ही (हिरण्यया) एक दूसरे के प्रति

हितकर और रमणीय ज्ञानवान् और सम्पन्न कार्य करने में पतिपत्नी के समान, (कर्णा) एक ही राष्ट्र के कार्य करने हारे होकर (अवतम्) एक दूसरे की रक्षा करो । अथवा—हे (गाव) ज्ञानवान् प्रजास्थ पुरुषो ! जिस प्रकार गौवें अपने (अवतम्) रक्षक गोपति के पास आती हैं उसी प्रकार तुम भी अपने (अवतन् उप अवत) रक्षक को प्राप्त कर उसकी रक्षा करो ।

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे ।
रिशादसा सधस्थ ऽआ ॥ ७२ ॥

दक्ष ऋषि । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्द । षड्जः ॥

भा०—हे (रिशादसौ) प्रजाओं के नाश करने वाले, शत्रुओं का भी नाश करनेवाले मित्र और वरुण, न्यायाधीश और सेनापते ! तुम दोनों (सधस्थे) एकत्र मिल कर बैठने के स्थान, एवं (दक्षस्य) समस्त कार्यों के सञ्चालन में उत्साहवान् राजा के (दुरोणे) गृह, सभाभवन में (काव्ययो) क्रान्तदर्शी पुरुषों के बनाये व्यवहार और परमार्थ के प्रतिपादक दोनों प्रकार के ग्रन्थो में प्रतिपादित (आजानेषु) चतुर विद्वान् कार्य कुशल बना देने वाले, ज्ञान कराने वाले व्यवहारों के निर्णयों के लिये (क्रत्वा) अपने ज्ञानबल से (आ) कार्य सम्पादन करो। अथवा (काव्ययो आ-जानेषु) विद्वानों के बनाये या साक्षात् किये हुए प्रजा के हितार्थ मार्ग दर्शाने वाले 'आज्ञापन' या राजनियमों के आधार पर (क्रत्वा) अपने कर्म और प्रज्ञाबल से (आ) न्याय और दण्ड का विधान करो। 'आजानम्' आज्ञापनम्, इति दया० ऋ० भू० (१३८)

दैव्यावध्वर्यू ऽआ गतꣳरथेन सूर्यत्वचा ।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ॥ ७३ ॥

७२—देया अत्र० इति काण्व० ।

भा०—व्याख्या द्रष्टव्या० अ० ३३ । ३३ ॥

तस्मिन्नर्था० । अथ प्रेन० ॥

भा०—'तमन्नधा०' (अ० ७।१२) की प्रतीक है और 'अथ येन' यह मन्त्र (अ० ७ । १६) का प्रतीक है ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४॥

ऋ० १० । १२९ । ५ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । भाववृत्तं देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में—(एषाम्) इन अपने स्थानों पर आदरपूर्वक अभिषेक को प्राप्त हुए विद्वान् अधिकारी पुरुषों का शासनाधिकार या (रश्मिः) तेजस्वी सूर्य आदि पदार्थों के किरणों के समान (तिरश्चीनः) बहुत दूर तक जानेवाला, प्रकाश की किरण के समान तिरछा, अपना साधनों से जाने वाला और (विततः) विविध प्रकारों से फैलता है । (अधः स्विद् आसीत्) वह नीचे भी रहता है और (उपरिस्वित्) और ऊपर भी रहता है । वे सभी राष्ट्र के अन्दर (रेतोधाः आसन्) शरीर में वीर्य को धारण करने वाले अंगों के समान तेज वीर्यवान् पराक्रमी एवं प्रजापालक हों । और वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले, आदर सत्कार योग्य भी हों । उनके (स्वधा) अपने शरीर के धारण निमित्त प्राप्त होने योग्य अन्न, धन आदि पदार्थ (अवस्तात्) नीचे अर्थात् तुच्छ हैं परन्तु उनका (प्रयतिः) राष्ट्र की व्यवस्था का उत्तम यत्न और नियम का कार्य (परस्तात्) परम उच्च, उत्कृष्ट हो ।

अध्यात्म पक्ष में—(एषाम् रश्मिः) इन सूर्यादि लोकों का प्रकाशक (तिरश्चीनः विततः) तिरछा, सर्वत्र दूर २ तक फैला है । (अधः

७४—प्रजापतिर्देवर । द० । ऋ०—

स्विद् आसीत्) क्या नीचे और क्या ऊपर क्या पास और क्या दूर ? सभी स्थान पर है। ये सभी ज्योतिर्मय सूर्य आदि पदार्थ, (रेतोधा· आसन्) जीव सृष्टि के उत्पन्न करने वाले बीजों को धारण करते हैं। और (महिमान· आसन्) बड़े भारी, सामर्थ्य वाले है । (स्वधा) स्वयं संसार को धारण करने वाली प्रकृति, शरीर को धारण करने वाले जीव और भोग्य पदार्थ अन्न आदि के समान (अवस्तात्) पर-भोग्य और अधीन रहने से नीची श्रेणी के हैं और (प्रयति) उनको प्रेरणा देने वाला, चलाने वाला परम प्रयत्नस्वरूप परमेश्वर (परस्तात्) बहुत ऊंचा, उनसे कहीं महान् है।

अध्यात्म में—(एषाम् रश्मि) प्रकृति, प्रजापति के सृष्टि उत्पादक संकल्प और सृष्टि के प्रेरक बल इन तीनों का (रश्मि) सृष्टि नियामक बल (तिरश्चीन) मध्य में, (अधस्तात् उपरिस्वित्) क्या ऊपर और क्या नीचे सर्वत्र ही (विततः आसीत्) व्यापक है। सृष्टि रचना के अवसर में (रेतोधा· आसन्) बीजरूप से कर्मों को संस्कार में धारण करने वाले कर्त्ता और भोक्ता जीव भी विद्यमान थे और (महिमान· आसन्) पृथिवी आदि पाच महाभूत भोग्य रूप भी थे, परन्तु उनमें भी(स्वधा अवस्तात्) अन्न के समान भोग्य पदार्थ निकृष्ट था और (प्रयति परस्तात्) प्रयत्नशील आत्मा उत्कृष्ट था (सायण, महीο)।

अथवा—यहा परमेश्वर के उत्पादक और नियामक बलका वर्णन है— (एषां लोकाना मध्ये रश्मि) इन समस्त लोकों के बीच में सबका प्रकाशक रश्मि और सर्व का नियन्ता (तिरश्चीनः) सब दूर २, (अधः स्विद् उपरिस्वित्) क्या ऊपर और क्या नीचे, सर्वत्र (विततः आसीत्) फैला हुआ, सर्वत्र व्याप्त है। ये समस्त सूर्यादि लोक और महत् आदि प्रकृति विकार गण (रेतोधा) सृष्टि के उत्पादक ब्रह्म बीज को धारण करने वाले और उसी के (महिमान·) समान सामर्थ्य को धारण करने हारे हैं। परमात्मा (स्वधा) स्व रूप को धारण करने वाली परम शक्ति ही (अध-

स्तात्) उन्हें, महा, छोटे से छोटे पदार्थ में है। और उसका लोक-सञ्चारक (प्रयतिः) महान् प्रयत्न (परस्तात्) दूर से दूर लोक में भी विद्यमान है।

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन्।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः॥७५॥

ऋ० ३।२।७॥

विश्वामित्र ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती। निषादः॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार तेजस्वी विद्वान्, पुरुष (रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्गों को (आ अपृणत्) सब प्रकार से व्यापता और उनको अन्न पालन और पूर्ण भी करता है और वह, (स्वः) अन्तरिक्ष को वायु के समान, (महत् जातम्) बड़े भारी, उत्पन्न हुए सुसम्पन्न राष्ट्र को भी अपने वश करता है। (यत्) जिससे (एनम्) उसको (अपसः) समस्त कर्म, समस्त बड़े कार्य अथवा कार्य करने वाले प्रजाजन (अधारयन्) धारण करते हैं। अर्थात् वह सब कर्मों का आश्रय, मुख्य केन्द्र हो जाता है। (सः) उस को (कविः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुष (अध्वराय) न नष्ट होने वाले, एवं हिंसारहित, पालन करने के उत्तम कर्म के लिये (वाजसातये अत्यः न) संग्राम, ऐश्वर्य और वेगयुक्त कार्य करने के लिये जिस प्रकार अश्व को काम में लाया जाता है उसी प्रकार (परिणीयते) कार्यों में नियुक्त किया जाता है, वरण किया जाता है। वह (चनोहितः) अन्न आदि ऐश्वर्य को साथ धारण करने वाला होता है।

(२) अग्नि के पक्ष में—सूर्य रूप से और व्यापक रूप से भी द्यौ और पृथिवी को व्यापता, पोसता है। समस्त कर्मों को धारण करता है। वही हिंसा रहित नित्यों के लिये प्राप्त किया जाता है। अश्व के समान यज्ञों में भी वेग प्राप्त करने के लिये लगाया जाता है। (३) परमेश्वर भी सर्वत्र व्यापक,

सबका पोषक है। समस्त कर्म उसके आश्रय हैं, वह क्रान्तदर्शी महान् यज्ञ के लिये पुनः २ उपासना किया जाता, एवं समस्त ऐश्वर्यों का पोषण करता है।

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा।
आङ्गूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥ ऋ० ७। ६४। ११॥
वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(या) जो दो (वृत्रहन्तमा) घेर लेने वाले शत्रुओं के नाश करने वालों में सबसे श्रेष्ठ, (मन्दाना) सबको आनन्दित करने वाले, हैं वे इन्द्र आचार्य और अग्नि, ज्ञानवान्, अथवा सेनापति और सभाध्यक्ष (उक्थेभिः) उत्तम वचनोपदेशों से, (गिरा) उत्तम वाणी से और (आंगूषैः) घोषणाओं द्वारा (आ आविवासः) लोकसेवा करते हैं, यथार्थ ज्ञान प्रकाश करते हैं।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥ ऋ० ६। ५२। ९॥
सुहोत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(ये नः सूनवः) जो हमारे पुत्र लोग हैं वे (अमृतस्य) अमर, अविनाशी परमेश्वर की दी (गिरः) वेद-वाणियों का (शृण्वन्तु) श्रवण करें और (नः) हमारे लिये (सुमृडीका) उत्तम सुखकारी (भवन्तु) हों। अथवा (ये) जो (अमृतस्य) अमर प्रजापति परमेश्वर के (सूनवः) पुत्र के तुल्य उसके उपासक हैं वे (नः गिरः शृण्वन्तु) हमारी वाणियों का श्रवण करें। अथवा हमें वेद-वाणियों का श्रवण करावें। और हमें सुखकारी हों।

ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ७८ ॥
ऋ० १। १६५। ४॥

७७— सुमृळीका० इति काण्व०।

अगस्त्य इन्द्रो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुतासः) विद्या और शिक्षा से अभिषिक्त हुए पुत्र या शिष्य के समान विनीत होकर (मतयः) मननशील पुरुष (मे) मुझ विद्वान् आचार्य से (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों के ज्ञानों की (आ शासते) अभिलाषा करते हैं । और वे (इमा उ त्वा) इन वेदवचनों, या सूक्तों को ही (प्रति हर्यन्ति) चाहते हैं । (मे) मेरे द्वारा (प्रभृतः) उत्तम रीति से परिपुष्ट या प्रदत्त (शुष्मः) बलकारी (अद्रिः) अज्ञान अन्धकार करने हारा ज्ञानवज्र अथवा ज्ञानवर्षण करने वाला, मेघ के समान गुरु ही उनको (नाम्) सुख (इयर्त्ति) प्रदान करता है । (हरी) ज्ञान को धारण करने वाले और अज्ञान हरने वाले अध्यापक और शिष्य, दोनों (नः) आप हमें (ता) वे नाना प्रकार के वेद ज्ञानों को (वहतः) प्राप्त करावें ।

राजा के पक्ष में—(मतयः) प्रजा को स्तम्भन करने वाले बलवान् पुरुष (मे ब्रह्माणि आशासते) मेरे से धन की अभिलाषा करते हैं । और (सुतासः) पुत्र के समान प्रिय प्रजाजन (इमा उ त्वा प्रति हर्यन्ति) इन उत्तम राजाज्ञा और न्यायवचनों को चाहते हैं । और (मे अद्रिः प्रभृतः नाम् इयर्त्ति) मेरा यह तीक्ष्ण वज्र प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है । (हरी) राष्ट्र के शकट को उठा लेने वाले अश्वों के समान अमात्य और राजा या सभापति और सेनापति प्रजाओं के दुःखहारी होकर (नः ता अच्छ वहतः) हम प्रजा को वे सब पदार्थ प्राप्त करावें । राजा धनेच्छुओं के लिये धनप्रद और ज्ञानेच्छुओं या साम वचनों के इच्छुकों के लिये ज्ञानप्रद पुरुषों को नियुक्त करे । शान्ति स्थापन के लिये वज्र या दण्ड को उपयोग में लावे । साम, दान और दण्ड तीनों का विधान है ।

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽअस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥
ऋ० १।१६५।९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् (नकिः) कोई पदार्थ भी ऐसा नहीं जो (ते अनुत्तम्) तेरे द्वारा नहीं चलाया गया । तू ही सबका प्रेरक है । और (त्वावान् देवता) तेरे सदृश द्रष्टा और दानशील, (विद्वान्) ज्ञानवान् और समस्त पदार्थों का प्राप्त करने कराने वाला भी दूसरा (न अस्ति) नहीं है । हे (प्रवृद्ध) महान्, सबसे अधिक शक्तिशालिन्! (न जायमान) न भविष्य में कोई पैदा होने वाला और (न जातः) न पैदा हुआ है जो (यानि करिष्यं) जिन कार्मों को तू भावी में करे या (कृणुहि) अब करता है उनका भी (नशते) प्राप्त कर सके ।

परमेश्वर के पक्ष में—(ते) तेरे स्वरूप को (अनुत्तम् आ) इन किसी अन्य से प्रेरित नहीं पाते अर्थात् तू अद्वितीय है । (न त्वावान् विद्वान् देवता अस्ति) तेरे जैसा ज्ञानवान् देव भी कोई नहीं है । तू (जायमानः न, जातः न) तू कभी न पैदा होता है, न हुआ है । (यानि करिष्या) जो करेगा और जो (कृणुहि) करता है उसको भी (नकिः नशते) कोई न जान सकता है, न उसका पार पा सकता है ।

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञ उ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो नि रि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यं विश्वे॒ मद॒न्त्यूमाः॑ ॥ ८० ॥
ऋ० १० । १२० । १ ॥

बृहद्दिव ऋषिः । महेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(तत्) वह (इत्) ही (भुवनेषु) समस्त उत्पन्न लोकों, प्रजाजनों के बीच में (ज्येष्ठम् आस) सबसे बड़ा, सबसे अधिक आदर के योग्य है । (यतः) जिसमें (त्वेषनृम्णः) तेज रूप धन से युक्त, अति तेजस्वी, (उग्रः) शत्रुओं को भय देने वाला, बलवान् सेनापति या राजा (जज्ञे) पैदा होता है । और (सद्यः) शीघ्र ही (जज्ञानः) उत्पन्न होकर (शत्रून्) शत्रुओं को (निरिणाति) विनष्ट करता है और (यम् अनु) जिसके अनुकूल रह कर (विश्वे ऊमाः) समस्त प्रजारक्षक जन और प्राणि वर्ग (मदन्ति) अति हर्षित होते हैं ।

परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर ही सबसे महान् है जिससे यह दीप्त तेजस्वी सूर्य उत्पन्न होकर अन्धकारों को विनाश करता है और जिसको उसका देख कर सब प्राणी हर्षित होते हैं अथवा वह परमेश्वर ही महान् है जिसकी उपासना से वीर पुरुष तेजस्वी होता है और शत्रुओं का नाश करता है, जिसके अनुकूल रहकर अन्य प्रजापालक अधिकारी प्रसन्न होते हैं।

इमाऽउ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८१ ॥

ऋ० ८ । ३ । ३ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (पुरूवसो) बहुत से ऐश्वर्य वाले ! राजन् ! (इमाः उ गिरः) ये उत्तम उपदेशमय वाणियां (याः मम) जो मेरी या मुझ प्रजाजन के हित की हैं वे (त्वा) तुझको या तेरे सामर्थ्य को (वर्धन्तु) बढ़ावें । और (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, आचारवान्, सत्यवादी, निश्छल, (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुति वचनों से (अभि अनूषत) तेरी साक्षात् स्तुति करें । ईश्वरपक्ष में—हे (पुरूवसो) सबमें बसने हारे ! मेरी वाणियें तेरी महिमा बढ़ावें । ब्रह्मचारी, तेजस्वी, सदाचारी विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं ।

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ ८२ ॥

ऋ० ८ । ५१ । ९ ॥

भा०—(विश्वः आर्यः) समस्त आर्य, श्रेष्ठ पुरुष (यस्य) जिसका (दासः) दास, कर्मकर, भृत्य के समान आज्ञापालक है और (शेवधिपाः) अपने खजाने को बचाकर रख लेने वाले, कंजूस पुरुष भी जिसका (अरिः) शत्रु के समान प्रतिद्वन्द्वी है । और (अर्ये) वैश्य धनस्वामी (रुशमे) हिंसा करने और (पवीरवि) शस्त्रधारी पुरुष के पास भी (तिरः चित्)

छिपा हुआ समस्त जितना भी धन है (स रयि) वह समस्त ऐश्वर्य भी हे राजन् (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे ही लिये खोल कर रख दिया जाता है। अर्थात् सब श्रेष्ठ पुरुष तेरे सेवक हैं, उनका सब धन तेरे ही लिये है, अपना धन बचा कर रखनेवाला तेरा शत्रु है, वैश्यों और शत्रुहिंसक क्षत्रियों के पासका सभी धन राजा के लिये ही है।

अ॒यꣳ स॒हस्र॒मृषि॑भिः॒ सह॑स्कृतः समु॒द्र इ॑व पप्रथे।
स॒त्यः सो अ॑स्य महि॒मा गृ॑णे॒ शवो॑ य॒ज्ञेषु॑ विप्र॒राज्ये॑ ॥ ८३ ॥
ऋ० ८। ३। ४॥

मेधातिथिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(अयम्) यह राजसभाध्यक्ष (सहस्रम् ऋषिभिः) सहस्रों मन्त्रार्थ वेत्ता विद्वानों के साथ (सहस्कृत) बलवान् होकर (समुद्र इव) समुद्र के समान गम्भीरता आदि गुणों से विख्यात है। (यज्ञेषु) सम्मिलित नाना राजकार्यों में और (विप्रराज्ये) मेधावी, बुद्धिमान् विद्वानों के राज्य में (अस्य) उसकी (सत्य महिमा) सत्य महिमा और (शवः) बल का (गृणे) वर्णन किया जाता है। अथवा—(अयं) यह (ऋषिभिः) यथार्थ तर्कशील विद्वानों के द्वारा (सहस्रं सहस्कृतः) हजारों प्रकार के ज्ञानों और बलों से युक्त हो जाता है। (अस्य स महिमा समुद्र इव पप्रथे) इसकी वह महिमा समुद्र के समान बढ़ती है। मैं (यज्ञेषु विप्रराज्ये शवः गृणे) प्रजाजन इसके बल की यज्ञों और विद्वानों के राज्य में स्तुति करूं।

'सहस्रम्'—सहस्र कृत्व इत्युवट। सहस्रैः ऋषिभिरिति सायण। सहस्र सत्य ज्ञान प्राप्त इति दयानन्द।

अद॑ब्धेभिः सवितः पा॒युभि॒ष्ट्वꣳ शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑पाहि नो॒ गय॑म्।
हिर॑ण्यजिह्वः सुवि॒ताय॒ नव्य॑से॒ रक्षा॒ माकि॑र्नो अ॒घशꣳसऽईशत ॥ ८४ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ३३। ६९)

आ नो युज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः।
अन्तः पवित्रे उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ८५ ॥
ऋ० ८ । १० । ९ ॥

मन्दाग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (वायो) वायो ! वायु के समान अपने प्रचण्ड वेग से शत्रुरूप वृक्ष को उखाड़ देने में समर्थ ! अथवा, छाज से गिरते अन्न को अपने वेग से पवित्र करने हारे वायु के समान विवेकवान् ! वायो ! तू (सुमन्मभि) उत्तम ज्ञानोंसहित (नः) हमारे (दिविस्पृशम्) राजसभा में आश्रित, विद्या केप्रकाश में युक्त (यज्ञम्) राज्य पालन के कार्य या प्रजापति पद को (आयाहि) प्राप्त हो । (पवित्रे अन्तः उपरि) पावन या शोधन करने वाले छाज पर जिस प्रकार अन्न रहता है उसी प्रकार (पवित्रे) शुद्ध सदाचार पुरुष एवं प्रजा को पवित्र करने वाले पुरुष पर (अयम्) यह (शुक्रः) शुद्ध किरणों वाले सूर्य के समान विद्वान् तेजस्वी पुरुष (श्रीणानः) अधिष्ठित है । इसी कारण मैं प्रजाजन (ते अयामि) तुझ बलवान् राजा के शरण में आता हूं । अर्थात् जिस प्रकार छाज पर से अन्न गिरता है, वायु उस को पवित्र करता, उसके भी ऊपर सूर्य का प्रकाश रहता है उसी प्रकार प्रजा पालन के कार्य में विवेकी सभाध्यक्ष और उसपर भी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष हो । प्रजा उसके अधीन रहे । अथवा—(अन्तः) प्रजा के भीतर (पवित्रे उपरि) इस परम पवित्र पद पर (श्रीणानः) आश्रय देने हारा यह राजा हो (शुक्रः) आशु कार्यकारी, चतुर एवं सूर्य के समान तेजस्वी है । हे राजन्! (ते अयामि) मैं तेरी शरण आता हूं ।

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमना असत् ॥ ८६ ॥
ऋ० १० । १४१ । ४ ॥

८६—[illegible] [illegible] सुहवेह [illegible] । [illegible] [illegible] ऋ० ॥

तापस ऋषिः । इन्द्र वायू देवते । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सुसंदृशौ) उत्तम रीति देखने वाले, उत्तम रीति एवं समान निष्पक्षपात दृष्टि और सम्यक्, और निष्पाप भाव से देखने वाले (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनों को सूर्य और वायु के समान (इह) इस राज्य में (हवामहे) हम बुलाते या अपना प्रधान स्वीकार करते हैं। (यथा) जिससे (न) हमारे (सर्वं इत् जन) सभी जन (संगमे) परस्पर मिलने के अवसर में (सुमना) उत्तम चित्त वाले (असत्) होकर रहें।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ ८७ ॥
ऋ० ८ । १० । १ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (मित्रावरुणा) प्राण और उदान दोनों को (अभिष्टये) अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये और (हव्यदातये) प्राप्त करने योग्य परम पद की प्राप्ति के लिये (आचक्रे) वश करता है उनके आगमन का अभ्यास करता है (स मर्त्य) वह पुरुष (देवतातये) अपने इन्द्रियों के विशेष हित के लिये (ऋधक्) अति समृद्धिमान् शक्तिशाली होकर भी (इत्था शशमे) सचमुच शान्ति को प्राप्त कर लेता है। (२) उसी प्रकार (यः) जो (नून) निश्चय से (मित्रावरुणा) प्रजा के स्नेही न्यायाधीश और शत्रुओं और दुष्टों के वारक श्रेष्ठ राजा दोनों को (हव्यदातये) ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों के प्रदान और स्वयं प्राप्त करने के लिये (आचक्रे) उचित रूप से आश्रय लेता है (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देवतातये) विद्वान् और विजयी पुरुषों के हित के लिये (ऋधक्) समृद्धिमान् होकर भी (इत्था) इस प्रकार से (शशमे) बहुत अधिक शान्ति प्राप्त करता है, वह मान, मद, गर्व नहीं धारण करता। और स्वतः उपद्रव रहित भी रहता है। उसके यश और समृद्धि में दूसरे उपद्रव नहीं करते ।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ८८ ॥
ऋ० ७। ७४। २ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री पुरुषों के समान एक दूसरे के अधीन रहने वाले राजा प्रजाजनो ! अथवा पूर्वोक्त राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले दो अधिकारी राजा और सभापति पुरुषो ! आप दोनों (आयातम्) आओ । (उप भूषतम्) इस स्थान को सुभूषित करो । अथवा दोनों समीप होकर रहो । हे (वृषणा) सुखों के वर्षाने वाले ! तुम दोनों (मध्वः पिबतम्) अन्न और उसके उत्तम रस का कर के रूप में स्वयं पान करो जिस प्रकार सूर्य और मेघ पृथ्वी से जल ग्रहण करते हैं और फिर उसी पर बरसा देते हैं उसी प्रकार (पयः दुग्धम्) उत्तम पुष्टिकारक दूध और अन्न और जल से राष्ट्र को पूर्ण करो । और (जेन्यावसू) विजयशील धन के स्वामी तुम दोनों (नः) हम प्रजाओं को (मा मर्धिष्टम्) कभी विनाश मत करो और (न आगतम्) हमें सदा प्राप्त होवो ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ८९ ॥
ऋ० १। ४०। ३ ॥

भा०—(ब्रह्मणः पतिः) अन्न, वेद और महान् राष्ट्र का पालक पुरुष (प्र एतु) हमें प्राप्त हो । (सूनृता) शुभ सत्यमयी वाणी (देवी) ज्ञान से पूर्ण विदुषी स्त्री के समान हमें (प्र एतु) प्राप्त हो । (देवाः) विद्वान् पुरुष और वीर सैनिक गण (नः) हमारे (वीरं) शूरवीर (नर्यम्) सब पुरुषों के हितकारी, नरश्रेष्ठ (पङ्क्तिराधसम्) पङ्क्ति अर्थात् पांचों जनों को वश करनेहारे, अथवा सेना की पंक्तियों को वश करने में समर्थ अथवा पांचों प्रकार के धनों के स्वामी या पांचों प्रकार के राष्ट्र के वशकारी और,

मित्र, अरि-मित्र, मित्र-मित्र और स्वकीय इनमें (यज्ञम्) प्रजापति रूप सब के पूज्य और सब के सगतिकारक पुरुष को (अच्छ नयन्तु) साक्षात् प्राप्त करावें। ऐसे को राजा बनावें।

चन्द्रमां ऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
र्यिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ६० ॥
(प्र० द्वि०) १ । १०५ । १ ॥

त्रित ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती। मध्यम ॥

भा०—जैसे (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अप्सु अन्तरा) जलों या जलमय मेघों या अन्तरिक्ष के बीच में गति करता है और (सुपर्णः) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य या उत्तम पक्षों से युक्त विशाल पक्षी (दिवि धावते) आकाश में गति करता है और जिस प्रकार (कनिक्रदत्) खूब गर्जना करता हुआ (हरिः) सिंह, या हिनहिनाता हुआ अश्व गति करता है और तीनों में से प्रत्येक (पिशङ्गम्) सुवर्ण के समान उज्ज्वल (बहुलं) बहुत अधिक (पुरुस्पृहम्) बहुतों का अच्छा लगने हारा मनोहर रूप धारण करता है उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष (अप्सु अन्तरा) आप्त प्रजाजनों के बीच (चन्द्रमाः) चन्द्र के समान आह्लादक कान्ति से युक्त होकर और (दिवि) ज्ञान प्रकाश में या राजसभा मे (सुपर्ण) उत्तम पालन और ज्ञानमय साधनों से युक्त होकर सूर्य या महा गरुड़ के समान विजयी होकर (धावते) गति करे। और वह (हरि) अश्व के समान या सिंह के समान स्वयं सबको आगे ले जाने में समर्थ, सबके मन को हरनेहारा, सब के दुःखों का नाशक होकर (कनिक्रदत्) गर्जन करता हुआ (पिशङ्ग) सुवर्ण के समान उज्ज्वल, (बहुलं) बहुत अधिक (पुरुस्पृहम्) बहुतों से वाञ्छित (एवं) सबकी इच्छानुकूल (रयिम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये।
देवन्देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ ६१ ॥
ऋ० ८ । २७ । १३ ॥

अनुष्टुप् । विश्वेदेवा देवता । गान्धारः स्वरः ॥

भा०—(इष्मा गिरा) उत्तम भावों से उज्ज्वल, प्रकाशमान विद्वान्, ईश्वर और वीर राजा के योग्य (गिरा) स्तुति से और (गृणन्तः) स्तुति या आदर वचन का प्रयोग करते हुए हम लोग (अवसे) रक्षण, ज्ञान और आश्वासन सुख के प्राप्त करने के लिये हम (हवं हवम्) प्रत्येक विद्वान् को पुकारें । और (अभिष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये हम (हवं हवम्) प्रत्येक व्यवहारकुशल पुरुष को (हुवम) आदर पूर्वक पुकारें । और (वाजसातये) संग्राम विजय के लिये और ऐश्वर्य ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (हवं हवम्) प्रत्येक विजयशील वीर पुरुष को हम बुलावें ।

दिवि पृष्ठो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् ।
क्ष्मया वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥६२॥

भरद्वाज ऋषिः । वैश्वानरो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त प्राणियों का हितकारी (अग्निः) प्रकाश स्वरूप सूर्य जिस प्रकार (बृहन्) महान् होकर (दिवि) प्रकाश में, तेज में (पृष्टः) पुष्ट रूप से स्थित होकर (क्ष्मया) पृथिवी के साथ अपने (ओजसा) तेज बल से (वृधानः) समस्त ओषधियों को बढ़ाता हुआ (चनोहितः) अन्न के लिये अति हितकारी होता है और (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः बाधते) अन्धकार को दूर करता है । उसी प्रकार (अग्निः) सबका अग्रणी नायक एवं विद्वान् (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों का हितकारी, (बृहन्) स्वयं महान् होकर (दिवि) ज्ञान विज्ञान से युक्त राजसभा के बीच (पृष्टः) तेज से और ज्ञान से सिद्ध होकर, अथवा अभिषेक द्वारा अभिषिक्त होकर (क्ष्मया) अपने बड़े सामर्थ्य से पृथिवी रूप राष्ट्र से और (ओजसा) तेज पराक्रम से (वृधानः) स्वयं वृद्धि करता हुआ, (चनोहितः) अपने सामर्थ्य से अन्न आदि ऐश्वर्यों को धारण करके

वाला होकर (ज्योतिषा) अपनी ज्ञान ज्योति, तेज से (तम) समस्त प्रजा के दु खकारी कारण, शोक, दु:ख रूप अन्धकार को (बाधत) नष्ट करता है।

इन्द्राग्नी अपादियम्पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥
ऋ० ६। ५९। ६॥

सुहोत्र ऋषि। इन्द्राग्नी देवत। प्रवह्लिका। अनुष्टुप्। गान्धार ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि! (इयम्) यह (अपात्) पाद रहित होकर (पद्वतीभ्य) पाद वालियों से (पूर्वा) पूर्व भी विद्यमान (आ अगात्) आती है। (शिर हित्वा) शिर त्याग कर (जिह्वया वावदत्) जीभ से बोलती है। (चरत्) चलती है, और (त्रिंशत् पदा) तीस पग (नि अक्रमीत्) चलती है। यह प्रहेलिका का शब्दार्थ है। इसकी योजना उषा और वाणी दोनों पक्षों में होती है।

उषापक्ष में—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान गुरु और शिष्य, राजा और प्रजाजनो! (इयम्) यह उषा (अपात्) विना पगों वाली होने से 'अपात्' है। अथवा सूर्य के अभाव में प्रथम प्रकट होने से निराधारसी दीखती है इसलिये अपात् है वह (पद्वताभ्य) पगों वाली प्रजाओं से भी (पूर्वा) पूर्व अर्थात् सोती हुई प्रजाओं से पूर्व उदय होकर (आ अगात्) आती है, प्रकट होती है। वह (शिर हित्वा) शिर को छोड कर अर्थात् विना शिर रूप सूर्य के उदय होने के पूर्व ही (जिह्वया) वाणी से या पक्षियों आदि की जिह्वा द्वारा (वावदत्) बोलती, शब्द करती और (चरत्) कालक्रम से विचरती है और (त्रिंशत् पदा) तीस मुहूर्त रूप पदों को (नि अक्रमीत्) चलती है (दया०, सायण)।

वाणी के पक्ष में—हे इन्द्र! और हे अग्ने! हे प्राण और हे पुरुष! (इयं अपाद्) यह वाणी पाद रहित गद्य वाणी (पद्वतीभ्य पूर्वा आ अ-

गान्) पदों वाली, पदमयी वाणीसे भी पूर्व आती है, वह मनुष्य के मन में अन्धकार में उषा के समान, ज्ञान रूप से प्रकट होती है (शिरः हित्वा) शिर अर्थात् प्रथम पद या सुबन्त, आख्यात पद को छोड़ कर (जिह्वया वावदत्) वाणी द्वारा बोला जाता है। (चरत्) और इस प्रकार प्रकट होता हुई (त्रिंशत् पदा) तीस पद अर्थात् तीस अंगुल (नि अक्रमीत्) गति करता है अर्थात् मूल आधार से लेकर मुख तक ३० अंगुल गति करती है। (महीधर)

अथवा—उषापक्ष में—यह पादरहित होकर पाद वाली, सोता प्रजाओं से पूर्व ही आजाती है। और (शिरः हित्वा) प्राणियों के शिर को प्रेरित करती हुई प्राणियों के जिह्वा द्वारा शब्द करती हुई (चरत्) उच्चारण करती है। और ३० मुहूर्त को पार करती है (सायण)

वाणीपक्ष में अर्थान्तर—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र, प्राण और अग्ने जाठर अग्ने! यह तुम्हारी अद्भुत क्रिया है कि वाणी (इयम्) यह (पद्वतीभ्यः पूर्वा) सुबन्त तिङन्त पदों से युक्त प्रकट वाणी से पूर्व (अपात्) पाद रहित, अव्यक्त रूप से ही अन्तःकरण में (आ अगात्) प्रकट होता है। वह प्रथम (शिरः हित्वा) शिरो भाग, तालु को प्रेरणा करके (जिह्वया) जीभ द्वारा (वावदत्) बोला जाती हुई (चरत्) प्रकट होता या उच्चारण की जाती है। और पुनः (त्रिंशत् पदानि) तीस पदों या स्थानों को (नि अक्रमीत्) व्याप्त करता है। अर्थात् मूल देश से लेकर जिह्वा तक तीसों अंगुल परिमाण नाड़ी भाग को व्याप्त करता है। महर्षि दयानन्द ने यजुर्भाष्य में विद्युत् के पक्ष में भी इस मन्त्र की योजना की है। मन्त्र अस्पष्ट है और अधिक विचार की अपेक्षा करता है।

देवानां हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥ ९४॥

ऋ० ८।२७।१४॥

मनुर्वैवस्वत ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—(विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान्, विजयी एवं व्यवहारकुशल पुरुष (मनवे) मननशील मनुष्य के हित के लिये (साकम्) एक साथ (समन्यव) समान ज्ञान और मान और तेज तथा क्रोध या पराक्रम युक्त (सरातय) समान रूप से दानशील, निष्पक्षपात होकर (हि स्म) रहा करें। और वे (अद्य) आज और (अपरम्) आगामी भविष्य में भी (न) हमारे और (न तुचे) हमारे दुःखहारी पुरुषों या सन्तानों के हित के लिये (वरिवोविदः) धन ऐश्वर्य के प्राप्त करने और कराने करने वाले (भवन्तु) हों।

'तुचे'—'तुग्' इति अपत्यनाम, तोजयति हिनस्ति हि पितुर्दुःखमिति तुक् पुत्र ॥ इति सायण ॥

अपाधमद्भिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त ऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ ६५ ॥

ऋ० = १ । ७६ । २ ॥

नृमेध ऋषि । मरुत्वान् इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यम ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति (अशस्तिहा) शासन व्यवस्था से रहित उच्छृङ्खल पुरुषों का नाशक उनको दण्ड देने में समर्थ होकर (अभिशस्ता) सब ओर से आने वाली हिंसाकारिणी सेनाओं और अपवादों को (अप अधमत्) दूर भगा दे और इस प्रकार वह (इन्द्र) शत्रुहन्ता होकर (द्युम्नी) अन्नादि से समृद्ध और ऐश्वर्यवान् (अभवत्) होता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्त ! हे (बृहद्भानो) अति अधिक तेज से युक्त अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (मरुद्गण) वीर सैनिकों के गणाधीश्वर (देवा) विजयशील पुरुष और विद्वान् एवं व्यवहार कुशल वैश्यगण भी (ते) तेरे (सख्याय) मित्र भाव के लिये (येमिरे) यत्न करते हैं, एवं नियम व्यवस्था में रहते हैं।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ९६ ॥

ऋ० ८ । ८९ । ३ ॥

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ।

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान तीव्र वेग से शत्रुओं पर आक्रमण करने और उनको मारने वाले वीर प्रजास्थ पुरुषो और भट लोग (व) अपने में से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (बृहते) बड़े पुरुष के लिये (ब्रह्म अर्चत) धन और अन्न या आदर सत्कार प्रदान करो । (शतक्रतुः) सैकड़ों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्यों से युक्त (वृत्रहा) विघ्नकारी, नगर घेरने वाले शत्रु को मेघ को सूर्य के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ वीर पुरुष ही (शतपर्वणा) सैकड़ों के पालन करने वाले एवं सैकड़ों अवयवों, पोरुओं एवं शाखाओं, या सेना के दलों से युक्त (वज्रेण) वीर्यवान् सैन्यबल, और शस्त्रास्त्र समूह से (वृत्रं हनति) शत्रु का नाश करे ।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ९७ ॥

ऋ० ८ । ३ । ८ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

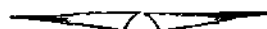
भा०—जिस प्रकार (विष्णवि) व्यापक पृथ्वी पर (सुतस्य मदे) प्राप्त हुए जल से पूर्ण हो जाने पर (इन्द्रः) सूर्य (अस्य) इस मेघ के (शवः) विद्युत् बल और (वृष्ण्यं) वर्षण सामर्थ्य को (वावृधे) बढ़ाता है । उसी प्रकार (सुतस्य) अभिषेक द्वारा स्थापित (विष्णवि) व्यापक राष्ट्र में (मदे) हर्ष, सुख और समृद्धि से युक्त, और पूर्ण रहने पर (इत्) ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (शवः) अपना बल और (वृष्ण्यं) प्रजा पर सुख सेचन या वर्षा, के सामर्थ्य को और सेना बल का सभी प्रकार बढ़ावे ।

इमा उं त्वा०। यस्यायम्०। अय५ सहस्रम्०। ऊर्ध्व ऊ षु णः०।

भा०—'इमा उ त्वा०', 'यस्यायम्०', 'अय सहस्रम्०' ये तीनों प्रतीकें अ० ३३।८१–८३ तक के तीनों मन्त्रों की हैं। 'ऊर्ध्व ऊ षु ण'० यह प्रतीक अ० ११।४२ मन्त्र की है।

॥ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ॥



अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३४] शिवसंकल्पसूक्तम् ॥

॥ओ३म्॥ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥

१–६] शिवसंकल्प आदर्शदर्शनानां वा ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ शिवसंकल्पसूक्तम् । शिवसंकल्प ऋषिः ।

भा०—(यत्) जो (मन) मन, संकल्प विकल्प करने वाला भीतरी अन्तःकरण (जाग्रतः) जागते हुए पुरुष का (दूरम् उत् आ एति) दूर २ के पदार्थों तक संकल्प द्वारा ही सर्वत्र जाया करता है। और (सुप्तस्य) वह ही सोते हुए पुरुष का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) उसके भीतर आ जाता है। (तत्) वह (उ) निश्चय से (ज्योतिषां) ज्योतिर्मय, प्रकाश करने वाले ग्रह नक्षत्रादि के बीच सूर्य के समान, नाना विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रिय गण के बीच में (दूरंगमम्) दूर तक पहुंचने वाला (ज्योतिः) प्रकाशक साधन है। वह ही (दैवम्) देव अर्थात् विषयों में रमण करने वाले आत्मा का (एकम्) एकमात्र भीतरी साधन है। (तत्) वह मेरा (मनः) मन, अर्थात् ज्ञान का साधन, इन्द्रिय सदा (शिवसंकल्पम्) शुभ, कल्याणमय संकल्प करने वाला (अस्तु) हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने हारे, कर्मण्य पुरुष और (मनीषिणः) मनस्वी, दृढ़ चित्त, ज्ञानवान् पुरुष और (धीराः) ध्यानशील धीर जन, (विदथेषु) यज्ञों, ज्ञानयुक्त व्यवहारों,

सभास्थानों और युद्धादि के अवसरों में और (यज्ञे) यज्ञ या परम उपासनीय पूज्य परमेश्वर के निमित्त (कर्माणि) नाना उत्तम कर्मों का (कुर्वन्ति) आचरण करते हैं और (यत्) जो (प्रजानाम् अन्तः) समस्त प्रजाओं के भीतर (अपूर्वम्) अपूर्व, अद्भुत, सबसे उत्तम भीतरी इन्द्रिय (यक्षम्) सब अन्य इन्द्रियों को सुसंगति, सुव्यवस्था करने वाला है (तत्) वह (मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु) मेरा मन शुभ संकल्प वाला धार्मिक, कल्याण ज्ञान वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥३॥

भा०—(यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) सबसे उत्तम ज्ञान का साधन है जो (चेतः) यथार्थ ज्ञान कराने वाला और स्मरण करने का भी साधन है। और जो (धृतिः च) भीतर धारण अर्थात् चिरकाल तक स्मरण रखने का भी साधन है। और (यत्) जो (प्रजासु) प्रजाओं, प्राणियों के भीतर (अमृतम्) कभी नष्ट न होने वाला (अन्तरम्) भीतर ही विद्यमान, (ज्योतिः) सब पदार्थों का प्रकाशक गृह में दीपक के समान शरीर को चेतन रखने वाला साधन भी है। (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किञ्चन कर्म) कुछ भी कर्म (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) शिव, शान्त, शुभ परमेश्वर के सङ्कल्प या इच्छा वाला और उत्तम विचारवान् (अस्तु) हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥

भा०—(येन) जिस मन के द्वारा (इदम्) यह (भूतम्) अतीत, भूतकाल के, (भुवनम्) वर्त्तमान काल के और (भविष्यत्) भविष्यत् काल के (सर्वम्) समस्त पदार्थ (अमृतेन) अमृत, नित्य आत्मा के साथ मिलकर (परिगृहीतम्) ग्रहण किये जाते हैं जाने जाते हैं और

जैसे यज्ञ द्वारा, वा यजुर्वेद द्वारा (सप्तहोता) सात होता आदि ऋत्विजों से होने वाला यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार (येन) जिस मन द्वारा सात शिर में स्थित विषयों के ग्रहण करने वाले चक्षु आदि इन्द्रियों से युक्त अथवा सात शरीर को धारण और जीवन देने वाले सात धातुओं से युक्त (यज्ञः) आत्मा या शरीररूप यज्ञ (तायते) सम्पादन किया जाता है (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शुभ सङ्कल्प वाला और कल्याणकारी (अस्तु) हो।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥५॥

भा०—(रथनाभौ अराः इव) रथ के चक्र की नाभि में जिस प्रकार अरे लगे होते हैं उसी प्रकार (यस्मिन्) जिस मनमें (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्र, (साम) सामवेद और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र गण (प्रतिष्ठिता) स्थित हैं अर्थात् वेद आदि नाना विज्ञान पद गत पद स्फूर्ति रूप से जिसमें सब स्थित रहते हैं। और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्रजाओं, प्राणियों के (सर्वम् चित्तम्) समस्त चित्त, समस्त पदार्थों का ज्ञान भी (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान और पट में सूत्रों के समान ओत प्रोत अर्थात् विराज रहा है (तत्) वह मेरा (मनः) मननात्मक अन्तःकरण और उसमें युक्त आत्मा भी (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ वेद तथा परमेश्वर आदि के ज्ञान, ध्यान, मनन आदि उत्तम विचार सामर्थ्य से युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥६॥

भा०—(सुषारथिः = सु-सारथिः) उत्तम सारथि, अश्वान् (अभीशुभिः) रस्सों से (वाजिन) वेगवान् (अश्वान् इव) अश्वों को जिस प्रकार (नेनीयते) नाना मार्गों पर ले जाता है उसी प्रकार (यत्) जो मन, (मनुष्यान्) मनुष्य अपने नाना इन्द्रियों और नाना विषयों किया करने

वाली प्रेरक वृत्तियों से (वाजिन) ज्ञान और बल से युक्त (मनुष्यान्) मननशील प्राणियों को भी (नेनीयते) अपने वश करके ले जाता है और (यत्) जो (हृत् प्रतिष्ठम्) हृदय स्थान में स्थित और (अजिरम्) जरा आदि दशाओं से रहित, सदा बलवान् अथवा (अजिरम्) विषयों के प्रति इन्द्रियों को लेजाने में और स्वयं सकल्प द्वारा जाने में समर्थ है और जो (जविष्ठम्) सबसे अधिक वेगवान् है (तत् मे मनः) वह मेरा मननशील चित्त सदा (शिवमसंकल्पम् अस्तु) शुभ सकल्पवाला हो ।

पितुं नु स्तो॑षं म॒हो ध॒र्माणं॒ तवि॑षीम् ।
यस्य॑ त्रि॒तो व्योज॑सा वृ॒त्रं विप॑र्वमर्द॒यत् ॥ ७ ॥

ऋ० १ । १८७ । १ ॥

अगस्त्य ऋषिः । पितुर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥ अन्नस्तुतिः ॥

भा०—मैं उस (महः) महान् (धर्माणम्) शरीरों और राष्ट्रों के धारण करने वाले (तविषीम्) बलवान् (पितुम्) सबके पालक, अन्न के समान सबके जीवनों के आधार आत्मा और राजा के (स्तोषम्) गुणों का वर्णन करता हूं । (यस्य ओजसा) अन्न के बल पर जिस प्रकार पुरुष (वृत्रं विपर्वम् वि अर्दयत्) विघ्नकारी कालरूप मृत्यु को भी खण्ड २ कर नाना प्रकार से पीड़ित करता है अर्थात् काल पर वश पा लेता है उसी प्रकार (यस्य ओजसा) जिसके पराक्रम से (त्रितः) तीनों कालों में व्याप्त एवं उत्तम, मध्यम, अधम तीनों में प्रतिष्ठित, अथवा शत्रु, मित्र और उदासीन तीनों पर विजयशील होकर अथवा विस्तृत राष्ट्र बल वाला होकर (वृत्रं) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को, जल सहित मेघ को सूर्य के समान (विपर्वम्) उसके पर्व २, ग्रन्थि २, खण्ड २ काटकर (वि अर्दयत्) विविध उपायों से पीड़ित या दण्डित करता है ।

त्रितः—त्रिस्थान इति म० । त्रिषु कालेषु इति द० । विस्तीर्णतम इति सा० ।

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषः ॥ ८ ॥

अथर्व० ७ । २० । २ ॥

[illegible]

भा०—हे (अनुमते) अनुकूल मति से युक्त सब कार्यों की अनुमति अर्थात् स्वीकृति देने वाले सभापते ! अथवा राजसभे ! तू (नः) हमें (अनु मन्यासै) अनुमति स्वीकृति दिया कर। तू (शं च कृधि) सुख कल्याणकारी कार्यों को ही किया कर। (क्रत्वे) उत्तम मति, या बुद्धि और (दक्षाय) बल चतुरता सम्पादन करने के लिये हो। (नः हिनु) हमें आगे बढ़ा, प्रेरित कर। (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषः) खूब बढ़ा।

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥ ९ ॥

[illegible]

भा०—(अद्य) आज (अनुमतिः) स्वीकृति देने वाली सभापति, (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत राज्य कार्य को (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में (अनुमन्यताम्) स्वीकार करे अर्थात् राष्ट्र कार्य को विद्वानों के आधार पर चलावे और (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (अग्निः) अग्रणी नायक, वे दोनों राजा और सभापति दोनों (दाशुषे) दानशील, करप्रद प्रजा के लिये (मयः भवताम्) सुखकारी हों।

[illegible]

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १० ॥

ऋ० २ । ३२ । ६ ॥ अथर्व० ७ । ४६ । १ ॥

गृत्समद ऋषिः । सिनीवाली देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (सिनीवालि) समस्त प्रजाओं को अपने पालन और रक्षण, भरण और पोषण के सामर्थ्य से बांधने वाली, प्रतिपत् चन्द्रकला और अमावास्या के समान नव राजचन्द्र से विराजने वाली राजसभे ! हे (पृथुष्टुके) बड़ भारी सबशक्ति से युक्त तू (या) जो (देवानां) देवों, विद्वानों, एवं विजयेच्छु और व्यवहार कुशल, ज्ञानद्रष्टा, तत्त्वदर्शी पुरुषों को (स्वसा) उत्तम रीति से अपने भीतर बैठाने वाली, विद्वान् सभासदों से बनी (असि) है। तू (आहुतम्) प्रदान किये या समस्त राष्ट्र से ग्रहण किये गये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर और सञ्चित बल को (जुषस्व) स्वीकार कर। और हे (देवि) दिव्य गुणों से युक्त राजसभे ! तू (नः प्रजां दिदिड्ढि) हमारी प्रजा को उत्तम मार्ग दर्शा। उत्तम सुख प्रदान कर।

स्त्री के पक्ष में—हे (सिनीवालि) हृदय से प्रेम से बंधने वाली और गृह का पालन करनेवाली ! अथवा, प्रेम बन्धन में स्वयं बँधने और भरण पोषण करने योग्य ! हे (पृथुष्टुके) विशालबन्धन ! विशाल कामना युक्त, विशाल केशपाश से युक्त ! बड़ी स्तुति योग्य, यशस्विनि ! हे (देवि) कामना युक्त प्रियतमे ! (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों या कामना करने वाले अभिलाषी वरों के बीच में (स्वसा) सुभूषित, सुन्दर रूपवती होकर (असि) विराजती है तू मेरे (आहुतम्) दिये हुए (हव्यम्) स्वीकार करने योग्य अन्न वस्त्रालङ्कारादि पदार्थ को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर। और (नः) हमें (प्रजा) उत्तम सन्तान (दिदिड्ढि) प्रदान कर। उत्पन्न कर और उसको उत्तम शिक्षा दे।

'सिनीवाली'—दृष्टचन्द्राऽमावास्या सिनीवालीति सायणः । सिन-

सिनि अन्ननामसु व्याख्यातम् । पालं पर्वं इति देवराज । सिनी प्रेमवद्धा वासी वल्कारिणी चति द्वा० । सिनमन्नं भवति । सिनाति भूतानि । पाल पर्वं । पर्वं पृणोतेः । नस्मिन्प्रवताति वा । यास्मिन्नीवा, यासेर्नेवाम्या-नगुपन्याराच्चन्द्रमा. सेवितव्यो भवति इति वा । निरु० १ । १ । ३ । १० ॥

'सुभद्रा'—सुभद्रा भवति । भेषु सीदति वा । निरु० ११ । ३ । ३३॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ ११ ॥

गृत्समद ऋषिः । सरस्वती देवता । अनुष्टुप् । गांधार ॥

भा०—(सस्रोतसः) समान रूप से स्रोत अर्थात् प्रवाह वाली नदियें जिस प्रकार अधिक जलवाली, बड़ी नदी में मिलकर उसी में लीन हो जाती हैं उसी प्रकार (पञ्च) पांचों (नद्यः) समृद्ध प्रजाएं (सरस्वतीम्) प्रशस्त वेद ज्ञानवाली विद्वत्सभा या विद्वान् को (सस्रोतसः) समान ज्ञानप्रवाह वाली होकर (अपियन्ति) आ मिलती हैं और उसी में लीन हो जाती है । वह (सरस्वती) सरस्वती उत्तम वेद ज्ञान को धारण करने वाली विद्वत्सभा और विद्वान् जन (पञ्चधा) पांचों प्रकार के जनों को धारण करने वाला होकर (देशे) देश, राष्ट्र में (सरित्) नदी के समान सबके जीवनाधार ज्ञान रूप जल को फैलाने वाला और नदी के समान ज्ञान के अक्षय प्रवाह और निष्पक्षपात रूप से सबके मलों का शोधक (अभवत्) हो जाता है ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद पांचों समृद्ध प्रजाएं विद्वानों के वेदमय ज्ञान-वाणी में मिलकर और उसको प्रमुख बनाकर एकाकार ज्ञानवती हो जाती हैं । वह वेदमयी वाणी पांचों को पालती पोसती है । वह नदी के समान सब के लिये समान रूप से उपयोगी, सुखजनक और पाप सम्मार्ग धोने वाली हो ।

वाणी के पक्ष में—(पञ्चनद्यः) नदियों के समान प्रवाहरूप से इन्द्रिय नाडियों से बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियां (सस्रोतसः)

एक समान मनरूप स्रोत से ही बहती हैं। वे पांचों (सरस्वतीम् अपि-यन्ति) उत्तम ज्ञानमयी वाणी के रूप में लीन हो जाती हैं। अर्थात् पांचों ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। (सा उ) वह वाणी भी (देशे) स्व स्थान मुख मे, (सरित्) निरन्तर बहनेवाली नदी के समान ही धारा प्रवाहरूप से निकलती (अभवत्) है।

दृषद्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, विपाशा, इरावती इन पांच नदियों का सरस्वती में मिलने परक अर्थ उवट ने किया है। पांच नदियें सरस्वती में मिल जाती हैं वह सरस्वती ही पञ्च प्रकार की या पांचगुना होकर देश में नदी हो जाती है। 'दृषद्वती' आदि नामों का यहां उल्लेख न होने से ऐसा अर्थ करना असंगत है।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑। तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१२॥

ऋ० १।३१।१॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। जगती निषादः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन्! राजन्! तू (अङ्गिरा) शरीर में रस के समान, अथवा अग्नि के समान तेजस्वी (ऋषिः) मन्त्रार्थद्रष्टा, (देवानाम्) विद्वानों और तेजस्वी पुरुषों के बीच में (देवः) सबसे अधिक विद्वान्, तेजस्वी, विजयी और (प्रथमः) सबसे प्रथम, मुख्य, सबका (शिवः सखा) कल्याणकारी मित्र (अभवः) हो। (तव) तेरे (व्रते) बनाये नियम व्यवस्था में रह कर (कवयः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुष (विद्मनापसः) समस्त कर्त्तव्य कर्मों को जानने वाले हों और (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर पुरुष (भ्राजद्-ऋष्टयः) प्रखर, तेजस्वी, चमचमाते हुए शस्त्रों वाले (अजायन्त) हों।

परमेश्वर के पक्ष में—हे अग्ने! परमेश्वर! तू ही सबसे प्रथम ज्ञानवान्

सबका द्रष्टा, सब देवों का देव, सबका कल्याणकारी, सबका मित्र है। उस प्रभु में आश्रित होकर विद्वान् पुरुष (विप्रासः) सब सत्कर्मों के ज्ञाता और सब ज्ञानों के द्रष्टा हो जाते हैं।

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेष॒ꣳ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१३॥

ऋ० १।३१।१२।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! (तव व्रते) तेरे नियम व्रत में रहने वाले (नः) हम (त्वम्) तू हे (देव) दानशील, सबद्रष्टः! हे विजिगीषो! (तव पायुभिः) अपने पालनकारी सामर्थ्यों से (नः मघोनः) हमारे धन सम्पन्न पुरुषों और (तन्वः च) हमारे शरीरों को भी (रक्ष) पालन कर। हे (वन्द्य) वन्दनीय! हे स्तुति करने योग्य! तू हमारे (तोकस्य) पुत्र का और (तनये) पुत्र के पुत्र, पौत्रादि सन्तति और (गवाम्) गौ आदि पशुओं का भी (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रक्षक (असि) हो।

परमेश्वर पक्ष में—हे अग्ने! परमेश्वर! तू अपने रक्षा सामर्थ्यों से धनैश्वर्यवानों की और हमारे शरीरों की रक्षा कर। हे स्तुति योग्य! तू हमारे पुत्र, पौत्र और गौओं की निरन्तर रक्षा कर। हम तेरे बनाए नियमों में रहें।

उ॒त्ता॒नायामव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान।
अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ इडा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥१४॥

ऋ० ३।२९।३।

विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—(उत्तानायाम्) उत्तम रूप से विस्तृत पृथिवी में तू हे

१४—'ददत्स्तु०' इति काण्व०।

राजन्! (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (अव भर) अपने अधीन प्रजा का भरण पोषण कर। इससे (प्रवीता) अच्छी प्रकार कामना युक्त स्त्री के समान प्रेम में बंधकर प्रजा भी (सद्य) शीघ्र ही (वृषणं) सब सुखों के वर्षक, वीर्यवान् राजा को (जजान) उत्पन्न करती है। वह (अरुषस्तूपः) हिंसा रहित ज्वालामय अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है। (अस्य) उसका (पाजः) पालन सामर्थ्य (रुशत्) शत्रुओं का नाशक होता है। और वह (इडाया पुत्र) पृथ्वी का पुत्र, पृथ्वीनिवासी पुरुषों को दुःखों से त्राण करने में समर्थ होकर (वयुने) उत्तम ज्ञान, कर्त्तव्य कर्म में भी (अजनिष्ट) सामर्थ्यवान् हो जाता है।

स्त्री पुरुष पक्ष में—(अरुषस्तूप) अपने तेज या वीर्य से स्त्री को कष्टदायी न होकर पति (अस्य रुशत पाजः) अपने तेजोमय वीर्य को (चिकित्वान् उत्तानानाम् अव भर) रोग रहित, गृहस्थ होकर उत्तान सोई पत्नी में धारण करावे। वह (प्रवीता सद्य वृषण जजान) प्रेम से बद्ध होकर शीघ्र ही अग्नि को अरणि के समान वीर्यवान् पुत्र को उत्पन्न करे। अथवा वह कामना युक्त होकर (वृषण) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष को (जजान) उससे संग लाभ करके पुत्र रूप से उत्पन्न करे। (इडाया) उत्तम स्त्री, या बीजारोपण की भूमि के (वयुने पुत्रः अजनिष्ट) उचित गर्भाशय में वह तेजो रूप वीर्य ही पुत्र रूप से उत्पन्न होता है।

इडा॑यास्त्वा प॒दे व॒यं नाभा॑ पृथि॒व्या अधि॑।
जात॑वेदो॒ नि धी॑मह्य॒ग्ने ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥ १२ ॥

ऋ० ३ । २९ । ४ ॥

देवश्रवादेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, अग्रणी सेनानायक, (त्वा) तुझको (वयम्) हम (पृथिव्या.

१२—इळा पा०,० वोळ्हवे इति काण्व०।

नाभा अधि) पृथिवी के केन्द्र में और (इळायाः पदे अधि) स्तुति योग्य प्रजा के प्रतिष्ठित पद पर, अथवा वाणी या आज्ञा प्रदान करने के आज्ञापक पद पर (हव्याय) स्तुति योग्य राज्यपद के (वोढवे) धारण करने के लिए (निधीमहि) स्थापित करते हैं।

आचार्य पक्ष में—हे विद्वन्! तुझको हम पृथिवी के बीच, उत्तम वाणी के प्रतिष्ठित आचार्य पद पर प्रदान करने योग्य ज्ञान के प्रदान करने के लिए स्थापित करें।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १६ ॥
ऋ० १।६२।१।

(१६, १७ नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—हम लोग (शवसानाय) बल के समान दुष्टों का नाश करने वाले, अथवा दुष्टों के नाश के लिए बल वृद्धि चाहने वाले (गिर्वणसे) समस्त स्तुतियों के पात्र, (अङ्गिरस्वत्) वायु, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान्, (सुवृक्तिभिः) उत्तम शत्रुओं का वर्जन करनेवाली शक्तियों से (स्तुवत) स्तुतियोग्य (ऋग्मियाय) विद्वान्, (विश्रुताय) विविध वीर्य आदि गुणों द्वारा प्रख्यात, (नरे) नायक के (शूषम्) बल और (आङ्गूषम्) घोषणा करने का अधिकार या यशोवृद्धि को (प्र मन्महे) अच्छा प्रकार चाहें और (सुवृक्तिभिः) उत्तम रीति से हृदय को स्वच्छ करने वाली और पापनाशक ज्ञान वाणियों से (स्तुवत) ज्ञान के सिद्धान्तों का प्रवचन करनेवाले (ऋग्मियाय) स्तुतियोग्य एवं वेदमन्त्रों के ज्ञाता, (विश्रुताय) विविध विद्याओं में प्रसिद्ध विद्वान् के (अर्कम्) स्तुति योग्य ज्ञान का (अर्चाम) आदर कर उसे प्राप्त करें।

परमेश्वर के पक्ष में—विज्ञान के प्राप्त करने के लिए सर्वस्तुति योग्य

नग के समान सर्व जीवनाधार, ज्ञानी, स्तुति योग्य, प्रसिद्ध परमेश्वर के उपकारी वेदमय आघोष रूप मन्त्रों या स्तुति योग्य स्वरूप की स्तुति करें और विचार और चिन्तन करें ।

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॒ भरध्वमाङ्गूष्य॒ᳩ शवसा॒नाय॒ साम॑ । येना॑ नः पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा ऽअर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥ १७ ॥

ऋ० १ । ६२ । २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (व) आप लोग (शवसानाय) बल वृद्धि के इच्छुक (महे) महान् राजा के लिये (आङ्गूष्यम्) घोषणा करने योग्य, कीर्त्तिजनक, (महि नम) बड़ा भारी आदर सत्कार एवं शत्रु नमाने में समर्थ बल और अन्नादि ऐश्वर्य और ऐसे (साम) साम, स्तुति वचन, (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार प्रदान करो, (येन) जिससे (न) हमारे (पूर्वे पितर) श्रेष्ठ पालक जन (पदज्ञा) पद अर्थात् ज्ञान योग्य तत्वों के जाननेवाले (अंगिरस) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (अर्चन्त) योग्य रूप से वर्त्तते हुए (गा) नाना भूमियों, ज्ञान-वाणियों, और गौ आदि समृद्धियों को (अविन्दन्) प्राप्त करते हैं ।

परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के लिये (आङ्गूष्य साम महि नम प्र भरध्वम्) आगूष्य साम अर्थात् स्तुति योग्य सामगान और बड़ा भारी विनय प्रकट करो । (येन) जिसके बल से (न पूर्वे पितर) हमारे पूर्व के पालक गुरुजन और (अंगिरस) ज्ञानवान् पुरुष (पदज्ञा) आत्मस्वरूप को जानने हारे होकर (अर्चन्त) स्तुति करते हुए (गा) वेदवाणियों को ज्ञानरश्मियों के समान स्वयं प्राप्त करते और औरों को प्रदान करते हैं ।

इच्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रया॑ᳪसि । तिति॑क्षन्ते ऽअ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॑के॒तः ॥ १८ ॥

ऋ० ३ । ३० । १ ॥

देव-सदस्तो ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! आचार्य ! (त्वा) तुझको (सोमासः) राष्ट्र ऐश्वर्य प्राप्त करनेहारे उसके योग्य (सखायः) मित्रगण (त्वा) तुझे (इच्छन्ति) चाहते हैं । (सोम सुन्वन्ति) सोम, ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं । अथवा ऐश्वर्यवान् सबके शासक तेरा (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं । और (प्रयांसि दधति) मनोहर अन्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करते और प्रदान करते हैं । और (अभिशस्तिम्) शत्रुओं के द्वारा किये जानेवाले घोर अपराधों और निन्दावचनों को भी (तितिक्षन्ते) सहते हैं । हे (इन्द्र) राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! (जनानाम्) प्रजाजनों के बीच में (प्रकेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और बलशाली (त्वत्) तुझ से (कः चन) दूसरा कौन है ? कोई भी नहीं ।

परमेश्वर के पक्ष में—सोम रस के इच्छुक यज्ञकर्ता और ब्रह्मानन्द रस के इच्छुक जन तुझे चाहते हैं । सोम अर्थात् परमेश्वर की स्तुति करते हैं उत्तम ज्ञानों का मनन करते हैं । निन्दा वचनों को सहते हैं और तितिक्षा का अभ्यास करते हैं । हे परमेश्वर ! तुझ से बड़ा ज्ञानी दूसरा कौन है ?

न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥१६॥

ऋ० ३ । ३० । २ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ।

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! (परमा चित् रजांसि) दूर से दूर के लोक, प्रजाजनों के निवासस्थान और शत्रुओं के देश भी (ते) तेरे लिये (दूरे न) दूर नहीं हैं । तू (हरिभ्याम्) अश्वों से ही (आ प्र याहि) सब देशों में प्रयाण कर, आया जाया कर । (स्थिराय) स्थिर (वृष्णे) पुरुषों के ऊपर प्रबल बलवान् तेरे लिये ही (इमा) ये सब (सवना) ऐश्वर्य उत्पादक कार्य (कृता) किये जाते हैं । और (समिधाने अग्नौ)

अति प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार (सवाना कृता) यज्ञ कर्म करने पर (ग्रावाण) मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार (समधाने अग्नौ) तुल्य नायक, अग्रणी पुरुष के प्रचण्ड और अग्नि के समान युद्ध में प्रज्वलित हो जाने पर (ग्रावाण) ज्ञानों का उपदेश करने वाले विद्वान् एवं पाषाणों के समान दुष्टों के दलन करने वाले शस्त्रधर बलवान् पुरुष भी (युक्ता) योग्य स्थानों पर नियुक्त होते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—हे ईश्वर ! दूर से दूर के स्थान भी तेरे लिये दूर नहीं। तू अपने धारण और आकर्षण सामर्थ्य से सब में व्याप्त है। तेरे ही किये हुए ये सब कार्य हैं। हृदय में तेरे प्रदीप्त हो जाने पर ही ये सब (ग्रावाण) समस्त स्तुतिकर्त्ता विद्वान् भी योग द्वारा तेरा साक्षात् करते हैं, वे समाहित होते हैं।

अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रिँ॑ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जाᳪ सु॑क्षि॒तिᳪ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥२०॥
ऋ० १ । ९१ । २१ ॥

२०—२३ गोतम ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! सेनापते ! (युत्सु) युद्धों में (अषाढम्) शत्रुओं से जिसको पराजित न होने वाले और (पृतनासु) सेनाओं में (पप्रिम्) पूर्ण बलवान् एवं सबके रक्षा करने वाले, (स्वर्षाम्) सबको सुख और ऐश्वर्य के देने और बांटने वाले (अप्साम्) मेघ जिस प्रकार जल सबको प्रदान करता है उसी प्रकार सबको प्राण अन्न देने वाले, अथवा (अप्साम्) प्रजाओं के धन को स्वयं न खा जाने वाले, (वृजनस्य) शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य बल के (गोपाम्) रक्षक, (भरेषुजा) संग्रामों और यज्ञों एवं प्रजा के भरण पोषण के कार्यों में प्रसिद्ध एवं विजयी (सुक्षितिम्) उत्तम निवासस्थान से युक्त, उत्तम

२०—अषाळ्ह० इति काण्व० ।

भूमि के स्वामी, दृढ़ दुर्गवान्, (सुधयसम्) उत्तम यश ऐश्वर्य और अन्नादि से समृद्ध (जयन्तम्) विजय करने हारे (त्वाम् अनु) तेरे ही हर्ष के साथ हम प्रजाजन भी (मदेम) प्रसन्न एवं तृप्त, सुखी होकर रहें।

सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २१ ॥

भा०—(सोम) सबका प्रेरक, अभिषिक्त हुआ राजा (धेनुं ददाति) दुधार गौओं को देता है। (सोम) वह अभिषेक योग्य आज्ञापक राजा ही (आशुम् अर्वन्तम् ददाति) वेगवान् अश्वसैन्य और कर्म कुशल वीर पुरुष प्रदान करता है। (यः) जो प्रजाजन अपने आपको और अपने राज्य को (अस्मै) इस राजा के अधीन (ददाशत्) देता है उस प्रजा को वह (सादन्यम्) उत्तम गृहों और राजसभाओं उत्तम पदों पर विराजने योग्य, (विदथ्यम्) ज्ञान सत्संग, यज्ञ आदि के योग्य ज्ञानवान् (सभेयम्) सभा में कुशल, (पितृश्रवणम्) पिता, पालक गुरु जनों के उपदेश और आज्ञाओं के श्रवण करने वाले अथवा पिताओं के यश कीर्ति फैलाने वाले पुरुषों को भी (ददाति) प्रदान करता है।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषिक्त राजन्! ऐश्वर्यवन्! (इमाः ओषधीः) मेघ जिस प्रकार जल वर्षा कर इन नाना ओषधियों को पैदा करता है उसी प्रकार (त्वम्) तू ऐश्वर्य प्रदान करके (इमाः) इन नाना (ओषधीः) शत्रु संतापक बल और तेज को धारण करने वाली वीर सेनाओं और वीर पुरुषों को (अजनयः) उत्पन्न करता प्रकट करता है। (त्वम्) तू मेघ जिस प्रकार जलों का वर्षा करता है उसी प्रकार (अपः) जलों के समान शान्तिदायक आप्त पुरुषों, उत्तम बुद्धियों और कर्म व्यवस्था को (अजनयः) प्रकट करता है। (त्वं गाः) पृथ्वी

आदि पशुओं और राजाज्ञा रूप वाणियों को प्रकट करता है। (त्वम्)तू (अन्तरिक्षम्) वायु के समान विशाल अन्तरिक्ष और सबको आवरण और रक्षा करने वाले रक्षक, शासक विभाग को (आततन्थ) विस्तृत कर । और (त्वं) तू ही (ज्योतिषा) सूर्य के समान प्रकाश से (तमः) अन्धकार के समान प्रजा के कष्टदायी और शोक के हेतु दुःखों को (ववर्थ) निवारण कर ।

अथवा—वह राजा ही सोम आदि ओषधियों को, वही जलों की लहरों को, गौ आदि पशुओं को उत्तम बनावे। वही विशाल आकाश को वश कर ज्ञानज्योति से अविद्या, अन्यायादि को दूर करे।

परमात्मा के पक्ष में—वह समस्त अन्न आदि ओषधि, जल, पशु प्रदान करता, आकाश को बनाता और सूर्य से अन्धकार और ज्ञान से मोह को दूर करता है।

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥

ऋ० १ । ९१ । २३ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलपूर्वक शत्रु को पराजय करके विजय लाभ करने हारे ! हे (देव) राजन् ! प्रजाओं के सुखदाता एवं शत्रु पर विजय करने के इच्छुक ! तू (देवेन मनसा) विजय की कामना वाले मन से (नः) हमारे (राय भागम्) ऐश्वर्य को ले लेने वाले शत्रु को (अभियुध्य) युद्ध में परास्त कर। तू (उभयेभ्यः) शत्रु और मित्र दोनों पक्षों के लोगों के (वीर्यस्य) बलों पर (ईशिषे) अपना स्वामित्व करने में समर्थ है। शत्रु (त्वा मा तनत्) तुझे न व्याप ले, तुझे न दबाले ! तू (गविष्टौ)[१] बाणों के निरन्तर प्रहारों के स्थान संग्राम में (प्र चिकित्स)

२३—ग इष्टौ इति काण्व० ।

शत्रुओं को रोगों के समान दूर करने का यत्न कर, अथवा (प्र चिकित्स) युद्ध से प्राप्त घाव आदि की उत्तम चिकित्सा का प्रबन्ध कर।

अथवा—(राय भाग आ अभियुङ्क्ष्व) ऐश्वर्य का भाग हमें प्राप्त करा। (गविष्टौ उभयस्य प्र चिकित्स) स्वर्ग, सुख के निमित्त, हमारे ऐहिक पारमार्थिक सुखों के बाध में आए विघ्न निवारण कर। (महा०, दया०, उव्वट)

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

ऋ० १।३५।८॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। सविता देवता। भुरिक् पङ्क्तिः। पञ्चमः

भा०—राजा के पक्ष में—(सविता) सबका प्रेरक, प्रकाशक, ऐश्वर्य का उत्पादक सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी, (देव) विजिगीषु राजा (हिरण्याक्ष) प्रजा के प्रति हित और रमणीय चक्षु वाला, सौम्य दृष्टि होकर (दाशुषे) भेंट और कर प्रदान करने वाले प्रजाजन को (वार्याणि) वरण करने योग्य, उत्तम २ (रत्नानि) रत्न रमणीय पदार्थों को (दधत्) दान धारण करता और प्रदान करता हुआ (आगात्) आवे, प्राप्त हो। और सूर्य जिस प्रकार (अष्टौ ककुभः) ४ दिशा, ४ उपदिशा मिलाकर आठों दिशाओं को, (पृथिव्याः योजना) पृथिवी पर के समस्त प्राणियों और (त्री धन्व) तीनों लोकों और (सप्त सिन्धून्) प्रवाहित होने वाले स्थूल सूक्ष्म जलों को भी (वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार राजा भी (अष्टौ ककुभः) आठों दिशाओं, (पृथिव्याः योजना) पृथिवी के साथ योग रखने वाले या करने, यानादि भागों या पृथ्वी से युक्त प्राणियों, या (त्री धन्व) तीनों मरुस्थल अर्थात् आकाश और जलरहित मरु स्थलों, या सातों समुद्रों को (वि अख्यत्) विशेष रूप से देखे। सब पर अपनी चक्षु रक्खे।

महर्षिदयानन्दः—ऋग्वेदे—'पृथिव्यामध्ये स्थितानामेकोनपञ्चाशत्क्रोशपर्यन्तेऽन्तरिक्षे स्थूलसूक्ष्मलघुगुरुत्वरूपेण स्थितानामपां सप्तसिन्धुरिति संज्ञा'। यजुर्वेदभाष्ये—'पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्तं गुरुत्वलघुत्वभूतानां सप्तविधानामपामवयवाः' इत्यादि उभयविधलेखनं सुविचार्यम् ॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते।
अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम्॑णोति ॥२५॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः। निचृज्जगती। सविता देवता। निषादः॥

भा०—जिस प्रकार (सविता) रसों और प्रकाशमय किरणों का उत्पादक सूर्य (हिरण्य पाणि) सुवर्ण के समान तीक्ष्ण किरणों को जलादि ग्रहण करने वाले हाथों के समान धारण करता हुआ (विचर्षणि) समस्त विश्व को अपने प्रकाश से दिखलाता और तीव्र ताप से पदार्थों को फाड़ता और विश्लेषण करता है। और वह सूर्य जिस प्रकार (उभे द्यावापृथिवी अन्तः) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में स्थित होकर गति करता है और जिस प्रकार सूर्य (अमीवा) रोगकारी पीड़ाओं को और रात्रि के अन्धकार को भी (अप बाधते) दूर करता और नष्ट करता है। और जब वह (सूर्यम्) सूर्य अपने ही स्वरूप को (वेति) प्रकट करता है तब भी (कृष्णेन) अन्धकार के नष्ट करनेवाले (रजसा) तेज से (द्याम्) आकाश को (अभि ऋणोति) सब प्रकार से व्याप लेता है उसी प्रकार यह (सविता) राष्ट्र के सब ऐश्वर्यों का उत्पादक, सबका प्रेरक राजा (हिरण्यपाणि) सबके हितकारी और रमण योग्य व्यवहारों वाला, एवं सुवर्ण आदि रत्नों को दूसरों के देने के लिये अपने हाथ में, या वश में करके (विचर्षणि) समस्त मनुष्यों में विशेष पुरुष होकर एवं विविध प्रकार से सबका द्रष्टा होकर (उभे द्यावापृथिवी अन्तः) दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग या शत्रु और मित्र दोनों राष्ट्रों के बीच में (ईयते) आ खड़ा होता है। दोनों के बीच मध्यस्थ रूप से सर्वमान्य माना जाता है

तब ही यह (अमीवाम्) रोग पीड़ा के समान दुःखदायी शत्रु सेना को भी (अप बाधते) दूर करता है । और (सूर्यम् एति) सूर्य पद को प्राप्त करता है । और (कृष्णेन रजसा) शत्रु बल को कर्षण अर्थात् क्षीण कर देने वाले तेज से (द्याम्) देदीप्यमान राजसभा या उच्च पद को (ऋणोति) प्राप्त करता है ।

अथवा—जब (सूर्यम् = सूर्यः) सूर्य ही (एति) अस्त हो जाता है तब (द्याम् कृष्णेन रजसा ऋणोति) आकाश को काले अन्धकार से ढक देता है । (दया० यजुर्भाष्य) अथवा—जब यह सूर्य (सूर्यम्) रश्मि समूह को (एति) प्रकट करता है तब (कृष्णेन रजसा) आकृष्ट लोकों द्वारा अपना प्रकाश प्राप्त करवाता है । (दया० ऋग्भाष्ये)

हिरण्यहस्तो ऽअसुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ २६ ॥

ऋ० १ । ३५ । १० ॥

भा०—(हिरण्यहस्तः) सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त और सब दिशाओं में अपने किरणरूप हाथों वाला (असुरः) सबको प्राणदाता, बलवान् (सुनीथः) सुखपूर्वक सबको प्राप्त, (सुमृडीकः) उत्तम सुखप्रद, (स्ववान्) अपने उत्तम गुणों से युक्त (अर्वाङ् याति) अपने समस्त गुणों को प्रकट करता हुआ सूर्य या वायु जिस प्रकार प्राप्त होता है उसी प्रकार यह राजा और सभापति (हिरण्यहस्तः) प्रजा के हित और रमण करने योग्य सुखकारी पदार्थों को और सुवर्ण आदि बहुमूल्य धनैश्वर्यों को अपने हाथ में, अपने अधीन रखने हारा, तेजस्वी (असुरः) समस्त प्रजाओं को प्राण देने वाला, उन पर अनुग्रह करने और उनको शान्ति देने वाला, (सुनीथः) उत्तम मार्ग में प्रजा को चलाने हारा, या उत्तम स्तुतियुक्त, (सुमृडीकः) सुखकारी, दयालु, (स्ववान्) धनाढ्य,

१—सुपर्ठ इति म०भ०।

एवं अपने आत्मबल से युक्त होकर (अर्वाङ् यातु) अपने शत्रु के अभिमुख और प्रजा के प्रति भी मान करे। और वह (यातुधानानाम्) प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, एवं दण्डित करने योग्य (रक्षसः) दुष्ट, चोर, डाकू आदि प्रजापीडक लोगों को (अप सेधन्) दूर करता हुआ और (प्रतिदोषम्) प्रजा के प्रत्येक दोष के सुधार के लिये उनको (गृणानः) उत्तम मार्गोपदेश करता हुआ (देवः) दानशील, विद्वान्, सर्वद्रष्टा राजा (अस्थात्) सिंहासन पर स्थिति प्राप्त करे। अथवा (प्रतिदोषं गृणानः) प्रति रात्रि काल में या प्रतिदिन लोगों को सावधान करता हुआ विराजे।

'रक्षसः'—रक्षो रक्षयितव्यमस्मात्। इति निरु० । ४ । १८ ॥

'प्रतिदोषम्'—प्रतिजन यो दोषः तम्। श्रुतिस्मृति विहितधर्मपराङ्मुखानां यावन्तो दोषास्तावतो गृणान इति महीधर।

ये ते॒ पन्थाः॑ सवितः पू॒र्व्यासो॑ऽरे॒णवः॑ सुकृ॑ता अ॒न्तरि॑क्षे।
तेभि॑र्नो अ॒द्य प॒थिभिः॑ सु॒गेभी॒ रक्षा॑ च नो॒ अधि॑ च ब्रूहि देव ॥२७॥
ऋ० १ । ३० । ११ ॥

भा०—हे (सवितः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! राजन् ! (ते) तेरे बनाये (ये) जो (पूर्व्यासः) पूर्व के विद्वानों, आप्त जनों से बनाये एव चले गये और पालन किये गये (सुकृताः) उत्तम रीति से रचे हुए धर्म कृत्य, (अन्तरिक्षे) और आकाश में विद्यमान (अरेणवः) धूलि रहित स्थानों के समान (अरेणवः) विद्वानों के हृदय में निर्मल मार्ग, सदाचार के मर्यादा रूप मार्ग या व्रताचरण हैं (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुख से चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (नः) हमें (अद्य) आज और सदा ही (रक्ष) पालन कर। हे (देव) दानशील, विद्वन् ! तेजस्विन् राजन् ! (नः) हमें तू (अधि ब्रूहि च) सन्मार्गों का उपदेश भी कर।

उभा पिबतमश्विनो॒भा नः॒ शर्म॑ यच्छतम्।
अ॒वि॒द्रि॒याभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ २८ ॥ ऋ० १ । ४६ । १५ ॥

कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(उभा) दोनों (अश्विना) विद्या और अधिकारों में व्यापक अध्यापक, सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष दोनों मुख्य अधिकारी (पिबतम्) उत्तम राष्ट्रैश्वर्य का उत्तम रस के समान पान, पालन या स्वीकार करें । और (उभा) दोनों (नः) हमें (शर्म) सुख, शरण (अविद्रियाभिः) अखण्डित, कभी नष्ट न होने वाले, दृढ़, अथवा त्रुटि रहित, छिद्ररहित एवं अनिन्दित, उत्तम (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (शर्म) सुख एवं शरण, उत्तम गृह आदि साधन (यच्छताम्) प्रदान करें ।

'अविद्रियाभिः'—'द विदारणे' इत्यस्माद्औणादिकः इयक् इति महीधरः । समर्थस्तत्रोपपद्यत इति दया० । द्रा कुत्सायां गतौ इत्यस्माद्औणादिकः क्रिः । अविद्रिर्निन्दा, तद्विरोधिनी स्तुतिः यासामस्ति अविद्रियाः, ताभिरिति सायणः ।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २९ ॥

ऋ० १ । ११२ । २४ ॥

कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र दोनों के समान तेज, प्रताप तथा सर्व जनों को आल्हाद करने वाले सेनाध्यक्ष और सभाध्यक्ष दोनों पदाधिकारी जनो ! आप दोनों (अस्मे वाचम्) हमारी वाणी को (अप्नस्वतीम्) उत्तम कर्म युक्त (कृतम्) करो । और हे (दस्रा) शत्रुओं और प्रजा के पीड़ाकारी दुष्टों और दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले ! हे (वृषणा) माता पिता के समान प्रजा पर सुखों के वर्षण करने वाले ! तुम दोनों (अप्नस्वतीम् मनीषाम् कृतम्) शुभ कर्म से युक्त मन की इच्छा या बुद्धि को उत्पन्न करो, मैं प्रजाजन (वाम्) तुम दोनों को (अद्यूत्ये) द्यूत आदि छल युक्त कार्यों या बातों रहित,

निकार्य, कार्य में अथवा (अह्न्ये) प्रकाश रहित, अन्धकार के समय अज्ञात स्थानों में और (अवसे) प्रजा के रक्षण कार्य करने के लिये (वा) आप दोनों को (निह्वये) निरन्तर बुलाता हूं। आप दोनों (वाजसातौ) संग्राम में या ऐश्वर्य प्राप्ति के कार्य में (न) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भवतम्) समर्थ होवो।

'अद्युत्ये'—द्युतादागत, द्युत भव वा द्युत्यम्, न द्युत्यमद्युत्य तस्मिन्।

द्युभिरक्तुभि परिपातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धु पृथिवी ऽउत द्यौ॥३०॥

ऋ० १। ११२। २५॥

कुत्स ऋषि। अश्विनौ देवत। त्रिष्टुप्। धैवत॥

भा०—(अश्विना) व्यापक अधिकार और सामर्थ्य वाले सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष, सूर्य चन्द्र के समान तुम दोनों (द्युभि अक्तुभि) दिनों और रात्रियों में आप दोनों (अरिष्टेभि) अविनष्ट, एव मंगलकारक सुख-प्रद हितकारी (सौभगेभि) सौभाग्यों, धन सम्पदाओं से (अस्मान् परि-पातम्) हम प्रजाजनों की रक्षा करो। (तत्) तब (मित्र वरुण) मित्र, स्नेही और वरुण, दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश और दण्डाध्यक्ष दोनों (न) उस पालन के कार्य को (मामहन्ताम्) और अधिक उत्तम एव कीर्ति और आदर योग्य बनावें। (अदिति) अखण्ड राज्य शासन करने वाली राजसभा और (सिन्धु) सब राज्यप्रबन्ध द्वारा समस्त देशों और प्रजाओं को परस्पर बांधने वाला, समुद्र के समान गम्भीर राजा (पृथिवी उत द्यौ) पृथिवी के समान विस्तृत और सूर्य के समान तेजस्वी होकर दोनों (मामहन्ताम्) राजा के रक्षण कार्य को उन्नत करें।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ३१॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३३। ४३॥

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥ ३२ ॥
अथर्व० १९ । ४७ । १ ॥

कुशिको नाम भरद्वाजकन्या ऋषिका । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (रात्रि) रात्रि के समान समस्त प्रजाओं को रमण कराने, सबको सुख देने वाली ! सबको दान एवं वेतनादि देने वाली राजशक्ते ! (पार्थिव) पृथिवी का (रजः) समस्त लोक (पितुः) पालन करने वाले वायु और सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् पुरुष के (धामभिः) धारण सामर्थ्यों और तेजों, पराक्रमों से (अप्रायि) पूर्ण रहे और तू (बृहती) बड़ी भारी शक्ति वाली होकर (दिवः सदांसि) उषःकाल जिस प्रकार आकाश में फैलती है उसी प्रकार राजसभा के (सदांसि) नाना अधिकार पदों पर (वितिष्ठसे) विशेष रूप से स्थित रह । और (तमः) अन्धकार जिस प्रकार सर्वत्र फैल कर आंखों को निर्बल कर देता है और (त्वेषं) प्रकाश जिस प्रकार सर्वत्र फैल कर प्राणियों को सामर्थ्यवान् करता है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तेरा (त्वेषं तमः) अति तेजस्वी रूप मित्रगण को अधिक सामर्थ्यवान् कर देने वाला और शत्रुओं को निर्बल एवं दिवान्ध करनेवाला बल (आवर्तते) सर्वत्र फैले है । यहां राज्य प्रबन्ध करने वाली शक्ति 'रात्रि' शब्द से कही गई है । विशेष विवरण अथर्ववेद के रात्रि सूक्त के व्याख्यान में देखो ।

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ३३ ॥ ऋ० १।९२।१३ ।

गोतम ऋषिः । उषा देवता । पंक्तिरुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (वाजिनीवति) वाजिनी अर्थात् अश्व रथ आदि सेना से युक्त (उषः) शत्रुओं को दाह करने वाली, उनका नाश करने वाली, राजशक्ते ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (तत्) उस नाना

प्रकार के (चित्रम्) अद्भुत २ धन को (आ भर) प्राप्त करा (येन) जिससे हम लोग (तोकं च) सब दुःखों के नाशक पुत्रों और (तनयं च) अगली सन्तति के विस्तार करने वाले पौत्र आदि को भी (धामहे) धारण, पालन पोषण करें।

स्त्री के पक्ष में—हे (वाजिनीवति उषः) बल, वीर्य, ज्ञान, बल और अन्नादि से समृद्ध उषा के समान शोभा से युक्त तू संग्रह करने योग्य उस धन को प्राप्त कर जिससे पुत्र पौत्रों का धारण पोषण करें।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रᳬं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रᳬं हुवेम ॥ ३४ ॥

ऋ० ७ । ४१ । १ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्न्यादयो देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(प्रातः) जब पांच घडी रात्रि रहे तब प्रभात वेला में, प्रातःकाल, हम लोग (अग्निं हवामहे) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करें और ज्ञानवान् आचार्य को नमस्कार करें। (प्रातः इन्द्रम्) प्रातःकाल में हम उस समस्त ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर का स्मरण करें और परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें। अथवा आत्मा और ज्ञान के द्रष्टा आचार्य की उपासना करें। (प्रातः मित्रावरुणा हवामहे) प्रातःकाल के समय ही हम लोग मित्र अर्थात् प्राण के समान सबके स्नेहकारी, जीवनप्रद, प्रिय और वरुण अर्थात् अपान के समान सर्व मलनाशक और शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करें। इसी प्रकार प्रातःकाल हम लोग प्राण और अपान की साधना प्राणायाम द्वारा करें। प्रातःकाल हम लोग मित्र, स्नेही और श्रेष्ठ पुरुष को नमस्कार आदि सत्कार करें। (प्रातः अश्विना) माता पिता को प्रातः नमस्कार करें। सूर्य द्यौ और पृथिवी और दिन और रात्रि के उत्पादक परमेश्वर की भी प्रातः उपासना करें। (भगम्) सबके सेवन करने योग्य, (पूषणं) सबके पोषक, (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद और ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर और ब्रह्म

अथ बल, यश और ज्ञान के पालक विद्वान् तेजस्वी पुरुष की (प्रातः) प्रातःकाल, दिन के पूर्व भाग में, सब कार्यों से प्रथम, (सोमम्) सबके अन्तर्यामी प्रेरक, (उत) और (रुद्रम्) पापियों के रुलाने हारे, पूर्ण सर्वरोगनाशक, सर्वज्ञानोपदेशक परमेश्वर की हम प्रातःकाल उपासना करें और इसी प्रकार विद्वान्, रोगहारी वैद्य और ज्ञानी विद्वानों का सत्संग प्रातःकाल सब कार्यों के प्रथम करें।

प्रातःकाल ही (सोम) सोम आदि ओषधियों का सेवन और (रुद्र) जीव आत्मा का चिन्तन भी प्रातःकाल ही किया करें। महर्षि दयानन्द।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—(यः) जो परमेश्वर (अदितेः) अखण्ड शक्ति और अखण्ड ब्रह्माण्ड का (विधर्त्ता) विविध पदार्थों से और विविध कार्यों को धारण करने हारा है उस (जितम्) सबके विजेता और सबसे उत्कृष्ट (भगम्) सबके भजन करने योग्य और ऐश्वर्यवान्, (उग्रम्) दुष्टों के प्रति सदा दण्ड देने वाले, उग्र, अति भयंकर परमेश्वर को (वयम्) हम (प्रातः) प्रातःकाल ही (हुवेम) स्मरण करें। (यं) जिस (भग) उस भजन योग्य परमेश्वर को (आध्रः) अर्थात् पूर्ण अतृप्त, भोगप्यासु या दरिद्र पुरुष (चित्) भी (तुरः चित्) अति शीघ्रकारी या शत्रुओं का घातक बलवान् पुरुष और (राजा चित्) ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से प्रकाशमान् राजा भी (मन्यमान) आदर सत्कार एवं प्रेम से मनन करता हुआ (भक्षि) मुझे ऐश्वर्य का प्रदान कर (इति) इसी प्रकार (आह) प्रार्थना किया करता है।

राजा के पक्ष में—हम उस ऐश्वर्यवान् राजा को सबसे प्रथम प्रातः पुकारें (यः अदितेः विधर्त्ता) जो पृथ्वी का विविध उपायों से धारण पोषण करता है और सबको पुष्ट करता है। (यं मन्यमानः) जिसका आदर

करता हुआ (आध्र) दरिद्र भी और (तुर चित्, राजाचित्) शत्रु हिंसक बलवान् पुरुष और राजा भी (इति आह) ऐसा ही कहता है कि तू (भग भक्षि) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य का विभाग कर दे, धन सम्पदाओं को बांट ।

'आध्र'—दरिद्र इति सायण । अपुत्रस्य पुत्र [अथवा, अतृप्तस्य पुत्र इति वा स्यात् न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र] ? इति दया० ध्रे तृप्तौ । न तृप्यति स अध्र । दीर्घश्छान्दस । यद्वा आ समन्तात् ध्र । अध्र एव वा आध्र । स्वार्थे तद्धित । इति महीधर ।

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्न ।
भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्त॑ स्याम ॥ ३६ ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! राजन् ! हे (प्रणेत) उत्कृष्ट मार्ग में लेजाने वाले ! उत्तम न्याय के करने हारे ! हे (सत्यराध) सज्जनों के योग्य धनैश्वर्यों के स्वामिन् ! सत्य के पालक, सत्यधन ! तू (न) हमें (ददत्) नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करता हुआ (धियम् उत् अव) हमारे कर्म और बुद्धि को उन्नत कर । अथवा (न धिय ददत् उत् अव) हमें सद्बुद्धि और सत्कर्म की शिक्षा प्रदान करता हुआ, उन्नत कर, हमारी रक्षा कर । हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (न) हम (गोभि) वेदवाणियों, गौवों और (अश्वै) विद्वानों और वेगवान् अश्वों से (प्र जनय) उन्नत कर । हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! हम (नृभि) उत्तम कुलनायक और नेता पुरुषों से (नृवन्त) उत्तम नेता वाल एव पुत्र, भृत्य और सहायकों से युक्त (प्र स्याम) भली प्रकार हों ।

उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्त स्यामो॒त प्रपि॒त्व उ॒त मध्ये॒ अह्ना॑म् ।
उ॒तोदि॑ता मघवन्त्सूर्य॑स्य व॒यं दे॒वानां॑ सुम॒तौ स्या॑म ॥ ३७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत) और हम भी (इदानीम्) अब (भगवन्त स्याम) ऐश्वर्यवान् एव तुझ से स्वामी वाल हों ।

(उत) और (अह्नाम्) दिनों के (प्रपित्वे) प्रारम्भ और (मध्ये) बीच में भी और (सूर्यस्य उदिता) सबके प्रेरक सूर्य के उदय काल में और सबके प्रेरक सूर्य के समान तेजस्वी राजा के अभ्युदय के समय में (वयम्) हम सब (देवानां) विद्वान् पुरुषों की (सुमतौ) शुभ, सुन्दर, सुखजनक सम्मति में (स्याम) रहा करें।

अभ्युदय काल में ईश्वरवश हम लोग दुर्बुद्धि से नष्ट न हो जांय।

भग एव भगवाँ२ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥३८॥

भा०—हे (देवाः) देवगण, विजयशील एवं विद्वान् पुरुषो ! (भगः) सबके सेवा भजन करने योग्य परमेश्वर और ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (भगवान् अस्तु) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी हो। (तेन) उसके द्वारा (वयम्) हम भी (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान्, स्वामी हों। हे (भग) ऐश्वर्यवन् (सर्व इत्) समस्त जन भी (तं त्वा) उस तुझ को ही (जोहवीति) बार २ याद करता है, तेरा ही स्मरण करता है। तुझ को सब अवसरों पर पुकारता है। हे (भग) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! राजन् ! (इह) इस लोक में (सः) वह तू (नः) हमारे (पुरएता) सबसे आगे चलने हारा नायक (भव) हो।

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥३९॥

भा०—(उषसः) उषाएं, प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (अध्वराय) हिंसारहित, परम पवित्र यज्ञ के लिये (सं नमन्त) अच्छी प्रकार आती हैं, प्रकट होती हैं। उसी प्रकार (अध्वराय) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य प्रजापालन रूप राज कार्य के लिये (उषसः) शत्रुदाहक तेजस्वी पुरुष भी (सं नमन्त) अच्छी प्रकार प्रकट होते हैं और (दधिक्रावा) अपनी पीठ पर पुरुष को धारण करके चलने में समर्थ अश्व जिस प्रकार (पदाय)

प्राप्त करने योग्य दूर देश को प्राप्त होता है उसी प्रकार (दधिक्रावा) राष्ट्र कार्य को अपने ऊपर धारण करके उसके चलाने और पराक्रम करने में समर्थ राजा (शुचये) अत्यन्त शुद्ध, तेजस्वी, ईर्षा, द्वेष, लोभ, काम राग आदि से रहित, ईमानदार, धर्मयुक्त (पदाय) पद प्राप्त करने के लिये (स नमतु) प्राप्त हो। इसी प्रकार (दधिक्रावा) ध्यान बल से भ्रमण करने वाला योगी शुचि पद, परम पावन परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये यत्न करता है। और (वाजिन अश्वा) वेगवान् अश्व (रथम् इव) जिस प्रकार रथ को धारण करते हैं उसी प्रकार (अश्वा) विद्या अधिकार में व्यापक सामर्थ्य वाले (वाजिन) अन्न आदि ऐश्वर्य और ज्ञानो वाले विद्वान् पुरुष (रथम्) रथ युक्त, एवं रमण करने वाले, (अर्वाचीनम्) साक्षात् एवं हमारे अभिमुख (वसुविद) ऐश्वर्य को देने और प्राप्त कराने वाले (भग) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (आ वहन्तु) उपदेश करें और (भग आवहन्तु) ऐश्वर्यवान् राजा के राज्य को धारण करें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वत॒ः प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥४०॥

ऋ० ७। ४१। ७॥

भा०—जिस प्रकार (उषास) प्रभात वेलाएं (अश्वावती) वेगवान् वायु और व्यापनशील प्रकाश से युक्त होने से 'अश्वावती' और (गोमती) किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और (वीरवती) विविध पदार्थों को कंपाने वाले वायु से या सूर्य रूप पुत्र से युक्त 'वीरवती' और (भद्राः) सुखदायी होने से 'भद्रा' हैं, वे (घृत दुहाना) ओसरूप जल को प्रदान करती हैं उसी प्रकार (उषास) शत्रुओं का दहन या नाश करने में समर्थ सेनाएं (अश्वावती) अश्वारोहियों से युक्त (गोमती) बैल आदि नाना पशुओं से युक्त (वीरवती) वीर पुरुषों वाली (भद्रा) उत्तम, सुखकारी होकर (सदम्) हमारे गृह और राजसभा या आश्रय-स्थान

राष्ट्र और राष्ट्रपति को (उप यन्तु) प्राप्त हों, उसके धन और प्रजा को विकसित करें। वे (घृतं दुहानाः) तेज को पूर्ण करती हुई (विश्वतःसर्वतः) सब प्रकार से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा हृष्ट पुष्ट, सुरक्षित होकर रहें। हे अग्ने, वीर पुरुषो! (यूयं) तुम लोग (नः) हमारी (सदा) सदा काल (स्वस्तिभिः = सु अस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो।

स्त्रियों के पक्ष में—(अश्वावतीः) विद्या और बल में व्याप्त एवं अश्व के समान दृढ़ पुष्ट, उत्तम शक्तियों से युक्त, (गोमतीः) उत्तम इन्द्रियों, वेद वाणियों और गवादि पशुओं से सम्पन्न, (वीरवतीः) पुत्रों से युक्त, (उषाः) सुन्दर दीप्ति वाली होकर (नः सदम् उप यन्तु) हमारे गृह की शोभा को बढ़ावें। वे (घृतं दुहानाः) गौओं के समान घृतरस को प्रदान करती हुई (विश्वतः सर्वतः) सब प्रकार उत्तम हृष्ट पुष्ट, सुरक्षित या रक्षकों द्वारा अन्न पान की जाने वाली हों। हे विद्वान् पुरुषो! तुम उत्तम क्षेमकर साधनों से हमें पालन करो।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४१ ॥ ऋ० ६।५४।९॥

सुहोत्र भारद्वाज ऋषिः। पूषा देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (पूषन्) सब के पोषक परमेश्वर और राजन्! हम (तव) तेरे बनाये (व्रते) आचरण करने योग्य कर्म, नियम एवं सदाचार में रह कर (कदा चन) कभी भी (न रिष्येम) पीड़ित न हों, कष्ट न पावें। और (स्तोतारः) तेरे गुण गान करने वाले हम विद्वान् लोग (ते) तेरे हो होकर (इह) इस जगत् में (स्मसि) रहें।

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ४२ ॥
ऋ० ६।४९।८॥

ऋजिश्वा ऋषिः। पूषा देवता। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जो (पूषा) सब प्रजाओं का पोषण पालन करने वाला राजा (वचस्या) वेदोक्त वचन और (कामेन) शुभ और प्रबल अभिलाषा से (कृत) निष्पन्न, दृढ़,एवं तैयार होकर (पथः पथः परिपतिम्) प्रत्येक धर्म मर्यादा और उत्तम मार्ग के सब प्रकार से पालक, स्वामी (अर्कम्) स्तुति करने योग्य तेजस्वी सूर्य के तेजस्वी पद को (अभि-आनट्) साक्षात् सबके सन्मुख प्राप्त है (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) सुवर्णादि से सुभूषित अथवा सुवर्णादि से समृद्ध (शुरुधः) शोक और पीडाओं के रोकने वाली सम्पदाएं (रासत्) प्रदान करें और वह ही (धियं धियं) प्रत्येक काम को (प्र सीपधाति) उत्तम रीति से चलावे ।

अथवा—मैं (कामेन कृतः) प्रबल अभिलाषा और इच्छा से युक्त होकर (वचस्या) उत्तम वेदवचनों से (पथः पथः परिपतिं) प्रत्यक सन्मार्ग-मर्यादा के पालक उस (अर्कम् अभ्यानट्) पूजनीय परमेश्वर को साक्षात् स्तुति कर प्राप्त होऊं । वह (चन्द्राग्रा) आह्लाद से भरी हुई (शुरुधः) शोकनाशनी उत्तम वाणियों को (रासत्) हमें प्रदान करें । वह (पूषा) सर्व पोषक परमेश्वर और विद्वान् (धियं धियं प्र सीपधाति) हमारी प्रत्येक बुद्धि और कर्म को अच्छे मार्ग में चलावे ।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४३ ॥ ऋ० १ । २२ । १८ ॥

(४३, ४४) मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(विष्णु) व्यापक (गोपाः) गतिमान् लोकों का पालक, अथवा सबका रक्षक, (अदाभ्य) कभी नष्ट और खण्डित न होने वाला, नित्य परमेश्वर (त्राणि पदा) तीन जानने या प्राप्त होने योग्य, तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीन प्रकार के पदार्थों और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप व्यवहारों को (विचक्रमे) विविध प्रकार से बनाता और चलाता है । और (अतः) उससे (धर्माणि) समस्त संसार के धारण करने वाले नियमों को भी (धारयन्) स्वयं धारण करता है ।

'त्रीणि पदा'—कारण, स्थूल, सूक्ष्म रूपाणि इति दया० यजुर्भाष्ये। भूम्यन्तरिक्षसूर्यरूपेण त्रिविध जगद् इति तत्रैव भावार्थे स एव। अग्नि-वाय्वादित्याख्यानि इति उवटमहीधरौ।

उस सबके रक्षक विष्णु परमेश्वर ने तीन ज्ञान करने योग्य वेद ऋग्, यजु, साम, बनाये। उससे ही वह समस्त धर्म मर्यादाओं को धारण करता है। इसी प्रकार राजा भी वेदत्रयी से समस्त मर्यादाओं और धर्मों को धारण करे। अथवा तीनों लोक जागर, स्वप्न, सुषुप्ति एवं सर्ग, स्थिति, प्रलय ये तीन पद हैं, उनसे ही समस्त स्थावर जंगम प्राणियों और लोकों को प्रभु धारण करता है।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ४४ ॥ ऋ० १। २२। २१ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् मेधावी (विपन्यव) विविध प्रकार से ईश्वर की स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष (जागृवांसः) सदा जागृत अप्रमादी रह कर, अथवा प्रातः उठ कर सुचित होकर (विष्णोः) व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का (यत् परमं पदम्) जो सर्वोत्कृष्ट ज्ञातव्य स्वरूप परम पद मोक्ष है (तत्) उसको ही (सम् इन्धते) भली प्रकार प्रकाशित करते, उसी की साधना करते हैं।

राजा के पक्ष में—सावधान विद्वान् पुरुष व्यापक, महान् शक्तिशाली राजा के ही सर्वोत्कृष्ट पद को प्रकाशित करते हैं उसको निज अपने उत्तम विचारों से उत्कृष्ट बनाते हैं।

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥
ऋ० ६। ७०। १ ॥

भरद्वाज ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। जगती। निषादः ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथ्वी दोनों जिस प्रकार (घृत-

वती) जल और प्रकाश से युक्त, (भुवनानाम्) उत्पन्न हुए समस्त लोक लोकान्तरों की (अभिश्रिया) सब प्रकार से शोभा और आश्रय देने वाले, (मधुदुघे) जल एवं मधुर पदार्थों के प्रदान करने वाले, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाले तेज और सुवर्णादि से युक्त, (अजरे) कभी जीर्ण या विनष्ट न होने वाले और (भूरिरेतसा) बहुत अधिक उत्पादक सामर्थ्य और जल से युक्त होकर भी (वरुणस्य) दोनों सूर्य और वायु के (धर्मणा) धारण सामर्थ्य से और इसी प्रकार सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर के धारण सामर्थ्य से (विष्कभिते) विशेष रूप से थमे खड़े हैं, वे अपनी नियम मर्यादा को नहीं तोड़ते, उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजावर्ग भी दोनों (घृतवती) पराक्रम और तेज से युक्त और घृत आदि पुष्टिकारक अन्न से युक्त हों। वे (भुवनानाम् अभिश्रिया) समस्त प्राणियों और लोकों के आश्रय देने वाले, समृद्धि से युक्त हों। दोनों (उर्वी) विशाल (पृथ्वी) विस्तृत सामर्थ्य वाले हों, (मधुदुघे) दोनों मधुर और शत्रुपीडक बल और मधुर अन्न से भरे पूरे, एक दूसरे को पूरने वाले हों। (सुपेशसा) उत्तम रूपवान् सुवर्णादि से मण्डित हों। वे दोनों (वरुणस्य धर्मणा) स्वयं वरण किये गये श्रेष्ठ राजा के बनाये धर्म, नियम, राज्यव्यवस्था द्वारा (विष्कभिते) मर्यादा में स्थित हों, दोनों (अजरे) कभी नष्ट न हों। दोनों (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान्, बलवान् हों। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी स्नेहयुक्त, लक्ष्मी सम्पन्न, मधुर स्वभाव वाले, सुवर्णादि आभूषणों से युक्त सुरूप, सुन्दर बुढ़ापे से रहित, अति वीर्य बल से युक्त, ब्रह्मचारी होकर (वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते) परस्पर वरण करके स्वयंवर धर्म के द्वारा अथवा सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के बनाये वेद के बतलाये धर्म से नियमित होकर रहें।

ये नः॑ स॒पत्ना॒ अप॒ ते भ॑वन्त्विन्द्रा॒ग्निभ्या॒मव॑ बाधामहे॒ तान्।
वस॑वो रु॒द्राऽआ॑दि॒त्याऽउ॑परि॒स्पृशं॑ मो॒ग्रं चेत्ता॑रमधिरा॒जम॑क्रन् ४६

ऋ० १० । १२८ । ६ ॥

विहव्य ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रुगण हैं (ते) वे (अप भवन्तु) हमसे दूर रहें । (तान्) उनको हम लोग (इन्द्राग्निभ्याम्) सूर्य से जिस प्रकार मेघ और अन्धकार छिन्न भिन्न होते और अग्नि से जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी राजा, या वायु के समान बलवान् और अग्नि के समान तेजस्वी नायक पुरुषों से या विद्युत् और वायु के अस्त्रों से (अव बाधामहे) विनष्ट करें । उनको नीचे दबावें । और (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले जन (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुष और (आदित्याः) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्य गण ये सब मिल कर (उपरिस्पृशम्) सबके ऊपर के पद पर पहुंचे हुए, (उग्रम्) अति बलवान् (मा) मुझको (चेत्तारम्) सबको सत्यासत्य बतलाने और चेताने वाला (अधिराजम्) अधिराज, (अक्रन्) बनावें ।

अथवा—(वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु, (रुद्राः) १० प्राण और एक आत्मा और १२ मास सब मुझे यथार्थ सिद्ध राजा बनावें ।

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४७॥

ऋ० १ । ३४ । ११ ॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती । निषादः ॥

भा०—(नासत्या) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों सत्याचरण युक्त, (अश्विना) विद्या और अधिकार में व्यापक एवं दृढ पुरुषों का अन्तर्यामी तुम दोनों होकर (त्रिभिः एकादशैः) तीन ग्यारह अर्थात् तेंतीस (देवेभिः) राजसभासदों या अध्यक्षों द्वारा (मधुपेयम्) ज्ञान, मधुर [illegible] पालन करने योग्य राष्ट्र को (आ यातम्) प्राप्त हों । वे [illegible]) आयु, जीवन की वृद्धि करें । दीर्घ जीवन (रपांसि) पापों

भोगें । (अपांसि) सब प्रकार के पापों को (नि: मृक्षतम्) सर्वथा शुद्ध करें । (द्वेष नि सेधतम्) आपस के द्वेष को दूर करें और (सचाभुवा भवतम्) सब कार्यों में एक साथ मिल कर पुरुषार्थशील होकर रहें ।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी पृथिवी आदि पदार्थों सहित मधुर स्नेह से प्राप्त होने योग्य पालने योग्य गृहस्थ के मधुर उपभोग को प्राप्त करें । जीवन की वृद्धि करे, पापों को दूर करें, द्वेष त्याग करें, सदा साथ मिल कर रहें ।

एष व॒ स्तोमो॑ मरुत ऽइ॒यङ्गीर्मा॑न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒या वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ४८ ॥
ऋ० १ । १६५ । १५ ॥

अगस्त्य ऋषि । मरुतो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (मरुत) विद्वान् वीरपुरुषो ! एव प्रजा पुरुषो ! (मान्यस्य) मान करने योग्य एवं मनन करने हारे शत्रुओं का स्तम्भन करने वाले और (मान्दार्यस्य) मुझे यह वीर सेनानायक कादता शत्रु गण में इस प्रकार का भय उत्पन्न करने हारे, सबको हर्ष देनेहारे (कारो) क्रिया कुशल सेनापति का (व) तुम्हारे ही हित के लिये (एष स्तोम) यह शस्त्रास्त्र समूह या नियम या अधिकार या व्यवस्था या सैनिक संघ है । और (इयं गी) यह उसकी वाणी अर्थात् आज्ञा है । उसको आप लोग (वयाम्) दीर्घ जीवन वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरों की रक्षा के लिये (इषा) इच्छापूर्वक (आ अयासिष्ट) उसे प्राप्त होवो । हम लोग (इष) अन्न और (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन के देने वाले (वृजनम्) दु खों के वारक बल को (विद्याम) प्राप्त करें । अथवा, उसको हम (इष) सबके प्रेरक (वृजन) शत्रुओं के वारक (जीरदानुम्) सबका जीवनप्रद (विद्याम) जानें ।

स॒हस्तो॑मा स॒हच्छ॑न्दस ऽआ॒वृत॑ स॒हप्र॑मा॒ ऽऋष॑यः स॒प्त दैव्याः॑ ।
पूर्वे॑षां॒ पन्था॑मनु॒दृश्य॒ धीरा॒ ऽअ॒न्वाले॑भिरे र॒थ्यो॒ न र॒श्मीन् ॥४९॥
ऋ० १० । १३० । ७ ॥

नाराशंसो ऋषिः । अश्वो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(रथ्यः) रथयोग्य पुरुष (न) जिस प्रकार (रश्मीन्) घोड़ों की रासों को थामे रहते हैं और वे (सहस्तोमाः) अपने दल के सदा साथ रहते हैं, (सहछन्दसः) एक सा एक चाल से चलते हैं, (सहप्रमाः) वे एक साथ प्रयाण करते हैं और (पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य रश्मीन् अनु आलेभिरे) अपने से पहले गये हुए अग्रगामी, योद्धा नेताओं के मार्ग को देखकर घोड़ों की रासों को उसके अनुकूल ही चलाते हैं उसी प्रकार (धीराः) ध्यान-योगशील, धीर, बुद्धिमान् पुरुष (दैव्याः) विजयशील देव, राजा या परमेश्वर के अनुयायी, भक्त, (सप्त) शरीर में सात प्राणों के समान, एवं सदा सर्पण शील, आगे बढ़ने वाले, (ऋषयः) तर्कशील, ज्ञानद्रष्टा विद्वान् ऋषिगण भी (पूर्वेषां पन्थाम्) अपने पूर्व के विद्वान् पुरुषों के मार्ग को (अनुदृश्य) भली प्रकार देख कर (सहस्तोमाः) एक साथ वेदस्तुतियों का प्रवचन करने वाले, (सहछन्दसः) एक साथ गुरु के अधीन वेदपाठ करने वाले, एक समान गति वाले, (सहप्रमाः) एक साथ समान रूप से यथार्थ ज्ञान करने हारे (दैव्याः) गुरु कर्म में कुशल (आहृताः) गुरुओं से समावर्तन कराकर, स्नातक होकर (रश्मीन् अनु आलेभिरे) गृहस्थ और राज्य कार्य की महारथियों के समान रासों को ग्रहण करते हैं ।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥ ५० ॥

दक्ष ऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(इदम्) यह (आयुष्यम्) आयु के बढ़ाने वाला, (वर्चस्यम्) बल ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन का हितकारी, (रायस्पोषम्) धन समृद्धि को बढ़ाने वाला, (औद्भिदम्) दुष्टों और शत्रुओं का उच्छेद करने में समर्थ, (वर्चस्वत्) उत्तम तेज और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त,

(हिरण्यम्) सब प्रजा का हित कर और सबको सुख देने वाला, सुवर्ण के समान तेजस्वी शस्त्र बल (माम्) मुझ राष्ट्रपति को (जैत्राय) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये (आविशतात्) प्राप्त हो।

न तद्रक्षाᳬंसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजᳬह्येतत्। यो बिभर्त्ति दाक्षायणᳬ हिरण्यᳬ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥ अथर्व० १ । ३५ । २ ।

दक्ष ऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(तत्) उस पूर्वोक्त तेज को (न रक्षांसि) न सत्कार्यों में विघ्न करने वाले, एवं दूसरों को पीड़ा देकर अपने को बचाने वाले दुष्ट, स्वार्थी पुरुष और (न पिशाचाः) न प्राणियों के मांस रुधिरादि खाने वाले, क्रूर, अत्याचारी लोग (तरन्ति) लांघते हैं। (हि) क्योंकि (एतत्) वह (प्रथमजम्) सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ सर्वश्रेष्ठ, (देवानाम् ओजः) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों का परम बल, पराक्रम एवं वीर्य है। (यः) जो (दाक्षायण) दक्ष अर्थात् व्यवहारकुशल, एवं बलवान् प्रज्ञावान् पुरुष से सञ्चालन करने योग्य, (हिरण्य) प्रजाओं के हितकर और सुखकारी बल, (बिभर्त्ति) धारण एवं पालन करता है (सः) वह (देवेषु) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों के बीच में (दीर्घम् आयुः कृणुते) दीर्घ जीवन उत्पन्न करता है। और (सः) वह ही (मनुष्येषु दीर्घम् आयुः कृणुते) मनुष्यों के भी जीवन को चिरस्थायी कर देता है। जो राजा अपने सेनाबल को पुष्ट करता है उसके बल का पार दुष्ट, राक्षस और पिशाच भी नहीं पाते। वह अपने वीर पुरुषों और प्रजाजनों के जीवनों की रक्षा करता है।

ब्रह्मचर्यपक्ष में—(देवानां हि एतत् प्रथमजं ओजः) विद्वान् पुरुषों का आयु के प्रथम भाग में उत्पन्न ब्रह्मचर्यरूप वीर्य है जिसको राक्षस और पिशाच नहीं पार कर सकते। दक्ष, अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषों से प्राप्त

होने योग्य उसको जो धारण करता है वह विद्वानों और मनुष्यों में अपने जीवन को बहुत दीर्घ बना लेता है।

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ ५२ ॥
अथर्व० १।३५।१ ॥

दक्ष ऋषिः। हिरण्यं तेजो देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(दाक्षायणाः) दक्ष अर्थात् वीर्यबल और प्रज्ञा के एक मात्र आश्रय, और दक्ष, अर्थात् सेना बल के 'अयन' अर्थात् मुख्य अधिकारों पर स्थित वीर पुरुष (यत्) जिस बल को (सुमनस्यमानाः) परस्पर उत्तम चित्त वाले होकर (शतानीकाय) सैकड़ों सैनिकों के स्वामी सेनापति के लिये (आबध्नन्) बांधते हैं, उसको नियम व्यवस्था से रखते और अपने अधीन सेनानायक पर नियुक्त करते हैं। (तत्) उसी हिरण्यबल को मैं (मे) अपने राष्ट्र के लिये (शतशारदाय) सौ वर्ष के दीर्घ जीवन तक के काल के लिये (आबध्नामि) बांधता हूं, व्यवस्थित करता हूं और (यथा) जिससे मैं (आयुष्मान्) दीर्घ आयु से युक्त होकर (जरदष्टिः) वृद्धावस्था का भोग करने वाला पूर्णायु (असम्) होऊं।

ब्रह्मचर्य के पक्ष में—दक्षों और विज्ञानों के निधान विद्वान् पुरुष जिस विज्ञान और मन पालन रूप 'हिरण्य' अर्थात् वीर्य को शुभ चित्तवान् आचार्य गण सैकड़ों सेवकों में मुख्य सेनापति के समान बलवान् एवं सौ वर्षों तक जीवन प्राप्त करने, एवं सैकड़ों विद्याओं को मुख से पढ़ने में समर्थ होने के लिये नियम से पालन करते हैं उसी को मैं भी सौ वर्ष तक पूर्णायु प्राप्त करने के लिये बांधूं, नियमपूर्वक पालन करूं।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे
देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ५३ ॥
ऋ० ६।५०।१४ ॥

भा०—राजापक्ष में—(बुध्न्य) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले (अहि) मेघ के समान सबके ऊपर शासक पद पर रह कर कभी न क्षीण होने वाला, सदा ऐश्वर्यों का वर्धक (एकपात्) एकमात्र मोक्ष-रूप पाद, चरण या स्वरूप से युक्त (अज) कभी उत्पन्न न होने वाले परमेश्वर के समान स्वयं (एकपात) एक अद्वितीय होकर राष्ट्र के पालन करने वाला और (अज) सब राष्ट्र का मुख्य संचालक, शत्रुओं का स्वयं उच्छेत्ता, (पृथिवी) पृथिवी के समान सर्वाश्रय और (समुद्र) समुद्र के समान गम्भीर, अनेक रत्नों का आश्रय, (न शृणोतु) हमारे कष्टों और प्रार्थनाओं का श्रवण करे। (विश्वे) समस्त (ऋतावृध) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (हुवाना) एक दूसरे से स्पर्धा पूर्वक बढ़ने हारे (देवा) देवगण और (कविशस्ता) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों से कहे गये, (स्तुता) स्तुति युक्त एवं उत्तम (मन्त्रा) मनन करने योग्य विचार एवं वेदमन्त्र सभी (न अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

परमेश्वर—सर्वाश्रय होने से 'बुध्न्य' है। कभी नाश न होने से 'अहि' है। उत्पन्न न होने से 'अज' है। एकमात्र ज्ञानमय मोक्षस्वरूप होने से 'एकपात्' है। सर्वाश्रय और सब जगत् का विस्तार करने वाला होने से 'पृथिवी' है वही समस्त लोकों का उद्भव होने से 'समुद्र' है। वह हमारी प्रार्थना श्रवण करे।

इमा गिर॑ऽआदि॒त्येभ्यो॑ घृ॒तस्नू॑ स॒नाद्राज॑भ्यो जु॒ह्वा॑ जुहोमि। शृ॒णोतु॑ मि॒त्रोऽअ॑र्य॒मा भगो॑ नस्तुविजा॒तो वरु॑णो॒ दक्षो॒ऽअंशः॑ ४४

ऋ० २।२७।१॥

कूर्मो गात्सैमद ऋषि । आदित्या राजानो देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष (राजभ्य) प्रजाओं से अधिक तेज वाले राजा रूप (आदित्येभ्य) सूर्य के समान तेजस्वी और अदिति अर्थात् पृथिवी के के रक्षण, पालन, विभाजन आदि में कुशल शासक पुरुषों को (इमा गिर)

इन वेदवाणियों का (सनात्) चिरकाल से, सदा नित्य ही (उक्था) गाना द्वारा (जुहोमि) उपदेश करूं। और (मित्रः) सबका स्नेही, सबको मरण से बचाने वाला, मित्र, (अर्यमा) शत्रुओं को नियम में बांधने वाला, न्यायकारी, (भगः) ऐश्वर्यवान्, सबके सेवा करने योग्य, (तुविजातः वरुणः) बहुतसे प्रजाजनों या सैनिक गणों में प्रसिद्ध और बहुत से सेवकों से सम्पन्न, सामर्थ्यवान् वरुण, दुष्टों और पापों के वारण में समर्थ पुरुष (दक्षः) दक्ष, चतुर, बलवान् (अंशः), सबके योग्य भागों का विभाजन करने वाला इस प्रकार अधिकारी वर्ग में से प्रत्येक (भनोत) मेरी ज्ञान-वाणियों का श्रवण करें।

अथवा—(राजन्य आदित्येभ्य इमा सनात् गिरः उक्था आजुहोमि) सदैव तेजस्वी आचार्यों से मैं इन नित्य वेदवाणियों को अपने मनन, साधन, और धारण सामर्थ्य से ग्रहण करूं, पढ़ूं। उनको मित्र आदि जन श्रवण करें।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

सप्त ऋषि। शरीर-सप्तऋषयो देवताः। भुरिक् पङ्क्तिः। निषादः।

भा०—जिस प्रकार (सप्त) सात (ऋषयः) विषयों को दिखाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि (शरीरे) इस शरीर में (प्रति-हिताः) प्रति विषय ज्ञान के लिये स्थापित किये गये हैं और वे (सप्त) सातों (अप्रमादम्) बिना प्रमाद के इस (सदम्) अपने आश्रयस्थान शरीर का (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं। और जब वे (सप्त) सातों (आपः) प्राण व्यापनशील ज्ञान (स्वपतः) शयन करने वाले पुरुष के (लोकम्) द्रष्टा आत्मा को (ईयुः) प्राप्त होते हैं, उसी के आश्रय लीन होते हैं उस समय (अस्वप्नजौ) आत्मा में स्वप्न अर्थात् शयन न होने वाले, निद्रा रहित, पं

(सत्रसदौ) सदा साथ रहने वाले (देवौ) देव, दिव्य गुणयुक्त प्राण और अपान गति करते हैं। उसी प्रकार (शरीरे) इस राष्ट्ररूप शरीर में (सप्त ऋषयः प्रतिहिता) सात द्रष्टा विद्वान् पुरुष प्रत्येक भिन्न २ पदों पर स्थापित किये जाय, वे सातों (अप्रमादम्) विना प्रमाद के (सदम्) सदा सभाभवन की रक्षा करें। (सप्त आपः) वे सातों आप्त पुरुष शयन करते हुए, असावधान दशा में प्रजाजन के रहते हुए भी (लोकम् ईयुः) समस्त पदार्थों के दर्शन करने वाले मुख्य पुरुष को प्राप्त रहते हैं और उस समय भी (सत्रसदौ) सज्जनों के कारण कार्य में अधिष्ठित कभी भी सोने या प्रमाद न करने वाले (देवौ) दो विद्वान् पुरुष नियुक्त हों।

सप्त ऋषयः—त्वक् चक्षुः श्रवण रसन घ्राण मनो बुद्धि लक्षणा इति महीधरः। षडिन्द्रियाणि मनः सप्तमानि इत्युवटः।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ ५६॥

ऋ० १। ४०। १॥

[५६—५७] काण्वो घौर ऋषिः। [५६—५८] ब्रह्मणस्पतिर्देवता। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ऐश्वर्य और बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन्! एवं विद्वन्! तू (उत् तिष्ठ) उठ, उदय को प्राप्त हो। (देवयन्तः) तुझ देव अर्थात् उत्तम राजा बनाने की इच्छा करते हुए (त्वा ईमहे) तुझसे प्रार्थना करते हैं। (मरुतः) मनुष्य, प्रजागण (सुदानवः) उत्तम दानशील होकर (उप प्र यन्तु) तेरे समीप आवें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सचा) समस्त समवाय या संघशक्ति से (प्राशूः भव) खूब उत्तम रीति से शत्रु पर शीघ्र यान करने हारा और राष्ट्र का उत्तम भोक्ता हो।

विद्वान् के पक्ष में—हे ब्रह्मणस्पते! विद्वन्! तू उठ हम देव—विद्वानों और उत्तम गुणों की कामना करते हुए तेरे पास विद्यार्थी होकर आये हैं।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ऋ० १४, आदित्या देवा वा ऋषयः । पितरो देवताः ॥

॥ओ३म्॥ अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः अस्य लोकः सुतावतः । द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥ १ ॥

[illegible] गायत्री । षड्जः ।

भा०—(असुम्नाः) दूसरों को सुख न देने वाले, दुःखदाता, पराश्रय, (देवपीयवः) विद्वानों, उत्तम पुरुषों और उत्तम गुणों के नाश करने वाले (पणयः) दूसरों के द्रव्य से व्यवहार करने वाले, धूर्त पुरुष (इतः) इस राष्ट्र से (अप यन्तु) दूर चले जांय । यह (लोकः) लोक, समस्त प्रजाजन (सुतावतः) अभिषेक को प्राप्त (अस्य) इस राजा के अधीन है । वह ही (यमः) सब राष्ट्र का नियन्ता होकर (द्युभिः) प्रकाश से युक्त, (अहोभिः अक्तुभिः) दिन और रातों से (व्यक्तं) प्रकाशित (अवसानम्) स्थान (अस्मै) इस बसने वाले लोक समूह को (ददातु) प्रदान करे ।

परमेश्वर के पक्ष में—दुष्ट पुरुष दूर हों । उत्तम कर्म करने वाले का यह लोक है । सर्व नियन्ता परमेश्वर इस जीव को दिन रात सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि से प्रकाशित लोक प्रदान करता है ।

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥ २ ॥

[illegible] देवता । [illegible] । [illegible] ।

१—[illegible]

भा०—राजा के पक्ष मे—(सविता) सबका प्रेरक राजा हे पुरुष ! (ते शरीरेभ्य) तेरे सम्बन्धि जनों के शरीरों के भरण पोषण के लिये (पृथिव्याम्) इस पृथिवी मे (लोकम्) पर्याप्त उतना स्थान जितने की उत्तम रीति से वह देख भाल कर सके (इच्छतु) देवे । (तस्मै) इस राजा के लिये (उस्रिया.) बैल (युज्यन्ताम्) जोडे जाय ।

परमेश्वर के पक्ष मे–परमेश्वर जीव के शरीरों के भोग के लिये पृथिवी मे स्थान दे । उस जीव के शरीर में, रथ मे बैलों के समान ज्ञान ग्राहक प्राण प्रदान करता है । अथवा उसी को देह से देहान्तर में और लोक से लोकान्तर में ले जाने के लिये किरणों को युक्त करता है । किरणों द्वारा जीव लोक-लोकान्तर मे गमन करते है ।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्य्यस्य वर्चसा ।
विमुच्यन्तामुस्रियाः ॥ ३ ॥

सविता देवता । उष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—कृषिपक्ष मे—हल बाहे देने पर क्षेत्र को (वायु.) वायु (अग्ने) आग की (भ्राजसा) ज्वाला से और (सविता) सूर्य (सूर्यस्य वर्चसा) अपने ही प्रकाश से (पुनातु) क्षेत्र को पवित्र करे । इसलिये (उस्रिया) बैल (विमुच्यन्ताम्) छोड दिये जाय ।

जीवपक्ष मे—जब जीव शरीर त्याग कर जाता है तो उसे (वायु) वायु अर्थात् ज्ञानी पुरुष (अग्ने. भ्राजसा) अग्नि या परमेश्वर के दीप्ति से और (सविता सूर्यस्य वर्चसा) सर्वोत्पादक सूर्य प्रभु अपने प्रकाश से पवित्र करे । और देहान्तर प्राप्ति के समय वे पूर्वोक्त (उस्रिया) सहयोगी कारण भी (विमुच्यन्ता) उससे छूट जाय ।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ४ ॥

ऋ० । १७ । ५ ।

वायुः सविता च देवते । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! क्योंकि (वः) आप लोगों का (निषदनम्) नियम से रहना (अश्वत्थे) अश्वारूढ़ सावधान, क्षत्रिय राजा के अधीन है और (वः वसतिः) आप लोगों का निवासस्थान भी (पर्णे) पालन करने हारा राजा के अधीन (कृता) की गई है, अतः (यत्) जब (पूरुषम्) अपने गृह या अपने राजा को (सनवथ) उसका भाग दे चुको तो आप लोग (गोभाजः) पृथिवी की उपज और वेद वाणी का सेवन करने वाले । (इत्) ही होकर (किल) निश्चय से (असथ) रहो । व्याख्या देखो अ० ११।७९॥

परमेश्वर के पक्ष में—हे जीवो ! तुम लोगों की स्थिति (अश्वत्थे) कल तक भी स्थिर न रहने वाले, अनित्य और (पर्णे) पत्ते के समान चञ्चल संसार में की है। इसलिये (यत्) अब तुम (पुरुषम् सनवथ) परमेश्वर की उपासना करो तो (गोभाजः इत्किल असथ) वेदवाणी, इन्द्रिय किरण आदि का सेवन करने वाले ज्ञानवान्, भोगवान् होवो ।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु ।
तस्मै पृथिवि शं भव ॥ ५ ॥

दृषेरः ।

भा०—हे जीव ! (सविता) सबका प्रेरक राजा (ते शरीराणि) तेरे शरीरों को, तेरे सम्बन्धि जनों को (मातुः) माता के समान पालक पोषक पृथिवी के (उपस्थे) ऊपर (आवपतु) स्थापित करे । हे (पृथिवि) पृथिवि ! (तस्मै) उस प्रजाजन को तू (शं भव) कल्याणकारिणी हो ।

जीव के प्रजनन पक्ष में—उत्पादक पिता हे जीव तेरे शरीरों को (मातुः) जननी के (उपस्थे) प्रजननाङ्ग में (आवपतु) बीज रूप से वपन करे । हे (पृथिवि) पृथिवी के समान आश्रय देने वाली माता उस गर्भगत जीव को (शं भव) शान्तिदायिनी हो ।

परमेश्वर तुझ जीव के शरीरा को पृथ्वी पर स्थापित करे, पृथ्वा जीव को सुखदायिनी हो।

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

प्रजापतिर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे (असौ) पुरुष, प्रजाजन ! (त्वा) तुझको मैं (प्रजापतौ) प्रजा के पालक राजा के अधीन (उप उदके लोके) पानी के समीप स्थित प्रदेश में (निदधामि) नियत रूप से स्थापित करता हूं। वह प्रजापालक राजा ही (नः) हमारे (अघम्) पापाचरण, परस्पर घात प्रतिघात आदि को (नः) हममें से (अप शोशुचत्) मल को अग्नि से जला कर नष्ट कर देने के समान दूर कर दे।

हे जीव ! जलादि जीवनोपयोगी लोक में मैं तुझे स्थापित करता हूं उस परमेश्वर के अधीन तू रह वही हमारे पापों को दग्ध कर दूर करे।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते ऽअन्य ऽइतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा रीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥
ऋ० १० । १८ । १ ॥

यमपुत्र सकसुक ऋषि। मृत्युर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (मृत्यो) दुष्टों के मारने वाले राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) देवों-विद्वानों के गमन करने योग्य मार्ग से (इतरः) दूसरा (अन्यः) कोई और भिन्न मार्ग है तू उस (परं पन्थाम् अनु) दूसरे मार्ग को लक्ष्य करके (परा इहि) दूर ही से चला जा। (चक्षुष्मते) आखों वाले, बुद्धिमान् और (शृण्वते) कानों वाले, प्रजाहितैषी (ते) तुझे (ब्रवीमि) उपदेश करता हू कि तू (नः) हमारी (प्रजां) प्रजा

६—मासा ॥ पर० इति काण्व० ।

को (उत) और (वीरान्) वीर पुरुषों को (मा रीरिषः) मत मार, उनका नाश मत कर, विपक्षी राजा शिष्टजनों के सदाचार से अतिरिक्त सदाचार के मार्ग पर दृष्टि रक्खे। वह भोग से प्रजा का व्यवहार देखे, दोनों से उभय पक्ष का सुने। स्वयं प्रजा और वीर पुरुषों को न सतावे।

मृत्यु के पक्ष में—हे मृत्यो! तू (देवयानात्) अर्थात् विद्या के बलपर मोक्ष मार्ग के अतिरिक्त मार्ग से जा अर्थात् ज्ञान मार्गियों के लिये मृत्यु नहीं है जन्म मरण का चक्र विद्याहीन लोगों को और अविद्यामार्गियों को है। चक्षुष्मान् और कर्णवान् पुरुष तुझे ज्ञान का उपदेश करता है जिससे बाल प्रजा और वीर्यवान् युवा पुरुषों को मृत्यु न सतावे।

शं वातः शꣳ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥ ८ ॥

लिङ्गोक्ता देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः।

भा०—हे पुरुष! हे वीर! हे प्रजाजन! (वातः) वायु (ते शम्) तुझे सुखकारी और कल्याणकारी हो, (घृणिः ते शम्) सूर्य भी तुझे सुख कर हो (इष्टकाः) ईंटें, ईंटों से बने गृह आदि, तथा यज्ञ कर्म, अथवा तेरे अन्य इष्ट अभिलषित पदार्थ और प्रिय सम्बन्धी जन (ते शं भवन्तु) तुझे शान्तिदायक हों। (पार्थिवासः अग्नयः) इस पृथिवी पर के प्रसिद्ध अग्नि, विद्युत् आदि अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुषों के तेज बल ये सभी (ते शं भवन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें, वे (त्वा) तुझे (मा अभि शूशुचन्) न सतावें, दुःख न दें। तेरे शोक और खेद का कारण न हों।

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ९ ॥

लिङ्गोक्ता देवताः। पङ्क्तिः। पञ्चमः।

भा०—हे वीर! प्रजाजन! राजन्! (दिशः) दिशाएं दिशाओं के

समस्त प्रजाजन (ते) तेरे लिये हितकारी (कल्पन्ताम्) हों। (आपः तुभ्यम् शिवतमाः) आप्त जन और जल भी तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हों। (सिन्धवः तुभ्यं शिवतमा भवन्तु) बहने वाले नद नदियां और राष्ट्र को सूत्र में बांधने वाले बलवान् पुरुष तेरे लिये कल्याणकारी हों। (अन्तरिक्षं तुभ्यं शिवम्) अन्तरिक्ष, आकाश तथा अन्तरिक्ष के समान मध्यस्थ जन भी तेरे लिये सुखकर हों। (सर्वा दिशः ते कल्पन्ताम्) समस्त दिशाएं और उपदिशाएं तथा उत्तम उपदेश देने हारे गुरुजन तुझे सुखकर हों।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये ऽअसञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥
ऋ० १० । ५३ । ८ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! जिस प्रकार (अश्मन्वती) पत्थरों से भरी हुई नदी (रीयते) जारही हो तो (सं रभध्वम्) उसको पार करने के लिये तैयारी करते, (उत् तिष्ठत) उठ खड़े होते, और (प्रतरत) उसको अच्छी प्रकार पार करते। (अत्र) उसमें ही (ये अशिवाः असन्) जो असुखकर, दुःखदायी मल हों उनको हम (जहीमः) त्याग देते और (वयम्) हम (वाजान्) अन्नादि प्राह्य पदार्थों को नदी से ही (उत् तरेम) उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार (अश्मन्वती रीयते) शस्त्रों से युक्त यह सेना चल रही है। (सं रभध्वम्) शत्रु विजय का उद्योग करो। (उत् तिष्ठत) उठो, (प्र तरत) आगे बढ़ो। (अत्र) इस संग्राम में ये (अशिवाः असन्) हमारे अकल्याणकर कष्टदायी शत्रु हैं उनको (जहीमः) त्याग दें, नाश करें और (वयम्) हम (वाजान् अभि) संग्रामों और ऐश्वर्यों को लक्ष्य करके (उत् तरेम) उत्तम रीति से, शत्रु से ऊंचे रह कर चलें और ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥ ११ ॥

[illegible] । अपामार्गो देवता । निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—हे (अपामार्ग) दुष्टों को दूर करके राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने हारे राजन् ! (त्वम्) तू (अस्मत्) हमसे (अघम् अप सुव) पाप, परस्पर के घात प्रतिघात को दूर कर । (किल्बिषम् अप सुव) स्वार्थ, विचारशून्यता से पर अपकार करने के पाप कृत्य को भी दूर कर । (कृत्याम् अप सुव) शत्रु से प्रयुक्त गुप्त हत्या के घातक प्रयोग को दूर कर । (रपः अप) बलात्कार से स्त्री आदि पर किये व्यभिचार आदि पापों को भी दूर कर । (दुःष्वप्न्यम् अप सुव) दुःख सहित निद्रा होने के कारण को, अथवा दुःखदायी स्वप्न और मृत्यु को भी दूर कर ।

अघ, किल्बिष, कृत्या, रप, दुःष्वप्न्य आदि यद्यपि सभी सामान्यतः पापवाचक और विशेषतः भिन्न २ प्रकार के अपराधों को दिखाते हैं । कृत्या और अपामार्ग के प्रकरणों के स्पष्ट करने अथर्ववेद भाष्य में विस्तार से किया गया है । 'दुःष्वप्न्य' का प्रकरण भी अथर्ववेद में ही विस्तार से कहा गया है । अपामार्ग ओषधि, रक्त दोष आदि रोगों को दूर करता है । उसी की सदृशता से प्रजा के भीतर से पापों और हत्या आदि दुष्कर्मों को दूर करनेवाला अधिकारी विभाग भी 'अपामार्ग' कहाता है ।

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १२ ॥

[illegible] देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥ अ० २० । १९ ॥

(नः) हमारे लिये (आपः ओषधयः) जल और ओषधियें और और आप्त जन (सुमित्रियाः) शुभ स्नेह वाले मित्र जनों के समान हित-कारक, सुखदायी और मित्र हों । जो हम से द्वेष करें और हम जिससे द्वेष करें उसके लिये वे दुःखदायी हों ।

श्रनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये ।
स न ऽइन्द्र ऽइव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥ १३ ॥
अनड्वान् देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अनड्वाहम्) शकट को खींचने के लिये जिस प्रकार लोग बड़े बैल का प्राप्त करते है और 'अन' अर्थात् यज्ञ को धारण करने वाले अग्नि का जिस प्रकार याज्ञिक लोग ग्रहण करते हैं उसी प्रकार (अनड्वाहम्) गाड़ी के समान राष्ट्र के शकट को उठाने में समर्थ (सौरभेयम्) सुरभि अर्थात् समस्त सुखदायी कामधेनु, उत्तम भूमि के परम हितकारी, मातृभूमि के सच्चे पुत्र राजा को हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरभामहे) प्राप्त कर, स्थापित करें। (स) वह (इन्द्र इव) सूर्य और वायु के समान तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यवान् सेनापति और राजा होकर अथवा (देवेभ्य इन्द्र इव) इन्द्रियों के लिये आत्मा के समान (वन्हि) समस्त राज्याङ्गों और देवों को वहन करने में समर्थ और उनका नेता होकर (सतरण भव) सबको भली प्रकार युद्ध आदि के और राज्यकार्यों के पार लगाने वाला नाव के समान आश्रय और कर्णधार के समान नायक हो।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । २१ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥
सङ्कुसुक ऋषिः । मनुष्या मृत्युर्वा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(जीवेभ्य) जीवों की रक्षा के लिये मैं राजा (इम) इस (परिधिम्) नगर के चारों ओर परकोट के समान रक्षा का साधन (दधामि) स्थापित करता हूं। जिससे (अपर) दूसरा शत्रु पुरुष (एषाम्) इन

मह स्वस्तये इति काण्व० ।

मेरे प्रजाजनों के (ऊर्जम्) बल (अर्थम्) धन अ (आ सुव) प्राप्त करा । व प्रजाजन (पुरूणा) बहुत से पूर्ण प्राप्त करने वाले होकर (ना ... आयन्तु) धीरे २ पर्व आवें । (पवमान) वायु जो जिस प्रकार पर्व आदि अल्प पदार्थ से परे रखता जाता है उसी प्रकार (मृत्युम्) मृत्यु को और अन्य मरन के कारण रूप शत्रु और हिंसक ... को भी (पवमान) पालन पावन सामर्थ्यों से युक्त राजा द्वारा तथा पर्व, अध्यात्मों और ज्ञाना से युक्त पद के ज्ञानकाण्ड द्वारा और पर्व अर्थात् बाण आदि से युक्त सेना द्वारा (अन्त दधातु) दूर कर ।

अग्न ऽआयूंषि पवस ऽआ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या १ । अ० १९ । ३८ ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१७॥

... ... । ... । ... । ... ।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (हविषा) अन्न के समान ग्रहण योग्य पदार्थ राज-कर से (वृधान) बढ़ता हुआ (आयुष्मान्) दीर्घायु होकर (घृतप्रतीक) तेज को सब के प्रति दर्शन द्वारा अथवा जल के समान शान्तिदायक को दिखाने दिखाने वाला, अथवा तेजस्वी मुख वाला होकर और (घृतयोनि) तेजस्वी जल में रहने वाले विद्युत् या समुद्र वाला और अग्नि या पुत्र के जल अग्नि के समान तेज, पराक्रम को अपना आश्रय बना कर (एधि) बढ़ता रह । तू (गव्यं चारु मधु घृतं पीत्वा) गौ के उत्तम मधुर घृत का पान करके जिस प्रकार अग्नि ... का पालन करता है उसी प्रकार (गव्य) भी ... के हितकारी, (चारु) उत्तम, एक देश से दूसरे ... , (मधु) मधुर ... , ...

(घृत) तेजस्वी सैन्यदल रूप तेज को धारण करके, (पिता पुत्रम् इव) पिता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करता है उसी प्रकार (इमान्) इन राष्ट्र के प्रजाजनों की (स्वाहा) उत्तम प्रकार से ज्ञान पूर्वक (अभि रक्षतात्) सब प्रकार से रक्षा कर ।

परीमे गामनेषत पर्य्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२ऽआ दधर्षति ॥ १८ ॥
ऋ० १० । १५५ । ५ ॥

भारद्वाज शिराम्बिठ ऋषि । इन्द्रो देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—(इमे) ये राजा के जन और प्रजावर्ग भी (गाम्) पृथ्वी को और वाणी को (परि अनेषत) प्राप्त करते हैं अथवा (गाम्) शकट के वहन करने वाले बैल के समान कार्य भार को उठाने में समर्थ पुरुष पुंगव को (परि अनेषत) सब प्रकार से नेता रूप से स्वीकार करें । और (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी और अग्रणी नायक को ही (परि अहृषत) सर्वत्र ले जावें, अपने ऊपर धारण करते रहें । और (देवेषु) विद्वान् ब्राह्मणों के अधीन रह कर (श्रव अक्रत) वेदोपदेश का श्रवण करें । तब (इमान्) इन विद्वान्, निष्ठ पुरुषों को (कः) कौन (आ दधर्षति) पराजित कर सकता है ।

इसी प्रकार सब लोग ब्रह्मचर्य से गौ अर्थात् वेद वाणी का अभ्यास करें फिर अग्नि आधान पूर्वक गृहस्थ करें, फिर श्रवण योग्य ब्रह्म विद्या का विद्वानों से श्रवण करें । फिर मृत्यु भी उनको नहीं पछाड़ सकता ।

क्रव्यादम॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॑म॒राज्यं॑ गच्छतु रिप्रवा॒हः ।
इ॒हैवायमित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥ १९ ॥
अथर्व० १२ । २ ॥

दमन ऋषि । क्रव्यादाग्निजातवेदाश्च देवते । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—मैं (क्रव्यादम्) कच्चा मांस खाने वाले, (अग्निम्) आग

के समान संतापकारी दुष्ट जन को (दूरं प्र हिनोमि) दूर भगाऊं। (क्रव्याद्) पापों के फैलाने वाला या मारनेवाला पुरुष (यमराज्ञः) नियन्ता राजा के राज्य को (गच्छतु) प्राप्त हो। अर्थात् वह राजा के दमनकारी बल के अधीन रहे। और (इतरः) दूसरा पुण्यकर्मा (जातवेदाः) जो अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् वेदज्ञ पुरुष है (अयम्) यह (इह) यहां, इस राष्ट्र में ही (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर (हव्यं) ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ और अधिकार को भी (वहतु) प्राप्त करे।

वह॑ व॒पां जा॑तवेदः पि॒तृभ्यो॒ यत्रै॑नान्वेत्थ॒ निहि॑तान् परा॒के। मेद॑सः कु॒ल्या उप॒ तान्त्स्र॑वन्तु स॒त्या ए॑षामा॒शिषः॒ सं न॑मन्ता॒ᳪ स्वाहा॑॥२०

जातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवान् पुरुष ! तू (पितृभ्यः) पालन करने वाले पुरुषों के हित के लिये (वपां) बीज वपन करने योग्य भूमि को (वह) प्रदान कर, अथवा उनके हित के लिये इस भूमि को तू स्वयं धारण कर। और (यत्र) जहां (पराके) दूर देश में भी तू (एना) इनको (निहितान्) नियुक्त हुआ या स्थित हुआ जाने, वहां भी उनकी रक्षा के लिये (वपां वह) शत्रुओं को खण्डन करने वाली सेना को पहुंचा। इसी प्रकार (मेदसः) अन्न की (कुल्याः) धाराएं, नहरें (तान् उप स्रवन्तु) उन तक पहुंचें। (एषाम्) उनकी (आशिषः) सब कामनाएं (स्वाहा) उत्तम क्रिया द्वारा (सत्याः) सत्य एवं सज्जनों के हितकारी होकर (सं नमन्ताम्) फलें फूलें, पूरी हों।

स्यो॒ना पृ॑थिवि नो भवानृक्ष॒रा नि॒वेश॑नी। यच्छा॑ नः॒ शर्म॑ स॒प्रथाः॑।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ २१ ॥ ऋ० १ । २२ । १५ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । पथ्या अनुष्टुप् । षड्जः

२०—[illegible] ।

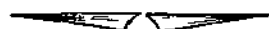
भा०—हे (पृथिवि) पृथिवि ! तू (न) हमारे लिये (स्योना) सुखकारिणी, (अनृक्षरा) कांटों और बाधक शत्रु और दुष्ट पुरुषों से रहित और (निवेशनी) बसने योग्य (भव) हो। तू (सप्रथा) सब प्रकार से विस्तृत होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) शरण और सुख प्रदान कर। (नः) हमारे (अघम्) पाप को भी (अप शोशुचत्) दग्ध करके दूर कर।

अ॒स्मात्त्वमधि॑ जा॒तोऽसि॒ त्वद॒यं जा॑यतां॒ पुनः॑।
अ॒सौ स्व॒र्गाय॑ लो॒काय॒ स्वाहा॑ ॥ २२ ॥
आग्निर्देवता। स्वराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे अग्ने ! अग्रणी नायक ! विद्वन् ! (त्वम्) तू (अस्मात्) इस लोक, प्रजाजन से ही (अधिजात असि) ऊपर उठकर उसपर अध्यक्ष रूप से अधिकारवान् बनाया गया है इसलिये (अय) यह लोक भी (त्वत्) तेरे से ही (पुनः) पुनः (जायताम्) ऐश्वर्यवान् हो। (असौ) वह तू (स्वर्गाय लोकाय) सुखप्रद जनसमूह के हित के लिये (सु-आहा) उत्तम कर्म और सत्य न्याय करे।

॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥



अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

मं० १-२४] दध्यङ् आथर्वण ऋषिः । (अ० १९) शान्तिकरणम् ॥

॥ओ३म्॥ ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥

भा०—(ऋचं वाचं प्रपद्ये) मैं मननशील अन्तःकरण के तुल्य यजुर्वेद को प्राप्त होऊं । (साम प्राणं प्रपद्ये) प्राण अर्थात् योगाभ्यासादि उपासना के निदर्शक सामवेद को प्राण के तुल्य जानूं और प्राप्त करूं । (चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये) 'चक्षुः' वेद अर्थात् अथर्ववेद को 'श्रोत्र', कान के समान जान कर उसको धारण करूं । अथवा—वाणी से ऋग्वेद को, यजुर्वेद को मन से, प्राण बल से सामगान के वेद को और चक्षु और श्रोत्र को मैं प्राप्त करूं । (वाग् ओजः) वाणी, मानस बल और (सह) उनके साथ (ओजः) शरीर-बल और (प्राणापानौ) प्राण और अपने उच्छ्वास और निःश्वास दोनों भी (मयि) मुझ में विद्यमान रहें ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

बृहस्पतिर्देवता । निचृद्बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(मे) मेरे (चक्षुषः) आंख, (हृदयस्य) हृदय और (मनसः) मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र या त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र (अति तृण्णम्) अति अधिक पीड़ित हो (तत्) उसको

मन्त्र १. [illegible] ।

१—[illegible]० १९ [illegible] ।

(बृहस्पति) महान् राष्ट्र का स्वामी और बड़े जगत् का पालक परमेश्वर और वेदवित् विद्वान् (मे) मेरे उसको (दधातु) पुष्ट करे । और (य) जो (भुवनस्य पति) समस्त भुवनों, प्रदेशों और लोकों का स्वामी, परमेश्वर है वह (न शभवतु) हमें सुखकारी शान्तिदायक हो ।

भूर्भुवः स्वः । तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यं धीमहि ।
धियो यो नं प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
कयां नश्चित्र ऽआ भुंवदूती सदावृधः सखां ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥
कस्त्वां सत्यो मदांनां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसुं ॥ ५ ॥
अभी षु णः सखींनामविता जंरितॄणाम् ।
शतम्भंवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

भा०—(३—६) इन चारों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० ३ । ३५, २७, ३९—४१ ॥

कया त्वं नं ऽऊत्याभि प्र मंन्दसे वृषन् ।
कया स्तोतृभ्य ऽआ भंर ॥ ७ ॥ ऋ० ८ । ८२ । १९ ॥

इन्द्रो देवता । वर्धमाना गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वृषन्) सुखों और ऐश्वर्यों के वर्षक परमेश्वर एव राजन् ! (त्व) तू (कया ऊत्या) किस प्रकार की रक्षाविधि से (अभि प्र मन्दसे) प्रजाओं को प्रसन्न करता है । और (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील विद्वानों के (कया) किस पालन क्रिया से (आ भर) सब प्रकार से समृद्धि प्राप्त करता है ? उससे हमें भी समृद्ध कर ।

इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
शन्नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुंष्पदे ॥ ८ ॥

५—'दृळ्हा' इति काण्व० ।

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्य राजति) समस्त जगत् के साथ प्रकाशमान है इसी प्रकार राजा समस्त राष्ट्र में (राजति) तेजस्वी होकर विराजे। वह (नः) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे शम् अस्तु) दोपाये मनुष्य भृत्य आदि और चौपाये पशुओं के लिये भी सुखदायी और कल्याणकारी हो।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

ऋ० १।९०।९ ॥

भा०—(मित्रः नः शम्) प्राण के समान सबका स्नेही, ईश्वर और राजा हमें सुखकारी हो। (वरुणः नः शं) जल के समान शान्तिप्रद वह हमें सुखकारी हो। (अर्यमा नः शं भवतु) न्यायाधीश और न्यायकारी परमेश्वर हमें शान्तिदायक सुखदायी हो। (इन्द्रः) राष्ट्र का आत्मा, परमैश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) बड़े भारी राष्ट्र का पालक राजा और बृहत् ब्रह्माण्ड का पालक परमेश्वर (नः शं) हमें सुखदायी हो। (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत प्रकारों से बड़ा बल वाला परमेश्वर और महान् विक्रमशील राजा (विष्णुः) व्यापक, व्यापक सामर्थ्यवान् व्यापक ईश्वर और राजा (नः शम्) हमें सुखदायक हो।

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥ १० ॥

अथर्व० ७।६९।१ ॥

वातादयो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वातः) वायु (नः) हमें (शं पवताम्) सुखकारी होकर बहे। वह शान्तिदायक भी हो। (सूर्यः शं तपतु) सूर्य हमें सुख शान्तिदायक होकर तपे। गर्मी से न सतावे। (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ

हमारे हुए कार्यों को सिद्ध करने के लिये (शं नः) हमें शान्तिदायक हों । और वे (पीतये भवन्तु) पान और पालन करने के लिये भी हों । वे ही (नः) हमें (शंयोः अभिस्रवन्तु) शान्ति सुख के वर्षण करने और बहाने वाले हों ।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३५ । २१ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

भा०—(१४-१६) तीनों मन्त्रों की व्याख्या [अ० ११ । ५०-५२]

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥ अथर्व ४ । ११ । १६ ॥

भा०—हे (दृते) समस्त दुःखों और अज्ञानों के विदारक ! महावीर राजन् ! परमेश्वर ! (मा दृंह) मुझे दृढ कर । (मा) मुझको (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी गण (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं भी (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षे) देखूं । हम सब (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षामहे) एक दूसरे को भली प्रकार देखा करें ।

दृते दृꣳह मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (दृते) अज्ञान और पापनाशक ! राजन् ! परमेश्वर ! (मा दृंह) मुझ प्रजाजन और उपासक को दृढ़ कर । मैं (ते) तेरे (संदृशि) सम्यक् ज्ञानरूप दर्शन और अध्यक्षता में (जीव्यासम्) जीवन धारण करूं, दीर्घ जीवन जीऊं । (ते सदृशि) तेरे समान निष्पक्ष-पात उत्तम शासन और निरीक्षण में (ज्योक् जीव्यासम्) दीर्घ जीवन व्यतीत करूं ।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

भा०—व्याख्या देखो १७ । ११ ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥
भगवान् ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—(विद्युते ते नमः) विद्युत् के समान तेजस्वी तुझे नमस्कार है। (स्तनयित्नवे ते नमः) मेघ के समान गर्जन करने वाले तुझे नमस्कार है। हे (भगवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् एवं परमेश्वर! (यतः स्वः समीहसे) क्योंकि तू हमें समस्त प्राणियों को सुख देने के लिये समस्त व्यापार कर रहा है अतः (ते नमः अस्तु) तुझे सदा नमस्कार हो।

यतो यतः समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२ ॥
भगवान् देवता। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे भगवन्! राजन्! ईश्वर! तू (यतः यतः समीहसे) जिस २ कारण से, जिस २ स्थान और कर्म से (सम् ईहसे) चेष्टा करे। (ततः नः अभयं कुरु) वहां २ से तू हमें भय रहित कर। (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) हमारी प्रजाओं के लिये शान्ति प्रदान कर (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिये (अभयम् कुरु) अभय प्रदान कर।

सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥
भा०—व्याख्या देखो अ० ६। २२ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २४ ॥

ऋ० ७। ६६। १६ ॥

सूर्यो देवता। ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(तत्) वह (देवहितम्) देवों विद्वानों का हितकारक, विद्वानों द्वारा स्थापित, (पुरस्तात्) सर्वत्र समक्ष (शुक्रम्) दीप्ति करने वाले शुद्ध, पवित्र, तेजस्वी, (चक्षुः) आंख के समान सबका निरीक्षक,

सर्वाध्यक्ष होकर (उत् चरत) सब उत्तम पद पर विराजना और कार्य करता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी (पुरस्तात्) पूर्व काल से ही शुद्ध सर्वज्ञ देवों विद्वानों का हितकारी (उत् चरत्) सब से उच्च रहकर सब का जानता है। इसी प्रकार सर्वद्रष्टा, सबको आंख के समान पदार्थ निदर्शक होकर शुद्ध तेज प्रदान करता है। उसी के प्रताप से हम (शरद शतम्) सौ बरसों तक (पश्येम) देखें। (शरद शतं जीवेम) सौ बरसों तक जीवें। (शरद शत शृणुयाम) सौ बरसों तक श्रवण करें। (शरद शत प्र ब्रवाम) सौ बरसों तक उत्तम रीति से बोलें। (शरद शतम् अदीना स्याम) सो बरसों तक दीनता रहित होकर रहें। (शरद शतात् भूय च) और सौ बरसों से भी अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, सुने, बोलें और अदीन होकर रहें।

॥ इति षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥



अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नारिरसि ॥ १ ॥

आथर्व० । स० । दे० । निचृद्गा० । षड्जः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५ । १४ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥२॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५ । १४ ॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

दध्याथर्वण ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ । बृहती ॥

भा०—(देवी) दिव्य गुणों से युक्त (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी, सूर्य और भूमि के समान राजा प्रजावर्गो ! (वाम्) तुम दोनों के (मखस्य) परस्पर त्रुटि रहित राज्य पालन रूप यज्ञ के (शिरः) शिर के समान मुख्य पुरुष को (पृथिव्याः) पृथिवीनिवासिनी प्रजा के (देवयजने) विद्वानों, राजाओं और विजिगीषु पुरुषों के सङ्गमन या संगम, एकत्र होने के स्थान में (राध्यासम्) उत्तम रीति से बनाऊं । हे वीर पुरुष (त्वा) तुझको (मखाय) त्रुटि रहित राज्य पालनरूप यज्ञ के लिये नियुक्त करता हूं । तुझे (मखस्य शीर्ष्णे) राष्ट्र रूप यज्ञ के शिर या मुख्य पद के लिये नियत करता हूं ।

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मुखस्य वोऽद्य शिरो राध्यास
देवयजने पृथिव्याः । मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ४ ॥

वम्रयो देवता । व्यहनापा पान्तः । पञ्चम ॥

भा०—(वम्र) उपनाप करने और देश देशान्तर और पृथिवी निवासिनी प्रजा के चरित्रों को राजा तक वमन करने या पहुचाने हारी उपजापकारिणी संस्थाए, या धन प्रदान करने वाली प्रजाए (देव्य) उत्तम गुण वाली, विजयशील हों । वे ही पृथिवी या (भूतस्य) समस्त प्राणियों के बसने के पूर्व (प्रथमजा) विद्यमान रहती है । वह सबसे श्रेष्ठ है । (पृथिव्या देवयजने) पृथिवी पर विद्वान् राजाओं के एकत्र होने के स्थान, सभा भवन के बीच मे हे प्रजाजनो ! (व) तुम्हारे (मखस्य) त्रुटि रहित राज्य कार्य के (शिर अद्य राध्यासम्) मुख्य पुरुष को आज नियत करता हू । हे वीर पुरुष ! (मखाय त्वा) तुझ योग्य पुरुष को म प्रजापालन रूप यज्ञ एवं पूजनीय मुख्य पद के लिये नियुक्त करता हू । (त्वा मखस्य शीर्ष्णे) तुझे माननीय राज्य के शिरोमणि पद के लिये नियुक्त करता हू ।

'मख'—महे खचेति ख प्रत्ययो हलोपश्च । यद्वा मख गतौ । घ । इति मख इत्येतद् यज्ञनामधेयम् । छिद्रप्रतिषेध सामर्थ्यात् । छिद्र ख मित्युक्तं तस्यमेति प्रतिषेध । मा यज्ञ छिद्र करिष्यतीति । गो० उ० २।५।

स एष मख स विष्णु । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ एष वै मखो य एषतपति । श० १४ । १ । ३ । ५ ॥ स एव मख स विष्णु । ततइन्द्रो मखवान् अभवत् । मखवान् ह वैत मघवानित्याचक्षते । परोक्षम् । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५ । पूजनीय पद 'मख' है । या सग्राम या एकत्र होने और प्राप्त होने का स्थान या पद 'मख' है । इसमे यज्ञ और सग्राम दोनों मख शब्द वाच्य है । मख यज्ञ का नाम है । 'ख' छिद्र कहाता है । छिद्र या त्रुटि का न होना प्रयुत सम्पूर्ण होना पूर्ण व्यवस्था या यज्ञ 'मख' है । 'मख विष्णु, व्यापक

शक्तिमान् परमेश्वर और राजा दोनों कहाते हैं। 'मघ' नाम सूर्य है उसके समान तेजस्वी प्रतापी राजा भी मघ है। ऐश्वर्य राष्ट्र मघ है। उसका पति बलवान् इन्द्र राजा या सेनापति 'मघवान्' होने से 'मघवान्' कहाता है।

स्त्रियों के पक्ष में—हे (दिव्य कन्या) नव उमर की देवी, कन्याओ! आप लोग (भूतस्य) उत्पन्न होने वाले गर्भ, सन्तान के भी (प्रजनता) प्रथम उत्पन्न होती हो। (ता मानस्य अग्निः सन्धानम्) आप लोगों के आगे गृहस्थ रूप यज्ञ के मुख्य पति को मैं तुम्हारे मन के अनुकूल बनाऊं। हे योग्य पुरुष! सुमन, उत्तम पतित्व के लिये गृहस्थ के मुख्य पद के लिये वरता हूं।

इयुप्यर्धे आग्नेस्तुनर्भ्य नेउप स्थिरोंराष्प्रायस्दैवयजनेपृथिव्याः।
सुराय त्वा सुराय त्वा शुष्मिणे ॥ ५ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे पृथिवी! पृथिवी निवासिनी प्रजे! (अये) पहले (दर्भा) दर्भा हो तो पुन (आसीत्) रही। अर्थात् निवासीनि, उत्साही राजा के लिये यही भारी पृथ्वी भी थोड़ी है। हे पृथिवि (मे म-नस्य) मेरे उत्कृष्ट (पृथिव्या देवयजने निरः सन्धानम्) पृथिवी पर विजिगीषु पुरुषों के स्थान होने के स्थान संग्रामभूमि और सभाभवन में मुख्य सेनापति को (सन्धानम्) मैं प्राप्त करूं। हे योग्य पुरुष! (सराय त्वा सराय [illegible] शुष्मिणे) संग्राम, शस्त्रशासन और उसके निमित्त पद के लिये तुझे [illegible] करता हूं।

इर्षे। अये। इत्यादि पदत्रयेण शतपथब्राह्मणोक्तमभिप्रायमनुसंधाय व्याख्यातम्।

इन्द्रस्य त्वा सुराय त्वोउप स्थिरोंराष्प्रायस्दैवयजनेपृथिव्याः।
सुराय त्वा सुराय त्वा शुष्मिणे। सुराय त्वा सुराय त्वा शुष्मिणे।
सुराय त्वा सुराय त्वा शुष्मिणे ॥ ६ ॥

आदारा देवता । भरिगति जगता । निषाद ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! वीर सैनिक पुरुषो ! आप लोग ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, शत्रु के नाश करने वाले सेनापति के (ओज स्थ) पराक्रम स्वरूप हो । (व॰ यज्ञस्य शिर राध्यासम्) आप के यज्ञ, राष्ट्र पालन के मुख्य पदाधिकारी को मैं स्थापित करता हू। इत्यादि० पूर्ववत् । इस प्रकार भिन्न सेनादलो के मुख्य पुरुषों को नियुक्त किया जाय ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरन्नर्य्यम्पङ्क्तिराधसन्देवा यज्ञन्नयन्तु न. । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥

घमा देवता ।

भा०—(ब्रह्मणस्पति) ब्रह्म, महान् ऐश्वर्य, वेदज्ञान का पालक राजा और विद्वान् (प्र एतु) उत्तम पद को प्राप्त हो । (सूनृता देवी) शुभ, सत्यज्ञान से युक्त विदुषी और विद्वत् सभा भी (प्र एतु) उत्तम पद को प्राप्त हो । (वीरम्) वीर, शूर, सब दुष्टों और शत्रुओं के प्रक्षेपक, नाशक, (नर्यम्) सब मनुष्यों के हितकारी , (पङ्क्तिराधसम्) सेना की पंक्तियों को वश मे करने मे समर्थ वीर पुरुष को (देवा) विजयी, युद्धक्रीडाशील सैनिक और उत्तम विद्वान् जन (न) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ अर्थात् प्रजापति पद को (नयन्तु) प्राप्त करावें । (मखाय त्वा, मखस्य शीर्ष्णे त्वा) पूज्य पद और यज्ञ या सग्राम के प्रमुख स्थान के लिये तुझे नियुक्त करते हे । इत्यादि ।

मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ८ ॥

यज्ञो देवता ।

भा०—हे श्रेष्ठ पुरुष ! तू (मखस्य) पूजनीय व्यवस्था, राष्ट्र आदि के कार्य में (शिरः असि) शरीर में शिर के समान, ज्ञानवान्, विचारवान् और प्रमुख है । इसलिये (त्वा मखाय मखस्य शीर्ष्णे०) इत्यादि पूर्ववत् ।

महर्षि ने, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और मुमुक्षु आदि वर्गों में प्रमुख पुरुषों के स्थापन पर ध्यान दिये हैं । भावार्थ में अन्य २ स्थानों में भी प्रमुख पुरुषों के स्थापन का निर्देश किया है । शतपथ में तीन महावीरों का वर्णन है । सेना, राष्ट्रपालन और गृहस्थ तीनों में समान योजना है ।

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ९ ॥

ऋषि आदि पूर्ववत् । यज्ञो देवता ।

भा०—जिस प्रकार बड़े गढ़े में बांस को (अश्वस्य शक्ना) घोड़े की लीद की उष्मा पर उबाले, या बन २ में ज्वाला जाने वाले अग्नि की ताप शक्ति में सेंक कर पकाया जाता है उसी प्रकार हे वीर सेना पुरुष ! (त्वा) तुझको (वृष्णः) बलवान् वीर्यवान्, शत्रुओं को और प्रजाओं को व्यवस्था में बांधने में समर्थ (अश्वस्य) आशुगामी, व्यापक सामर्थ्यवान् और बहुत से शत्रु के मारने हारे बड़े पदाधिकारी पुरुष के (शक्ना) शक्ति, अधिकार सामर्थ्य से (पृथिव्याः देवयजने) पृथिवी के विद्वान् विद्वान् पुरुषों के सत्सङ्ग होने के स्थान, संग्राम, यज्ञ और सभाभवन में (धूपयामि) तुझे अधिक बलवान्, सुशोभित और सामर्थ्यवान् करता हूं । 'मखाय त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।' अश्वस्य त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ १० ॥

घर्मो देवता। स्वराट् पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे वीर पुरुष! (त्वा ऋजवे) तुझको आदित्य के समान प्रकाशमान कुटिलता रहित सत्य के दर्शाने वाले न्यायकारी पद या कार्य के लिये नियुक्त करता हूं। (साधवे त्वा) वायु के समान सबके प्राण प्रदान करने वाले, सब को अपने वश करने वाले उत्तम पद के लिये स्थापित करता हूं। और (सुक्षित्यै त्वा) उत्तम पृथिवी के समान सब प्रजाओं को सुख से निवास कराने वाले पद के लिये नियुक्त करता हूं। सुविधानुसार इन तीन पदों पर तीन अथवा एक ही अधिकारी शिरोमणि स्थापित किया जासकता है। वे अधिकार और कर्त्तव्य भेद से तीन हैं। (मखाय त्वा०) इत्यादि पूर्ववत्।

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥ ११ ॥

घर्मः सविता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन्! वीर पुरुष! (यमाय) सूर्य जिस प्रकार ग्रह उपग्रहों और पृथ्वी आदि को अपने नियम में रखता है उसी प्रकार समस्त राष्ट्र को नियम में रखने वाले पद के लिये (त्वा मखाय) पूजनीय उत्तम प्रजापति पद के लिये तुझको (सूर्यस्य तपसे त्वा) सूर्य के समान शत्रुओं को संतापन करने में समर्थ 'तपस्' पद के लिये तुझे नियुक्त करता हूं। (सविता) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (मध्वा)

१०—इति महावीरम्भरणम्।

११—अतो महावीरप्रोक्षणम्। अभिषेक इति यावत्।

मधुर अन्न आदि ऐश्वर्य और सर्वोत्कृष्ट बल से (भावन्तु) युक्त करें। हे विद्वन् ! तू उस वीर पुरुष को (पृथिव्याः संभृतः) भूमि पर उत्पन्न होने से अर्थात् उसे सामान्य जनों में लिप्त कर अनादृत होने से (पाहि) बचा। अथवा हे राजन् ! तू राष्ट्र को पृथिवी पर आक्रमण करने वाले शत्रु से बचा। तू (अग्निः असि) अग्नि की ज्वाला के समान दाहकारी है। (रोचिः असि) विद्युत् की दीप्ति के समान सन्तापकारी है। तू (भ्राजः असि) सूर्य के तेज प्रकाश के समान तेजस्वी, सन्तापक और धर्मात्मा है।

अनाधृष्टा पुरस्ताद्ग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः। पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः। सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः। आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः। विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि। मनोरश्वासि ॥ १२ ॥

पृथिवी देवता । [illegible] । [illegible] ।

भा०—हे पृथिवी ! (१) (अनाधृष्टा) शत्रु से कभी धर्षण नहीं की जाकर तू (पुरस्तात्) पूर्व की दिशा में (अग्नेः) अग्नि अर्थात् सूर्य के (आधिपत्ये) स्वामित्व में रह कर जिस प्रकार (आयुः) जीवनप्रद अन्न का प्रदान करती है उसी प्रकार तू (अग्नेः आधिपत्ये) अग्नि के समान तेजस्वी शत्रुसन्तापक, प्रतापी, अग्रणी नायक के स्वामित्व में रहकर (मे) मुझ प्रजाजन को (आयुः दाः) आयु प्रदान कर। (२) हे पृथिवि ! (पुत्रवती) पुत्रों से भरी जिस प्रकार अपने पति के अधीन रहकर उत्तम प्रजा को प्रदान करती है, इसी प्रकार तू भी (पुत्रवती) पुत्रों को दुःखों से बचाने वाले वीर पुरुष से युक्त होकर (दक्षिणतः) दक्षिण दिशा में (इन्द्रस्य आधिपत्ये) विद्युत् या सूर्य के समान तेजस्वी और शत्रुनाशक और ऐश्वर्यवान् पुरुष के स्वामित्व में रह कर (मे) मुझ राष्ट्र के प्रजावर्ग को उत्तम (प्रजां दाः) प्रजा, सन्तति को प्रदान कर। (३)

हे पृथिवि ' तू (सुपदा) सुख से बैठने और बसने योग्य समतल होकर (पश्चात्) पश्चिम से (देवस्य सवितु) प्रकाशमान सूर्य के अधीन रह कर जिस प्रकार चक्षु, उत्तम दर्शनशक्ति प्रदान करती है। समतल भूमि पर सूर्य का प्रकाश विस्तृत पड़ता है दूर तक, स्पष्ट दिखाई देता है। उसी प्रकार, तू (देवस्य सवितु) दानशील, विजिगीषु, सूर्य के समान तेजस्वी, सबके प्रेरक पुरुष के अधीन रहकर (मे) मुझ शासक को (चक्षु) ज्ञान चक्षु एवं प्रजा पर निरीक्षण करने का बल (दा) प्रदान कर। (४) (आश्रुति) सब तरफ से उत्तम रीति से श्रवण करने हारी होकर (उत्तरत) उत्तर दिशा से (धातु) धारण करने वाले, वायु के समान व्यापक, बलशाली पुरुष के (आधिपत्ये) स्वामित्व में रहकर (राय पुष्टिं) धन समृद्धि और पशु सम्पत्ति को (मे दा) मुझे प्रदान कर। (५) (विधृति) विविध पदार्थों के धारण और विशेष ज्ञान के धारण मे समर्थ होकर तू (बृहस्पते) बृहती, वेदवाणी के पालक विद्वान् पुरुष के (अधिपत्ये) स्वामित्व में, उसके अधीन रहकर (मे) मुझे (ओज) बल पराक्रम, एवं ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य (दा) प्रदान कर। (६) (मा) मुझ को (विश्वाभ्य) समस्त (नाष्ट्राभ्य) नाश करनेवाली दुष्ट स्वभाव की प्रकृतिवाली शत्रु सेनाओं से (पाहि) सुरक्षित रख। तू (मनो) मननशील पुरुष की (अश्वा)भोग करने योग्य (असि) है।

शरीर के पांच मुख्य भाग हैं नाक मुख, प्रजननाङ्ग, चक्षु, मन और धारणा बुद्धि। इनके पांच कार्य हैं अन्न प्राण और अन्न का ग्रहण, प्रजा प्राप्त करना, देखना, दूर का श्रवण करना, ज्ञान प्राप्त करना। इन सब शक्तियों से युक्त पृथिवी निवासिनी प्रजा क्रम से (१) अन्न और प्राण के बल से वह शत्रु से कभी पराजित नहीं होती। ऐसी प्रजा अपने नायक के अधीन रह कर राजा के राज्य की आयु को बढ़ाती है। (२) खूब प्रजाओं, सन्ततियों से पृथिवी निवासिनी प्रजा पुत्रवती होकर सेनापति को वीर

सैनिक प्रदान करती है। (३) पृथ्वी से जिस में राजा शासन करता है वह प्रजा दूरदर्शिनी है वह कभी अन्धी होकर द्रोह नहीं करती। वह शासक से दूर तक देखने और गम्भीर विचारने का अवसर प्रदान करती है। (४) समृद्ध प्रजा राजा की आज्ञा पालन करने वाली 'आधृति' है। वह अपने पोषक राजा के अधीन रहे तो और समृद्ध होती है। (५) राष्ट्रपालक या सेनापालक के अधीन रह कर राष्ट्र विविध प्रजाओं के अपने अंदर धरती है वह 'विधृति' है। उसमें बल पराक्रम की मात्रा बहुत है। वह राजा को सब विपत्तियों से बचावे। वह मननशील राजा के ही भोग्य हो, मूर्ख अत्याचारी राजा उसको भोग न सके।

स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व।
दिवः सं स्पृशस्पाहि मधु मधु मधु ॥ १३ ॥
[illegible] । [illegible] स्वरः ।

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (मरुद्भिः) प्रजा गणों और हे वीर सेनापते! तू शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिकों से (परिश्रीयस्व) सब प्रकार से आश्रय कर। वे तेरा आश्रय लें। तू उन द्वारा पृथ्वी का भोग कर। तू इस राष्ट्र को (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी राज गण के (संस्पृशः) संसर्ग प्राप्त करने वाले कष्टदायी कारण से (पाहि) रक्षा कर और (मधु मधु मधु) कर्म, उपासना और ज्ञान, इनका सेवन कर और इसी प्रकार शरीर में स्थित प्राण, उदान, व्यान के समान तीनों आत्मबल, शारीरबल और धनबल प्राप्त कर।

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सं सूर्येण रोचते ॥१४॥
ईशो देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—सेनापति और राजा के पक्ष में—(देवानां गर्भः) देव, विजय शील वीर सैनिकों और विद्वानों, राजाओं को अपने अधीन ग्रहण करने

वाले सूर्य के समान, (पिता मतीनाम्) मननशील, मेधावी, पुरुषों का पालक, (प्रजानाम् पति) प्रजाओं का स्वामी (देव) दानशील, तेजस्वी, विजयी होकर (सवित्रा) सब ससार के प्रेरक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (सगत) पृथ्वी से भली प्रकार युक्त होता है और (सरोचते) पृथ्वी पर उसी के समान प्रकाशित होता है।

ईश्वर के पक्ष मे—(देवाना गर्भ) ईश्वर तेजस्वी समस्त सूर्य आदि पदार्थों के भीतर व्यापक, एवं सबको अपने भीतर लेने वाला। सविता सूर्य के समान प्रकाशित है।

समुग्निर॒ग्निना॒ गत॒ सं दे॒वेन॑ सवि॒त्रा सꣳ सूर्येणारोचिष्ट।
स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दै॒व्येन॑ सवि॒त्रा सꣳ सूर्येणारूरुचत १५

अग्निदेवता। निचृद् ब्राह्मी अनुष्टुप्। गान्धार ॥

भा०—(अग्नि) वह महान् वीर सेनापति अग्नि के समान तेजस्वी होने और अग्रणी होने से 'अग्नि' है। इसी गुण से वह (अग्निना सगत) अग्नि के साथ मेल खाता है, उसकी उससे तुलना की जाती है। वह (देवेन सवित्रा) देव, सर्वप्रेरक (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम्) तुलना पाकर (अरोचिष्ट) प्रकाशित होता है। वह (अग्नि) किसी प्रकार बुझाया न जाकर अग्नि के समान तेजस्वी होकर (स्वाहा) उत्तम, सत्य वाणी और सत्य क्रिया से और (तपसा) धर्मानुष्ठान और तपस्या से (संगत) युक्त होता है। वह भी (दैव्येन सवित्रा सूर्येण) देवों, पृथिवी आदि मे सर्वोत्तम ऐश्वर्यकारी, सबके प्रेरक सूर्य के साथ तुलना पाकर (सम् अरूरुचत) भली प्रकार सदा प्रकाशित होता है।

परमेश्वरपक्ष मे—यह अग्नि उसी स्वयंप्रकाश परमेश्वर के द्वारा

१४—अथातो 'मा माहिषी । (२०) इत्यन्त महावीरपरिक्रमणम्।

प्रकाशित होता है। और यह अग्नि सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होती है। उस परमेश्वर को सत्य जिया, धर्मानुष्ठान से शुभ लोक जानो।

धर्ता दिवो विभाति तपसस्पृथिव्यां धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः। वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

भा०—(दिवः तपसः धर्ता) प्रकाशमान द्यौलोक को और ताप को जिस प्रकार सूर्य धारण करता है उसी प्रकार यह (दिवः) राजसभा या तेज को धारण करने हारा, (पृथिव्याः) इस पृथिवी पर और (तपसः) तप, धनादान और शत्रुसन्तापक बल का (धर्ता) धारण करने हारा होकर (देवानां) समस्त विद्वानों से (देवः) सबसे बड़ा तेजस्वी, राजा (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न होकर (तपोजाः) तपोबल और धर्मानुष्ठान के बल से अधिक शक्ति सामर्थ्यवान् हो। वह (अस्मे) हमें (देवायुवम्) समस्त विद्वान् पुरुषों को एकत्र संगत करने से युक्त, विचारशील विद्वानों और शासकों को एक ही काल और स्थान में एकत्र कर देने वाली (वाचम्) वाणी को (नियच्छ) प्रदान कर।

परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर सूर्य का धारक तेजस्वी, समस्त धर्ता, सब देवों का देव, तप से प्रकट होने वाला है। वह हम में विद्वानों से संगति कराने वाली और पृथिव्यादि लोकों और उत्तम ज्ञानों का लाभ कराने वाली वेद वाणी को प्रदान करे।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ १७ ॥
ऋ० १ । १६४ । ३१ ॥

ईश्वरः । धैवतः ॥

भा०—मैं (गोपाम्) सबके रक्षक, (अनिपद्यमानम्) अचल, स्थिर, विनाशों से नष्ट न होने वाले देव और (पथिभिः) नाना मार्गों से (आ चरन्तम्) समीप आते और (परा चरन्तं च) दूर देशों में जाते

हुए सर्वत्र शासक को (अपश्यम्) देखता हू । यह (सध्रीची) अपने साथ रहने वाली और (विषूची) नाना दिशाओं में विस्तृत प्रजाओं पर भी (वसान) शासक रूप से रहता हुआ (भुवनेषु अन्त) समस्त लोकों में (आ वरीवर्त्ति) सब प्रकार से सर्वोपरि होकर रहता है।

सूर्य के पक्ष मे—अपने साथ रहने वाली और सर्वत्र फैलने वाली दिशाओं या रश्मियों को धारण करता हुआ वह सब लोकों मे व्याप्त होता है।

परमेश्वरपक्ष में—वह समस्त दिशाओं मे व्यापक है। सबका रक्षक है और ज्ञान मार्गों से हमे इस लोक मे प्राप्त होने और परलोक मे भी प्राप्त होने वालों का ध्रुव रक्षक है।

विश्वा॑सां भुवां पते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते। देवश्रुत्त्वं दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॒ प्रावी॑रनु॒ वां दे॒ववी॑तये। मधु॒ माध्वी॑भ्यां मधु॒ माधू॑चीभ्याम् ॥ १८ ॥

ऋ० १। ११६। १२॥

अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—हे राजन् ! हे ईश्वर ! हे (विश्वासां) समस्त (भुवाम् पते) भूमियों के पालक ! स्वामिन् ! (विश्वस्य मनस पते) समस्त प्रजाजन के मनों के स्वामिन् ! समस्त ज्ञानों के पालक ! (विश्वस्य वचस पते) समस्त प्रजा की वाणियों और आज्ञाओं के स्वामिन् ! समस्त वेदवाणियों के स्वामिन् ! (सर्वस्य वचस पते) समस्त लौकिक वचनों के स्वामिन् ! प्रजा की वाणियों के स्वामिन् ! हे (देवश्रुत्) देवों-विद्वानों को श्रवण करने हारे एव शासकों, वीर पुरुषों से आज्ञा रूप से श्रवण करने योग्य ! दोनों में प्रसिद्ध ! हे (घर्म) तेजस्विन् ! सबके प्रकाशक श्रवणशील, दयार्द्र ! तू (देव) सूर्य के समान तेजस्वी, दाता, रक्षक होकर (देवान्

पाहि) देखो, विद्वानों की रक्षा कर । हे राजप्रजाजनो ! हे सब पुरुषो ! यह राजा (घर्म) शुभ दानों को (देवतातये) दिव्य गुणों और दिव्य विभूतियों की प्राप्ति के लिये (प्र भरत) उत्तम रीति से पुष्ट कर, पालन कर । (माध्वीभ्याम्) मधुर गुणों से युक्त विद्या और सुशिक्षा इन दोनों के (मधु) सार युक्त ज्ञान को और (माधूचीभ्याम्) मधु-नाम ब्रह्मविज्ञान प्राप्त करने वाले शिक्षक और शिष्य जन का प्रजाओं के (मधु) मधुर गुण युक्त सब ज्ञान को भी (प्र भर) उत्तम रीति से रक्षा कर और उनका बल प्रदान कर ।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा ।
ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! (त्वा) तुझको (हृदे) हृदय की भावना को प्राप्त करने लिये, उसकी व्यवस्था के लिये (मनसे त्वा) विज्ञान युक्त मनन करने के लिये, मन की व्यवस्था के लिये और (दिवे त्वा) विद्या प्रकाश के लिये और (सूर्याय त्वा) सूर्यादि लोकों के विज्ञान के लिये स्थापन करता हूं । तू सब से (ऊर्ध्वः) ऊंचा है । तू (अध्वरं) अहिंसामय यज्ञ को (दिवि) उत्तम व्यवहार में और (देवेषु) विद्वानों में (धेहि) स्थापन कर । हे राजन् ! अपने हृदय, चित्त और राजसभा में और सूर्य समान तेजस्वी पद के लिये तुझे स्थापित करते हैं । तू सब से ऊंचा होकर ज्ञानपूर्वक, विद्वान् पुरुषों के आश्रय में इस अहिंसामय यज्ञ को स्थापित कर ।

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्य-
रिष्टाहं सह पत्या भूयासम् ॥ २० ॥

[illegible]

२०—[illegible]

भा०—(न पिता असि) हे राजन् ! हे परमेश्वर ! तू हमारे पिता के समान पालक है। (न) हमारे पिता के समान एवं गुरु के समान ही (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर, शिक्षित कर। (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो। (मा मा हिंसी) मुझ प्रजाजन को मत मार, विनष्ट मत कर। हम समस्त प्रजाजन (त्वष्टमन्त) त्वष्टा, तेजस्वी, प्रजापति रूप स्वामी वाले होकर (त्वा सपेम) तुझे प्राप्त हों। तुझ से मिलें। तू (पुत्रान् पशून्) पुत्रों और पशुओं को (मयि धेहि) मुझ में पति के समान ही धारण करा। (अस्मान्) हम में (प्रजाम्) उत्तम सन्तान, प्रजा को धारण करा। मैं प्रजा (अरिष्टा) मङ्गलमयी स्त्री के समान शुभ गुणों वाली होकर (सह पत्या) पति के समान तुझ प्रजापति के साथ (भूयासम्) रहूं।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! तू हमारा पिता है, गुरु है, हमें ज्ञानवान् बना। हमें विनष्ट न कर। हम उत्तम गुणवान् उत्तम पदार्थों और शिल्पों से युक्त होकर तुझे प्राप्त हों। तू हमें पशु प्रदान कर। प्रजा दे। मैं तेरी प्रजा तुझ स्वामी से युक्त होकर रहूं।

गृहस्थपक्ष में—हे पित ! हे श्वशुर ! तू हमारा पिता है हमें सचेत कर। हमें कष्ट मत दे। हे पते ! हम स्त्रियां कल्याण प्रजन सामर्थ्य से युक्त होकर तुझ पति को प्राप्त हों। तू हमें पुत्रादि सन्तान धारण कर। मैं स्त्री सुमङ्गली होकर पति के साथ होकर रहूं।

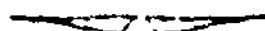
अहः केतुना जुषताᳬ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताᳬ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा॥ २१॥
धर्मो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(सुज्योति) उत्तम ज्योति युक्त (अहः) दिन के समान प्रकाश स्वरूप तेजस्वी पुरुष (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय (केतुना) सूर्य के समान तेजस्वी, आज्ञापक कर्म और प्रज्ञावान् पुरुष या उत्तम ज्ञापक चिन्ह और ज्ञान से (जुषताम्) युक्त हो। और (सुज्योति) उत्तम ज्योति या तेज

वाली (रात्रि) सब प्रजाओं को सुख देनेवाली देवी सबकी शान्तस्वरूपा (ज्योतिषा संयुता) दीपक अग्नि वा चन्द्र के समान ज्योतिर्मय, तेजस्वी सबके आधार, विद्वान् राजा व (स्वाहा) सत्य और उत्तम वाणी द्वारा (जुषताम्) युक्त हो । (स्वाहा) हमारा यह उत्तम हवन पूर्ण हो ।

अथवा तेजस्वी राजा से दायीं बायीं आँखों के समान दो विद्वान् नियुक्त हों । रात्रि और दिन दोनों सब हमें प्राप्त हों, हमें सुख प्रदान करें ।

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥



अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽदित्यै रास्नासि ॥ १ ॥

रज्जुर्देवता ।

भा०—हे पृथिवि ! पृथिवी निवासिनि प्रजे ! हे स्त्रि ! (देवस्य) कान्तियुक्त कामनावान् (सवितु) सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए इस ससार मे (अश्विनो) सूर्य के समान दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष धर्मोंमे युक्त दायें बायें देहो के (बाहुभ्याम्) बाहु रूप बलवीर्यों से और (पूष्ण हस्ताभ्याम्) पूषा, सर्व पोषक पति या स्वामी (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) मैं तुझको (आददे) ग्रहण करता हू । राजा या स्वामी होकर पृथ्वी को स्त्री के समान स्वीकार करता हू । मैं पति तुझ स्त्री को अपने बाहुओं और हाथों से स्वीकार करता हू । हे राज्यव्यवस्थे ! राजसभे तू (अदित्यै) पृथिवी की (रास्ना असि) गाय के गले में बधी रस्सी के समान बाधने वाली, प्रजाओं को सत्य उपदेश करने वाली, सन्मार्ग पर चलाने वाली है ।

'रास्ना—'रासृशब्दे । भ्वादि० । निपतनात्वक् औणादि । रास्ना ।

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि ।
असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥

गौ सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(इडे) हे स्तुति योग्य ! उत्तम वाणी से युक्त ! तू (एहि) आ । हे (अदिते) अखण्डित ! पृथिवि ! तू (एहि) प्राप्त हो । हे (सरस्वति) उत्तम विज्ञानों से युक्त ! उत्तम जलधाराओं, तलावों से युक्त ! पृथिवि ! (एहि) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे (असौ) अमुक २ नाम

गृहनीति की प्रमुख, भूमि के समान पोषक है, तू गृहस्थ यज्ञ के लिये मनोयोग दे, उसमें आत्मसमर्पण कर।

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । आर्चा पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे पृथिवि! (अश्विभ्याम्) प्रजा के स्त्री और पुरुषों के लिये (पिन्वस्व) प्रचुर धनैश्वर्य प्रदान कर। (सरस्वत्यै पिन्वस्व) उत्तम ज्ञानवान् विद्वत्सभा के लिये भी ऐश्वर्य प्रदान कर। (इन्द्राय पिन्वस्व) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति और राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य प्रदान कर। हे पुरुषो! (इन्द्रवत्) ऐश्वर्य युक्त राज्य को (स्वाहा) उत्तम, सत्य नीति से सञ्चालित करो। (इन्द्रवत् स्वाहा) आत्मा से युक्त शरीर को उत्तम विधि से पालन करो। (इन्द्रवत् स्वाहा) विद्युत आदि से युक्त पदार्थों का उत्तम रीति से ज्ञान करो।

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि! अपने माता पिता, सरस्वती, आचार्याणी और वेद के विद्वानों और (इन्द्राय) सौभाग्यशाली पति को अन्न द्वारा तृप्त कर, समस्त यज्ञ (इन्द्रवत्) अपने पति के संग कर।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः।
उरुन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥ ऋ० १ । १६४ । ४९ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । वाग् देवता । निचृद् अतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे (सरस्वति) सरस्वति! उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों एवं ज्ञानों से युक्त राजसभे! (स्तनः) माता का स्तन जिस प्रकार (शशयः) बालक को सुख की नींद सुलाने वाला, (मयोभूः) सुखजनक, (रत्नधा) उत्तम ज्ञान और बल का दाता, एवं रम्य, बालक का पोषक, (वसुवित्) प्राणों को प्राप्त कराने वाला है। और जिससे समस्त (वार्याणि)

धारण करने योग्य गुणों और रत्नों को सदा पुष्ट करती है उसी प्रकार (हे) हे (स्तन:) उत्तम दुग्ध के समान मधुर ज्ञानोपदेश प्रदान करने वाला पुरुष, सभापति (शशय:) प्रजा को सुख शान्ति से रखने वाला और स्वयं भी शान्ति से विद्यमान रहता है (य:) जो (मयोभू:) प्रजा के कल्याण और सुख को उत्पन्न करता है, (य: रत्नधा) जो रमण योग्य उत्तम गुणों और ऐश्वर्यों का धारण करता और उत्तम नर-रत्नों का पालन पोषण करता है, (य: वसुवित्) जो वसु नामक ब्रह्मचारियों को आचार्य के समान, विद्वानों को प्राप्त कराता या राष्ट्र में बसने वाले उत्तम प्रजाजनों को ऐश्वर्य प्राप्त करने कराने हारा है और जो (सुदत्र:) उत्तम दानशील है (येन) जिससे तू राजसभा (विश्वा) समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य, वाञ्छनीय ऐश्वर्यों, कार्यों और शक्तियों को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (तम्) उस 'स्तन' अर्थात् ज्ञानोपदेष्टा, विद्वान् पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में (धातवे) प्रजा के धारण, पालन पोषण करने के लिये (अकः) नियुक्त कर।

(उरु) मैं विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष आकाश का (अनु-एमि) अनुगामी होऊं, उसका अनुकरण करूं। मैं निपुण विद्वान् भी अन्तरिक्ष या मेघ के समान ज्ञान और ऐश्वर्य की धाराओं से वर्षकर प्रजा को पुष्ट करूं। सरस्वती वेद वाणी का उपदेश आचार्य सरस्वती का उपदेश करने से उसका 'स्तन' है। वह बालक के समान शिष्य को शान्तिप्रद, गुणजनक, उत्तम ज्ञानोपदेशक वसु ब्रह्मचर्य द्वारा प्राणों को पुष्ट करता, उत्तम ज्ञान दान करता है, उस से ही सब प्राप्य ज्ञानों और कर्मों को पुष्ट करता है। आचार्य भी अन्तरिक्षगत मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञानवर्षण करे। मेघ के समान आचार्य सरस्वती का वर्णन देखो बृहदारण्यक उप०।

गृहस्थ पक्ष में—पुरुष अन्तरिक्ष के समान पुत्रादि पर अनुग्रहकारी, पत्नी का भरण पोषणकारी हो।

'स्तन'—स्तन वन शब्दे । भ्वादि । स्तन गदी देवशब्दे । चुरादि स्तनतीति स्तन आचार्यो विद्वान् आज्ञापक । स्तनयतीतिस्तन मेघ ।

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यान्त्वा परिगृह्णा म्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट । स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥

पराशामा आश्विना घमश्च देवता । निचृदत्यष्टि । गान्धार ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वान् पुरुष ! (गायत्र छन्द असि) गायत्री छन्द जिस प्रकार २४ अक्षरों से युक्त होता है उसी प्रकार तू २४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यों से युक्त हो । (त्रष्टभ छन्द असि) त्रिष्टुप् छन्द जिस प्रकार ४४ अक्षरों से युक्त है उसी प्रकार ४४ वर्षो क अक्षय बल वार्यों से युक्त हो ।

अथवा—हे (इन्द्र) राजन् ! उत्तम शासक ! सभापते ! विद्वन् ! प्रजापालक ! तू (गायत्र छन्द) गायत्री छन्द से प्रकाशित अर्थ या अग्नि के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशवान् (त्रैष्टुभ छन्द असि) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाशित अर्थ के समान, छन्द, या ऐश्वर्यवान् के गुणों से युक्त अथवा ब्राह्मबल और क्षात्रबल से युक्त हो । हे (अश्विना) राजा प्रजावर्गो ! (द्यावापृथिवीभ्यां) द्यौ, सूर्य ओर पृथिवी, उन दोनों के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों के हित क लिये (त्वा) तुझ पुरुष को (परिगृह्णामि) उचित पद के लिये स्वीकार करता हू । (अन्तरिक्षेण उपयच्छामि) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष से मेघ द्वारा वर्षण और वायु द्वारा सबका प्राण धारण कराता है उसी प्रकार मैं तुझ योग्य विद्वान् पुरुष से प्रजा पर शासन कार्य क वर्षण क निमित्त (उप यच्छामि) तुझे स्वीकार करता हू ।

स्त्रीपक्ष मे—हे (अश्विना) स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों (गायत्र छन्द असि त्रैष्टुभ छन्द असि) गायत्री और त्रिष्टुप छन्दों क समान २४ या ४४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यवान् होओ। अथवा अग्नि और सूर्य या मेघके समान

तेजस्वी, प्रतापी, वीर्यवान् हो। (द्यावा पृथिवी त्वा अन्तरिक्षेण उपय च्छामि) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के तेज, बल वीर्य को धारण करने कराने में समर्थ होकर जल के द्वारा स्वीकार करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच अन्तरिक्ष रहकर एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कराता है और अन्तरिक्ष के द्वारा ही सूर्य पृथिवी पर जल वर्षण कराता और अन्न पैदा करता है और इसी प्रकार पृथ्वी अन्तरिक्ष द्वारा सूर्य की रश्मियों का ग्रहण करती है इसी प्रकार (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष अर्थात् जल के द्वारा ही पुरुष और स्त्री परस्पर विवाहित होते हैं। यही उनमें आदान प्रतिदान का कारक है उस द्वारा (त्वा उपयच्छामि) मैं पुरुष तुझ स्त्री को और मैं स्त्री तुझ पुरुष को पत्नी और पतिरूप से स्वीकार करता और करती हूं।

हे (वसवः) पृथिवी आदि प्रजाओं के बसाने वाले पदार्थों के समान तेजस्वी एवं बसने वाले प्रजास्थ पुरुषो ! आप लोग (स्वाहा) उत्तम दान प्रतिदान और सत्य वाणी द्वारा (मारधम्य) मधु मक्खी के बने विशुद्ध (मधुन) मधु के समान मधुर व्यवहार के (घर्मम्) तेजो युक्त पराक्रम से सम्पन्न, राज्य रूप परम रस का (पात) पालन करो या उत्तम रस, आनन्द का पान करो, उपभोग करो। और (वाट्) उत्तम व्यवहार से उत्तम रीति से ही (यजत) परस्पर मेल, दो, सुसंगति करो। और (सूर्यस्य) सूर्य के (वृष्टिवनये) वृष्टि प्रदान करने वाले (रश्मये) किरणों को जिस प्रकार पृथिवी, वायु आदि 'मधु' नामक पदार्थ 'मधु' अर्थात् जल और अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा प्रजा के प्रति ऐश्वर्यादि वर्षण करने वाले रश्मि अर्थात् राजबन्ध के कार्य के लिये हे (यजत) समस्त प्रजागणो ! (यजत) तुम कर प्रदान करो, अथवा परस्पर संगत रहो।

गृहस्थपक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! (मारघम्य मधुन घर्म पात) मधु

मक्खियों के बनाये मधु के रस, मधुपर्क का पान करो। उसी के समान मधुर परस्पर गृहस्थ धर्म, यज्ञ का पालन एवं रसास्वादन करो। अथवा महस्रों भ्रमरों द्वारा संगृहीत मधु का जिस प्रकार स्त्री पुरुष उपभोग करते हैं उसी प्रकार गतिशील प्राणों के द्वारा सञ्चित मधुर, सुखप्रद (धर्म) सेचन करने योग्य वीर्य का (पात) पालन करो। एवं गृहस्थोचित कार्य मे उसका उपभोग और उपयोग करो (वाट्) यज्ञाहुति के समान ही (यजत) उस सार पदार्थ का, श्रेष्ठ फल के लिये प्रदान करो, और परस्पर संगत होवो। सूर्य के समान (वृष्टिवनये रश्मये) वृष्टि अर्थात् वीर्य सेचन आदि कार्य तथा उससे उत्पन्न पुत्रादि लाभ के लिये उत्तम रीति से संगत होवो।

समुद्राय॑ त्वा वाता॑य स्वाहा॑। सरि॒राय॑ त्वा वाता॑य स्वाहा॑। अ॒नाधृ॒ष्याय॑ त्वा वाता॑य स्वाहा॑। अ॒प्र॒ति॒धृ॒ष्याय॑ त्वा वाता॑य स्वाहा॑। अ॒व॒स्यवे॑ त्वा वाता॑य स्वाहा॑। अ॒शि॒मि॒दाय॑ त्वा वाता॑य स्वाहा॑॥ ७॥

वातनामानि देवता। भुरिगतिः। मध्यमः॥

भा०—(१) मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझ राजा विद्वान् पुरुष को (वाताय) प्राण वायु के समान, (समुद्राय) समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले 'समुद्र' वा मेघादि से जल वर्षण करने वाले वायु के पद के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से स्वीकार करता हू। (त्वा) तुझको (सरिराय वाताय) समस्त प्राणियों में एक साथ और एक समान चेष्टा उत्पन्न करने वाले वायु के समान सर्वप्रेरक शासक पद के लिये (त्वा स्वाहा) तुझको मैं शासक रूप से सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। (अनाधृष्याय वाताय त्वा स्वाहा) प्रबल वात या आन्धी को जिस प्रकार कोई काबू नहीं कर सकता उसी प्रकार शत्रुओं से कभी न दबने वाले, प्रचण्ड पराक्रमी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हू।

(त्वा अप्रतिधृष्याय वाजाय स्वाहा) प्रतिस्पर्धी द्वारा दमन न किये जा सकने वाले प्रचण्ड तेजस्वी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं । (अवस्यवे वाजाय त्वा स्वाहा) रक्षा करने वाले प्राण वायु के समान विद्यमान रक्षक पद के लिये तुझको मैं सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूं । (अति-निहाय वाजाय त्वा स्वाहा) अत्यन्त शक्ति वाले वायु के समान अन्न वीर्यवान् सामर्थ्यवान् पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूं ।

स्त्री पुरुष पक्ष में—स्त्री के लिये पुरुष वायु के समान बलवान्, समुद्र के समान अनन्त गुण धनैश्वर्य से पूर्ण हो, एक साथ सब अभिलाषाओं का प्रेरक पूरक, दूसरे से धर्षण योग्य न हो, प्रतिस्पर्धा में किसी से न दबे, रक्षण कार्य में कुशल हो । एवं वायु के समान गुणसम्पन्न, सुशील, अदम्य, उत्साहवान् और प्राणप्रिय हो । इसी निमित्त स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को स्वीकार करे । अन्न वीर्य, कर्म और सामर्थ्यवान् अथवा दुष्ट कर्म के दूर करने या शान्ति प्राप्त कराने वाला, अथवा आकाश में चलने के लिये, वायुशोधन, जल, गृह, वायु शुद्धि, निर्भयता, ओषधिगत वायुविज्ञान, वायु वेगविज्ञान, रस, प्राणशक्ति विज्ञान के लिये स्त्री पुरुष एक दूसरे को वरण करें ।

'अतिनिहाय'—एनांस्यरं कर्म निनि तत्र ददाति इत्यतिनिहः तस्मै अत्यसिपर्यस्यायेति महीधरः । निनीति कर्म नाम दुष्टानामकं धनद् अहेन दाय इति उवटः । निनि नि कर्मनाम शमयतेर्वा । इति यास्क निरु० ५।२।७॥ न निनि शान्ति यतिसम्पद्यति इति अतिनिहः । न निनि हेन युक्त कर्म ददाति इति वा । निनि इति न दीयते सम्पद्यते यस्य सोऽनिनिहः तस्मै । दुर्दयते पुरस्ते तदर्थ । तस्मैदुत यस्मिन् तस्मै रक्षार्पिन दया० ।

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा । सवित्रे त्वऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥

इन्द्रो देवता। अष्टि । मध्यम ॥

भा०—(वसुमते) धन ऐश्वर्य से युक्त बसने वाली प्रजा और बसने वाले उत्तम पुरुषों से युक्त और (रुद्रवते) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों से युक्त या प्राणों से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पद के लिये (त्वा) तुझको मैं प्रजावर्ग स्वीकार करता हूं। (आदित्यवते इन्द्राय स्वाहा) आदित्य अर्थात् १२ हों मासों से युक्त सूर्य के समान आदित्य ब्रह्मचारी, पूर्ण विद्वानों या आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण से युक्त ऐश्वर्यवान्, राजपद के लिये तुझको मैं स्वीकार करता हूं। (अभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा) अभिमानी शत्रुओं के नाशकारी इन्द्र, सेनापति पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूं। (सवित्रे) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वप्रेरक, (ऋभुमते) ऋत, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, विद्वानों से युक्त, (विभुमते) व्यापक सामर्थ्यवान्, एवं विशेष बल और ज्ञान के उत्पादक पदार्थों, मन्त्रों और विद्वानों से युक्त, (वाजवते) अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम बल के स्वामी, पद के लिये (त्वा) तुझको (स्वाहा) उत्तम रीति से स्वीकार करता हूं (बृहस्पतये) महान् राष्ट्र के पालक पद के लिये और (विश्वदेव्यावते) समस्त देवों, राजा और विद्वान् शासकों के हितकारी कार्य के पालक पद के लिये (स्वाहा) तुझे उत्तम रीति से हम स्वीकार करते हैं। स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को, धन, प्राण की रक्षा, ऐश्वर्य वृद्धि, शत्रुनाश, शिल्पियों की रक्षा, अन्न, वेदवाणी, समस्त विद्वानों और हितकारी कार्यों के लिये स्वीकार करें।

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते। स्वाहा घर्माय।
स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥

भुरिगगायत्री । षड्जः ॥ यमो धर्मश्च देवते ।

भा०—(अंगिरस्वते) अंगारों के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुषों और प्राण विद्युदादि विद्या के ज्ञाता विद्वानों से संयुक्त और (पितृ

सने) पालक पुरुषों में मुख्य (घर्माय) सर्वनियन्ता राजा के पद के के लिये (स्वाहा) उत्तम सत्यवाणी से तुझ को स्वीकार करता हूं। (घर्माय) अति तेजस्वी यज्ञ, प्रजापति पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। (घर्मं) तेजस्वी पद (पित्रे) पालक पुरुष को (स्वाहा) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय।

स्त्री पुरुष पक्ष में—हम दोनों (घर्मं) स्वयं तेजस्वी या वीर्यवान् होकर उत्तम शक्ति, पालक जनों में मुख्य सन्तान के लिये यज्ञ के लिये उत्तम सत्य वाणी और क्रिया द्वारा एक दूसरे को स्वीकार करें।

'समुद्राय त्वा वाताय (मं० ७) से लेकर 'घर्माय' स्वा० इत्यादि तक १२ नाम वायु के गुण भेद से हैं। यह शतपथकार का मत है। गुण भेद से उपमानोपमेय भाव से इसकी संगति लगानी चाहिये।

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र के अंग करने वाले उसके स्वामी राजा प्रजावर्ग तुम दोनों ! (स्वाहाकृतस्य) एक दूसरे के प्रति सत्य संकल्प और सत्य वाणी द्वारा उत्पन्न किये (घर्मस्य) राष्ट्रमय यज्ञ के अति प्रदीप्त या उग्र शासन से प्राप्त (मधोः) मधुर अन्न का (पिबतम्) उपभोग करो। यह राष्ट्र का नियन्ता विद्वान् राजपुरोहित (दक्षिणसत्) दक्षिण दिशा में विराजमान अथवा, सूर्य के समान तेजस्वी एवं (दक्षिणसत्) राजासन के दक्षिण भाग और दायें ओर में विराजमान होकर (विश्वाः आशाः) समस्त दिशाओं की प्रजाओं और (देवान्) समस्त उत्तम विद्वान्, वीर पुरुषों और राजाओं को (इह) इस राष्ट्र में या सभाभवन में (अयाट्) संगत करता, आदर करता है।

१०—दक्षिणसद्० इति काण्व०।

वाले, दृढ़ग्राही (घर्मम्) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को (ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षा साधनों से (पातम्) पालन करो, एवं उपभोग करो। (तन्त्रायिणे) शास्त्रों और कलाकौशल, शिल्पों के जानने वाले और कुटुम्ब और उसके समान समस्त राज्य तन्त्र के धारण करनेहारे गृहपति और राजा को और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा वर्गों और स्त्री पुरुषों को (नमः) अधिकार, मान और अन्न प्राप्त हो।

अपा॑तामश्विना॑ घ॒र्ममनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑मꣳसाताम्।
इ॒हैव रा॒तय॑: सन्तु ॥ १३ ॥

अश्विनौ देवते। निचृदुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो ! आप दोनों (द्यावापृथिवी अनु) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के अनुकूल परस्पर उपकारक होकर (घर्मम्) राष्ट्रपति का पालन और राष्ट्र-ऐश्वर्य को रस के समान (पातम्) पान करो, उसका पालन और स्वीकार करो, उपभोग करो। (अनु अमंसाताम्) उसी के समान एक दूसरे का आदर मान करो। (इह एव) यहां, उसके निमित्त ही (रातयः) विद्यादि गुणों और ऐश्वर्यों के दान भी (सन्तु) हों। स्त्री पुरुष भी अपने गृहस्थ रूप यज्ञ की रक्षा करें। इसी में नाना दान भी करें।

इ॒षे पि॑न्वस्वो॒र्जे पि॑न्वस्व॒ ब्रह्म॑णे पिन्वस्व क्ष॒त्राय॑ पिन्वस्व॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ पिन्वस्व। धर्मा॑सि सु॒धर्मा॒मे॑न्य॒स्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय ॥ १४ ॥

धर्मा महावीरश्च देवता। अतिजगती। पञ्चमः ॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष ! तू (इषे) अन्न की वृद्धि के लिये प्रजावर्ग को (पिन्वस्व) पुष्ट कर। (ऊर्जे पिन्वस्व) बल पराक्रम के लिये पुष्ट कर। (ब्रह्मणे पिन्वस्व) ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान और वेदज्ञ ब्राह्मणों की

वृद्धि के लिये पुष्ट कर। (क्षत्राय पिन्वस्व) क्षात्रबल और क्षत्रियों की वृद्धि के लिये पुष्ट कर। (द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व) सूर्य, पृथिवी और उनके समान स्त्री और पुरुषों की वृद्धि के लिये भी पुष्ट कर। हे महावीर राजन्! (धर्मा असि) समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होने से 'धर्मा' है। तू (सुधर्मा असि) उत्तम रीति से धारण में शक्तिमान् होने से 'सुधर्मा' है। तू (अमेनि असि) हिंसारहित हो। (अस्मे) हमें (नृम्णानि) मनुष्यों के हितकारी ऐश्वर्य (धारय) धारण करा। (ब्रह्म धारय) वेद और वेदज्ञ ब्राह्मण वर्ग को धारण कर (क्षत्र) वीर्य वीर्यवान् वीर पुरुषों को धारण कर। (विशं धारय) वश्य प्रजा को धारण कर।

स्वाहा॑ पू॒ष्णे शर॑से॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्यः॒ स्वाहा॑ प्रतिर॒वेभ्यः॑। स्वाहा॑ पि॒तृभ्य॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्यो घर्म॒पाव॑भ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳪ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ ॥ १५ ॥

स्वाद्या लिङ्गोक्ता देवता । स्वराड् जगती । निषाद ॥

भा०—(पूष्णे) अन्न और वायु के समान प्रजा के पोषण करने वाले (शरसे) और शत्रु को बाण के समान मारने वाले वीर पुरुष को (स्वाहा) उत्तम मान, आदर प्राप्त हो। (ग्रावभ्य स्वाहा) मेघों के समान गर्जना करनेवाले वीरों और ज्ञानोपदेष्टा गुरुजनों को उत्तम मान और आदर प्राप्त हो। (प्रतिरवेभ्य स्वाहा) गुरु के कहे वचनों को दोहराने वाले शिष्यों अथवा प्रतिस्पर्द्धियों के प्रति उत्तर देने वाले, राष्ट्र के प्राणों के समान वीर पुरुषों को उत्तम अन्न एवं मान प्राप्त हो। (ऊर्ध्वबर्हिभ्य) प्राची दिशा की ओर उगे कुशादि काटने वाले, पालक, यज्ञशील सौम याजी विद्वानों के समान उत्कृष्ट पदों तक वृद्धि प्राप्त करने हारे और (घर्म पावभ्य) यज्ञ से और अपने प्रखर तेज से सबके हृदयों और देश के शासन को पवित्र करने हारे (पितृभ्य) सबके गुरु जन, माता पिता के समान अथवा ऋतुओं के समान उत्तम विद्वानों को (स्वाहा) उत्तम

अन्न, आदर पद प्राप्त हों। (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) सूर्य और अन्तरिक्ष या भूमि के समान राजा रानी, राज प्रजावर्ग और उत्तम स्त्री पुरुषों के लिये उत्तम मानसूचक वचन और अधिकार और अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त विद्वान्, दानशील, विजयशील पुरुषों को उत्तम आदर प्राप्त हो।

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः । अहः केतुना जुषताᳬ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषताᳬ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । मधु हुतमिन्द्रतमे ऽअग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिᳬसीः ॥ १६ ॥

रुद्रादयो देवताः । भुरिगत्यष्टिः छन्दः

भा०—(रुद्रहूतये) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों को आह्वान करने वाले उनके आधारक (रुद्राय) रुद्र रूप सेनापति को (स्वाहा) उत्तम आदर प्राप्त हो। (स्वाहा) सत्य वाणी से (ज्योतिः) ज्योति अर्थात् प्रकाश जिस प्रकार (ज्योतिषा) अपने से अधिक प्रबल प्रकाश से मिल कर एक हो जाता है उसी प्रकार वीर पुरुष वीर सेनापति से मिलकर एक हो जाय। (अहः केतुना) दिन जिस प्रकार उसके ज्ञापक प्रदर्शक सूर्य से युक्त होता है उसी प्रकार (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति, तेज वाला सेनापति (स्वाहा) उत्तम सत्य वचन द्वारा (ज्योतिषा) तेजस्वी वीर पुरुष से (जुषताम्) सुसंगत हो, समयुक्त हो। (केतुना) रात्रि के ज्ञापक चन्द्र से जिस प्रकार (रात्रिः) सब प्राणियों को सुख देने वाली रात्रि युक्त होती है उसी प्रकार (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष से (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति वाली (रात्रिः) सब प्रजा को सुखदायी राजव्यवस्था (स्वाहा) उत्तम, सत्य क्रिया द्वारा (जुषताम्) प्रेमपूर्वक संयुक्त रहे। (इन्द्रतमे) अति ऐश्वर्यवान् तेजस्वी

१६—० मे न सहितम० ऋ० ।

(अग्नौ) आग में (हुतम् मधु) आहुति किये हुए मधुर सुगन्ध युक्त अन्नादि पदार्थ को जिस प्रकार हम उपभोग करते हैं उसी प्रकार तुझ (इन्द्रतमे) सबसे अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् (अग्नौ) शत्रु को आग के समान जला डालने वाले तेजस्वी राजा के अधीन (हुतम्) प्रदान किये (मधु) पृथिवी रूप राष्ट्र का हम (अश्याम) प्रजाजन भोग करें। हे (देव) विजिगीषो! हे (घर्म) तेजस्विन्! सूर्यवत् प्रकाशमान राजन्! (ते नमः अस्तु) तुझे अन्न, आदर और बल वीर्य प्राप्त हों। (मा) मुझ प्रजावर्ग को तू (मा हिंसी) मत मार, मत पीडित कर।

सामन्य जीवों के पक्ष में—(रुद्रहूतये रुद्राय) प्राणों की आहुति से जीने वाले जीव के लिये (ज्योतिषा ज्योति सम् जुषताम्) प्रकाश के साथ प्रकाश को सगत करो। (केतुना) बुद्धिपूर्वक (अह रात्रि) दिन और रात्रि को भी (ज्योतिषा ज्योति) ज्ञान से सद्गुणों को और मनन चिन्तन से धर्मादि तत्वों को सगत कर सेवन करो। अति तीव्र अग्नि में आहुति किये घृतादि मधुर पदार्थों को हम प्राप्त हों। हे परमेश्वर! आपको नमस्कार है। आप हमें पीडित न कर पालन करें।

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः। उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳ सीदस्व महाँ२ऽ असि रोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने ऽअरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ १७ ॥

आग्नदेवता। त्र्यवसाना शक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—हे वीर विद्वन्! राजन्! (महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (इम दिवम्) इस तेजस्वी सूर्य को भी (अभि बभूव) मात करता है। वह (विप्र) विविध प्रजाओं को पूर्ण करने वाला और (सप्रथा) सर्वत्र एक साथ फैलने वाला है। (उत) और (श्रवसा) यश और ऐश्वर्य के बल से तू (पृथिवीम्) पृथिवी पर (स सीदस्व) अच्छी प्रकार विराजमान हो। उस पर राजा अभिषिक्त होकर विराज। तू (महान् असि)

सक्ता है, वह सामर्थ्य वाला है। (द्रवपाननः) दिव्य गुणों से अति अधिक प्रकाशमान् होकर (राजन्) सबका प्रिय हो। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे (सिपच्र) शत्रुओं के नाश करने में समर्थ! जिस प्रकार अग्नि अन्धकार के समय अपने तेज से चमकता हुआ लाल धूएं को छोड़ता है उसी प्रकार तू भी (अरुषम्) रोष रहित, प्रेमयुक्त एवं दुष्टदमनकारी, लाल वर्ण के प्रतापवाले (दर्शतम्) दर्शनीय (धूमम्) शत्रुओं के कंपाने वाले सेनाबल को (दिवृत्र) विविध दिशाओं में प्रेरित कर, भेज और विजय कर।

'दिव' अविद्यादिगुणप्रकाशमिति दया० तत् चिन्त्यम् ॥

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याᳬ हविर्धाने। सा त आप्याय
तान्निष्ट्यायतान्तस्यै ते स्वाहा। या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टु
भ्याग्नीध्रे। सा त आ प्यायतान्निष्ट्यायतान्तस्यै ते स्वाहा। या
ते घर्म पृथिव्याᳬ शुग्या जगत्याᳬ सदस्या। सा त आ प्याय
तान्निष्ट्यायतान्तस्यै ते स्वाहा ॥ १८ ॥

धनादयः । स्वराडतिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (घर्म) तेजस्विन् राजन्! (या) जो (ते) तेरी (दिव्या) दिव्य पदार्थ सूर्य में रहने वाली दीप्ति के समान, उत्तम गुणों से उत्पन्न (शुक्) कान्ति, (गायत्र्या) वेदों के गान करने वाले ब्राह्मण विद्वानों के रक्षा करने वाली राजनीति में और (हविर्धाने) उत्तम अन्नादि धारण कर, अर्थात् पदार्थों के ग्रहण करने में है (सा) वह (ते) तेरी (आप्यायताम्) खूब बढ़े, वह (निष्ट्यायताम्) खूब प्रबल हो और (ते) तेरे (तस्यै) उस कान्ति के लिये (स्वाहा) सुख उत्तम यश प्राप्त हो।

हे (घर्म) वायु के समान तेजस्विन् बलवन्! राजन्! (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में वायु के समान जो (शुक्) तेरी दीप्ति (आग्नीध्रे) अग्नियों के समान प्रकाशमान् सभा में ३ । दुष्टों के घातक पक्ष

करने के कार्य में और (त्रिष्टुभि) विविध क्षात्रशक्ति में है (ते या) वह तेरी (अप्यायताम्) खूब बढ़े। (निः स्यायताम्) दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) उससे तुझे उत्तम यश प्राप्त हो।

हे (घर्म) अग्नि के समान तेजस्विन्! (जगत्या) जंगम जीवों से युक्त इस सृष्टि में और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (या) जो (ते) तेरी (सदस्या) राजसभा में प्रकट होने वाली (शुक्) शोभा, कान्ति और शक्ति है (सा ते आप्यायताम्) तेरी वह शक्ति खूब बढ़े। (नि स्यायताम्) खूब दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) तेरी उस शक्ति से खूब कीर्त्ति हो।

क्षत्रस्य॑ त्वा परस्पाय॒ ब्रह्म॑णस्त॒न्वं पाहि।
विश॑स्त्वा॒ धर्म॑णा व॒यमनु॑ क्रामाम सुवि॒ताय॒ नव्य॑से ॥१९॥

महावीरो धर्मो देवता। निचृदुपरिष्टाद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! तू (परस्पाय) दूसरों को पालन करने के लिये प्रजा को शत्रु से बचाने और उत्तम रीति से पालन करने के लिये हो। अत तू (क्षत्रस्य) क्षत्रियों के और (ब्रह्मण.) विद्वान् ब्राह्मणों के (तन्वं पाहि) शरीरों की रक्षा कर। अथवा (क्षत्रस्य) राष्ट्र के बल, वीर्य और (ब्रह्मण) धनैश्वर्य और अन्न की (तन्वम्) विस्तृत सम्पत्ति की रक्षा कर। (विशः धर्मणा) प्रजाओं के कर्त्तव्य नियम और धर्म से (नव्यसे) नये से नये, अति उत्तम (सुविताय) शुभ पदार्थों के प्राप्त करने एवं उत्तम मार्ग चलने और राज्य शासन के कार्य के लिये हम (त्वा अनुक्रामाम) तेरा अनुगमन करें, तेरे पीछे २ चलें, तेरी आज्ञा पालन करें।

चतु॑:स्रक्ति॒र्नाभि॑र्ऋ॒तस्य॑ स॒प्रथा॒: स नो॑ वि॒श्वायु॑: स॒प्रथा॒: स न॑:
स॒र्वायु॑: स॒प्रथा॑:। अप॒ द्वेषो॒ अप॒ ह्वरो॒ऽन्यव्र॑तस्य सश्चिम ॥२०॥

घर्मो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष! राजन्! (चतुःस्रक्तिः) तू चारों दिशाओं

में प्रबल हथियारों वाला हो। तू (ऋतस्य नाभिः) सत्य, न्यायव्यवस्था, धर्म मर्यादा और क़ानून का नाभि अर्थात् केन्द्र हो। तू (सप्रथा) विस्तृत शक्तिवाला है। (सः) वह तू (सप्रथा) अति विस्तृत यश और राष्ट्र वाला होकर (विश्वायुः) पूर्ण आयु होकर, जीवन भर (नः) हमारी रक्षा कर। और (सः) वह तू (नः) हमारे कल्याण के लिये (सर्वायुः सप्रथाः) पूर्ण जीवन को प्राप्त हो और विस्तृत कीर्ति वाला हो। हम लोग (द्वेषः) द्वेष करने वाले और (ह्वारः) कुटिल चाल वाले और (अन्यव्रतस्य) अन्य, भिन्न शत्रु के कर्मों वाले पुरुष को (अप सश्चिम) दूर करें। अथवा—(अन्यव्रतस्य ते द्वेषः ह्वरः च अपसश्चिम) अन्यों को पालन करने वाले तेरे शत्रुओं और कुटिल पुरुषों को दूर करें।

शत्रुवाच्यन्यव्रतशब्दः प्रायो वेदे दृश्यते। यथा 'अन्यांस्तपन्तु हेतयः०' इत्यादि।

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥
यज्ञो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (घर्म) मेघ के समान प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षक और सूर्य के समान तेजस्विन्! (ते) तेरा (एतत्) यह इतना बड़ा (पुरीषम्) ऐश्वर्य और राज्यपालन करने का सामर्थ्य है। तू (तेन) उससे (वर्धस्व) बढ़ और (आप्यायस्व च) खूब समृद्ध हो और प्रजा को भी पुष्ट कर। (वयम् च) हम भी (वर्धिषीमहि) बढ़ें और (आ प्यासिषीमहि) खूब लक्ष्मी से समृद्ध और पुष्ट हों।

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सं सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥
अग्निर्यज्ञो देवता। पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(वृषा) शत्रुओं को रोकने में समर्थ, प्रजाओं पर सुखों की

वर्षा करने वाला, मेघ के समान (अविक्रदत्) गर्जन करता है। (हरि) प्रजाओं के दुःखों को हरनेवाला, एवं सूर्य के समान प्रजा से कर लेने वाला होकर, (मित्र न) सूर्य के समान सबके प्रति समान भाव से स्नेही, न्यायकारी, (दर्शत.) सब से दर्शनीय और सबका द्रष्टा है। वह ही (सूर्येण) सूर्य के समान तेज से (सं दिद्युतत्) अच्छी प्रकार चमके। शौर्य, वीर्य, बल, पराक्रम और उपकार आदि अपने गुणों को प्रकाशित करे। वह (उदधि:) सागर के समान गम्भीर हो और (निधि) कोश, खजाने के समान सब ऐश्वर्यों का रक्षक हो।

सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २१ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २३ ॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

इन्द्रो देवता । स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यावती) जितने बड़े (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि या सूर्य और भूमि और उनके समान स्त्री पुरुष, एवं राज प्रजावर्ग हैं और (यावत्) जहां तक (सिन्धव) सातों समुद्र (वि तस्थिरे) विविध दिशाओं में फैले हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे लिए (तावन्तम्) वहां तक का (ग्रहम्) शासनाधिकार (ऊर्जा) बल

पराक्रम से (गृह्णामि) ग्रहण करूं, न्यायकारी और धार्मिक हो मैं (मयि) अपने में (भगवान् सहस्) अपार, महान सामर्थ्य को (गृह्णामि) धारण करूं ।

अथवा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राष्ट्र-प्रजागण ! आसमुद्र भूमि के किनारे तक और समुद्रों के किनारे तक के (सहस्) अधिकार को मैं राजा (मयि) अपने अधीन (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ।

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः ।
घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥२७॥

धर्मो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।

भा०—(मयि) मुझ प्रजाजनों में (त्यत्) वह अलौकिक, अद्भुत, आश्चर्यजनक (बृहत्) बड़ा भारी (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य बल प्राप्त हो (मयि दक्षः) मुझमें बल प्रभा, बुद्धि और मुझ में विज्ञान प्राप्त हो । इसी प्रकार (मयि) मुझ राजा के अधीन (क्रतुः) बड़ा भारी ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र और राजकार्य विज्ञान प्राप्त हो । इस प्रकार (घर्म) तेजस्वी राजा (त्रिशुक्) अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों के समान तेजस्वी होकर (विराजा ज्योतिषा) विराट् प्रकाश, विविध राजाओं के तेज और (ब्रह्मणा तेजसा) ब्रह्म, वेदमय तेज या बड़े भारी ऐश्वर्यमय [illegible] प्रकार के (सह) साथ (विराजति) विराजमान [illegible] हो ।

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳫं समाम् ।
त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः ।
इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

[illegible] ॥

भा०—(पयस रेत आभृतम्) दूध से जिस प्रकार शरीर में वीर्य अच्छी प्रकार धारण किया जाता है। और जिस प्रकार (पयस) वृष्टि के जल से (रेत) पृथ्वी के ऊपर ओषधि और प्राणियों के उत्पादक बीज (आभृतम्) सर्वत्र पुष्ट होता और प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं राजा (पयस) राष्ट्र के पोषण करने वाले ऐश्वर्य के बल से (रेत) उसमें उत्पादक सामर्थ्य अर्थात् प्रजा और ऐश्वर्य के पदार्थों के पदावार के सामार्थ्य को (आभृतम्) प्राप्त कराऊं और पुष्ट कराऊं। और जिस प्रकार गौ को दोहन करके उसके दुग्ध का सभी उपभोग करते हैं और जिस प्रकार वृष्टि जल के द्वारा प्रभूत अन्न को प्रति वर्ष प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (तस्य) उस राष्ट्रैश्वर्य के (दोहम्) योग्य रीति से प्राप्त किये पूर्ण ऐश्वर्य को हम लोग (उत्तराम् उत्तराम् समाम्) उत्तरोत्तर आने वाले वर्ष में प्राप्त करें और उसका उपभोग करें। हे (सुपुम्ण) उत्तम सुखयुक्त प्रजाजन ! (ते क्रत्वे) तेरे कर्म और ज्ञान की वृद्धि के लिये (सुपुम्णस्य) उत्तम सुख से युक्त (ते) तेरे (दक्षस्य) बल और (विष) कान्ति का (सवृक्) स्वीकार करने वाला होकर मैं (अग्रिहुत.) अग्रणी, तेजस्वी नायक द्वारा स्वीकृत होकर (उपहूत) आदरपूर्वक बुलाया जाकर ही मैं (इन्द्रपीतस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुषों या प्रजाजन से युक्त या पालित और (प्रजापति भक्षितस्य) प्रजा के पालक माता पिताओं द्वारा खाये गये अर्थात् उपयुक्त, (मधुमत) मधुर अन्नादि ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र को मैं सेनापति और राजा (भक्षयामि) उपभोग करूं। महावीर का समस्त प्रकरण, ब्रह्मचर्य, परमेश्वरोपासना, योग द्वारा आत्म साधना और सूर्य चन्द्र आदि परक भी लगता है विस्तारभय से नहीं लिखा।

॥ इत्यष्टात्रिंशोऽध्याय. ॥

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—(साधिपतिकेभ्यः) अधिपति आत्मा या मन के सहित शरीर में विद्यमान प्राणों के समान राष्ट्र में अपने अधिपति, अध्यक्षों के सहित (प्राणेभ्यः) उत्तम जीवन धारें, राष्ट्र को चेतन बनाये रखने वाले प्रजाजनों को (स्वाहा) उत्तम रीति से अन्न आदि प्राप्त हो। (पृथिव्यै अन्तरिक्षाय अग्नये वायवे दिवे सूर्याय स्वाहा) पृथिवी और उस पर रहने वाले प्रजाजन को (स्वाहा) उत्तम अन्न प्राप्त हो। 'अन्तरिक्ष' को उत्तम आहुति और राजा प्रजा के बीच के मध्यस्थ कार्यकर्त्ता को आदर और अग्नि, वायु आकाश और सूर्य इनको (स्वाहा) उत्तम घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों की आहुति और उत्तम ज्ञानपूर्वक स्तुति हो। (वायवे स्वाहा) वायु को उत्तम आहुति प्राप्त हो। और [illegible] सबको जीवन देने वाले एवं उसके समान सबको उत्साह देने वाले राजा को आदर प्राप्त हो। (दिवे स्वाहा) सब तेजस्वी सूर्य, चन्द्रादिक के आश्रय स्थान आकाश के समान सब तेजस्वी पुरुषों के आश्रय राजा को उत्तम अन्न, धन, ऐश्वर्य प्राप्त हो। (सूर्याय स्वाहा) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को उत्तम अन्न और आदर प्राप्त हो।

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥

लिङ्गोक्ता देवताः ॥

भा०—(दिग्भ्यः स्वाहा) दिशाओं और उनके वासी प्रजाओं

को उत्तम आदर और अन्न प्राप्त हो। (चन्द्राय स्वाहा) चन्द्र के समान आह्लादक राजा को उत्तम ऐश्वर्य और आदर कीर्त्ति प्राप्त हो। (नक्षत्रेभ्य स्वाहा) नक्षत्रों के समान अपने स्थान से विचलित न होने वाले वीर पुरुषों को यश प्राप्त हो। (अद्भ्य. स्वाहा) जलों के समान शीतल स्वभाव, मल, पाप के दूर करने वाले आप्त पुरुषों को उत्तम अन्न दान, यश, उत्तम वचन द्वारा आदर प्राप्त हो। (वरुणाय स्वाहा) मेघ और समुद्र के समान सर्वश्रेष्ठ राजा को उत्तम आदर एवं धनादि प्राप्त हो। (नाभ्यै) अपने में सबको बांध लेने वाले, नाभि के समान केन्द्रस्थ पुरुष को आदर प्राप्त हो, (पूताय स्वाहा) पवित्र करने वाले स्वयं पवित्र पुरुष का आदर हो।

अथवा—(१) मन सहित समस्त प्राणों को बलवान् करने के लिये उत्तम साधन करो। पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य इनको सुखकारी बनाने के लिये उत्तम साधन करो।

(२) दिशाएं, चन्द्र, नक्षत्र, जल, समुद्र, नाभि और शरीर की पवित्रता के लिये भी उत्तम साधनों का प्रयोग करो।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा। श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा॥३॥

भा०—(वाचे) वाणी के सुधार और उसके उत्तम शिक्षा के लिये, (प्राणाय प्राणाय) दायें बायें प्राणों की स्वच्छता और बल के लिये (चक्षुषे चक्षुषे) दायें बायें आंखों के उत्तम शक्ति के लिये, (श्रोत्राय श्रोत्राय) दायें बायें कानों की श्रवण शक्ति के लिये (सु-आहा) उत्तम अन्न खाओ, उत्तम रीति से इनका उपयोग लो और उनको सन्मार्ग में चलावो।

मनसः कामुमाकूतिं वाचः सुत्यमशीय।
पुशूनां रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा॥ ४ ॥
कामादयो देवताः। निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—(मनसः) मन, मननशील अन्तःकरण की (कामम्) इच्छा और (आकूतिम्) अभिप्राय जतलाने की शक्ति और (वाचः) वाणी के (सत्य) यथार्थ, सत्य भाषण को मैं (अशीय) प्राप्त करूं, अर्थात् मनसे दृढ़ इच्छा और प्रबल अभिप्राय ज्ञापन का अभ्यास करूं और वाणी से सत्य बोलूं। (पशूनां) पशुओं के (रूपम्) नाना प्रकार के (अन्नस्य) अन्न के (रसः) नाना सार रूप रस और (यशः श्रीः) यश और ऐश्वर्य ये सब (मयि) मुझ पुरुष में (स्वाहा) उत्तम कर्म और वाणी से (श्रयताम्) आवें और स्थिर हों।

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः संसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन्। मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

महावीरो देवता । कृतिः । निषादः ॥

भा०—(सम्भ्रियमाणः) प्रजाएं जब राजा को नाना ऐश्वर्यों से पुष्ट करती हैं तब वह (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' कहाता है। (सम्भृतः सम्राट्) वह अच्छी प्रकार परिपुष्ट हो जाता है तब वह प्रजा में उत्तम रीति से सर्वत्र ऐश्वर्य से प्रकाशित होने से 'सम्राट्' कहाता है। (संसन्नः वैश्वदेवः) अच्छी प्रकार राजसभा में विराज कर समस्त विद्वानों से आदर पाने के कारण 'वैश्वदेव' कहाता है। (प्रवृक्तः घर्मः) ऊंचे आसन को प्राप्त होकर वह तेजस्वी होने से 'घर्म' कहाता है। (उद्यतः तेजः) उन्नत पद पर स्थित होकर वह तेजस्वी एवं मंगल प्रताप होने से 'तेज' या सूर्य के समान कहाता है। (पयसि आश्विनः) जल द्वारा अभिषेक कर लेने पर स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के प्रजाओं अथवा

१—शरकुदृशः० इति काण्व० ।

राजवर्ग और प्रजा वर्ग दोनों द्वारा अभिषिक्त होने के कारण वह 'आश्विन' कहाता है। (विष्यन्दमानः पौष्णः) विशेष रूप में बल से गमन करता हुआ हुए वह राजा पृथिवी के हित के लिये प्रवृत्त होने के कारण 'पौष्ण' कहाता है। (क्रुध्यन् मारुतः) जब वह शत्रुओं का नाश कर रहा होता है तब वह मारने वाले सैनिकों का स्वामी होने से 'मारुत' कहाता है। (तृप्तिः सन्ताय्यमानः मैत्रः) शत्रु नाशक सेना बल के स्थान २ पर विस्तृत कर देने पर, अथवा जलाशय तडाग आदि कृषि के साधनों को फैला देने पर वह (मैत्रः) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और प्रजा को मरण पाश में रक्षा करने वाला होने से वह सूर्य के समान तपस्वी राजा 'मित्र' कहाता है। (वायव्यः ह्रियमाणः) बल से युद्ध क्षेत्र में रथादि साधनों से जाता हुआ वह वायु के समान वेग शाली होकर शत्रु की जड़ों को हिला देने वाला वायु के समान होने से 'वायव्य' है। (हूयमान आग्नेयः) वह बराबर शत्रु के पक्षियों में उनके शरीर में नाना आहुति पाता हुआ, अग्नि के समान प्रचण्ड होने के कारण 'आग्नेय' है। (हुतः वाक्) सब प्रजाओं द्वारा अपना राजा स्वीकार कर लिया जाकर, सबको आज्ञा देने वाला होने से 'वाक्' स्वरूप है। वह सबको आज्ञा देता है। इस प्रकार ये १२ स्वरूप राजा के समझने चाहिये।

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो
नवमे वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥ ६ ॥

सवित्रादयो देवताः । निचृदष्टिः । धैवतः ।

भा०—राजा के द्वादश रूपों का वर्णन। (प्रथमे अहनि) पहले दिन वह सूर्य के समान सबका प्रेरक, आज्ञापक और ऐश्वर्य का उत्पादक होने से 'सविता' है। (द्वितीये अग्निः) दूसरे दिन वह अग्नि के समान मार्ग प्रकाशक अग्रणी होने से 'अग्नि' है। (तृतीये वायुः)

तीसरे दिन वायु के समान बलवान् हो जाने से वह 'वायु' है। (चतुर्थ आदित्य) चौथे दिन आदित्य के समान जलों के समान करों के ग्रहण करने से 'आदित्य' है। (चन्द्रमा पञ्चमः) पांचवें दिन चन्द्र के समान आह्लादक होने से 'चन्द्रमा' है। (षष्ठे ऋतुः) छठे दिन सबको नाना पदार्थों के प्राप्त कराने और सबको नाना प्रकारों से सुखी करने वाला होने से 'ऋतु' है। (मरुतः सप्तमे) सातवें दिन सैनिकों के रूप में या प्रजा साधारण के रूप में विद्यमान होने से वह 'मरुद्गण' ही है। (अष्टमे बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का पालक होने से 'बृहस्पति' है। (मित्रः नवमे) नवें दिन वह सर्वत्र स्नेहवान् होने से 'मित्र' है। (वरुणः दशमे) दसवें दिन वह सबसे वरण करने योग्य होने से 'वरुण' है। (एकादशे इन्द्रः) ग्यारहवें दिन विद्युत् के समान तेजस्वी होने से 'इन्द्र' है। और (विश्वे देवाः द्वादशे) बारहवें दिन समस्त विद्वानों के बीच में निष्पक्षपात होकर रहने से विश्वेदेवों अर्थात् विद्वानों से सम्मति में भिन्न न होने से 'विश्वे देव मय' है।

आत्मपक्ष में—वह मरणोत्तर प्रतिदिन क्रम से सूर्य, आग, वायु, रश्मि, चन्द्र, ऋतु, वायु, प्राण, उदान और विद्युत् और शेष सब दिव्य पदार्थ इनमें उत्तरोत्तर प्राप्त होने से उस २ रूप का होकर विचरता है और कर्म फलों का भोग करता है।

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ ७ ॥

मरुतो देवताः । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—वह राजा (उग्रः च) भयंकर और सदा वायु के समान प्रचण्ड वेग से शत्रु पर आक्रमण करने से 'उग्र' है। (भीमः च) उनको भयप्रद होने से 'भीम' है। (ध्वान्तः च) अन्धकार के समान मूढ़ कर देने वाला होने से 'ध्वान्त' है। (धुनिः च) शत्रु को कंपा देने वाला होने से 'धुनि' है। (सासह्वान् च) बराबर पराजित करने में समर्थ होने से '—

ह्वान्' है। (अभियुग्वा) उन पर आक्रमण करने से 'अभियुग्वा' है और उनको तितर बितर कर देने से 'विक्षिप' है। (स्वाहा) वह अपने ही उत्तम कर्मों के कारण उन नामों से मान पाने योग्य है।

जीवपक्ष में—जीव, तीव्र स्वभाव, भयंकर, तामस, कम्पमान, सहनशील, आसक्त विक्षिप्त और [चकारसे] शान्त, निर्भय, प्रकाशमान, स्थिर, असहनशील, विक्षिप्त, आदि अपने कर्म फलों से हो जाता है।

अ॒ग्निᳬ हृद॑येना॒शनि॑ᳬ हृदया॒ग्रेण॑ पशु॒पतिं॑ कृत्स्न॒हृद॑येन भ॒वं य॒क्ना। श॒र्वं मत॑स्नाभ्या॒मीशा॑नं म॒न्युना॑ महादे॒वम॑न्तः पर्श॒व्ये॑नो॒ग्रं दे॒वं व॑नि॒ष्ठुना॑ वसिष्ठ॒हनुः॒ शिङ्गी॑नि कोश्या॒भ्याम् ॥ ८ ॥

उ॒ग्रं लोहि॑तेन मि॒त्रᳬ सौव्र॑त्येन रु॒द्रं दौर्व्र॑त्ये॒नेन्द्रं॑ प्रक्री॒डेन॑ म॒रुतो॒ बले॑न सा॒ध्यान् प्र॒मुदा॑। भ॒वस्य॒ कण्ठ्य॑ᳬ रु॒द्रस्या॒न्तः पा॒र्श्व्यं᳖ महादे॒वस्य॒ यकृ॑च्छ॒र्वस्य॑ वनि॒ष्ठुः प॑शु॒पतेः॑ पुरी॒तत् ॥ ९ ॥

उग्रादयो देवता। (८) भुरिगष्टि। मध्यमः। (९) आकृतिः। पञ्चमः॥ प्रजापतिर्ऋषिः।

भा०—(१) राजा के सर्वदेवमय शरीर का वर्णन अलंकार रूप से करते हैं। वह (हृदयेन अग्निम्) हृदय से अग्नि को धारण करता है। (हृदयाग्रेण अशनिम्) हृदय के अगले भाग से वह विद्युत् को धारण करता है। (कृत्स्न हृदयेन पशुपतिम्) समस्त हृदय के भाग से वह पशुओं के पालक प्राणवायु को धारण करता है। (यक्ना भवम्) यकृत् कलेजे से वह सर्वत्र विद्यमान आकाश को धारण करता है। (मतस्नाभ्या

८, ९—'तत्राग्निं हृदयेन,' 'उग्रं ल्लोहितेन' इति द्वकाण्डक ब्राह्मणरूप देवताऽश्वस्वयवसम्बन्धविधानादिति महीधर। देवताश्वस्वयवविधाना द्वेकाण्डिक श्रुतिरिति उव्वट। प्रश्नाध्ठन० इति काण्व०।

नर्थम्) गुणों से वह जल को धारण करता है। (मन्युना हृदाग्रम्) मननशील चित्त या मन्यु, क्रोध से सब पर शासन करने वाले ऐश्वर्यवान् विद्युत् को धारण करता है। (अन्तः पर्शव्येन) भीतर के पसुलियों से (महादेवम्) सबसे बड़े देव, अन्तर्यामी परमेश्वर को धारण करता है। (वनिष्ठुना) आंतों से (उग्रं देवम्) तीव्र देव, अग्नि को उदर रूप से धारण करता है। (वसिष्ठहनुः) समस्त प्रजा को बसाने हारे लोगों में से सबसे श्रेष्ठ होकर शत्रु को हनन करने वाले साधनों से सम्पन्न होकर (शिङ्गीनिकोश्याभ्याम्) कोश में रखने योग्य नाना और ऐश्वर्य से (शिङ्गीनि) समस्त प्राप्त करने योग्य कीर्तिजनक गुणों को हृदय कोश में धारण करता है।

इस मन्त्र में 'वसिष्ठहनुः शिङ्गीनी कोश्याभ्याम्' यह अंश क्लिष्ट एवं अस्पष्ट है।

भा०—हे राजन्! तू (लोहितेन) तपे लोहे के समान तीक्ष्ण स्वभाव से (उग्रम्) अति उग्र, प्रचण्ड पुरुष को वश कर। (सौव्रत्येन मित्रम्) उत्तम २ व्रत और शुभकारी नियम कर्मों के पालन से (मित्रम्) मित्रों को अपने वश करे। (दौर्व्रत्येन) दुष्टों के प्रति दुःखदायी, कष्टप्रद कार्यों से (रुद्रम्) प्रजा को कष्टों से रुलाने वाले पुरुष को वश करे। (प्रक्रीडेन) उत्तम, मन को बहलाने वाले क्रीड़ा विनोद से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को वश करे। (बलेन) बल से, सेनाबल के कार्य से (मरुतः) मारने हारे सैनिकों को, अथवा बल या सेना द्वारा मनुष्यों को वश करे। (प्रमुदा) अति हर्षकारी सुखप्रद उपाय से (साध्यान्) वश करने योग्य जनों को वश करे।

अथवा अध्यात्म में—उग्र आदि नाना प्राणों के नाम भेद हैं। (कण्ठ्यं) कण्ठ में विद्यमान उत्तम स्वर गायन आदि (भवस्य) भवनशील प्रशंसा योग्य सामर्थ्यवान् प्राण का कार्य है। (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने वाले प्राण का स्थान (अन्तः पार्श्व्यम्) पसुलियों के भीतर का स्थान है। (महत् महादेवस्य) बड़े भारी शक्ति वाले या

जाठर अग्नि ज्वाला से युक्त पित्त का स्थान (यकृत्) यकृत्, कलेजा है, (दावंस वनिष्ठु) भुक्त अन्न को सूक्ष्म २ अणु करके सर्वत्र अंगों में पहुंचाने वाले जाठर बल का स्थान (वनिष्ठु) आंत है। (पशुपते) दर्शनशील इन्द्रियां अथवा कर्मकर भृत्य के समान शरीर के काम करने वाले अंगों के पालक आत्मा का स्थान (पुरीतत्) पुरीतत् नामक हृदय की नाडी है।

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा माश्सेभ्यः स्वाहा माश्सेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ १०॥

भा०—(लोमभ्य स्वाहा लोमभ्य स्वाहा) रोमों को उत्तम अन्न बल प्राप्त हो। वे स्वच्छ रोग रहित रहें। (त्वचे स्वाहा) त्वचा के प्रत्येक भाग को उत्तम रीति से रक्खो। (लोहिताय स्वाहा) रक्त के प्रत्येक भाग को स्वच्छ रक्खो। (मेदोभ्य स्वाहा मेदोभ्य स्वाहा) मेद, धातु के प्रत्येक अंश को स्वच्छ और रोग रहित करो। (मासेभ्य स्वाहा मासेभ्य स्वाहा) देह में मांसों के प्रत्येक अंश को विकाररहित, नीरोग रक्खो। (स्नावभ्य स्वाहा स्नावभ्य स्वाहा) प्रत्येक स्नायु बलवान्, अविकृत रक्खो। (अस्थभ्य स्वाहा अस्थभ्य स्वाहा) प्रत्येक हड्डी को बलवान् और दोष रहित रक्खो। (मज्जभ्य स्वाहा मज्जभ्य स्वाहा) मज्जा के प्रत्येक भाग को उत्तम, तथा अविकृत, स्वच्छ रक्खो। (रेतसे स्वाहा) वीर्य की वृद्धि के लिये भी उत्तम प्रयत्न करो और (पायवे स्वाहा) गुदा इन्द्रिय के मलशोधक अंग को स्वच्छ रक्खो। शरीर में विद्यमान उक्त धातुओं के समान राष्ट्र

१०—मेदस स्वाहा मेदस० इति काण्व०।

में भी घटक अवयवों को अच्छी प्रकार यत्नपूर्वक रख कर उनको उत्तम अन्न आदि प्रदान करो।

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥

भा०—(आयासाय स्वाहा) अंगों के व्यापक यत्न के लिये (स्वाहा) उत्तम अन्न खाओ। (प्रायासाय स्वाहा) उत्तम आदि के परिश्रम के लिये भी उत्तम अन्न खाओ। (संयासाय) मिल कर अंगों के यत्न दान करने के लिये, (वियासाय) विविध अंगों के यत्न के लिये, (उद्यासाय) उठाने के परिश्रम के लिये भी (स्वाहा) उत्तम अन्न का ग्रहण करो। (शुचे स्वाहा) स्वच्छ रहने और शरीर की कान्ति के लिये उत्तम आहार करो। (शोचते) शुद्ध विचार करने वाले आत्मा के लिये (स्वाहा) उत्तम भोजन करो। (शोचमानाय स्वाहा) उत्तम तत्त्व विचार प्रकाशित करने के लिये और (शोकाय) तेज के प्राप्त करने के लिये उत्तम आहार करो।

इसी प्रकार राष्ट्र में भी आयास, वियास आदि नाना यत्न और प्रयत्नसाध्य कार्यों के लिये, तेज, बल के बढ़ाने के लिये और तेज बल बढ़ाने वाले विद्वान् जनों के लिये उत्तम २ रीति से यत्न किया जाय।

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्त्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥ १२ ॥

भा०—(तपसे) धर्माचरण, तप का अनुष्ठान, (तप्यते) तपस्या करनेहारे पुरुष, (तप्यमानाय) शीत व्यायामादि करनेहारे ब्रह्मचारी

१— [illegible]

(तपसे) सिद्ध तपस्वी, परिव्राजक आदि और (घर्माय) सूर्य के समान तजस्वी सब पुरुषों के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न करो। धर्म कार्यों और धर्म के कार्य करने वालों के लिये उत्तम दान करो। (निष्कृत्यै) पापों के निवारण करने, (प्रायश्चित्यै) बिगड़े कार्यों और पाप आचरणों को सुधारने और (भेषजाय) शारीरिक कष्टों को चिकित्सा द्वारा दूर करने और सुख प्राप्त करने के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न किया जाय।

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ १३ ॥

भा०—(यमाय स्वाहा) राष्ट्र का नियन्त्रण करने वाले राज्य व्यवस्थापक और शरीर के नियामक वायु का उत्तम रीति से आदर और तर्पण करो अन्न और कर आदि प्रदान करके उसको अनुकूल रक्खो। सर्वनियन्ता परमेश्वर का सदा स्मरण करें। (अन्तकाय स्वाहा) दुष्टों का अन्त करने वाले राजा को आदर और सब शरीरों के अन्त करने वाले मृत्यु का उपाय और परमेश्वर का स्मरण कर। (मृत्यवे स्वाहा) सबको मारने वाले का आदर मृत्यु का उपाय और सर्वदुष्ट मारक परमेश्वर की उपासना करें, उससे सत्य आत्म ज्ञान प्राप्त करें। (ब्रह्मणे स्वाहा) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपाय और विशाल राष्ट्र की रक्षा का उपाय करें, परमब्रह्म परमेश्वर की उपासना करें। (ब्रह्महत्यायै स्वाहा) वेद ज्ञान के विनाश के निवारण का उत्तम उपाय करो। अथवा ब्रह्म, अर्थात् महान् ऐश्वर्य के हत्या अर्थात् प्राप्ति का उपाय करो और ब्रह्म अथात् परमेश्वर की प्राप्ति का सदुपयोग करो। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) राष्ट्र के सभी देव, शासक, विद्वानों का उचित आदर मान, पदाधिकार वेतनादि प्रदान करो। शरीर के सभी प्राणों की साधना करो, जगत् के सभी दिव्य पदार्थों का ज्ञानपूर्वक

सदुपयोग करो। (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) राष्ट्र में राजा और प्रजा वर्ग, स्त्री और पुरुष दोनों को उत्तम साधन और अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त हों। आकाश और पृथिवी दोनों को उत्तम रीति से ज्ञान करो।

॥ इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

[illegible]
[illegible] ।



अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

[अ० ४४] दध्यद् आथवण ऋषि । आत्मा दवता ।
अनुष्टुप् । धैवतः ॥

॥ ओ३म् ॥ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥

भा०—(जगत्याम्) इस सृष्टि मे (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर, प्राणी, जगम ससार या गतिशील है (इद) वह (सर्वं) सब (ईशा) सर्व शक्तिमान् परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है । (तेन त्यक्तेन) उस त्याग किये हुए, या (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थ से (भुञ्जीथा) भोग अनुभव कर । (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन लेने की (मा गृध) चाह मत कर । अथवा (धन कस्य स्वित् ?) धन किसका है ? किसी का भी नहीं । इस लिये (मा गृंध) मत लालच कर ।

'ईशा'—ईश्वरेण सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना' इति दया० । ईश ऐश्वये । क्विप् । ईष्ट इतीट् । ईशिता परमेश्वर । सहि सर्वं जन्तूनामात्मा सन् ईष्टे । इति महा० ।

'इद सर्वं'—प्रकृत्यादिपृथिवीपर्यन्त । इति दया० । प्रत्यक्षतो दृश्यमान सर्वं इति मही० ।

'जगत्या'—'गम्यमानायां सृष्टौ' इति दया० । लोकत्रये इति मही० । पृथिव्यामिति उवट ।

१—अथातो ज्ञानकाण्डम् ।

'तेन त्यक्तेन'—'तेन वर्जितेन तद्विरहितेन' इति दया० । तेनानेन सर्वेण त्यक्तेन त्यक्तमन्तव्याभिमानसम्बन्धेन इत्युवटः ।

अथवा—(त्यक्तेन तेन भुञ्जीथा) अपना स्वामित्व और चित्त से त्याग किये, अर्थात् ममता का संग से रहित इस भोग्य पदार्थ से भोग अनुभव कर । इति दया० ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः—तेन त्यागेन आत्मानं पालयेथाः इति शङ्करः । इस त्याग से अपना पालन कर ।

राष्ट्रपक्ष में—इस (जगत्यां) पृथ्वी पर जितना (जगत्) जंगम पदार्थ, पशु पक्षी आदि (इदं सर्वम्) यह सब जड़ पदार्थ हैं सब (ईशावास्यम्) शक्तिमान् ऐश्वर्यवान राजा द्वारा अधिकार करने योग्य हैं । उससे छोड़ गये या प्रदान किये का तू यथावश भोग कर और आपस में कोई भी एक दूसरे के धन की चाह मत कर । मत ललचा ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥

भा०—(इह) इस संसार में मनुष्य (कर्माणि) वेद से बताये हुए निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्षों तक (जिजीविषेत्) जीना चाहे । हे मनुष्य (एवं) इस प्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) कार्य करने वाले पुरुष में (कर्म न लिप्यते) कर्म का लेप नहीं होगा । (इतः अन्यथा) इससे दूसरे किसी प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप छूटे बिना नहीं रहता ।

'कर्म'—कर्माणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि इति दया० । श्रुतिचोदितानि इति उवटः । कर्म अधर्म्यमीदृशं म[illegible] । दया० ।

राष्ट्रपक्ष में—इस राष्ट्र में कर्म अर्थात् कर्तव्य पालन करते हुए भी वर्षों तक जीना चाहे । हे पुरुष ! इस प्रकार तुझ नेता पुरुष में कर्म का

लेप अर्थात् दोष नहीं लगेगा। इसमे दूसरा कोई और प्रकार नहीं, राष्ट्र में कोई निकम्मा नहीं रहे। सब अपना २ कर्त्तव्य पालन करें।

असुर्य्या नाम ते लोका ऽअन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे (लोका.) लोक अर्थात् मनुष्य (असुर्या) असुर कहाने योग्य, केवल अपने प्राण को पोषण करने हारे, पापाचारी हैं जो (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) आत्मा को ढक लेने वाले तमोगुण से (आवृता) ढके हैं। (ये के च) जो कोई (जना.) लोग भी (आत्महन) अपने आत्मा का घात करते हैं, उसके विरुद्ध आचरण करते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अपि) जीते हुए भी (तान्) उन उक्त प्रकार के लोकों को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

'लोका.'—ये लोकन्ते पश्यन्ति ते जना.। लोक्यन्ते दृश्यन्ते भुज्यन्ते कर्मफलानि यत्रेति लोका जन्मानि।

राष्ट्रपक्ष मे—वे सूर्य रहित स्थान गहरे अन्धकार से ढके हैं जो आत्मा अर्थात् जीवों के देहों का नाश करते हैं। वे उन स्थानों पर जीते भी रक्खे जाते हैं। और मरकरतो परलोक मे वे तामस दशाओं का अनुभव करते ही हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

भा०—(अनेजत्) अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, परिणाम रहित, (एकम्) अद्वितीय, (मनस जवीय) मन से भी अधिक वेगवान् ब्रह्म है। (पूर्वम्) सबके पूर्व सबमे आगे, (अर्षत्) गति करते हुए (एनत्) उसको (देवा) पृथिवी आदि तत्व और चक्षु आदि इन्द्रिय

३—०प्रेत्याभि० इति काण्व०।

नत (न आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते। (तत्) वह परब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप में स्थित, कूटस्थ स्थिर होकर भी (धावतः) विषयों के प्रति जाते हुए (अन्यान्) अपने से भिन्न अन्य, मन आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है उनकी पहुंच से परे रहता है। (तस्मिन्) उस सर्वव्यापक में ही (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला वायु और उसके समान जीव भी (अपः) कर्म (दधाति) करता है।

आत्मपक्ष में—उस आत्मा के आश्रय पर (मातरिश्वा) प्राण गति करता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

भा०—(तत् एजति) वह क्रिया करता है (तत् न एजति) वह क्रिया नहीं करता। वह स्वयं कूटस्थ, निष्क्रिय होकर समस्त ब्रह्माण्ड को चला रहा है। (तत् दूरे) वह अधर्मात्मा, अविद्वान् पुरुषों से दूर है। (तत् उ अन्तिके) वह ही धर्मात्मा और विद्वानों के समीप है। (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् और जीवों के (अन्तः) भीतर, (तत्) वह ही और (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्तमान है। वह सर्वव्यापक है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥ ६ ॥

भा०—(यः तु) जो पुरुष (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों और जड़ चेतन पदार्थों को भी (आत्मन् एव) परमात्मा पर ही आश्रित (अनुपश्यति) विद्याभ्यास, धर्माचरण और योगाभ्यास कर साक्षात् करता है। और (सर्वभूतेषु च) समस्त प्रकृति और पदार्थों में

१—आत्मन्नेव इति काण्व०।

(आत्मान) परमेश्वर को व्यापक जानता है। (ततः) तब वह (न विचिकित्सति) सदेह मे नहीं पड़ता।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। तस्मिन् दृष्टे परावरे। गी०

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः॥ ७॥

भा०—(यस्मिन्) जिस ब्रह्मज्ञान की दशा मे (सर्वाणि भूतानि) समस्त जीव, प्राणी (आत्मा एव अभूत्) अपने आत्मा के समान ही हो जाता है, अर्थात् समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं उस (एकत्वम् अनु पश्यतः) एकता या समानता को प्रतिक्षण देखने वाले (विजानतः) विशेष आत्मज्ञानी पुरुष को (तत्र) उस दशा मे फिर (कः मोहः) कौनसा मोह और (कः शोक) कौनसा शोक रह सकता है? अर्थात् तब कोई शोक मोह नहीं रह जाता।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (परि अगात्) सर्वत्र व्यापक है। वह (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमय, अथवा तीव्र शक्तिमय शीघ्र गति देने वाला, (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण नामक तीनों शरीरों से रहित, (अव्रणम्) व्रण, घाव आदि से रहित। (अस्नाविरम्) स्नायु आदि बन्धनों से रहित, शुद्ध अविद्यादि दोषों रहित, सदा पवित्र, (अपापविद्धम्) पापों से सदा मुक्त, (कवि) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (मनीषी) सबके मनों को प्रेरणा करने वाला, (परिभू) सर्वत्र व्यापक, सबका वश किता, (स्वयम्भू) स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान, माता पिता द्वारा जन्म न लेने हारा है। वह (याथातथ्यतः) यथार्थ रूप से, ठीक

ग्रह (शाश्वतीभ्यः) सनातन से चली आती (समाभ्यः) प्रजाओं के लिए (अर्थान्) समस्त पदार्थों को (व्यदधात्) रचता है । और उनका ज्ञान प्रदान करता है ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳩ रताः ॥ ९ ॥

भा०—(ये) जो (असम्भूतिम्) सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों वाली अनादि प्रकृति की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) चले जाते हैं । (ये उ) और जो (सम्भूत्याम्) महत् आदि विकारमय सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं (ते) वे (ततः) उससे भी (भूय इव) अधिक गहरे (तमः) अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं । अर्थात् केवल प्रकृति के उपासक भी परमानन्द परमेश्वर की आनन्दमय परम शान्ति को प्राप्त नहीं करते । वे जड़ोपासना में मग्न रहते हैं । और जो प्रकृति विकारों की ही उपासना करते हैं वे भी सुख नहीं पाते ।

अथवा—(असम्भूतिम्) इस देह को छोड़ कर पुनः आत्मा अन्य देह में उत्पन्न नहीं होता, जो ऐसा प्रकार मानते हैं वे गहरे अज्ञान में रहते हैं और जो (सम्भूतिम्) आत्मा ही कर्मानुसार उत्पन्न होता है मरता है और ईश्वर कुछ नहीं है ऐसा मानते हैं वे उससे भी गहरे अन्धकार में पड़ते हैं ।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

भा०—(सम्भवात्) उत्पन्न हुए अर्थात् कार्यजगत् से (अन्यत् एव) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं । (असम्भवात्) नहीं उत्पन्न हुए अर्थात् कारणरूप प्रकृति के ज्ञान से (अन्यत्) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं । (ये) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमें (तत्) इस

तत्व का (विचक्षिरे) विशेष रूप से बतलाते हैं, उन (धीराणां) बुद्धिमान् पुरुषों से (इति) इसी विषय का (शुश्रुम) श्रवण करें।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

भा०—(सभूंतिम्) जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस कार्य सृष्टि और (विनाशं च) जिसमे विनाश अर्थात् कारण में लीन होते हैं (उभयं) दोनों को (य) जो (सह) एक साथ (वेद) जान लेता है। वह (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान कर (मृत्युम्) देह को छोड़ने के धर्म के भय को (तीर्त्वा) पार करके, उसको सर्वथा त्याग कर (सभूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्व को जान कर (अमृतम्) उस अमर अविनाशी मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

संभूति = सम्भवैकहेतु पर ब्रह्म। विनाश विनाशधर्मकं शरीरमिति उवट।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः ॥ १२ ॥

भा०—(ये) जो लोग (अविद्याम्) अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र सुख और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा (उपासते) करके जानते हैं, उसी मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। वे बड़े अज्ञान में रहते हैं। और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्राभ्यास में ही (रताः) लगे रहते हैं वे (ततः भूयः इव) उससे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

भा०—(विद्यायाः) विद्या का फल और कार्य (अन्यत् एव आहुः) दूसरा ही बतलाते हैं। और (अविद्यायाः अन्यत् आहुः) अविद्या का फल और ही बतलाते हैं। (ये नः तत् विचचक्षिरे) जो हमें विद्या और अविद्या के स्वरूप का उपदेश करते हैं हम उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों के मुखों से (इति शुश्रुम) इस तत्त्व का श्रवण किया करें।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

भा०—(विद्यां च अविद्याम् च) विद्या और अविद्या (यः) जो (तत् उभयं वेद) इन दोनों के स्वरूप को जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्युं तीर्त्वा) मृत्यु को पार करके (विद्यया अमृतम् अश्नुते) विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है।

अविद्यया—शरीरादि जड़ पदार्थ द्वारा पुरुषार्थ करके। (दया०)
विद्यया—शुद्ध चित्त से सम्यग् तत्त्व दर्शन करके। (दया०)

स्वर्गापवर्गाणि कर्माणि आत्मज्ञानं चेति उवटः। अविद्या अग्निहोत्रादि कर्मणा, इति मही०।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतं स्मर ॥ १५ ॥

भा०—(वायुः) वायु, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय आदि (अनिलम्) उक्त प्राणों के मूलकारण, वायु तत्त्व और (अमृतम्) अमृत आत्मा यह एक दूसरे के आश्रित हैं। वायु के आश्रय प्राण, प्राणों के आश्रय आत्मा जीवन धारण करता है। (अथ) और पश्चात् (इदम्) यह शरीर (भस्मान्तम्) भस्म हो जाने तक ही टिकता

१४—०विद्या० ०विद्या० इति काण्व०।
१५—ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर। इति काण्व०।

है। इसलिये हे (क्रतो) कर्म के कर्त्ता जीव! और प्रज्ञावान् पुरुष! अथवा हे संकल्पमय जीव! तू (ओ३म् स्मर) ओ३कार का स्मरण कर। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है। और (क्लिबे) अपने भरसक सामर्थ्य और प्रयत्न से साधे हुए लोक की प्राप्ति के लिये (स्मर) अपने अभीष्ट का स्मरण कर। और (कृतं स्मर) अपने किये हुए अच्छे बुरे कर्मों का स्मरण कर।

अग्ने नय॑ सुपथा॑ रा॒ये ऽअ॒स्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।
यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ ऽउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

भा०—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप! करुणामय प्रभो! तू हमें (सुपथा) धर्म के उत्तम मार्ग से (राये) विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिये (सुपथा) सन्मार्ग से (नय) ले चल। (विश्वानि वयुनानि) सब उत्तम ज्ञानों को और मार्गों और लोकों को (विद्वान्) जानता हुआ (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल व्यवहार को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे हम (भूयिष्ठां) बहुत २ (नमः उक्तिम्) स्तुति वचन (विधेम) करें।

हि॒र॒ण्मये॑न॒ पात्रे॑ण स॒त्यस्यापि॑हितं॒ मुख॑म्।
यो॒ऽसावा॑दि॒त्ये पुरु॑षः॒ सो॒ऽसाव॒हम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥१७॥

भा०—(हिरण्यमयेन) सब के हृदयग्राही, हित और रमणीय ज्योतिर्मय (पात्रेण) पालक द्वारा (सत्यस्य) सत्य आत्मा और परमात्म तत्व का (अपिहितम्) ढका हुआ (मुखम्) मुख खोला जाता है। (यः) जो (असौ) यह (आदित्ये) सूर्य अर्थात् प्राण में (पुरुषः) पुरुष, शक्तिमान् प्रकाश कर्त्ता है (असौ अहम्) वह ही मैं हूं। (ओ३म्) सब ससार

१ ७—०मुखम्। तत्त्व पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ इति काण्व०।

का रक्षा करनेहारा यह (खम्) आकाश के समान व्यापक, अनन्त और आनन्दमय है। और वही (ब्रह्म) गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है।

अथवा, ढकने से जैसे वस्तु छिपी रहती है उसी प्रकार ज्योतिर्मय पदार्थों से मुख से परम शक्ति का सत्य पदार्थों में विद्यमान सत्यस्वरूप छिपा है, प्राण के रूप से जो महान् शक्ति सूर्य में विद्यमान है वही मैं हूं।

यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चाग्नौ ''''तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ गीता ॥

ओ३म् खं ब्रह्म

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इति यजुर्वेदः समाप्तः ॥

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकारविरुदोपशोभित-श्रीमज्जयदेवशर्मणा विरचिते
यजुर्वेदालोकभाष्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ इति समाप्तं यजुर्वेदालोकभाष्यम् ॥

ऋषिवस्वङ्कचन्द्रा (१९८७) ब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
नवम्यां शशिवारे च यजुः भाष्यं समाप्यत् ॥